

→ ओ३म् ←

# ऋग्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(पञ्चम खण्ड)

भाष्यकार

श्री पं. जयदेव शर्मा

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ

प्रकाशक

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर







॥ ओ३य ॥

# ऋग्वेद-संहिता

भाषा - भाष्य

(पञ्चम खण्ड )

—:\*\*\*:—

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ, विद्यामार्तण्ड

—:\*\*\*:—

प्रकाशक—

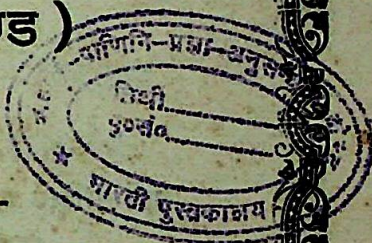
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.

—:\*\*\*:—

तृतीयावृत्ति

सन् १९८०  
संवत् २०३७ वि०

मूल्य  
३०) रुपये





आर्य-साहित्य मण्डल लिमिटेड अजमेर के लिये  
सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक—

दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

प्रथमावृत्ति संवत् १९९२ वि०

द्वितीयावृत्ति संवत् २०१५ वि०

तृतीयावृत्ति संवत् २०३७ वि०





॥ ओ३म् ॥

## ऋग्वेद विषय-सूची

पञ्चमाष्टके पञ्चमोध्यायः

सप्तमो मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः

( एकषष्टितमसूक्तादारभ्य )

सू० [ ६१ ]—मित्र और वरुण । परस्पर वरुण करने वाली स्त्री-पुरुषों को उपदेश । उनके प्रति सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य । (२) उत्तम जीवन व्यतीत करने का उपदेश । (३) राज्य में प्रजापालक, दुष्टवारक मित्र, वरुण दोनों वर्गों के कर्त्तव्य । (४) मित्र, वरुण का महान् सामर्थ्य । (५) दोनों विद्वानों के वचन, उत्तम ज्ञान से पूर्ण हों । (पृ० १-४)

सू० [ ६२ ]—(१-३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य । सबका भार अपने पर ले, समान रूप से देखे, उत्तम कर्म करे । किरणोंवत् सज्जनों सहित उदय को प्राप्त हो । (३) विद्वान्, स्नेही, शासक जन, प्रजाओं को नाना सुखजनक सम्पदाओं से पूर्ण करें । (४) आकाश-भूमिवत् माता पिता का कर्त्तव्य । प्रजा का हित । (५) बाहुओंवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) विद्वान् शासकों के कर्त्तव्य । (पृ० ४-६)

सू० [ ६३ ]—(१-५) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य । (२) यन्त्रचक्र में लगे अश्व या एंजिनवत् वा राशिवक् के बीच स्थित सूर्यवत् विद्वान् का सर्वसञ्चालन । (४) सर्वश्रेष्ठ सूर्यवत् ज्ञानी से प्रेरित



जनों की सदर्थ-प्राप्त । (५) सूर्यवत् सन्मार्ग में गति, मित्र और वरुण का भादुर । (पृ० ६-१०)

सू० [ ६४ ]—सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । (२) राजा रानी, राजा सेनापति के कर्त्तव्य । (३) वायु मेघवत् राजाओं के प्रजापतिवत् कर्त्तव्य । (५) वायुवत् श्रेष्ठ जन का कर्त्तव्य । (पृ० १०-१२)

सू० [ ६५ ]—मित्र और वरुण, राजा-प्रजा वर्ग के कर्त्तव्य । (२) उनके गृहपति-गृहपत्नीवत् कर्त्तव्य । (पृ० १२-१४)

सू० [ ६६ ] (१-३)—मित्र, वरुण, स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य । (४ १३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य । (१२-१३) उनसे ज्ञानैश्वर्य की याचना । (१४) सूर्यवत् तेजस्वी ज्ञासक का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (१७-१९) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० १४-२०)

सू० [ ६७ ]—दो अश्वी, राजा-रानीवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य-उपा दृष्टान्त से गुरु-शिष्य के कर्त्तव्य । अध्यात्म में आत्मा और बुद्धि का वर्णन । (३) जितेन्द्रिय नर-नारियों के कर्त्तव्य । (४) उनका आचार्य के अधीन वास, मैश्वर्य, मधुकरी वृत्ति । (५) अश्वी, जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्या जनों का गुरु से ज्ञान-याचना का कर्त्तव्य । उनके उद्देश्य और कर्त्तव्य । विद्याध्ययनशील जनों का उपदेश । (पृ० २०-२४)

सू० [ ६८ ]—अश्वी, रथी-सारथीवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । शिष्य-शिष्याओं के कर्त्तव्य । (७) बुद्धिमानों से त्यक्त, निःसहायों का सहाय करना कर्त्तव्य है । अश्वियों का सुज्यु को समुद्र से पार करने का रहस्य । (८) स्त्रियों, कन्याओं की रक्षा का कर्त्तव्य । (९) विद्वान् का कर्त्तव्य उपदेश करना, ज्ञान बढ़ाना । (पृ० २४-२८)

सू० [ ६९ ]—दो अश्वी, (१) राजा और विद्वान्, गृहस्थ के कर्त्तव्य । रथवत् गृहस्थाश्रम । (२) रथी-सारथीवत् पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (३) राजा-प्रजा आदि सहयोगी जनों को उपदेश । मधुमान् निधि



का रहस्य । (४-८) वर-वधू के कर्त्तव्य । (७) अश्वियों का भुज्यु को समुद्र से पार करने का गृहस्थ वर-वधूपरक स्पष्टीकरण । (पृ० २८-३२)

सू० [ ७० ]—गृहाश्रम की श्रेष्ठता । परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । वर और राजा के समान कर्त्तव्य । (४-७) वर-वधू दोनों को उत्तम उपदेश । (५) ज्ञान प्राप्त्यर्थ प्रेरणा । (पृ० ३२-३५)

सू० [ ७१ ]—‘अश्वी’ उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । रात्रि-सूर्यवत् स्त्री-पुरुषों के व्यवहार-निदर्शन । (२) विद्वान् स्त्री-पुरुषों, शिक्षकों के कर्त्तव्य । (३) रथवत् गृहस्थसञ्चालन का आदर्श । (४) रथ की पुरुष से तुलना । उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । ‘नासत्य’ का स्पष्टार्थ । (पृ० ३५-३७)

सू० [ ७२ ]—विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ३७-३९)

सू० [ ७३ ]—उत्तम स्त्री-पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य और उपदेश । (पृ० ४०-४१)

सू० [ ७४ ]—अश्वी, सभापति, सेनापति, वा राजा-रानी, उनके कर्त्तव्य । (२) उत्तम नायकों, स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (३) उत्तम नृपालों का वर्णन । (पृ० ४१-४३)

सू० [ ७५ ]—उषा के नाना दृष्टान्तों से उत्तम स्त्री वा वधू के कर्त्तव्यों का उपदेश । (४) पत्नी के कर्त्तव्य । (५) पक्षान्तर में सभा, सेनादि का वर्णन । (६) उत्तम विवाह-विधि द्वारा स्त्री को स्वीकार करके पुत्रोत्पादन का उपदेश । गृहस्थों के कर्त्तव्य । पुरुषों के कर्त्तव्य । (८) स्त्रियों के कर्त्तव्य । (पृ० ४४-४७)

सू० [ ७६ ]—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन । सविता प्रभु । पक्षान्तर में गृहपति सविता । (३) दिन-रात्रि विज्ञान के साथ साथ सूर्य उषा के दृष्टान्त से वर-वधू के कर्त्तव्यों का वर्णन । (४)





सौभाग्यवान् पुरुषों का लक्षण । (५) सत्पुरुष विदुषी स्त्री की उपदेश ।  
(७) उसके कर्त्तव्य । (पृ० ४७-५१)

सू० [ ७७ ]—सूर्य, उषा के विज्ञान के साथ २ परमेश्वर का वर्णन और गृहपत्नी युवति के कर्त्तव्य । (२) दिनों की नायिका उपावत् परमेश्वरी शक्ति और उत्तम युवति, नायिका के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) सौभाग्यवती का लक्षण । (४) स्त्री और राजशक्ति का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (६) गृहपत्नी के कर्त्तव्य । (पृ० ५१-५४)

सू० [ ७८ ]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी के कर्त्तव्य । (२) अग्नि-उषा व विद्वान्-विदुषी के कर्त्तव्य । स्त्रियों का सत्-आचार । (४) सौभाग्यवती का वर्णन । (५) उनका स्नेहयुक्त होने का कर्त्तव्य । (पृ० ५४-५६)

सू० [ ७९ ]—उपावत् गुणप्रकाशक वधू के कर्त्तव्य । (२) नव-वधुओं के उज्ज्वल दीपकों और सूर्यकिरणों के तुल्य कर्त्तव्य । पति-पत्नी का शरीर में दो बाहुओं के तुल्य कर्त्तव्य । (३) पत्नी घर की रानी । (४) मेघ-विद्युत् वत् पुरुष-स्त्री की स्थिति । (५) स्त्री की उत्तम ज्ञान और वचन वाली होने का उपदेश । (पृ० ५६-५८)

सू० [ ८० ]—उषावत् वधू के कर्त्तव्य । गर्मिणी के गर्भ पर उत्तम संस्कार डालने का उपदेश । साथ ही सृष्ट्युन्मुख प्रकृति का वर्णन । (२) पत्नी के गृहोचित शिष्टाचारों का वर्णन । पाक्षान्तर में उषा, सेना का वर्णन । (पृ० ५९-६०)

### षष्ठोऽध्यायः

सू० [ ८१ ]—उषा के दृष्टान्त से गृहपत्नी विदुषी के कर्त्तव्य । (२) उषावत् तेजस्विनी स्त्री का रानी-स्वरूप । (४) विदुषी स्त्री का मातृपद । माता के कर्त्तव्य । (पृ० ६०-६३)

सू० [ ८२ ]—इन्द्र-वरुण, शत्रुहन्ता, श्रेष्ठ पुरुष का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (२) इन्द्र-वरुण का स्वरूप एक वसुपति दूसरा प्रजापति । सम्राट् और साम्राज्य । (३) उनके कर्त्तव्य । नाना मार्ग निर्माण और प्रजा की समृद्धि-वृद्धि । (५) आधिदैविक दृष्टान्त से इन्द्र-वरुण का रहस्य । सूर्य-मेघवत् कोश और दण्ड के अध्यक्षों के कर्त्तव्य । (६) इन्द्र, वरुण, दण्डकर्त्ता और दण्डपति । (७) पाप, दुराचार, पीड़ा, संताप से रहित उनका शासन । (८) दोनों प्रजा के बन्धु हों । (९) दोनों अग्रयोद्धा । (१०) और प्रजा को उत्तम बलदाता हों । (पृ० ६३-६८)

सू० [ ८३ ]—इन्द्र, वरुण, वायु, विद्युत्पत् शत्रुहन्ता और शत्रु-चारक अध्यक्षों के कर्त्तव्य । कृपकोंवत् सैन्यों के कर्त्तव्य । (२) संग्राम के दो नायक इन्द्र, वरुण । (३) युद्ध आदि संकट के विकट अवसरों में उनके कर्त्तव्य । (४) भेदनीति और सदुपाय का उपदेश । (५) प्रजा की त्राण की प्रार्थना । उन दोनों का महान् सामर्थ्य । दश राजा, सुदास, वृत्सु उनका रहस्य, सभा-सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य । (पृ० ६८-७२)

सू० [ ८४ ]—स्त्री पुरुषवत् प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध । (२) सम्पन्न राष्ट्र में प्रजा का कर्त्तव्य । उत्तम शासकों के कर्त्तव्य । (पृ० ७२-७४)

सू० [ ८५ ]—इन्द्र, वरुण—उत्तम शासक तथा वायु जल और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन । इन्द्र, वरुण राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ७४-७६)

सू० [ ८६ ]—वरुण, परमेश्वर का वर्णन । परमेश्वर की भक्ति-पूर्वक प्रार्थनोपासना । (३) बन्धन की जिज्ञासा । मोक्ष की प्रार्थना । (४) पाप मोचन की प्रार्थना । (५) बन्धन-मोचन की प्रार्थना । (६) दुःख मार्ग में जाने के कारणों की विवेचना । (७) सन्मार्ग पर नायक प्रभु । (पृ० ७६-७९)



सू० [ ८७ ]—वरुण परमेश्वर के महान् दर्शनीय कार्य । प्रभु परमेश्वर का व्यवस्थित शासन । (४) प्रभु की व्यवस्था में विद्वान् का कर्त्तव्य । (५) जगत्तृष्टा की अद्भुत सृष्टि । (६) परमेश्वर का वर्णन । (७) दयालु प्रभु । (पृ० ८०-८३)

सू० [ ८८ ]—वरुण परमेश्वर का वर्णन । निष्पक्षपात प्रभु । (२) श्लेष से अन्नवत् प्रभु का वर्णन । (३) शिष्य-गुरु, भक्त-उपास्य के स्नेह की पति-पत्नी के स्नेह से समता । (४) वाणी रूप प्रभु का निष्ठ भक्त को तारना । शिष्य के लिये तीर्थ गुरु किस प्रकार है । (५) भक्त-उपास्य का सखाभाव । (६) हम पापी होकर ईश्वर के दिये धन का भोग न करें । (७) कर्म-बन्धन को काटने द्वारा प्रभु । कर्म-बन्धन के छेदन का प्रकार । (पृ० ८३-८६)

सू० [ ८९ ]—देह-बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना । (२) दुःखी जीव की विनीत प्रार्थना । (४) भवतृष्णा से मोचन की प्रार्थना । (पृ० ८६-८८)

सू० [ ९० ]—बलवान् सेनापति के कर्त्तव्य । (३) सभापति के कर्त्तव्य । प्रजाजन स्त्री-पुरुषों के भव्य कर्त्तव्य । (४) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) स्वामियों, शासकों के कर्त्तव्य । (६) ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य । (पृ० ८८-९१)

सू० [ ९१ ]—बलवान् का स्थापन । बलवानों के कर्त्तव्य । (४-६) विद्युत्-वायुवत् दो नायकों के कर्त्तव्य । (पृ० ९१-९४)

सू० [ ९२ ]—वायुवत्, विवेकी विद्वान्-निर्णायक के कर्त्तव्य । (२) उत्तम शासक के कर्त्तव्य । (३) विवेकी वीर जनों के कर्त्तव्य । (पृ० ९४-९६)

सू० [ ९३ ]—इन्द्र अग्नि माता-पितृवत् ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी जनों के कर्त्तव्य । (३) विद्युत् और अग्नि के तुल्य अध्यापक, आचार्य और

सभापति, सेनापति के पद । अग्रणी नायकों, वीरों के कर्त्तव्य । (७) शसकों के कर्त्तव्य । (पृ० ९६-९९)

सू० [ ९४ ]—इन्द्र-अग्नि, विद्वान्, गुरु, शिष्यों के कर्त्तव्य । (३) नायक नायिका जनों के कर्त्तव्य । (१२) दुष्टाचारी को उचित दण्ड । (पृ० ९९-१०२)

सू० [ ९५ ]—सरस्वती । नदीवत् पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य । श्लेषमय वेद का अपूर्व चमत्कार । (३) सरस्वान् नरश्रेष्ठ का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (४-६) स्त्री को उपदेश । (पृ० १०२-१०५)

सू० [ ९६ ]—(१-३) वेदवाणी सरस्वती का वर्णन । (४-६) ज्ञानवान् प्रभु सरस्वान् से प्रार्थना । (पृ० १०५-१०७)

सू० [ ९७ ]—प्रभु की उपासना । प्रार्थना स्तुति । बृहस्पति प्रभु । (पृ० १०७-१११)

सू० [ ९८ ]—मनुष्यों को यज्ञ का उपदेश । (२) उत्तम राजा के कर्त्तव्य । (३) विजीगीषु राजा के कर्त्तव्य । (४) वीर जनों के कर्त्तव्य । (५) राजा के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में प्रभु की उपासना । (पृ० ११२-११४)

सू० [ ९९ ]—सर्वव्यापी प्रभु की महिमा का वर्णन । (४) इन्द्र, विष्णु, विद्युत् पवनवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (५) राजा-सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ११४-११७)

सू० [ १०० ]—विष्णु, व्यापक प्रभु की स्तुति-उपासना । (पृ० ११७-१२०)

### सप्तमोऽध्यायः

सू० [ १०१ ]—पर्जन्य । मेघवत्-विद्वान् के कर्त्तव्य । उसका शिष्य को वत्सवत् ज्ञान रस से वर्धन । (२) मेघ सूर्यवत् जगत् के स्वामी से वेदमय ज्ञान और सुखद देह की प्रार्थना । त्रिवत् 'ज्योतिः'



और त्रिधातु शरण का रहस्य । (३) मेघ के अप्रसूता और प्रसूता गौ के तुल्य रूप । उसके साथ सम्बद्ध भूमि सूर्यवत् प्रभु के दो रूप और प्रकृति पुरुष के विज्ञान का स्पष्टीकरण । (४) मेघविज्ञान । प्रकृति-परमाणुओं की तीन प्रकार की गति । तीन कोशों का वर्णन, अध्यात्म तत्त्व । (६) गौ वृषभ के दृष्टान्त से जगत्-स्रष्टा के आधार पर समस्त जगत् । (पृ० १२०-१२३)

सू० [ १०२ ]—पर्जन्य । मेघवत् सर्वोत्पादक प्रभु के गुणों का वर्णन । अग्निहोत्र-यज्ञ से प्रभु की प्रार्थना और मेघोत्पत्ति । (पृ० १२३-१२४)

सू० [ १०३ ]—मण्डूकों के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी और नाना विद्याओं के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ० १२४-१२९)

सू० [ १०४ ]—दुष्टों का दमन । राजा और पुरोहित के कर्त्तव्य । दण्डविधान का आदेश । (४) दुष्टों के दमन के नाना साधनों का उपदेश । (५) दण्ड योग्य अपराधियों का निर्देश । (१३) सत्यासत्य का विवेक करने का उपदेश । (१३-१४) सत्यवादी को दण्ड न देकर पापी को दण्ड देने का उपदेश । (१५) पीडादायियों को दण्ड । असत्यारोपी को दण्ड । (१७) दुष्ट स्त्रियों को दण्ड । (१८-१९) दुष्टों को कठोर दण्ड । दण्ड के लिये आग्नेय अर्घ्यों का प्रयोग । (२१-२४) कुटिलाचारी जनों पर दण्डपात । (२५) इन्द्र, सोम, राजा और न्याय-पति के कर्त्तव्य । (पृ० १२९-१३९)

### अष्टमं मण्डलम्

सू० [ १ ]—एक मात्र उपास्य प्रभु का वर्णन । उसके अनेक गुण । (५) उपास्य को धन के लिये न त्यागें । (६) ईश्वर का मातृसम पद । (८) पुरन्दर ईश्वर बन्धनमोचक । वीर सेनापति से तुलना । (१०) प्रभु की दुधार गौ से तुलना । (११) सेनापतिवत् प्रभु की

स्तुति । (१२) अद्भुत कारीगर प्रभु । (१३-१६) प्रभु से उत्तम २ प्रार्थनाएं । (१७) उत्तम कर्त्तव्योपदेश । (१८-२४) प्रभु से प्रार्थनाएं । (२५) सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन । (२६) प्रभु से प्रार्थनाएं । सत्पुरुषों के कर्त्तव्य । (३२-३४) आसङ्ग प्रायोगि का रहस्य । (पृ० ३४०-१५२)

सू० [ २ ]— प्रजापति, राजा और गृहपति के कर्त्तव्य । (२) राजा के प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य । (४) अद्वितीय स्वामी इन्द्र । (६) उस की उपासना । (७) प्रभु की राजा से समानता । (९) अभिषेक का अभिप्राय । (१०) आश्रय-याचना । (११-१७) राजा के कर्त्तव्य । प्रजा की प्रार्थना । प्रभु के प्रति भक्त की याचनाएं और कर्त्तव्य । (१८-३६) प्रभु परमेश्वर से बल ऐश्वर्य की याचना । (३७) स्तुत्य प्रभु । उससे प्रार्थनाएं (पृ० १५२-१६५)

सू० [ ३ ]— प्रभु से प्रार्थना और उसकी स्तुति । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य । (पृ० १६५-१७३)

सू० [ ४ ]— इन्द्र, प्रभु परमेश्वर का वर्णन । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (३) आत्मा का वर्णन । (८) राजा प्रजा का गृहस्थवत् व्यवहार । राजा के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य । (पृ० १७४-१८२)

### अष्टमोऽध्यायः

सू० [ ५ ]— उषा और अश्वि युगल । गृहलक्ष्मी उषा देवी । जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को गृहस्थोचित उपदेश । वीर विद्वान् एवं राजा और अमात्य-राजावत् युगल जनों के कर्त्तव्य । (३७, ३८, ३९) वैद्य प्रभु के दान और उसकी अध्यात्म व्याख्या । (पृ० १८२-१९४)

सू० [ ६ ]— पर्जन्यवत् ज्ञानप्रद प्रभु की उपासना । (२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (५) वीर पुरुषवत् ईश्वर का अद्भुत कर्म । (६) सूर्य, वायु, विद्युत् वत् राजा के कर्त्तव्य । (७-९) विद्वानों के गुण और



कर्त्तव्य । (१०) प्रभु से प्रार्थनाएं । (१२-१३) गुरुवत् प्रभु । (१४) पापनिवारणार्थं दण्ड-प्रयोग का उपदेश । (१५) अपरिमेय सबसे बड़ा प्रभु । (१६) प्रसुप्त प्रकृति का ईश्वर से सम्बन्ध । (१७) तम दूर करने की सूर्यवत् प्रभु से प्रार्थना । (१९) गौओं के तुल्य ऋषियों का प्रभु के प्रति भाव । (२०) सर्व-शक्तिप्रद प्रभु । (२१) पिता प्रभु । प्रभु और राजा से अनेक स्तुति-प्रार्थनाएं । (४६) सर्वोत्तम सुख प्रभु का है । 'तिरिन्दिर' का रहस्य । (४७) समदर्शी को बड़ा लाभ । (पृ० १९४-२०९)

सू० [ ७ ]—महद्गण । वायुओं के तुल्य बलवान् वीरों और विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश । (३-७) मेघ और वृष्टि लाने वाले वायुगण का वर्णन । उनकी तुलना से सज्जनों, वीरों के कर्त्तव्य । (पृ० २०९-२२२)

सू० [ ८ ]—अश्वी अर्थात् जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । राष्ट्र में राजा और सचिव जनों के कर्त्तव्य । (६-१५) ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी जनों के कर्त्तव्य । (पृ० २२२-२३०)

सू० [ ९ ]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में (१०) राजा और सेनापति के कर्त्तव्य । (१६-१८) उत्तम देवी विदुषी के गुण और कर्त्तव्यों का वर्णन । शिक्षा, आतिथ्य और ज्ञानप्राप्ति सम्बन्धी अनेक उपदेश । (पृ० २३१-२३८)

सू० [ १० ]—जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । वेग से जाने वाले साधनों से सम्पन्न पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० २३८-२४१)

सू० [ ११ ]—व्रतपा अग्नि । राजा, विद्वान् व अग्रणी नायक आचार्य के कर्त्तव्य । सर्वशासक तेजोमय प्रभु का वर्णन । (पृ० २४१-२४३)

## षष्ठोऽष्टकः

## प्रथमोऽध्यायः

सू० [ १२ ]—विश्वल्लष्टा की स्तुति । (२) राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन । (पृ० २४४-२५४)

सू० [ १३ ]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का निदर्शन । (पृ० २५४-२६४)

सू० [ १४ ]—ईश्वर से ऐश्वर्यादि की प्रार्थनाएं । (२) गोपति होने की प्रार्थना । (३) सर्व सम्पदा के दाता प्रभु । यज्ञमय प्रभु की महिमा । (७) उदारचेता प्रभु । (८) गुरुवत् प्रभु । (९) प्रभु के स्थायी कार्य । (१०) आनन्द-सागर प्रभु । (११) मङ्गलकारी प्रभु । (१३) 'अपां-फेन' से नमुचि के नाश का रहस्य । (१३-१५) दुष्टों के नाश का उपदेश । (पृ० २६५-२६९)

सू० [ १५ ]—सर्वशक्तिमान् ईश्वर की उपासना । (२) सर्व-धारक प्रभु । (३) जगत् का एक अद्वितीय शासक । (४) सर्वशक्ति-मान् जगत्-कर्त्ता । (५) प्रकाशों का दाता । (७) बुद्धिमय प्रभु का बल, ऐश्वर्य और ज्ञान । (८) उसका महान् ऐश्वर्य । (१०) उत्पादक, पालक प्रभु । (११) सर्वविघ्नहारी प्रभु । (१४) सर्वोपरि सर्वोपास्य । (पृ० २६९-२७२)

सू० [ १६ ]—परमेश्वर का स्तवन । (३) ज्येष्ठराज प्रभु । (५) सर्वाध्यक्ष का वर्णन । (६) सर्वैश्वर्य स्वामी का वर्णन । स्तुतियोग्य प्रभु के गुणों का वर्णन । (पृ० २७३-२७६)

सू० [ १७ ]—प्रभु की स्तुति । उसका हृदय में आह्वान और धारण । (९) गुरु का शिष्य को दीक्षित करना । उसको वेदोपदेश ।



आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य । वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन । विघ्नविनाशक पर-  
मेश्वर । (९) जगत् का स्वामी । (१०-१५) उपास्य उपासक में गुह्य  
शिष्य का सा भाव । (१२) शक्तिशाली प्रभुवत् राजा । (१४) वास्तो-  
ष्पति शासक इन्द्र । (५० २७६-२८१)

सू० [ १८ ]— विद्वानों से उत्तम ज्ञान की याचना । आदित्य  
विद्वानों का वर्णन । (४-७) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (८) चिकित्सकों  
के कर्त्तव्य । (८-९) रोगनाशक पदार्थ अग्नि वायु और सूर्य । (१०)  
विद्वानों से अज्ञान और पापनाश की प्रार्थना । (२०-२२) विद्वानों से  
नाना कल्याण-प्रार्थनाएं । (५० २८१-२८७)

सू० [ १९ ]— प्रभु-स्तुति का उपदेश । (२) अग्निवत् ज्ञान प्रका-  
शक की स्तुति और आदर करो । अग्नि के दृष्टान्त से परमेश्वर का  
वर्णन । (५-६) उपासक यज्ञकर्त्ता को सत्फल की प्राप्ति । (७) सेनापति  
के कर्त्तव्य । प्रकारान्तर से स्वामी, राजा और प्रभु का वर्णन । (१०)  
अग्रणी वीर नायक के कर्त्तव्य । (११) विद्वान् का वर्णन । उसके  
संस्कार का विधान । (१४) नेता के कर्त्तव्य । (१८) यज्ञ आदि द्वारा  
उपासकों को उत्तम फल । (१९) दान आदि का फल । (२०) नायक  
वा प्रभु से प्रार्थना । (२१) प्रभु की स्तुति । (२२) आहुत अग्निवत्  
विद्वान् का रूप । (२३) अग्नि विद्युत् वा सूर्य के तुल्य नायक, विद्वान्  
प्रभु का रूप और उसके कर्त्तव्य । उत्तम यज्ञकर्त्ता का सदाचारमय  
लक्षण । (२५) उपास्य-उपासक की अनन्यता की भावना । (२६)  
पाप के निमित्त भगवान् का परित्याग न हो, स्तोता वा शास्ता मूर्ख  
और पापी न हो । (२७) पितावत् प्रभु । भगवान् की भक्ति । (३०)  
सखा प्रभु । (३१) प्रभु के अग्निरूप की व्याख्या । (३२) सम्राट् प्रभु ।  
(३३) परम अग्नि प्रभु । (३४) आदित्य विद्वानों का वर्णन । उनके  
कर्त्तव्य । (३६-३७) पौरकुत्स का दान । पुरुकुत्स सेनापति । उसका  
वर्णन । अध्यात्म रहस्य । (५० २८७-३०१)

सू० [ २० ]—भक्तों अर्थात् वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य । वायु और जल लाने वाले वायु-प्रवाहों के वर्णन । (२२) उत्तम अध्यक्ष मरुद्गण । (२५) देह में मरुद्गण प्राणगण । (पृ० ३०१-३१२)

### द्वितीयोऽध्यायः

सू० [ २१ ]—स्वामी के अद्भुत गुणों का वर्णन । आत्मा, प्रभु और विद्वान् का वर्णन । (४) बन्धुमान् प्रभु की शरण । (५) आश्रय वृक्षवत् प्रभु का आश्रय । (६) ईश-विनय के प्रयोजन । सर्वप्रद प्रभु । (१०) प्रभु का परमैश्वर्य । (११) सदा सहयोगी और सहायक प्रभु । (१२) प्रभु या राजा की सहायता से दुष्टों का दण्डित करने का संकल्प । (१४) व्यसनी, धनाभिमानी का प्रभु मित्र नहीं । भक्तों का पिता प्रभु । (१५) भक्तों की चरम इच्छा । (१६) न्यायप्रद प्रभु । (१७) प्रभु का सरस्वती-रूप । (१८) मेघवत् दाता, महाराज प्रभु । (पृ० ३१२-३१८)

सू० [ २२ ]—सेनापति और वैद्यवत् स्त्री-पुरुषों का वर्णन । (२) गृहस्थ रथ का वर्णन । (४) गृहस्थ-रथ के दो चक्र । (५) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) कृपकवत् उत्तम गृहपति और गृहपत्नी के कर्त्तव्य । कृपि का उपदेश । (६) उत्तम नायक की स्थापना । (९) वेगवान् यान आदि साधन सम्पत्तियों के कर्त्तव्य । (१०) रोगी की सेवा का उपदेश । (११-१२) अन्यान्य नाना कर्त्तव्य । (पृ० ३१८-३२५)

सू० [ २३ ]—अग्नि उपासना के साथ २ अध्यात्म उपासना । प्रभु परमेश्वर की अग्निवत् स्तुति । पक्षान्तर में अग्निवत् राजा और विद्वानों का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । उसके प्रति प्रजाजनों का कर्त्तव्य । अग्नि तुल्य गुणों वाले प्रभु से प्रार्थनाएं । (पृ० ३२५-३३५)

सू० [ २४ ]—सर्वशक्तिमान् प्रभु के गुणों का वर्णन । (२)



दुष्टहन्ता प्रभु । (४) ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (६) परम शरण प्रभु । (७) शास्ता प्रभु । (९) सर्वसंचालक प्रभु । (१०) उसकी नाना प्रकार से उपासनाएं वा भक्ति-प्रदर्शन और स्तुति । (२४) सर्वज्ञ प्रभु की स्तुतियां । (२५-२७) दुष्टों के नाश की प्रार्थना । (२८) सत्पात्रों में दान देने वाले को प्रभु भी देता है । (२९) सत्पात्र में दान का उपदेश । सबसे परे अगम्य प्रभु । (पृ० ३३५-३४४)

सू० [ २५ ]—उत्तम, आदरणीय, स्त्री-पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । उत्तम माता पिता से रक्षा की प्रार्थना । (१२-१५) उत्तम पुरुषों के कर्त्तव्य । विश्वपति राजा के प्रभु और सूर्यवत् कर्त्तव्य । (१७-१८) महान् सम्राट् । विश्वपति वरुण, प्रकाशस्वरूप ईश्वर । (२१-२२) प्रभु की स्तुति । (२२-२५) सत्पुरुषों से प्रार्थना । (पृ० ३४४-३५१)

सू० [ २६ ]—उत्तम नायक, राजा प्रजा, वा पति-पत्नी जनों के गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन । राजा-सचिव । (४) माता-पिता, गुरु जनों के कर्त्तव्य । (५) सैन्य-सैन्यपति के कर्त्तव्य ऐश्वर्ययुक्त सत्यवान् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य । (१३) दिन-रात्रिवत् । पति-पत्नी जनों के कर्त्तव्य । (२१-२२) भावी जामाता के प्रति आदर । (२२-२७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना । (पृ० ३५१-३६०)

सू० [ २७ ]—ज्ञानी पुरुष का पुरोहित पद पर स्थापन । विद्वान् से ज्ञान की याचना । नाना प्रकार के उत्तम वीर विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (११) राजा के कर्त्तव्य । (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य । (१८) राष्ट्र के प्रति उनके कर्त्तव्य । (पृ० ३६०-३६७)

सू० [ २८ ]—३३ देवगण । राष्ट्र के ३३ प्रमुख शासक । (२) वरुण, मित्र, अर्यमा । तीन प्रधान पद । उनके कर्त्तव्य । (पृ० ३६८-३६९)

[ १५ ]

सू० [ २९ ]—विश्व के एक अद्वितीय अध्यक्ष का वर्णन । उसके अहान् अमृत कर्म । (८-९) जीव और प्रभु का प्रकृति के साथ वर्णन । (पृ० ३६९-३७२)

सू० [ ३० ]—राष्ट्र में प्रजा जनो के सदृश जीवों का वर्णन । (२-४) राष्ट्र-शासक रूप ३३ देवों का वर्णन । उनसे रक्षा की प्रार्थना । (पृ० ३७२-३७३)

सू० [ ३१ ]—यज्ञ और यजमान की प्रशंसा । उसके कर्त्तव्य । (२-७) पक्षान्तर में राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (४) प्रजावती स्त्री की अग्नि से तुलना । (५) पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (१०-११) पूषा परमेश्वर से प्रार्थना । (१२-१४) विद्वानों से प्रार्थना । (१५-१८) उत्तम प्रभु भक्त का प्रभाव । यज्ञशील का वैभव, बल और सामर्थ्य । (पृ० ३७३-३७९)

### तृतीयोऽध्यायः

सू० [ ३२ ]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य का उपदेश । (२) शासक के गुण । (३) विष्णुत्वत् सेनापति वा राजा के कर्त्तव्य । शत्रु-विजय का आदेश । (६) व्यापार का उपदेश । राजा प्रजा को समृद्ध करे । पक्षान्तर में आचार्य और आत्मा का वर्णन । (१२) माता के तुल्य राजा का कर्त्तव्य । बड़े भारी पालक प्रभु की स्तुति । (१३-१५) नियन्ता सर्वविजयी सखा । बड़ा दानी है । (१६) उर्कण जन । (१७) उपास्य का स्तवन । (१८) स्तुति योग्य के लक्षण । बन्धन-मोचक प्रभु । (१९-२०) जीव को कर्मरुल भोग का उपदेश । (२१) राजा को वा उत्साही को आदेश उपदेश । (२६-२९) बलवान् हन्त्र के लक्षण । (२७-३०) विद्वानों को उपदेश । (पृ० ३७९-३८८)

सू० [ ३३ ]—उत्तम प्रजाओं के जलधारावत् कर्त्तव्य । (२) प्रभु ईश्वर की उपासना । (३) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का

२ प.



वर्णन । (५-६) पुरुषोत्तम के लक्षण । प्रभु के गुण-स्तवन । (१०) समस्त सुखवर्षी प्रभु । (११) वीर योद्धा रथीवत् प्रभु का वर्णन । (१२) बलवान् विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (१७-१९) उत्तम स्त्री के कर्त्तव्य । (पृ० ३८८-३९५)

सू० [ ३४ ]—ज्ञानवान्, जानेच्छुक पुरुषों को उपदेश । उनके कर्त्तव्य । (१३) राजा के प्रति प्रजा की याचना । (पृ० ३९५-४००)

सू० [ ३५ ]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । ऐश्वर्य प्राप्ति और उन्नत होने के उपदेश । रथी-सारथी, राजा-सचिव आदिवत् उनके कर्त्तव्य । (४) उषा-सूर्यवत् उनके कर्त्तव्य । (७) हारिद्रव नाम जल-पक्षी, वा वनमहिष के दृष्टान्त से उनके कर्त्तव्य । (८) दो हंसों के समान उनके कर्त्तव्य । (९) दो श्येनों के तुल्य उनके कर्त्तव्य । (१०-१२) पान, तृप्ति, गमन, प्रजा, धन आदि धारण, विजय, रक्षा और शत्रुहर्तन का उपदेश । (१३-१५) धर्मवान्, तेजस्वी, ज्ञानी, सत्यवान् पुरुषों के सत्संगी होकर जीवनभर व्यतीत करने का उपदेश । (१६-१८) ज्ञानवृद्धि, कर्मवृद्धि, रक्षोहर्तन, दुष्टनाशन, क्षत्रविजय, गो-वृद्धि, प्रजावृद्धि का उपदेश । (१९-२२) वेद-श्रवण, सन्तानोत्पत्ति, यज्ञ, देहसंयम का उपदेश । (२३) परस्पर आदर करो । (३४) अज्ञ-यज्ञ द्वारा सन्तुष्ट होवो । (पृ० ४००-४०९)

सू० [ ३६ ]—ऐश्वर्यवान् विद्वान् वा राजा के कर्त्तव्य । प्रभु की उपासना और उससे प्रार्थना । (पृ० ४०९-४१२)

सू० [ ३७ ]—माध्यंदिन के समान प्रजापालक राजा का व्यवहार । एकराट् राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ४१२-४१४)

सू० [ ३८ ]—इन्द्र अर्थात् विद्युत् और अग्नि के तुल्य विद्वानों राजा और अमात्यों के कर्त्तव्य । उनके तुल्य परस्पर सहायकों और विद्वानों के कर्त्तव्य (पृ० ४१४-४१७)

सू० [ ३९ ]—अग्नि, ज्ञानी और अग्रणी नेता पुरुष के कर्त्तव्य ।  
उसके ज्ञान-प्रकाश द्वारा क्रम से विघ्नों और दुष्टों का नाश । (९-१०)  
देहाग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य । (पृ० ४१७-४२३)

सू० [ ४० ]—इन्द्र, अग्नि, वायु, आग के समान विद्वानों के ज्ञान  
और तेजस्वी नायक के तेज, पराक्रम से दुष्टों का नाश । (३) इन्द्र  
और अग्नि दो अध्यक्षों का वर्णन । उनके आदर का उपदेश । (५)  
विद्युत् और अग्नि-तत्त्वों की वश करने का उपदेश । (६) दुष्ट के घना-  
दान और वश करने की आज्ञा । (७) दुष्टों के नाश का उपदेश । (८)  
सूर्य, अग्निवत् व्रतपालकों के कर्त्तव्य । (१०-१२) सूर्यादि के तेज से  
रोगों के तुल्य दुष्टों का नाश । (पृ० ४२३-४२८)

सू० [ ४१ ]—श्रेष्ठ पुरुषों के आदर का उपदेश । राजा के कर्त्त-  
व्य । (२) राजा के नाशार्थ उद्योग, पालक पुरुषों का नियोजन । (३)  
राजा का सैन्य-रक्षण । राष्ट्र-स्थापन । (४) देह में प्राणों वा राजा का  
प्रजाओं को पालन करने का कर्त्तव्य । (५) सूर्यवत् लोकधारण के  
तुल्य राष्ट्रधारण । (६) चक्र में नाभि के तुल्य प्रभु वा विद्वान् के  
कर्त्तव्य । गोशाला में पशुओं के तुल्य इन्द्रियों का संयम । (७) सर्वो-  
परि वरुण । (८) समुद्रवत् राजा । (९) त्रिलोकाधिपति वरुण पर-  
मेश्वर । राजा के सात अश्वोंवत् प्रभु का सब स्थावर जंगमों पर शासन ।  
(१०) सर्वशासक की अद्भुत शक्तियां (पृ० ४२८-४३३)

सू० [ ४२ ]—वरुण परमेश्वर का वर्णन । सर्वोपास्य प्रभु । नौका-  
वत् वेदवाणी का आश्रय लेने का उपदेश । (४-६) श्री पुरुषों को  
उपदेश । (पृ० ४३३-४३५)

सू० [ ४३ ]—प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति । (३) सर्व पाप-  
नाशन प्रभु, अग्नि । (४) अग्निवत् प्रभु की विभूतियां । इसी प्रकार  
स्वतन्त्र जीवगण की सत्ता का वर्णन । (५) नाना स्वतन्त्र जीवों का



अग्निर्गो के तुल्य निरूपण । (६) साधक जीव के मार्ग की बाधाएं । (७) अग्नि से जीवनधारी आत्मा की तुलना । (८) पुनः उत्पन्न होने वाले जीव की अग्नि से तुलना । (९) अग्निवत् जीव का जन्म । (१०) अग्नि-ज्वाला के तुल्य गर्भ में स्थिर जीव की वृद्धि । (११) जीव और परम-आत्मा का स्वरूप । (१२) प्रकाशमय, दुःखनाशन, पापनिवारक प्रभु की उपासना । (१३) उसके प्रकाशित होने का प्रकार । (१४) सहस्र-ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (१५) आतृवत् शुद्धहृदय प्रभु । (१६) मातृवत् प्रभु का वरण । (१७) सुखा प्राणवत् प्रभु । (१८) सर्वाध्यक्ष प्रभु । (१९-२०) समदर्शी प्रभु । (२१) प्रकाशस्वरूप प्रभु । (२२) द्वेपनाशक प्रभु । (२३) साक्षी, अध्यक्ष प्रभु । (२४) सबको भयप्रद सर्वसञ्चालक प्रभु । (२५) दण्ड दाता प्रभु । (२६) अग्निवत् प्रभु । (२७) आत्मा के तीन रूप । (२८) बलवान् दुष्टनाशक प्रभु । (२९) अविनाशी ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु । (पृ० ४३५-४४५)

सू० [ ४४ ]—अग्नि-परिचर्या के तुल्य गुरु और प्रभु की उपासना । (४) अग्नि और सूर्यवत् ऊर्ध्व रेता तेजस्वी का वर्णन । अग्नि की प्रभु से श्लिष्ट समताएं । (५-७) स्तुत्य अग्नि, विद्वान् और प्रभु । (८) यज्ञ का नेता अग्नि । (९) विजिगीषु तेजस्वी नायक अग्नि । (१०) विद्वान् अग्नि । (११-१२) नायक अग्नि । (१३-१४) ब्रह्माचारी विद्वान् अग्नि । (१५-२१) ज्ञानी, स्तुतियोग्य प्रभु । (२२) भक्त की अनन्यता उपास्यमयता । (२३) सर्वपालक प्रभु । (२४-२७) स्तुत्य प्रभु । (२८) उपास्य में लय । (२९) ब्रह्माण्डदीपक प्रभु । (३०) मोक्ष की प्रार्थना । (पृ० ४४५-४५३)

सू० [ ४५ ]—इन्द्र अग्नि । प्रभु के उपासकों का महान् ऐश्वर्य । (४) राजा का भूमि-माता के प्रति कर्त्तव्य । (५) बलवान् यशस्वी नेता अग्नि । (६-७) महारथी अग्नि, उसके कर्त्तव्य । (९-११) उत्तम

सेनापति अग्नि । इसके कर्त्तव्य । (१२) दानशील । गृहपतिवत् अग्नि प्रभु । (१४) ऐश्वर्यवान् प्रभु । उससे नाना प्रार्थनाएं, शरण-याचना । (२३) उत्तम नेताओं के कर्त्तव्य । (३०-४२) अष्ट राजा, उससे प्रजा की न्यायानुकूल नाना अभिलाषाएं । (५० ४५३-४६४)

### चतुर्थोऽध्यायः

सू० [ ४६ ]—उत्तम शासक, नेता, स्वामी शासक के कर्त्तव्य । प्रभु का वर्णन । उससे अनेक प्रार्थनाएं । (२८) स्वराष्ट्र-शासक । उसका वैभव । (५० ४६५-४७५)

सू० [ ४७ ]—आदित्यों, मासों के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य । (२-३) चूजों पर पक्षीवत् उनकी प्रजा पर पक्षच्छाया । (७) उनकी उत्तम रक्षा का आदर्श । (८) कवचवत् रक्षकों का स्वरूप । (९) रक्षा शान्तिप्रद हो । (१०) देह से गृह और राष्ट्र की तुलना । (११-१८) उनके निष्पाप सुखदायी रक्षा-कार्यों का विवरण । (५० ४७५-४८१)

सू० [ ४८ ]—सोम । उत्तम अन्न, ओषधि-सेवनवत् परमानन्दमय प्रभु का सेवन । (२) सोम शिष्य, उपासक के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में विद्वान् और देह में वीर्य का वर्णन । (३-५) सोम, ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य, वीर्य, पुत्र, शिष्यादि का पालन । (६) विद्वान् सोम से ज्ञान की प्रार्थना । सोम तेजस्वी प्रभु से दीर्घ जीवन की याचना । (९) सोम का व्रत पालन । (१०) सोम, राजा से प्रार्थना । (११) सोम अभिषिक्त राजा । (१२) सोम, व्यापक प्रभु की परिचर्या । (१४) विद्वानों से प्रार्थना । (५० ४८१-४८७)

### • बालखिल्यम्

सू० [ ४९ ]—ज्ञानप्रद, सर्वदाता, सर्वरक्षक प्रभु की स्तुति । (२) मेघ वा पर्वत से झरते जलों के तुल्य प्रभु के ऐश्वर्य । (३)



जडाशय के जलों के तुल्य उसके पूरक ऐश्वर्य । (४) मधुवत् उसके मधुर सुख । (५) गोरसों के तुल्य सुखद उसके दान । ऐसे प्रभु की उपासना का उपदेश । (७) राजा से प्रजा की प्रार्थनाएं । (पृ० ४८७-४९०)

सू० [ ५० ]—इन्द्र परमेश्वर की स्तुति का उपदेश । प्रभु का अपार ऐश्वर्य । (३) प्रभु और उपासक जन । (पृ० ४९१-४९४)

सू० [ ५१ ]—उत्तम राजा का वर्णन । (३-४) ज्ञानमय प्रभु एवं उपदेश से ज्ञान की याचना । (४) इन्द्र-प्रभु विषयक उपदेश । सप्त-शीर्षा अश्व । (५) प्रभु का ज्ञान । इस एक जन्म में करने की प्रार्थना । (६-८) दाता प्रभु से याचना । सर्वस्वामी और स्तुत्य प्रभु । (पृ० ४९४-४९८)

सू० [ ५२ ] शक्तिशाली, राजा, विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन । (३) इन्द्र का स्वरूप । महान् शासक परमेश्वर इन्द्र । उसकी स्तुति प्रार्थनाएं । (पृ० ४९८-५०२)

सू० [ ५३ ]—राजा, परमेश्वर । (२) अतिथिग्व, विद्वान् । (३) मधुरस-आसेचन । (४) द्वेष नाशन । (५) ईश्वर का सामीप्य । (६) अधिकार योग्य व्यक्ति । (७) उत्तम याचना । (पृ० ५०२-५०४)

सू० [ ५४ ]—परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनाएं । (पृ० ५०४-५०७)

सू० [ ५५ ]—प्रस्कण्व की दानस्तुति । परमेश्वर के जीव जनों पर अपार दान । (पृ० ५०७-५०९)

सू० [ ५६ ]—तेजस्वी परम पुरुष का विशाल बल और ऐश्वर्य । (२) वेदज्ञान का दाता प्रभु । विद्वानों को अनेकविध दान । (पृ० ५०९-५१०)

सू० [ ५७ ]—सदाचारी स्त्री पुरुषों के कर्तव्य । जीवन का तृतीय सप्त । (पृ० ५११-५१२)

सू० [ ५८ ]—यजमान और ऋत्विजों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य, अग्नि, उषावत् सर्वप्रकाशक प्रभु । (३) विराट् रथ का वर्णन । (पृ० ५१२-५१४)

सू० [ ५९ ]—विद्युत्, जल, मित्र, वरुण । उनके समान सेनापति और राजा के कर्त्तव्य । (४) गुरु और आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० ५१४-५१७) इति बालखिल्यम् ।

सू० [ ६० ]—प्रकाशस्वरूप, उत्तम अग्नि तुल्य, नायक प्रभु की प्रार्थना । अग्निवत् परमेश्वर के गुणों का वर्णन । (१) ज्ञानी व गुरु का वर्णन । (१०) रक्षोघ्न राजा के कर्त्तव्य । (११) पावन प्रभु का वर्णन । (१३-१४) राजा का पराक्रम । (१५) अरणियों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी की प्रजाओं में स्थिति । (१६) यज्ञाग्निवत् सात प्रकृति वाले राजा का स्वरूप । उसके कर्त्तव्य । (पृ० ५१७-५२४)

सू० [ ६१ ]—सत्य-निर्णायक न्यायाधिकारी के कर्त्तव्य । (२) धिपणा नाम दो सभाओं को अपना रक्षक चुनने का अधिकार । (३) राजा के कर्त्तव्य । (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य । (५) ऐश्वर्यवान् प्रभु का पद; उसका कर्म । परमेश्वर के ध्यान ज्ञान से कर्म करने वाला पवित्र हृदय होता है । (१२) उत्तम रथीवत् प्रभु की उपासना । (१३-१८) प्रभु से अभय की याचना । (पृ० ५२५-५३१)

सू० [ ६२ ]—ईश्वर की स्तुति । प्रभु के मङ्गलकारी दान । (२) एक अद्वितीय, अविनाशी । (३) सर्वजीवन प्रद है । प्रभु के दिये अनेक सुखकारी दान । (७) विश्व का पालक प्रभु । (८) प्रभु का आदर्श बल । (९) युगल का घटक प्रभु । (१०-१२) उपास्य के प्रति भक्तिपूर्ण भाव । (पृ० ५३१-५३५)

सू० [ ६३ ]—शासक, विद्वान्, ज्ञानी के माता पितावत् कर्त्तव्य । प्रभु वा शासक का सर्वोपरि पद । (३) सर्वोपरि ज्ञानप्रद गुरु,



परमेश्वर । (६) सर्वाश्रय परमेश्वर । (७) सर्वपूज्य स्वामी ईश्वर ।  
(८) जगत् का प्रवर्त्तक ईश्वर । (९) सुखार्थी जीव का प्रभु के आनन्द  
की ओर झुकाव । (१२) त्यागी जनों से प्रार्थना । (पृ० ५३५-५३९)

सू० [ ६४ ]— परमेश्वर की स्तुति । (२) महान् प्रभु । (३) सर्व-  
प्रभु राजा । (४) सर्वोपरि ईश्वर । (५) विद्वान् के कर्त्तव्य । (७)  
सर्वोपास्य, अज्ञेय प्रभु । (८-१०) प्रभु के विरल भक्त । (११-१२)  
राजा का अभिषेक-रहस्य । (पृ० ५३९-५४२)

सू० [ ६५ ]—सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति और उपासना । (पृ०  
५४२-५४५)

सू० [ ६६ ]—परमेश्वर की स्तुति । (२) सर्वोपरि बलशाली  
प्रभु । (३) गोरूप वाणियों के आवरण को दूर करने वाला इन्द्र प्रभु ।  
(४) सन्मार्ग-प्रवर्त्तक जगन्निर्माता प्रभु । (६) सर्वोत्तम दाता प्रभु ।  
(७) नित्य । (८) सिंहवत् वा चन्द्रवत् प्रभु और राजा का वर्णन । (९)  
प्रकृति से जगत् का स्रष्टा सर्वोपरि श्रवणीय है । (१०) अपार बली-  
प्रभु । (११) भोजनवत् नियमानुसार भक्ति का विधान । (१३) सर्वो-  
परि दयालु प्रभु । (१३-१४) मोक्ष की याचना । (१५) अभय- आश-  
सन । (पृ० ५४५-५५१)

सू० [ ६७ ]—आदित्य सदृश तेजस्वी, धनवान् बलशाली लोगों  
के कर्त्तव्य । (२) वे प्रजा को पाप से मुक्त करें और प्रजा का पालन  
करें । (७) उत्तम शासक स्वयं अपराध से रहित हों । (९) प्रजा को  
नाश होने से बचावें । (१०-११) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (१२)  
उग्रपुत्रा माता भूमि । (१३) उग्रप्रजा, उरुची वैश्य सभा । (१३-२१)  
तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ५५१-५५६)

### पञ्चमोऽध्यायः

सू० [ ६८ ]—ईश्वराधना, उसकी स्तुति और प्रार्थना । सृष्टिकर्त्ता  
का पुनः पुनः मनन । (२) विश्व का विस्तारक परमेश्वर । (३)

बलशाली । (४-५) राजा का वर्णन । (६) सर्वलोक-पति प्रभु । (७) प्रजाओं का स्वामी प्रभु । (८) अपार शक्तिशाली प्रभु । (९-१३) उसकी स्तुति और प्रार्थनाएं । (१४) आत्मा के ६ नर, ६ इन्द्रिय गण । (१५) अश्वमेध-राष्ट्र-शासनवत् देहव्यवस्था । (१६) राष्ट्र में उत्तम वीरों की नियुक्ति । ६ सेनापतियों की नियुक्ति । वधूमान् अश्वों का रहस्य । अध्यात्म व्याख्या । देह में वाणीवत् राष्ट्र में राजसभा का रूप । (१९) नियुक्त जनों को उपदेश कि कोई भी निन्दनीय कर्म न करें । (पृ० ५५७-५६२)

सू० [ ६९ ]—राष्ट्र के प्रजाजनों के कर्त्तव्य । (३-४) प्रजाओं द्वारा उत्तम शासन की स्थापना । (६) वेदवाणियों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर मधुर रसवत् रूप । प्राप्त पद सखावत् प्रभु का मोक्ष सुख का पद । सखा प्रभु । (८) प्रभु की अर्चना का उपदेश । (९) विद्वान् का प्रजाजनों को उपदेश । (१०) गौओंवत् प्रजाओं का रूप । राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । वरण योग्य राजा वरण । (१२) वरण आचार्य-वत् । उत्तम नायकवत् भवबन्धन मोचक प्रभु । (१४) पक्क ओदन के तुल्य शिष्य का गुरु से ज्ञान ग्रहण । राजकुमार के स्थारोहणवत् । राष्ट्रशासन पद का आरोहण और जीव का ब्रह्मपद-आरोहण । (१६) गृहपात का गृहस्थ रथ पर आरोहण । राजा-राष्ट्र का 'दम्पति भाव' । (१७) राजतन्त्रवत् अध्यात्मस्वराट् की उपासना । खेती करने के तुल्य देह से कर्मफल प्राप्ति । (पृ० ५६२-५६९)

सू० [ ७० ]—सर्वोपरि नायक शासक का वर्णन । प्रभु परमेश्वर की गुण-स्तुति । (५) पक्षान्तर में वीर पराक्रमी शासक का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (१०) पितावत् प्रभु । दुष्टदमनकारी वा राजा । (१२) (१२) राजा के कर्त्तव्य और बन्धनमोचक प्रभु । (१५) सेनावशकारी राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ५६९-५७५)



सू० [ ७१ ]—तेजस्वी अग्रणी नायक के कर्त्तव्य । उसके आवश्यक गुणों का वर्णन । (११) नायक के दो प्रकार के रूप । (१२-१५) देहवत् पूज्य अग्नि परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ५७५-५७९)

सू० [ ७२ ]—यज्ञ प्रतिपादन । ब्रह्मयज्ञ । अध्ययन-अध्यापन का प्रकार । (२) गुरु का सप्रेम शासन । (३) विद्युत्त्व जिह्वा का स्वरूप । (४-५) विद्युत् का रथयान में प्रयोग । तद्वत् देह में आत्माग्नि का संयोग । (७) देह का अद्भुत यन्त्र । (८) अन्तरिक्ष रचनावत् देह-रचना का चमत्कार । (९) त्रिगुणात्मक देह की रचना । उसमें यज्ञ । (१०) क्षेत्रसेचक कूप-टंकी यन्त्र से देह की रचना का आश्चर्यकारी वर्णन । इसी प्रकार राजतन्त्र का वर्णन । मेघ के तुल्य राजतन्त्र के कर्त्तव्य । (१२) प्रजा का योग्य पालक का आश्रय ग्रहण । (१३) अभिवेक योग्य व्यक्ति के लक्षण । (१४) प्रजाओं के परस्पर योग्य व्यवहार । (१५) देह के तुल्य राष्ट्र की स्थिति । देह में वीर्यवत् राजा की स्थिति । वायुवत् स्वामी का कर्त्तव्य । (१८) अग्निवत् नायक विद्वान् का कर्त्तव्य । (पृ० ५७९-५८४)

सू० [ ७३ ]—विद्वान् जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के कर्त्तव्य । स्त्री-पुरुषों को उत्तम उपदेश । (पृ० ५८४-५८९)

सू० [ ७४ ]—विद्वान् का आदर करने का उपदेश । उत्तम विद्वान् के लक्षण, उसकी उपासना । पक्षान्तर में परमेश्वर की उपासना का उपदेश । परमेश्वर का स्वरूप, उससे नाना प्रार्थनाएँ । (१३-१५) उत्तम राजा की दान स्तुति । राजा का कर्त्तव्य । ज्ञानसेवियों का पालन । राजा की बलवती सेना 'परुष्णी' का वर्णन । (पृ० ५८९-५९३)

सू० [ ७५ ]—रथ में अश्व के तुल्य उत्तम विद्वान् कर्मकर्त्ताओं की नियुक्ति । प्रधान शासक के कर्त्तव्य । ज्ञान बल और धन का त्रिविध पति अग्नि । (५) चक्र धारा के तुल्य राष्ट्रचक्र-नीति को वश करने का उपदेश । (६) प्रभु की स्तुति के लिये नित्य वाणी का प्रयोग ।

(७-८) नायक के प्रति अधीन प्रजाओं का कर्त्तव्य । (९) बुरे लोगों का पापसंग हमें पीड़ित न करे । (१०) राजा को शत्रुपीड़न का उपदेश । (११) उससे धन-सम्पदा की प्रार्थना । (१२) संकट में भी राजा प्रजा का साथ न छोड़े । (१३) सेनापति के कर्त्तव्य । (पृ० ५९३-५९७)

सू० [ ७६ ]—उत्तम सेना नायक के कर्त्तव्य । उसकी सूर्य से तुलना । (४) विजयी स्तुत्य सेनापति । पक्षान्तर में परमेश्वर का निर्देश । महान् शासक के गुण । (६) प्रभु की प्रार्थना । (७) नाना वीरों के नायक का राष्ट्र-पालन का कर्त्तव्य । अघ्यात्म में आत्मा मस्त्वान् का वर्णन । (८) विद्वानों, बलवानों का आदर । पराक्रमी के कर्त्तव्य । (१०) नृस राजा । (११) शास्य-शासक दोनों बलवान् होते हैं । (१२) अष्टापदी वाणी का वर्णन । (पृ० ५९८-६०१)

सू० [ ७७ ]—राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य । (४) चन्द्र सूर्य-वत् राजा के व्यवहार का वर्णन (५) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । (६) मेघ-छेदन-मेदन वत् शत्रु पर भेद नीति का कार्य । (७) राजा का सहायक शस्त्रबल । (८) प्रजा के सुख के प्रति राजा का ध्यानाकर्षण । वायु-मेघ के व्यवहारों के समान राजा और राजपुरुषों के कर्त्तव्य । (११) शस्त्रबल । (९) राजा वा प्रभु के अनेक बल, उनकी श्लिष्ट तुलना कैसे हो । (पृ० ६०१-६०६)

सू० [ ७८ ]—ऐश्वर्यवान् प्रभु और स्वामी के कर्त्तव्य । उनसे ओजन, वस्त्र, आभूषणादि की प्रार्थना । राजा, विद्वान् तत्त्वदर्शी का वर्णन । इन्द्र-पद । (६) उसका अविनाशी पद । (७) सर्वैश्वर्य स्वामी प्रभु । (९) प्रभु और राजा के लिये प्रजा के प्रति नाना कर्म । (पृ० ६०६-६०९)

सू० [ ७९ ]—जगत्कर्त्ता और सञ्चालक प्रभु का वर्णन । पक्षान्तर में शासक राजा के कर्त्तव्य । उनके भद्रमुत्त कर्म । (३) विशाल



गृह के मुख्य राजा की स्थिरता । उत्तम सञ्चालक । (५) दानार्थियों का एक मात्र शरण । विद्यार्थियों का शरण गृह । (६) विद्यादान पुनर्जीवन है । (७) दयाशील शासक का रूप । (८) राजा वा शासक सत् प्रजा को भय का कारण न हो । प्रजा को उद्धिग्न न करे और हृदय को पीड़ित न करे । (१) दुष्टों को दूर करे । (पृ० ६०९-६१२)

सू० [ ८० ]—राजावत्प्रभु प्रभु का वर्णन । उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य । (५-६) राजावत् प्रभु से प्रार्थनाएं । (७) राजा वा प्रभु की दुर्ग से तुलना । (९) प्रभु का तुरीय पद । सर्वानन्दप्रद उपास्य प्रभु । (पृ० ६१२-६१४)

सू० [ ८१ ]—प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं । प्रभु । (२) सर्वैश्वर्यवान् । (३) बेरोक दानशील उद्यमार्थ प्रेरक प्रभु । (७) जेही प्रभु । सर्व मनोरथ-पूरक प्रभु । (पृ० ६१४-६१६)

### षष्ठोऽध्यायः

सू० [ ८२ ]—धनसम्पन्न व्यापारी वर्ग के कर्त्तव्य । (२) राजा की राष्ट्र-पालनार्थ शासकों की नियुक्ति । (३) अन्न सर्वोत्तम भोजन । (४) अशत्रु राजा । (५-९) अन्नादिवत् ऐश्वर्यादिक । ऐश्वर्य आदि का पात्र राजा । उसके अधिकार और कर्त्तव्य । (पृ० ६१७-६१९)

सू० [ ८३ ]—विद्वान् तेजस्वी, व्यवहारकुशल विद्वान् जनों के कर्त्तव्य । (पृ० ६१९-६२२)

सू० [ ८४ ]—अग्रणी नायक के गुण और कर्त्तव्य । (२) नायक का दीपक वा अग्निवत् दो प्रकार की स्थिति । (६) नायक वा प्रभु के प्रति अधीनों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२२-६२४)

सू० [ ८५ ]—विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२४-६२६)

सू० [ ८६ ]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० ६२६-६२८)

सू० [ ८७ ]—विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । राजा और अधीन  
आसकों अथादि सैन्य एवं सेनापति, उनके कर्त्तव्य । (पृ० ६२८-६३१)

सू० [ ८८ ]—सेनापति इन्द्र का वर्णन । उसके कर्त्तव्य । (पृ०  
६३१-६३२)

सू० [ ८९ ]—इन्द्र प्रभु की स्तुति । (पृ० ६३३-६३५)

सू० [ ९० ]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों  
का वर्णन । (पृ० ६३५-६३७)

सू० [ ९१ ]—वरवर्गिनी कन्या और वर वधू दोनों के कर्त्तव्य ।  
वधू की ओर से वरण और आशंसा । (३) वर से परिचय । (४)  
वर के गुण । (५-६) कन्या की ओर से ३ शर्तें । (७) वर के कर्त्तव्य ।  
सूक्त समीक्षा । (पृ० ६३७-६४४)

सू० [ ९२ ]—इन्द्र का लक्षण । उसके कर्त्तव्य । (पृ०  
६४४-६५२)

सू० [ ९३ ]—इन्द्र वीर सेनापति । उसके कर्त्तव्य । पक्षान्तर  
में परमेश्वर के गुण वर्णन । (पृ० ६५२-६६१)

सू० [ ९४ ]—वीर पुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । (पृ०  
६६१-६६४)

सू० [ ९५ ]—परमेश्वर के गुणों का स्तवन । पक्षान्तर में राजा  
के कर्त्तव्य । (पृ० ६६४-६६७)

सू० [ ९६ ]—राजा के वैभव के कर्त्तव्यों के साथ साथ जगत्-  
उत्पादक परमेश्वर का वर्णन । (पृ० ६६७-६७५)

सू० [ ९७ ]—राजा के कर्त्तव्य के साथ २ परमेश्वर के गुणों का  
वर्णन (पृ० ६७५-६८०)

### सप्तमोऽध्यायः

सू० [ ९८ ]—जगत् के पालक परमेश्वर का वर्णन । पक्षान्तर में  
राजा के कर्त्तव्य । (पृ० ६८०-६८३)



सू० [ ९९ ]—राजा प्रजा के व्यवहारों के साथ परमेश्वर के गुणों का वर्णन । (पृ० ६८३-६८६)

सू० [ १०० ]—जीवों के कर्मफल-भोगार्थ परमेश्वर की शरण प्राप्ति । (४) परमेश्वर का साक्षात् स्वरूप वर्णन । (६) परमेश्वर का ज्ञानी जनों के प्रति अनुग्रह । भक्तों के प्रति उपदेश । (७) जीवों को प्रभु ने स्वतन्त्र क्यों किया । (८) ज्ञानी को आयसी नगरीवत् देह-बन्धनों से मुक्ति । (९-१०) प्रभु वाणी का वर्णन । (पृ० ६८६-६९१)

सू० [ १०१ ]—(१) शमसाधना । (२) दो नायकोंवत् मेघ और वायु । राष्ट्र के न्याय और सैन्य-विभाग के अध्यक्षों का वर्णन । प्रजा की राजा से विशेष याचनाएं । (६) शासकों के कर्त्तव्य । (७) विद्या-मिलायी जनों के कर्त्तव्य । (११-१४) महान् प्रभु का वर्णन । (१४-१६) गौ, वाणी और भूमि की महिमा का वर्णन । (पृ० ६९१-६९७)

सू० [ १०२ ]—गृहस्वामी के कर्त्तव्य । अग्नि आचार्य का वर्णन । अग्नि परमेश्वर का वर्णन । उसकी स्तुति, सर्वरक्षक, सर्वकर्त्ता शिल्पी के तुल्य प्रभु । सर्वप्रकाशक, परम सुखदायक प्रभु की स्तुति, भक्ति और उपासना । (पृ० ६९७-७०४)

सू० [ १०३ ]—परम गुरु की उपासना । सूर्य, पृथ्वी और परमेश्वर-प्रकृति के कार्यों का वर्णन । (३) कृषि-फलवत् प्राप्ति । (४) भक्तों पर प्रभु की कृपा । (११) सर्वशासक प्रभु का वर्णन । वही सर्वोपास्य । (पृ० ७०४-७०८)

इत्यष्टमं मण्डलम्

तृतीय संस्करण :—वैत्र

२०३७ वैक्रमाब्दे







॥ ओ३स् ॥

# ऋग्वेद-संहिता

—:\*\*\*:—

अथ पञ्चमेऽष्टके पञ्चमेऽध्याये तृतीयो वर्गः ।

सप्तमे मण्डले चतुर्थेऽनुवाके ।

[ ६१ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणी देवते ॥ छन्दः—१ भुरिक् पंक्तिः । २, ४  
त्रिष्टुप् । ३, ५; ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ सप्तचं सूक्तम् ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्तत्तन्वान् ।

अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वामि चिकेत ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) सबसे वरणीय श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (सूर्यः चक्षुः  
तत्तन्वान्) सूर्य जैसे आंख की शक्ति को बढ़ाता है वैसे (सूर्यः) ज्ञान-  
प्रकाशक ईश्वर और विद्वान् (देवयोः) ज्ञान के इच्छुक (वां) आप  
दोनों के (प्रतीकं) ज्ञानदाता (चक्षुः) प्रज्ञानेश्वर को (तत्तन्वान्)  
विस्तृत करता हुआ आपको (एति) प्राप्त हो । (यः) जो (विश्वा  
भुवनानि) समस्त लोकों को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता, सब  
पदार्थों का उपदेश करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में  
(मन्युम्) मननीय ज्ञान भी (आ चिकेत) प्रदान करता है । परमे-  
श्वर-तुल्य विद्वान् भी मनुष्यों में ज्ञान-दान करे ।

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियति ।

यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥ २ ॥



भा०—हे (मित्रा-वरुणा) ज्ञेही और वरणीय स्त्री पुरुषो ! (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) ज्ञानों और धनों की आप दोनों (सु-क्रतू) उत्तम कमवान् होकर (अवाथ) रक्षा करते हो और (यत्) जिसके (क्रत्वा न) कर्म और ज्ञान-सामर्थ्य से (शरदः पृणैथे) जीवन के वर्षों को सुखपूर्वक बिताते हो (सः विप्रः) वह विद्वान् (क्रतावा) न्याय और सत्य से युक्त और (दीर्घ-श्रुत्) दीर्घ काल तक वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रोता (वां) आप के प्रति (मन्मानि) मननीय ज्ञानों का (इयत्ति) उपदेश करे । \*

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्याद् बृहतः सुदानू ।  
स्पशो दधाथे ओषधीष विक्ष्वध्वग्यतो अनिमिषु रक्षमाणा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) 'मित्र', प्रजा के मृत्यु आदि कष्टों से रक्षक और 'वरुण' दुखों के दूर कर्ता दोनों वर्गों ! हे (सुदानू) उत्तम ज्ञान दाता आप दोनों (उरोः पृथिव्याः) विशाल पृथिवी और (बृहतः) बड़े भारी (ऋष्यात्) महान् (दिवः) प्रकाशयुक्त सूर्य से (स्पशः) ग्रहण-योग्य पदार्थों को (प्र प्र दधाथे) प्राप्त करो । (ओषधीषु) ओषधियों और (विक्षु) प्रजाओं में (अनिमिषं) विना प्रमाद के, (ऋधक्) सत्य के बल से (रक्षमाणा) प्रजा रक्षण करते हुए भी (यतः) यत्नशील (स्पशः प्र दधाथे) गुप्तचरों और अध्यक्षों को नियुक्त करो ।

शंसामित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्धधे महित्वा ।  
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (मित्रस्य) शान्तिदायक और (वरुणस्य) दुःखों के वारणकर्ता जन के (धाम) तेज और स्थान की (शंस)

\* अत्रयावन्महर्षिदयानन्दभाष्यमुपलभ्यते ।



प्रशंसा करो । जिसके ( महित्वा ) सामर्थ्य से ( शुभम् ) बलवान् पुरुष, या जिसका महान् सामर्थ्य ( रोदसी बद्धधे ) आकाश-पृथिवीवत् दुष्टों को हलाने वाली सेना और राष्ट्र-सभा दोनों को व्यवस्थित करता है । ( अयज्वनाम् ) यज्ञ आदि से रहित लोगों के ( मासाः ) महीनों पर महीने ( अवीराः ) वीर पुत्रादि रहित, वा बिना ज्ञान-प्राप्ति के ( अयन् ) व्यतीत होते हैं और ( यज्ञमन्मा ) पूज्य प्रभु को मनन, आचार्य और राजादि के मान्य सत्संगादि से ज्ञान प्राप्त करने वाला जन ( वृजनं ) अपने ज्ञान और बल को ( प्र तिराते ) बढ़ाने में समर्थ होता है ।

अमूरा विश्वा वृषणाचिमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम् ।  
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निषयान्यचिते अभूवन् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अमूरा ) अमूद, मोह में न पड़ने वालो ! हे ( विश्वा ) विद्याओं में प्रवेश करने हारो ! हे ( वृषणौ ) सुख-वर्षक मेघ-सूर्यवत् उपकारी स्त्री-पुरुषो ! ( इमाः ) ये ( वां ) आप की ऐसी उत्तम वाणिजां हैं ( यासु ) जिनमें ( चित्रं ) अद्भुत और ( यक्षम् ) स्तुति योग्य ( न न ददृशे ) कुछ नहीं दिखाई देता ऐसा नहीं, प्रत्युत सर्वत्र अद्भुत और स्तुत्य पदार्थ विद्यमान हैं । ( जनानां ) मनुष्यों के मध्य ( द्रुहः ) द्रोही पुरुष ही ( अनृता ) असत्य बातों को ( सचन्ते ) सेवन करते हैं । वस्तुतः ( वां ) आप लोगों के ( निषयानि ) छुपे मर्म ( अचिते न अभूवन् ) अज्ञानी पुरुष को नहीं प्रकट होते ।

समुं वां यक्षं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।  
प्र वां मन्मान्यृक्षसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषश्चिमनि ॥ ६ ॥

भा०—हे ( मित्रावरुणा ) सर्वस्नेही वरणीय स्त्री-पुरुषो ! ( स बाधः ) अज्ञानादि बाधा वा पीड़ा से युक्त होकर ( वां यज्ञं ) आप के सत्संग की मैं ( नमोभिः ) विनम्र वचनों से ( महयम् ) स्तुति करता हूँ और ( वां हुवे ) आप दोनों की स्तुति करता हूँ । ( वाम् ) आप लोगों के



(नवानि) नये से नये (कृतानि) सम्पादित किये (इमानि ब्रह्म) ये नाना अज्ञादि, धन और उपदिष्ट (मन्मानि) मननीय ज्ञानादि को लोग (ऋचसे) सेवन के लिये ( जुजुषन् ) प्राप्त करें ।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रामरुणावकारि ।

विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । ७।३

भा०—व्याख्या देखो सू० ६० । मं० १२ ॥ इति तृतीयो वर्गः ॥

[ ६२ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३ सूर्यः । ३-६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,

२, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उत्सूर्यो बृहदर्चीष्यश्चेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।

समो द्विवो ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

भा०—( बृहत् सूर्यः पुरु अर्चीषि उत् अश्नेत् ) महान् सूर्य जैसे बहुत तेजों को अपने में धारण करता है वैसे ही ( सूर्यः ) तेजस्वी पुरुष ( बृहत् ) महान् होकर ( मानुषाणाम् ) मनुष्यों के ( विश्वा जनिम ) समस्त संघों को ( उत् अश्नेत् ) अपने पर धारण करे, और ( पुरु अर्चीषि ) बहुत सत्कारों को भी ( उत् अश्नेत् ) प्राप्त करे । वह सूर्यवत् ( रोचमानः ) तेजस्वी एवं सबको प्रिय लगता हुआ ( दिवा ) व्यवहार आदि से ( समः ) सबके प्रति समान ( ददृशे ) देखे । वह ( कृत्वा ) बुद्धि से ( कृतः ) सम्पन्न होकर ( कर्तृभिः ) कार्यकर्त्ताओं द्वारा ( सु-कृतः ) उत्तम कार्यों में समर्थ ( भूत् ) हो ।

स सूर्यं प्रति पुरो न उद्गां एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।

प्र ना मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णो अग्रये च ॥ २ ॥

भा०—हे ( सूर्य ) तेजस्विन् ! जैसे, ( एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः पुरः प्रति उद्गच्छति ) सूर्य बुद्धि किरण समूहों से पूर्व दिशा में प्रातः दिन



उदय होता है वैसे ही राजन् ! विद्वान् ! तू भी ( एतशेभिः ) अश्वों से ( एभिः स्तोमैः ) इन स्तुत्य जन-संघों सहित वा ( एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः ) ज्ञानदायक, स्तुत्य मन्त्रसमूहों सहित ( प्रति ) प्रतिदिन ( नः पुरः ) हमारे समक्ष ( उद् गाः ) उदय हो । और ( नः ) हमारे में से ( मित्राय ) स्नेहवान् ( वरुणाय ) दुःखों के चारक, ( अयं ण्ये ) न्याय-कारी, और ( अग्रये ) अग्रणी नेता जन के हित ( नः ) हम ( अनागसः ) निरपराध जनों को ( प्र वीचः ) उपदेश कर ।

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।  
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥३॥

भा०—( वरुणः ) श्रेष्ठ जन, ( मित्रः ) स्नेहवान् पुरुष, ( अग्निः ) ज्ञानप्रकाशक विद्वान् ये सब ( ऋतावानः ) सत्य, ज्ञान और ऐश्वर्य-धारक ( सहस्रं शुरुधः ) हजारों शोक दुःखादि के रोकने वाली सुख-सम्पदाओं को ( नः ) हमें ( वि रदन्तु ) विशेषतया प्रदान करें । वे ( चन्द्राः ) आह्लादकारी जन ( नः ) हमें ( उपमं ) उत्तम ( अर्क ) ज्ञान और अन्न ( यच्छन्तु ) प्रदान करें । वे ( स्तवानाः ) उपदेश करते हुए, ( नः कामं ) हमारी अभिलाषा ( पूपुरन्तु ) पूर्ण करें ।

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथाम् नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।  
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४॥

भा०—हे ( द्यावाभूमी ) आकाश और पृथिवी के समान ज्ञान-प्रकाश और आश्रयदाता ( अदिते ) माता-पिता जनों ! आप दोनों ( नः त्रासीथाम् ) हमारी रक्षा करो । हे ( ऋष्वे ) गुणों में महान् आप दोनों ( ये ) जो ( सु-जनिमानः ) उत्तम जन्म प्राप्त होकर ( वां ) तुम दोनों को ( जज्ञुः ) पूज्य जानते हैं वे आप दोनों हमारी रक्षा करें । हम लोगों ( वरुणस्य हेडे मा भूम ) श्रेष्ठ पुरुष के क्रोध या अनादर के पात्र न हों । ( नृणाम् ) साधारण मनुष्यों, ( प्रियतमस्य मित्रस्य ) प्रियतम



मित्र और ( वायोः ) वायु के समान उपकारक पुरुष के भी (हेडे मा भूम) क्रोध या अनादर में न रहें ।

प्र बाहवां सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।  
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५॥

भा०—हे ( मित्रावरुणा ) सूर्य वा जल के समान उपकारक स्त्री-पुरुषो ! आप लोग ( बाहवा ) दो बाहुओं के समान ( नः जीवसे ) हमारे जीवन-सुख के लिये ( प्र सिसृतम् ) आगे बढ़ो ( नः गव्यूतिम् ) हमारे मार्ग को (घृतेन) जल से ( आ उक्षतम् ) सींचो । ( युवाना ) आप दोनों युवक (नः) हमें (जने) मनुष्यों ( आ श्रवयतम् ) प्रसिद्ध करो । (मे इमा हवा) मेरे ये वचन (श्रुतं) सुनो ।

नू मित्रो वरुणो अर्थमा नस्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।  
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।४

भा०—(नु) अवश्य, शीघ्र ही ( मित्रः ) स्नेहवान् और सर्वमित्र विद्वान् ( वरुणः ) श्रेष्ठ पुरुष और ( अर्थमा ) न्यायकारी पुरुष (नः) हमारे (स्मने) अपने लिये (नः तोकाय) हमारे पुत्र के लिये भी ( वरिवः ) उत्तम धन (दधन्तु) दें जिससे ( नः ) हमारे ( विश्वा ) सब कार्य (सुगा) सुगम और (सु-पथानि) उत्तम मार्ग युक्त ( सन्तु ) हों । हे विद्वान् जनो ! ( यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात ) आप हमारी सदा कल्याण-साधनों से रक्षा करें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[ ६३ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—५ सूर्यः । ५, ६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१,  
६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५ निचृत्तत्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्ष्वाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।  
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मैव यः समविद्युक्तमांसि ॥ १ ॥

भा०—जैसे (सूर्यः) सूर्य (देवः) प्रकाशयुक्त होकर (तमांसि चर्म



इव) अन्धकारों को चर्म के समान ( सम् अविव्यक् ) एक साथ छिन्न-  
मिन्न करता है और ( मानुषाणां साधारणः ) मनुष्यों के प्रति एक  
समान प्रकाशित होकर ( विश्व-चक्षाः उद् एति उ ) सबको दिखाता  
हुआ उदित होता है और ( मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः ) मित्र, दिन और  
वरुण, रात्रि दोनों का प्रकाशक होता है वैसे ही ( सु-भगः ) उत्तम  
ऐश्वर्यवान् ( सूर्यः ) सूर्य-समान तेजस्वी, ( मानुषाणां साधारणः )  
मनुष्यों के प्रति एक समान और ( विश्व-चक्षाः ) सबका मार्गदर्शी  
विद्वान् वा राजा भी ( मित्रस्य ) अपने स्नेही और ( वरुणस्य ) श्रेष्ठ  
पुरुष का भी ( चक्षुः ) नेत्र के समान मार्गदर्शक हो। वह ( देवः )  
विद्वान् (तमांसि) अज्ञान अन्धकारों को ( चर्म इव सम् अविव्यक् )  
चर्म के समान एक साथ छिन्न मिन्न करे।

उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।

समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्न्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥ २ ॥

भा०—जैसे ( एतशः ) वेगवान् अथ वा यन्त्र ( धूर्षु युक्तः )  
यन्त्रों के घुराओं में जुड़ा हुआ ( समानं चक्रम् ) सब यन्त्राङ्गों में  
समान रूप से गतिदाता चक्र को ( परि आववृत्सन् ) घुमाता है  
और जैसे (एतशः) तेजोयुक्त सूर्य (धूर्षुयुक्तः सन्) नाना ग्रहों के धारक  
केन्द्र में स्थित होकर (समानं चक्रं परि आववृत्सन्) ग्रह-चक्र को समान  
नीति से अपने गिर्द घुमाता है और जैसे ( जनानां महान् केतुः ) सब  
जन्तुओं का ज्ञापक, (सूर्यस्य=सूर्यः स्यः) वह सूर्य ( अर्णवः ) जल का  
दाता है (जनानां प्रसवीता) सबका प्रेरक होकर (उद् एति उ) नियम  
से उदय होता है वैसे ही ( एतशः ) ज्ञानी पुरुष भी ( धूर्षु युक्तः )  
कार्य-भारों के धारण पदों पर नियुक्त होकर (वहति) कार्य-भार को  
उठावे और ( समानं चक्रं ) एक समान राजचक्र को भी (परि आ  
ववृत्सन्) यथार्थ रीति से चलावे। ( स्य सूर्य ) वह सूर्य के समान



वा (अर्णवः) समुद्र के समान तेजस्वी, गम्भीर और (जनानां) मनुष्यों के बीच में (केतुः) ध्वजातुल्य ऊँचा, (महान्) गुणों में बड़ा और (केतुः) स्वयं ज्ञानी वह (प्रसवीता) उत्तम मार्ग में चलाने हारा पुरुष (उत् एति उ) उत्तम पद को प्राप्त हो। वैसे ही प्रभु स्वप्रकाशक होने से 'एतश्च', सर्वप्रकाशक होने से 'सूर्य' है, वह समस्त ब्रह्माण्ड-काल-चक्र को चलाता, सबका उत्पादक, ज्ञानवान्, महान् है। (सूर्यस्य) सूर्यः। विभक्तिव्यत्यय इति सायणः। सूर्यः स्यः इति वा पदच्छेदः। विभक्तेर्लुक्।

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।

एष में देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम् ॥३॥

भा०—जैसे (देवः सविता) प्रकाशमान् सूर्य, (उषसाम् उपस्थात्) उपाधों में से (विभ्राजमानः) विशेष चमकता हुआ, (रेभैः) स्तुतिकर्ता जीवों से (अनुमद्यमानः) स्तुत होकर (उदेति) उदय होता है वह (समानं धाम न प्रमिनाति) वक्रो प्राप्त तेज को नष्ट नहीं करता है, वैसे ही (यः) जो महापुरुष, (समानं धाम) अपने एक समान, अनुरूप तेज, नाम, स्थान पद को (न प्रमिनाति) नष्ट नहीं करता तो भी (उषसाम्) प्रभात-वेलाओं के समान उत्तम अनुराग-युक्त प्रजाओं (रेभैः) विद्वानों द्वारा (अनु-मद्यमानः) स्तुति एवं उपदेश किया जाकर (उद् एति) विद्या-प्रकाश तथा बल-दीप्ति से उदय को प्राप्त होता, उन्नत पद प्राप्त करता है, (एषः) वह (मे) मेरा (देवः) ज्ञानदाता पुरुष वा ऐश्वर्यप्रद राजा (सविता) उत्पादक पितावत् (चच्छन्द) गृहवत् शरण दे।

दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिभ्राजमानः।

नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जैसे (दिवः रुक्म) आकाश में सुवर्ण-आभरण तुल्य



देदीप्यमान ( उरु-चक्षाः ) विशाल आकाश और लोकों का प्रकाशक  
 ( तरणिः ) आकाश पार करने वाला, ( भ्राजमानः ) चमकता हुआ  
 ( दूरे-अर्थः ) दूर २ तक स्वयं प्रकाश फैलाता हुआ ( उदेति ) उदय  
 होता है और ( जनाः ) मनुष्य, जन्तुगण ( सूर्येण प्रसूताः ) सूर्य द्वारा  
 प्रेरित होकर ( अर्थानि अयन् ) पदार्थ प्राप्त करते और ( अपांसि  
 कृण्वन् ) कर्म करते हैं । वैसे ही ( तरणिः ) नौका-तुल्य जीवों को दुःखों  
 से पार करने वाला, ( भ्राजमानः ) तेजस्वी, ( दूरे-अर्थः ) दूर २ तक  
 जाने वाला, दूर से भी धन प्राप्त करने वाला, ( उरु-चक्षाः ) बहुदर्शी  
 पुरुष ( दिवः स्वम् ) कामनावान् प्रजा के बीच सुशोभित, उनको प्रिय  
 होता है और ( जनाः ) सब जन, ऐसे ( सूर्येण ) सूर्यवत् ज्ञान और तेज  
 से युक्त पुरुष से ( प्रसूताः ) प्रेरित और शिक्षित होकर ( अर्थानि  
 प्रयन् ) अपने प्राप्य पदार्थों को प्राप्त हों और ( अपांसि कृण्वन् )  
 नाना कर्म करें ।

यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्न्वेति पाथः ।

प्रति वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणात हव्यैः ॥ ५ ॥

भा०—पूर्व आधी ऋचा का सूर्य देवता है । ( दीयन् श्येनः न )  
 वेग से गति करता हुआ बाज पक्षी जैसे ( पाथः अन्वेति ) आकाश  
 मार्ग में शिकार के पीछे जाता है वैसे ही ( श्येनः ) प्रशस्त मार्ग से  
 जाने वाला विद्वान् पुरुष ( दीयन् ) सन्मार्ग पर चलता हुआ उस  
 ( पाथः ) सन्मार्ग का ( अनु एति ) अनुगमन करे, ( यत्र ) जिससे जाते  
 हुए ( अमृताः ) अमर आत्मा, दीर्घायु जन ( अस्मै ) इसको ( गातुं  
 चक्रुः ) ज्ञान का उपदेश करते हैं ।

उत्तरार्ध ऋचा के देवता मित्र और वरुण हैं । हे ( मित्रावरुणा )  
 श्रेष्ठ गुरुजनो ! ( सूर उदिते ) सूर्य के उदय होने पर ( हव्यैः नमोभिः )  
 स्वीकार-योग्य अश्वों और विनय-वचनों से ( वां ) आप दोनों की  
 ( प्रति विधेम ) प्रति दिन सेवा करें ।



नृ मित्रा वरुणो अर्यमा नस्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।  
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।५  
भा०—व्याख्या देखो सू० ६२ । मं० ६ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[ ६४ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणी देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्  
५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ यञ्च च सूक्तम् ॥

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।  
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥१॥

भा०—( अर्यमा ) सूर्य जैसे ( दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता )  
आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हुए मेघों और सूर्य की  
किरण ( घृतस्य निर्णिजः ) जल और तेज के नाना शुद्ध रूपों को  
( प्र ददीरन् ) अच्छी प्रकार से देते हैं, वैसे ही ( दिवि ) ज्ञान और  
व्यवहार में विद्यमान ( रजसः ) प्रजाजनों और ( पृथिव्यां क्षयन्ता )  
ऐश्वर्यवान् पृथ्वीवासी ( मित्रावरुणा ) स्नेही एवं श्रेष्ठ जनो ! ( वां )  
आप लोगों को ( निः-निजः रजसः ) शुद्ध पवित्र आत्मा वाले उत्तम  
जन ( घृतस्य प्र ददीरन् ) ज्ञानप्रकाश दें । ( मित्रः ) स्नेहवान्  
( अर्यमा ) शत्रुओं का नियन्ता, ( सु-जातः ) उत्तम पद पर प्रसिद्ध,  
( राजा ) देदीप्यमान, ( सु-क्षत्रः वरुणः ) उत्तम बल का स्वामी,  
स्वयं वरणीय राजा ये सब ( नः हव्यं ) हमारा दिया पदार्थ ( जुषन्त )  
सेवन करें ।

राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।  
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

भा०—हे ( राजाना ) राजा-रानी, वा राजा-सेनापति तुल्य प्रजाओं  
में प्रकाशित ( महः ऋतस्य गोपा ) बड़े धनैश्वर्य और ज्ञान के रक्षक,

( सिन्धु-पती ) वेगवान् अश्वों, समुद्रवत् विशाल प्रजाजनों, सैन्यों तथा प्राणों के पालक, ( क्षत्रिया ) बलशाली होकर तुम दोनों ( अर्वाकूयातम् ) आगे बढ़ो । हे ( जीर-दान् ) मेघ और वायु तुल्य संसार को वेग, जीवन और प्राण देने वाले ! ( मित्रावरुणा ) स्नेहयुक्त और वरणीय श्रेष्ठ जनो ! जैसे वायु और मेघ, वा विद्युत् और सूर्य दोनों ( दिवः वृष्टिम् इन्वतः ) आकाश से वृष्टि लाते हैं और ( दिवः इडाम् इन्वतम् ) भूमि से अन्न को उत्पन्न करते हैं वैसे ही आप दोनों ( दिवः ) व्यापार आदि से ( वृष्टिम् अव इन्वतम् ) समृद्धि की वृष्टि प्राप्त कराओ ( उत ) और ( नः ) हमें ( इडां अव इन्वतम् ) उत्तम वाणी और अन्न-सम्पदा प्राप्त कराओ ।

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।  
ब्रवच्चथा न अ हरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥ ३ ॥

भा०—( मित्रः ) स्नेहवान् ( वरुणः ) वरणीय ( देवः ) दानशील ( अर्यः ) स्वामी, ( नः ) हमें ( तत् ) वे सब जन ( साधिष्ठेभिः पथिभिः ) अति उत्तम मार्गों से ( प्र यन्तु ) अच्छी प्रकार ले जावें । ( आत् ) अनन्तर ( यथा ) यथोचित रीति से ( नः ) हममें से ( सु-दासे ) उत्तम दानशील के हितार्थ ( हरिः ) स्वामी राजा ( नः ब्रवत् ) हमें उपदेश करे । हम सब ( देव-गोपाः ) विद्वानों से सुरक्षित होकर ( इषा मदेम ) अन्न से तृप्त-प्रसन्न हों ।

यो वां गर्ते मनस्ता तक्षदेतमूर्ध्वा धीतिं कृणवद्भारयन्ध ।  
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥४॥

भा०—( मित्रावरुणा राजाना घृतेन उक्षेथां ) मित्र, वरुण, वा विद्युत् और सूर्य दोनों जैसे दीस होकर जल और तेज का वर्षण करते और ( सु-क्षितीः तर्पयेथाम् ) उत्तम भूमियों को तृप्त करते हैं वैसे हे ( मित्रावरुणा ) स्नेहवान् और दुःखवारक ( राजाना ) राजा जनो !



आप दोनों ( धृतेन ) जल और तेज से ( सु-क्षितीः ) उत्तम भूमियों, प्रजाओं को ( उक्षेथाम् ) सींचो, पुष्ट करो । ( ता ) वे आप दोनों प्रजाजनों को ( तर्पयेथाम् ) तृप्त करें और ( यः ) जो प्रजाजन ( वां गत्तं ) आप दोनों के रथ, सभाभवन और कृषि, स्तुति, उपदेश आदि भी ( मनसा तक्षत् ) ज्ञानपूर्वक करे, ( ऊर्ध्वाम् ) उन्नत ( धीतिम् ) कर्म ( कृणवत् ) करे, ( धारयत् च ) वहां ही स्थापित करे, आप दोनों ( एतम् ) उसको ( तर्पयेथाम् ) प्रसन्न करो ।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।६॥

भा०—( वायवे शुक्रः न ) वायु को जैसे शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, वैसे हे ( वरुण ) श्रेष्ठजन ! हे ( मित्र ) जेहयुक्त जन ( तुभ्यम् ) तेरे लिये ( एषः ) यह ( स्तोमः ) स्तुति और ( सोमः ) यह ऐश्वर्य ( शुक्रः ) कान्तियुक्त होकर तेरी वृद्धि को ( अयामि ) प्राप्त हो । आप दोनों ( धियः अविष्टं ) सु-कर्मों की रक्षा करो और ( पुरन्धीः जिगृतम् ) बहुत से ज्ञान धारण करने वाली बुद्धियों, ज्ञानों का उपदेश करो । ( यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ) आप हमें सदा उत्तम उपाधों से पालन करें । इति पष्ठो वर्गः ॥

[ ६५ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् ।

२ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्तत्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम् ।

ययोरसूर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्तु ॥ १ ॥

भा०—( ययोः ) जिनका ( अक्षितम् ) अविनाशी, ( असूर्यम् ) प्राणों में रमण करने वाले, 'असुर' अर्थात् जीवों के हितकारक, ( ज्येष्ठं ) श्रेष्ठ बल ( विश्वस्य ) सबको ( जिगत्तु ) जीतने वाला है वे दोनों ( यामन् ) राज्यप्रबन्ध के कार्य में ( आचिता ) आदर



प्राप्त करने योग्य हों । ( सूर उदिते ) सूर्य तुल्य तेजस्वी पुरुष के उदय होने, वा सर्वोपरि पद प्राप्त कर लेने पर मैं प्रजाजन ( वाम् ) आप दोनों नर-नारी और राजा-प्रजा-वर्गों में से ( पूतदक्षं ) पवित्र बल और आचारवान् ( मित्रं ) सर्व स्नेही और ( वरुणं ) श्रेष्ठ जन को ( सूक्तैः ) उत्तम वचनों से ( प्रति हुवे ) प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करूँ ।

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः ।

अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावां च यत्र पीपयन्महा च ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र या देह में, हे ( मित्रा वरुणा ) प्रजा के स्नेही, प्राणवत् प्रिय और वरणीय स्त्री पुरुषो ! ( द्यावा ) सूर्य और भूमिवत् विद्वान् और अविद्वान् जन और (अहा च) दिन-रात्रिवत् स्त्री-पुरुष सभी ( वां पीपयन् ) आप दोनों को पुष्ट करते हैं, उसी देश में हम भी ( अश्याम ) सुख-समृद्धि प्राप्त करें । वे मित्र और वरुण दोनों ही ( देवानाम् ) विद्वान् मनुष्यों के बीच, प्राणों में प्राण उदान के समान ( असुरा ) बलवान् जीवनधारक, ( सौ अर्था ) वे दोनों ही स्वामी स्वामिनी के समान गृहपालक और ( ता ) वे दोनों ही ( नः क्षितीः ) हमारी भूमियों और मानव प्रजाओं को ( ऊर्जयन्तीः ) उत्तम अन्न और बल के सम्पादक ( करतम् ) बनावें ।

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतुं दुरत्येत् रिपवे मर्त्याय ।

ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वासपो न नात्रा दुरिता तरेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर स्नेही, वरणीय राजा-प्रजा, स्त्री-पुरुषो ! ( ता ) वे आप दोनों ( भूरि पाशा ) बहुत बन्धनों से बद्ध होकर ( अनृतस्य ) असत्याचरण को पार करने के लिये ( सेतु ) पुल के समान होओ और (रिपवे मर्त्याय) शत्रुभूत पापी पुरुष के नाश के लिये आप दोनों ( दूर-अत्येत् ) दुःख से अतिक्रमण-योग्य, अलंघनीय-शासन होओ । ( वाम् ) आप दोनों के ( ऋतस्य पथा ) सत्य के



मार्ग से चलकर हम भी ( नावा आपः न ) नाव से जलों के समान (दुरिता तरेम) सब दुःखों को पार करें ।

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।

प्रतिवामत्र वरमा जनाय पृणीतमुदनो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रावरुणा) सूर्य-मेघ वा वायु-मेघ के समान सर्वप्रिय जनो ! आप दोनों (नः) हमारे ( हव्य-जुष्टिं ) प्रेम से स्वीकार-योग्य अन्न आदि को स्वीकार करो । ( घृतैः गव्यूतिम् ) जलों से भूमि भाग के समान ( इळाभिः ) उत्तम वाणियों से वाणी के उत्तम पात्रों को ( उक्षतम् ) सेचन करो । आप दोनों ( वास् ) अपने ( दिव्यस्य ) ज्ञान से पूर्ण (चारोः) उत्तम (उदनः) जलवत् शान्तिदायक वचन का ( वरम् ) श्रेष्ठ प्रयोग ( जनाय ) समस्त जन के हितार्थ (प्रति) प्रति-दिन ( आ पृणीतम् ) करो ।

एष स्तोमो वरुण मित्र भ्यं सोमः शुक्रो न त्रायवेऽयामि ।

अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६४ मं० ५ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[ ६६ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३, १७—१९ मित्रावरुणौ । ४—१३ आदित्याः । १४—१६ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ९ निचृद् गायत्री ३ विराड् गायत्री । ५, ६, ७, १८, १९ आर्षी गायत्री । १७ पादनचृद् गायत्री । ८ स्वराड् गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ स्वराड् बृहती । १३, १५ आर्षी भुरिग् बृहती । १४ आर्षी विराड् बृहती । १६ पुर उष्णिक् । एकोनविंशति ऋचं सूक्तम् ॥

प्र मित्रयोर्वरुणायेः स्तोमो न एतु शूष्यः ।

नमस्वान्तुविज्ञातयोः ॥ १ ॥

भा०—(तुवि-ज्ञातयोः) बहुस-सी विद्याओं में प्रवीण, (मित्रयोः) परस्पर स्नेही और ( वरुणयोः ) गुरु-शिष्य रूप से वरण करने वाले दोनों का ( नमस्वान् ) विनययुक्त व्यवहार वाला, ( शूष्यः ) सुख-



कारी, (स्तोमः) स्तुति-योग्य उपदेश (नः एतु) हमें प्राप्त हो ।

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा । असुर्याय प्रमहसा ॥२॥

भा०—(देवाः) विद्वान् मनुष्य (या) जिन दो को (धारयन्त) व्रत धारण कराते हैं वे आप दोनों (सु-दक्षा) उत्तम कर्मकुशल (दक्ष-पितरा) बल वीर्य के पालक, (प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी होकर (असुर्याय) बलवान् पुरुषों में श्रेष्ठ पद के योग्य होते हैं ।

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणाम् । मित्रं साधयन्त धियः ॥३॥

भा०—(ता) वे दोनों (नः) हमारे (स्तिपा) संघों के रक्षक और (तनूपा) शरीरों के रक्षक हों । हे (वरुण) श्रेष्ठ जन ! हे (मित्र) ज्ञेह-वन् ! विद्वन् आप लोग (जरितृणाम्) उपदेष्टा पुरुषों की (धियः) बुद्धियों और विचारों को (साधयन्त) सफल करो ।

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा । सुवाति सविता भगः ॥४॥

भा०—(उदिते सूर) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के उदय होने पर (यत्) जो (अनागाः) अपराधादि से रहित (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) सर्व प्रेरक, शासक और (भगः) ऐश्वर्यवान् है वह (अद्य) आज के समान सदा (सुवाति) शासन करे ।

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।

ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमें (अंहः) पाप कर्म से (अतिपिप्रति) पार करते हैं ऐसे (सु-दानवः) उत्तम उपदेशक, विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों से प्रार्थना है कि (यामन्) राज्य के नियन्त्रण और शत्रु पर चढ़ाई के कार्य में (सः) वह (क्षयः) शत्रुओं का नाशक पुरुष (नु) निश्चय से (क्षयः) गृह के समान (सुप्रावीः अस्तु नु) उत्तम रीति से रक्षक हो । (यामन्) विवाह-बन्धन का कार्य हो चुकने पर (सः क्षयः) वह ऐश्वर्य-युक्त, नव गृहपति (सु-प्रावीः प्र अस्तु) उत्तम गृहरक्षक हो । इत्यष्टमो वगः ॥



उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये । महो राजानं ईशते ॥६॥

भा०—(स्व-राजः) स्वयं प्रकाशित, (स्व-राजः) धनैश्वर्य से खमकने वाले, प्रजाजनों के राजा और (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्री सभा वा तेजस्वी पुरुष, (ये) जो (अदब्धस्य) अखण्डित (व्रतस्य) कर्म करने में (ईशते) समर्थ हैं वे (महः-राजानः) बड़े ऐश्वर्य के राजा, स्वामी हैं ।

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् । अर्यमणं रिशादसम् ॥७॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! (वासु) आप दोनों में से (सूरे प्रति उदिते) सूर्य तुल्य तेजस्वी होकर उत्तम पद पर प्राप्त हो जाने पर मैं (मित्रम्) प्रत्येक स्नेही, (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (अर्यमणम्) न्यायपूर्वक स्वामिवत् नियन्ता और (रिशादसम्) दुष्टनाशक कहकर (गृणीषे) स्तुति करूँ ।

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे । इयं विप्रा मेधसातये ॥८॥

भा०—हे (विप्राः) विद्वान् लोगो ! (अवृकाय) निश्छल और जिसको ज्ञान-प्रकाश प्राप्त नहीं ऐसे पुरुष के लिये उसके (शवसे) ज्ञान, बल वृद्धि हेतु (राया) ऐश्वर्य के साथ २ (हिरण्यया) हित और रमणीय (इयं मतिः) यह उत्तम बुद्धि, वा ज्ञान (मेध-सातये) उत्तम अन्न, यज्ञ फलादि प्राप्त करने के लिये सदा रहो ।

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह । इषं स्वश्च धीमहि ६

भा०—हे (देव वरुण) सुखदाता सर्व दुःखवारक ! हे (मित्र) सर्वप्रिय ! हम (ते स्याम) तेरे होकर रहें । (सूरिभिः सह) विद्वानों के साथ (ते) तेरी (इषं) इच्छा और (स्वः च) ज्ञान, आनन्द को (धीमहि) धारण करें ।

ब्रह्मः सूरक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।

ग्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विभ्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥१॥

भा०—(ये) जो (ग्रीणि विदथानि) तीनों प्रकार के ज्ञान, कर्म,



यज्ञ और प्राप्तव्य पदार्थों और तीनों प्रकार के ज्ञातव्य वेदों और ( विश्वानि ) तीनों विश्वों को ( धीतिभिः ) कर्मों, बुद्धियों, वाणियों और अध्ययन आदि द्वारा और ( परिभूतिभिः ) उत्तम सामर्थ्यों से ( येभ्यः ) वश करते हैं वे ( वहवः ) बहुत से ( सूर-चक्षसः ) सूर्य तुल्य सब पदार्थों के ज्ञानोपदेष्टा, ( अग्निजिह्वाः ) अग्नि के समान ज्ञान-वाणी के वक्ता ( ऋतावृधः ) सत्य-ज्ञान के वर्धक हों । इति नवमो वर्गः ॥

वि ये द्युः शरदं मासमादह्यं जमकुं चादृचम् ।

अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥ ११ ॥

भा०—( ये ) जो ( शरदं ) वर्ष, ( मासम् ) मास और ( अहः अक्षुम् ) दिन रात्र, ( आत् ) भी ( ऋचं यज्ञम् ) वेद मन्त्रों से स्तुत्य परमेश्वर, वा यज्ञ अथवा ( यज्ञम् ऋचं ) यज्ञयोग्य, उपास्य, वेद वेद्य प्रभु की ( वि द्युः ) विविध प्रकार से उपासना करते, वेद को धारण करते हैं वे ( वरुणः ) श्रेष्ठ, ( मित्रः ) सर्वस्नेही ( अर्यमा ) न्यायकारी जन ( राजानः ) तेजस्वी राजा होकर ( अनाप्यं ) अन्यों से प्राप्त न होने वा वन्धु जनों से न बांटने योग्य ( क्षत्रं ) धन, ज्ञानमय वेद को ( आशत ) प्राप्त करते हैं ।

तद्वो अद्य मनामहे सूरैः सूर उदिते ।

यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥ १२ ॥

भा०—( वरुणः ) वरणीय, ( मित्रः ) स्नेही ( अर्यमा ) स्वामिवत् हे विज्ञ जनो ! ( यूयम् ) आप ( ऋतस्य ) सत्य-ज्ञान के ( रथ्यः ) महारथियों के तुल्य होकर ( यत् ) जिस को ( ओहते ) धारते हो हम ( उदिते सूरैः ) सूर्योदय होने पर ( वः तत् ) आपके उस ज्ञानैश्वर्य की ( अद्य ) आज ( मनामहे ) याचना करते हैं ।

ऋतावान् ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।

तेषां वः सुस्ते सुचक्षुर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥ १३ ॥



भा०—(ये च) और जो (सूरयः) विद्वान् लोग (ऋत-वानः) सत्य-ज्ञान का सेवन करने-कराने वाले (ऋतजाताः) सत्य-ज्ञान में प्रसिद्ध (ऋत-वृधः) सत्य वर्धक, (घोरासः) तेजस्वी, (अनृत-द्विषः) असत्य के द्वेषी हैं, हे (नरः) नायकवत् पुरुषो ! (तेषां वः) उन आपके (सुच्छर्दिस्तमे) उत्तम रक्षा-गृह से युक्त (सुम्ने) सुखद शरण में सदा (स्याम) रहें ।

उदु त्यदर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।

यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥१४॥

भा०—जैसे (दिवः प्रतिह्वरे) आकाश में प्रत्यक्ष वक्र, वृत्त मार्ग में (त्यत् दर्शतं वपुः उत् एति उ) वह दर्शनीय रूप वाला सूर्य उदय होता है और (यत्) जो (ईम्) सब तरफ से (आशुः) वेग से गतिमान् (देवः) प्रकाशप्रद, (एतशः) शुक्ल वर्ण होकर ( विश्वस्मै चक्षसे अरं ) समस्त संसार को दिखाने के लिये है वैसे ही (त्यत्) वह (दर्शतं वपुः) दर्शनीय शरीर वाला पुरुष (प्रतिह्वरे) प्रत्येक कुटिल व्यवहार के ऊपर (दिवः) अपने तेज के कारण (उत् एति उ) उत्तम होकर शासन करता है, (यत्) जो ( ईम् ) सब ओर (आशुः) शीघ्रकारी, ( देवः ) विद्वान् (एतशः) शुक्लकर्मा, सदाचारी होकर ( विश्वस्मै चक्षसे ) सबको ज्ञान-मार्ग दिखाने और सत् उपदेश करने के लिये ( अरं वहति ) अधिक ज्ञान और बल को, रथ को अश्व के समान चलाने में समर्थ होता है ।

शीर्ष्णाः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुष्वर्पातं समया विश्वमा रजः ।

सप्त स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥१५॥१०॥

भा०—(जगतः तस्थुषः) जंगम और स्थावर ( शीर्ष्णः-शीर्ष्णः ) प्रत्येक शिर के ( पतिम् ) पालक ( सूर्याम् ) प्रेरक को (विश्वं रजः समया) समस्त संसार के बीच (सप्त हरितः) सातों दिशाओं के वासी प्रजाजन ( स्वसारः ) उत्तम भगिनियों के तुल्य स्वयं शरण आकर



(रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर ले जाते हैं, जिससे वह (सुविताय) उत्तम मार्ग से ले चले। ऐसे ही सातों (स्वसारः सु-असारः) उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र चालक (हरितः) वीर-सेनापुं तेजस्वी को सम्मार्ग पर चलने के लिये स्थावर, जंगम, अर्थात् स्थिर चल-सम्पदा और प्रजा के स्वामी को बीच रथ में जुड़े अश्वों के समान धारण करती हैं।

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् ।

पश्येन् शरदः शतं जीवेन् शरदः शतम् ॥१६॥

भा०—(तत्) वह (देव-हितं) विद्वानों, प्राणों के बीच विद्यमान, कल्याणकारी (शुक्रम्) सूर्यवत् तेजस्वी (उत्-चरत्) उत्तम पद को प्राप्त करे और हम उसकी कृपा से (शरदः शतं पश्येन्) सौ बरस तक देखें, (शरदः शतं जीवेन्) सौ बरस तक जीवें। इति दशमो वर्गः ॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुणं द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ जन ! और (मित्रः च) सर्वस्नेही, आप दोनों (सोमपीतये) ओषधि-रसवत् राष्ट्र की रक्षा और उपभोग के लिये (काव्येभिः) कविजनों की वाणिज्यों द्वारा (अदाभ्या) अहिंसा-व्रतचारी होकर (आयातं) आओ और (द्युमत्) ऐश्वर्यपूर्ण देश को (यातम्) प्राप्त करो।

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्भुता । पिवतं सोममातुजी १८

भा०—हे (वरुणः मित्रः च) वरुण और मित्र, रात्रि दिन के तुल्य, स्त्री-पुरुषो ! आप (अद्भुता) परस्पर द्रोह न करते हुए (आतुजी) शत्रुओं का नाश और प्रजाओं का पालन करते हुए (दिवः धामभिः) सूर्य के प्रकाशमय तेजों से प्रभावित होकर (सोमं पिवतु) ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों। आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा ।

पात सोममृतावृधा ॥ १६ ॥ ११ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) दिन-रात्रि वा सदा परस्पर स्नेही और वरण करने वाले (ऋत-वृधा) सत्य से बढ़ने बढ़ाने वाले होकर



( सोमम् पातम् ) प्रजा और शिष्यवर्ग को ( पातं ) पालन करो और आप दोनों ( नरा ) की पुरुष ( आहुतिम् जुषाणा ) आदर से दिये दान को स्वीकार करते हुए, ( आ यातम् ) प्राप्त हों । इत्येकादशो वर्गः ॥

[ ६७ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्षी त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्वै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।

यो वां दूतो न धिष्णाद्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरां विवक्षि ॥१॥

भा०—हे ( नृपती ) राजा रानी के समान मनुष्यों के पालक, हे ( धिष्ण्यौ ) स्तुति-योग्य ! उत्तम बुद्धि-सम्पन्न स्त्री-पुरुषो ! ( यः ) जो ( दूतः न ) दूत के समान ( वां ) आप दोनों को ( अजीगः ) सचेत करता, ज्ञान देकर प्रबुद्ध करता है, वह मैं विद्वान् ( वां प्रति ) आप दोनों के प्रति ( हविष्मता ) उत्तम ग्रहण योग्य भावों से युक्त, ( यज्ञियेन ) सत्संग योग्य ( मनसा ) मन वा ज्ञान से ( जरध्वै ) उपदेश करने के लिये ( सूनुः पितरा न ) माता पिता के प्रति पुत्र तुल्य ( रथम् ) रमणीय वधन और उत्तम व्यवहार का ( अच्छ विवक्षि ) उपदेश करता हूँ ।

अशाच्याग्निः समिधानो अस्मे उपो अदश्नन्तमसाश्चिदन्ताः ।

अचैति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २॥

भा०—( समिधानः ) अच्छी प्रकार दीप्त ( अग्निः ) यज्ञाग्नि, ज्ञानाग्नि, सूर्य एवं अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् ( अस्मे अशोचि ) हमारे हितार्थ चमके । ( तमसः अन्ताः चित् ) अन्धकार अज्ञान के परले सिरे तक ( उपो अदश्नन् ) स्पष्ट दिखाई दे । ( दिवः दुहितुः उपसः ) दीप्त सूर्य-कन्या के समान उषा से ही ( पुरस्तात् श्रिये ) पूर्व दिशा की शोभा के लिये जैसे सूर्य उत्पन्न होता है वैसे ही ( दिवः दुहितुः ) ज्ञानप्रकाश का दोहन करने वाले, ( उषसः ) पापों और अज्ञान के नाशक मातृवत् गुण



से ( जायमानः ) उत्पन्न होता हुआ शिष्यरूप पुत्र ( पुरुस्तात् ) आगे शोभा के लिये ही ( कैतुः अचेति ) पूर्ण ज्ञानवान् हांकर प्रबुद्ध होता है ।

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या वि वक्कान् ।  
पूर्वोभिर्यतं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमत्ता रथेन ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व रूप इन्द्रियों के स्वामी, नर-नारी वर्गों ! हे ( नासत्या ) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले वा ( न-असत्-यौ ) कभी असत्, कुमार्ग पर न जाने वाले जनो ! ( सुहोता ) उत्तम ज्ञानदाता ( वि वक्कान् ) विविध विद्याओं का उपदेश पुरुष ( स्तोमैः ) वेद मन्त्रों और उपदेशों से ( नूनम् ) अवश्य ( वां ) तुम दोनों को ( अभि सिषक्ति ) अपने साथ एक सूत्र में बांधता है, आप दोनों ( वसुमत्ता रथेन ) धन, अन्नादि संपन्न रथ से यात्री जैसे सुख से देश-न्तर चला जाता है वैसे ही ( वसु-मत्ता ) शिष्यों से युक्त, ( रथेन ) स्थिर भाव के विद्यमान, ( स्वर्विदा ) ज्ञान के प्रकाश को स्वयं प्राप्त और अन्यो को प्राप्त कराने वाले आचार्य की सहायता से ( पूर्वोभिः ) पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, ( पथ्याभिः ) हितकारी मार्गों से ( अर्वाक् यातम् ) आगे बढ़ो ।

अधोर्वी नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।  
आ वां वहन्तु स्थावरासा अश्वाः पिवाथो अस्मे सुषुता मधूनि ४

भा०—हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय नर नारियो ! ( नूनम् ) अवश्य मैं ( युवाकुः ) तुम को हृदय से चाहता हुआ, ( वसूयुः ) शिष्य-ब्रह्म-चारियों की कामना करता हुआ आचार्य ( सुते ) उत्तम ज्ञानैश्वर्य के निमित्त ( अधोः ) ब्रह्मचर्यादि-पालक आप दोनों में से ( वां ) तुम दोनों को ( माध्वी ) ऋग्वेद, मधु-विद्या, उपनिषद्-ज्ञान और 'मधु' आनन्द-प्रद अन्नादि के योग्य जानकर ( हुवे ) प्राप्त कलं । ( स्थाविरासः ) ज्ञान-बुद्ध ( अश्वाः ) विद्या-विक्षण पुरुष ( वां ) तुम दोनों को ( आ वहन्तु )



सन्मार्ग पर ले चलें। आप लोग (अस्मे) हमारे (सु-सुता) उत्तम रीति से बनाये, (मधूनि) ज्ञानों और अन्नों का (पिवाथः) उपभोग और पालन करो। ज्ञानवृद्धों के सत्संग से एकत्र करने योग्य होने से ज्ञान और गृहस्थों से भिक्षा-रूप में संग्रह करने योग्य अन्न 'मधु' है। उसका संग्रह करना 'मधुकरी' वृत्ति है।

प्राचींनु देवाश्विना धियं मेऽमृधां सातये कृतं वसूयुम् । विश्वां  
अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥५॥१२

आ०—हे (देवा अश्विना) विद्याभिलाषी शिष्य-शिष्याजनो ! आप दोनों (मे) मेरी (प्राची) ज्ञानयुक्त, पूज्य (अमृधास्) अविनाशी और (वसूयुं) धनैश्वर्य युक्त (धियं) बुद्धि और कर्म को (सातये) प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करो। वैसे ही हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय, ज्ञानदाता गुरु-गुरुरूपी जनो ! आप दोनों (वाज-सातये) मुझ शिष्य को ज्ञान देने के लिये (प्राचीम्) अति उत्कृष्ट, (वसू-युं) शिष्य को प्राप्त होने वाली (अमृधां) अविनाशी, शिष्य को कष्ट न देने वाली (धियं) बुद्धि और वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। आप दोनों (वाजे) संग्राम और ज्ञान प्राप्ति के समय (विश्वाः पुरन्धीः) बहुत ज्ञानधारक बुद्धियों, वाणियों की (आ अविष्टं) रक्षा करो। आप दोनों (शची-पती) वाणी और शक्ति के पालक होकर (नः) हमें (शचीभिः) वाणियों से (ताः) नाना बुद्धियों देकर (शक्तं) हमें शक्तियुक्त करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

अविष्टं धृष्ट्याश्वना न आसु प्रजावज्रेतो अह्वयं नो अस्तु ।

आ चां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥ ६ ॥

आ०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप (आसु धीषु) इन कर्मों और बुद्धियों के बीच, (नः अविष्टं) हमारी रक्षा करो और (नः) हमारा (रेतः) वीर्य, (प्रजावत्) प्रजा-उत्पादक और (अह्वयम्) नष्ट न होने वाला (अस्तु) हो। हम (तोके तनये) पुत्र-पौत्रादि के लिए



(वां) आप की (वृत्तुजानाः) रक्षा करते हुए, (सु-रत्नासः) उत्तम ऐश्वर्य-युक्त होकर (देव-वीतिं) विद्वानों की संगति को (आ गमेम) प्राप्त हों ।  
एष स्य वां पूर्वगतवेष सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।  
अहेङता मनसा यातमर्वागश्नन्तां हव्यं मानुषीषु विष्णु ॥ ७ ॥

भा०—हे (माध्वी) अन्न वा ज्ञान के मधुवत् संग्राहक और सेवा करने वाले जनो ! ( एषः स्यः ) यह वह ( निधिः ) ज्ञानैश्वर्य का खजाना, विद्याओं का सागर गुरुजन ( पूर्वगत्वा इव ) पूर्वगामी आदर्श पुरुष तुल्य (वां सख्ये) आप दोनों के मित्र भाव में (हितः) स्थित है, वह (अस्मे) हम प्रजा के हितार्थ ( रातः ) दिया गया है । आप लोग (मानुषीषु विष्णु) मनुष्य-प्रजाओं में ( हव्यं अश्नन्ता ) उत्तम अन्नादि को भोगते हुए ( अहेङता मनसा ) क्रोध और अपमान-रहित चित्त होकर (अर्वाक् यातम्) हमारे पास आया करें ।

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।  
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धर्ष तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे ( भुरणा ) प्रजाओं के पोषक जितेन्द्रिय नर नारियों ! (एकस्मिन् समाने) एक समान आदर युक्त (योगे) परस्पर मिलने पर (वां रथः) आप दोनों के रथ के समान सन्मार्ग पर ले जाने द्वारा उप-देष्टा पुरुष ( सप्त स्रवतः ) प्रवाह से निकलने वाली सात छन्दोमय वाणियों को (परि गात्) प्राप्त करे, करावे । (ये) जो (वां) आप दोनों के (धूर्णुं) धुराओं में लगे, धुरन्धर विद्वान् ( तरणयः ) वेगवान् अथ तुल्य वेग से संकटों से पार उतारने वाले विद्वान् ( वां वहन्ति ) आप दोनों को सन्मार्ग पर ले जाते हैं ( सुभ्वः ) उत्तम सामर्थ्यवान् (देव-युक्ताः) विद्वानों से नियुक्त होकर ( न वायन्ति ) सत्पथ से विचलित नहीं होते ।

असश्चतां मघवद्भ्यो हि भतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।  
प्र ये बन्धुं सन्नुताभिस्तिरन्ते गव्यां पृश्नन्तो अश्व्यां मघानि ॥ ९ ॥



भा०—हे नर-नारियो ! (ये) जो (राया) ऐश्वर्य बल से (मघ-देयं) दातव्य ऐश्वर्य (जुनन्ति) देते हैं उन (मघवद्भ्यः) ज्ञान-धन-शाली पुरुषों के उपकार हेतु आप लोग (असञ्चता हि भूतम्) हुर्व्यसनों में असक्त रहो । (ये) जो लोग (अश्व्या) अश्वयुक्त और (गव्या) गौवों से समृद्ध (मघानि) धनों को (पृच्छन्तः) प्राप्त करते हुए (सूनुताभिः) उत्तम वाणियों और अन्तों से (बन्धु) बन्धुजन को (प्रतिरन्ते) अच्छी प्रकार बढ़ाते हैं उनके लिये आप विषयादि में न फंसकर सेवा में तत्पर रहो ।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।

धत्तं रत्नानि जरतं च सूरियूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥१३

भा०—हे (अश्विना) जिज्ञासु स्त्री-पुरुषो ! आप (युवाना) युवा-युवति होकर (मे) मुझ विद्वान् के (हवम् आ शृणुतम्) उपदेश को आदर से सुनो । आप लोग (इरावत् वर्तिः) जल अन्नयुक्त मार्ग के समान, उत्तम प्रेरणा-युक्त व्यवहार को (आ यासिष्टं नु) अवश्य प्राप्त होओ । (रत्नानि धत्तम्) रत्नतुल्य श्रेष्ठ गुणों को धारण करो । (सुरीन्) विद्वान् पुरुषों को (जरतं च) प्राप्त होकर विद्या-लाभ करो । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करें । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ६८ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ८ साम्नी त्रिष्टुप् । २, ३, ५ साम्नी निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ७ साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप् । निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवचं सूक्तम् ॥

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दक्षा जुजुषाणा युवाकोः ।  
हव्यानि च प्रतिभृता वीति नः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों पर वशी स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (दक्षा) दुखनाश में तत्पर होकर (युवाकोः) तुम दोनों को चाहने वाले



सुप्त विद्वान् की (गिरः) उपदेश वाणियों को (जुजुपाणा) सेवन करते हुए (शुभ्रा) उत्तम गुणों, आभरणों से शोभित और (सु-अ०) उत्तम अश्वारूढ़ वीरवत्, उत्तम विद्या में गतिशील होकर (आ यातम्) आओ । (नः) हमारे (प्रति-भृता) बदले में दिये भरण पोषणार्थ (हव्यानि) उत्तम अन्नों का (वीतम्) भोजन करो ।

प्र वामन्धांसि मद्यान्यश्चुरं गन्तं हविषो वीतये मे ।

तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥ २ ॥

आ०—हे विद्वान्, वी पुरुषो ! (वां) आप दोनों के लिये (मद्यानि) आनन्दप्रद (अन्धांसि) जीवन-धारक उत्तम अन्न (प्र अस्थुः) अच्छी प्रकार रखते हैं आप दोनों (मे) मेरे (हविषः) उत्तम अन्न को (वीतये) खाने के लिये (अरं गन्तं) अवश्य आइये । (अर्यः) शत्रु के (हवनानि) आह्वानों को (तिरः) तिरस्कार करके (नः हवनानि) हमारे उत्तम वचनों को (श्रुतं) श्रवण करो ।

प्र वां रथो मनोजवा इयति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।

अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

आ०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (रथः) उपदेश (मनोजवाः) मन को प्रेरणा करने वाला (शत-कतिः) सैकड़ों ज्ञानों से युक्त और सैकड़ों संकटों से रक्षक होकर (वां) आप दोनों के (रजांसि) तेज को सूर्य के समान, राजस आवरणों को (तिरः इयति) दूर करता है । हे (सूर्यावसू) सूर्य के समान तेजस्वी गुरुजनो, विद्या-प्रकाशक गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य से बसने वाले ब्रह्मचारी- हाचारिणी जनो ! वह सदा (अस्मभ्यं इयानः) हमारे हितार्थ आता हुआ (रजांसि) राजस आवरणों को (तिरः) दूर करे ।

अयं ह यद्वां दद्यात् अद्रिर्हृदयो विवक्ति सोमसुवद्युभ्याम् ।

आ वल्लू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥



भा०—( देवया ) विद्वानों को अन्नों और ज्ञानों का दाता, उनका सत्कारक पुरुष ( अयं ह ) वह है ( यत् ) जो ( अग्निः ) मेघ तुल्य उदार होकर ( सोम-सुत् ) उत्तम अन्न ओषधियों के रसवत् ज्ञानदाता होकर ( ऊर्ध्वः ) उत्तम पद पर स्थित होकर ( युवभ्याम् ) तुम दोनों के लाभ के लिये ( विवक्ति ) विविध उपदेश कहे । ( विप्रः ) विद्वान् पुरुष ( वल्गू ) उत्तम वाणी बोलने वाले आप दोनों का ( हव्यैः ) दान योग्य उत्तम ज्ञानों और अन्नादि से ( ववृतीत ) सत्कार करे ।

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यग्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।

यो वांमोमानं दधते प्रियः सन् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—( यः ) जो ( वाम् ) आप दोनों का ( प्रियः सन् ) प्रिय होकर ( महिष्वन्तं ) उत्तम परिणाम-जनक ( ओमानं ) ज्ञान और रक्षण-सामर्थ्य ( दधते ) स्वयं धारता और आपको धारण कराता है, उस ( अग्रये ) त्रिविध ताप रहित, तीन ऋणों से मुक्त विद्वान् के लिये ( यद् वा चित्रं भोजनं नु अस्ति ) जो आपका नाना प्रकार का भोजन है वह ( नि युयोतम् ) अवश्य पृथक् करो । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।

अधि यद्वर्ष इत ऊति धृत्यः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) वेगवान् रथों, यन्त्रों के स्वामी स्त्री-पुरुषों ! आप लोग ( हविर्दे ) अन्न, भूमि और उत्तम साधनों के दाता ( जुरते ) वृद्ध, मान्य ( च्यवानाय ) जाने को उद्यत पुरुष हितार्थ ( प्रतीत्यम् ) प्रत्येक देश में पहुँचने योग्य ( इतः-ऊति ) इधर उधर से रक्षायुक्त, ( वर्षः ) उत्तम रूपयुक्त रथादि ( अधि धृत्यः ) प्रदान करते रहो । ( वां त्यत् ) आप दोनों का वही ( प्रतीत्यं भूत् ) प्रसिद्धकर कर्म है ।

उत त्वं भर्ज्युमाश्विना सखायो मध्ये जहदुरेवासः समुद्रे ।

निरीं वर्षदरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥



भा०—हे (अश्विना) विद्वान् रथी सारथीवत् साधनयुक्त जनो ! (दुरेवासः) दुष्ट कामनायुक्त (सखायः) मित्र लोग जिसको (मध्ये समुद्रे) कष्टों के बीच समुद्र में (जहुः) छोड़ देते हैं (मुज्यम्) भुजा का सहारा चाहने वाले (त्यं) उस पुरुष को आप लोग (निः पर्वद् ई) अवश्य पार करो (यः) जो (आराव) बिचारा, नीरव, मूक और (युवाकुः) तुम दोनों की चाहता, पुकारता और सहायता की याचना करता हो ।

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे ह्यमाना ।

यावद्व्यामपिन्वतमषो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वों और यन्त्रों की विद्या जानने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (जसमानाय) प्रजानाश करने वाले, (वृकाय) चोर-दम्भी पुरुष के दमन के लिये (चित्) अवश्य (शक्तम्) समर्थ बनों । और (ह्यमाना) आदर से बुलाये गये आप दोनों (शयवे) सुखेच्छु पुरुष के हितार्थ (श्रुतम्) उसकी प्रार्थनादि श्रवण करो । (यौ) जो आप दोनों (शक्ती) शक्ति और (शचीभिः) वाणिज्यों द्वारा (अपः न) जल जैसे नदी को पूर्ण करते वैसे (स्तर्यं) आच्छादन, भरण, पोषण और आश्रय देने और (अव्याम) न मारने योग्य गौ के समान कन्या, स्त्री भूमि और प्रजा को (अपिन्वतम्) पुष्ट करो ।

एष स्य कारुजरते सूक्तैरग्ने बुधान उषसां सुमन्मा ।

वृषा तं वर्धद्व्या पयोभिर्युयं पात स्वस्तिनिः सदा नैः ॥ ९ ॥ १५ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री-पुरुषो ! (उषसां अग्ने, यथा सु-मन्मा कारुः जरते) प्रभात वेलाओं के आगमन के पूर्व जैसे उत्तम विचारवान् पुरुष स्तुति करता है वैसे (सु-मन्मा) उत्तम ज्ञानवान्, (बुधानः) स्वयं बोधवान् अग्नियों को बोध कराता हुआ (कारुः) मन्त्रों का व्याख्याता विद्वान् (एषः स्यः) वही है जो (सूक्तैः) उत्तम मन्त्र गणों से (उषसाम् अग्ने) ज्ञान-कामना वाले शिष्यों के समक्ष (जरते) विद्या का उपदेश



करता है । (अध्या पयोभिः) गौ जैसे दुग्धों से पालक को बढ़ाती है  
वैसे ही 'अध्या' अविनाशी वेदवाणी, प्रभुशक्ति वा आत्मशक्ति (तं)  
उसको (इषा वर्धत्) इच्छा शक्ति से बढ़ाती है । हे विद्वान् पुरुषो !  
(यूयं) आप (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से  
पालन करो । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[ ६९ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द—१, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ।  
२, ७ त्रिष्टुप् । ३ आर्षी स्वराड् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥  
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आं वां रथे रोदसी बद्धधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्विश्वैः ।

घृतवर्तनिः पविभीं रुचान इषां वोढा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥

भा०—जैसे ( रथः हिरण्ययः ) लोह-सुवर्णादि धातु का बना रथ  
(वृषभिः अश्वैः याति) बलवान् अश्वों या बैलों से चलता है, वह (घृत-  
वर्तनिः) जल से सिंचे मार्ग पर चलने हारा और ( पविभिः रुचानः )  
चक्रधाराओं से सुशोभित और (इषां वोढा) इष्ट अस्त्रादि का वहन करने  
वाला और ( वाजिनीवान् ) बलवती शक्ति से युक्त होकर ( नृ-पतिः )  
मनुष्यों का रक्षक होता है वैसे ही ( वाजिनीवान् ) बलवती सेना,  
ज्ञानसम्पन्न वाणी और भूमि का स्वामी, (नृ-पतिः) प्रजा पालक राजा,  
(रथः) रमणीय-स्वभाव, उत्तम विद्या का उपदेश, प्रजा को रमाने  
हारा (हिरण्ययः) हितैषी और सुखप्रद ( बद्धधानः ) दुष्टों को बाधा  
और बन्धनादि करता हुआ, (वृषभिः अश्वैः) विद्याओं में पारंगत वीर  
पुरुषों सहित ( रोदसी वां ) सूर्य-भूमिवत् सम्बद्ध आप दोनों राजा-  
प्रजावर्गों और गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को ( आ यातु ) प्राप्त हो । वह (घृत-  
वर्तनिः) क्षिप्र मार्ग से जाने वाला, उत्तम व्यवहारवान् और (पविभिः  
रुचानः) पवित्र आचरणयुक्त, उत्तम हथियारों से सुशोभित गृहस्थ  
( इषां वोढा ) अभिलषित दार से विवाह करने हारा हो और राजा



(इषां वोढा) सेनाओं को अपने जिम्मे लेकर चलने हारा हो ।

स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।

विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चियाममश्विना दधाना ॥२॥

भा०—जैसे रथ ( त्रि-बन्धुरः ) सारथि आदि के बैठने के योग्य तीन स्थानों से युक्त होता है जिनसे (कुत्र चित् यामं दधाना) कहीं भी जाना चाहते हुए रथी सारथी जाते हैं वैसे ही हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (सः) वह विद्वान् और वीर पुरुष (भूमा) महान् सामर्थ्य से युक्त, (पञ्च अभि) पाँचों जनों के समक्ष ज्ञान और बल का विस्तार करता हुआ ( त्रि-बन्धुरः ) तीनों वेदों का धारक और तीन प्रकार के बल का आश्रय होकर, (मनसा) ज्ञान और प्रबल चित्त से युक्त होकर (अभि यातु) आगे आवे । (येन) जिसकी सहायता से आप दोनों स्त्री-पुरुष, राजा-रानी, (देवयन्तीः विशः) कामनायुक्त प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होते और (कुत्र चित्) जहाँ चाहे कहीं भी (यामं दधानां) गमन, परस्पर वैवाहिक बन्धन और राज्य-प्रबन्ध को धारण करते हुए (गच्छथः) प्राप्त होते हो ।

स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दक्षा निधिं मधुमन्तं पिवाथः ।

वि वां रथो बध्वय्यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्त्तनिभ्याम् ॥३॥

भा०—जैसे ( रथः वर्त्तनिभ्यां दिवः अन्तान् बाधते ) रथ चक्र-धाराओं से भूमि के प्रान्त भागों को पीड़ित करता है वैसे ही हे स्त्री-पुरुषो ! राज-प्रजाजनो ! (वां) आप दोनों में ( रथः ) रथ्य व्यवहार-वान्, वा स्थिर, दृढ़ पुरुष (बध्वा) सहयोगिनी बधू वा कार्य-भार की वाहक शक्ति के साथ (यादमानः) यत्नवान् होता हुआ (वर्त्तनिभ्याम्) ऐहिक और परमार्थिक व्यवहारों या देवयान पितृयाण मार्गों से (दिवः अन्तान् बाधते) ज्ञान-सिद्धान्तों का अवगाहन करे । हे (स्वश्वा) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों से युक्त ! हे (दक्षा) अज्ञानादि-नाशक जनो ! आप दोनों (यशसा) यश के साथ ( अर्वाग् यातम् ) आगे बढ़ो और



( मधुमन्तं निधिं ) मधुर ज्ञानों से युक्त, वेद-निधि या खजाने का (पिबाथः) पालन और उपभोग करो ।

युवोः श्रियं परि योषावृणीति सूरौ दुहिता परितवस्यायाम् ।

यदेव्यन्तमवथः शचीभिः परि व्रंसमोमनां वां वयो गात् ॥४॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों में (सूरः दुहिता) सूर्य की कान्ति वाली उषा के समान सुन्दरी (योषा) पुरुष की प्रेमपूर्वक अभिलाषा वाली स्त्री (परि-तवस्यायाम्) कामाग्नि-युक्त, यौवन दशा में, (श्रियं) आश्रय-योग्य, शैवनीय पुरुष को (परि वृणीत) स्वीकार करे । आप दोनों (शचीभिः) उत्तम कर्मों और वाणियों से (देवयन्तम्) प्रिय कामनावान् सहयोगी को (अवथः) प्राप्त हुआ करो और (वां व्रंसम्) आप दोनों में तेजस्वी पुरुष को (ओमना) रक्षण-योग्य बल सहित (वयः) उत्तम, दीर्घायु, अन्न बलादि (परि गात्) प्राप्त हो ।

यो ह स्य वां रथिरा वस्तं उत्था रथो युजानः परियाति वर्तिः ।

तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्चिना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥

भा०—हे (रथिरा) रथ पर स्थित रथी सारथी के समान सह-योगी स्त्री-पुरुषो ! (वां) आप दोनों में से (यः) जो प्रत्येक (रथः) स्थिर भाव से रहने और गृहस्थ में रमने वाला हो वह (उत्थाः वस्ते) किरणों को सूर्य के समान, उज्ज्वल वस्त्रों को धारण करे । वह (युजानः) उड़े रथ तुल्य स्वयं (युजानः) संयुक्त होकर, ग्रन्थि जोड़कर (वर्तिः परियाति) गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हो । (उषसः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती कन्या की (व्युष्टौ) विशेष विवाह की कामना होने पर (तेन) उस पुरुष से ही (नः) हमें (शं योः) शान्ति और सुख प्राप्त हो । हे (अश्चिना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ अर्थात् परस्पर संगति और दान-प्रतिदानमय सद्-व्यवहार में आप दोनों (नि वहतम्) एक दूसरे को धारण करो, विवाहित होकर रहो ।



नरां गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमुद्य सवनोप यातम् ।

पुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वांसन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥ ६ ॥

भा०—( गौरा इव तृषाणा सवना ) जैसे प्यासे दो मृग जलों को प्राप्त करते हैं वैसे हे (नरा) स्त्री-पुरुषो ! (अस्माकं) हम में से ( गौरा ) विद्या वाणी में निष्णात होकर ( विद्युतम् उप यातम् ) विशेष काव्य को प्राप्त करो और ( तृषाणा ) कामनावान् या अति उत्सुक होकर (अद्य) आज (सवना) यज्ञों, ऐश्वर्यों और पुत्र-प्रसवादि गृहोचित कार्यों को ( उप यातम् ) प्राप्त होओ । विद्वान् पुरुष (वां) आप दोनों की (पुत्रा) बहुत से कार्यों में (हवन्ते हि) स्तुति करते हैं । (अन्ये) दूसरे शत्रुजन ( देवयन्तः ) द्यूतक्रीड़ा आदि व्यवहार करते हुए (वास मा नियमन्) आप दोनों को न फंसाएँ ।

युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उद्धहथुरक्षो अस्त्रिधानैः ।

पतत्रिभिरभ्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रे अवविद्धं भुज्युम् यथा अश्विना अस्त्रिधानैः पतत्रिभिः अर्णसः पारयतः) समुद्र में फंसे भोग्य ऐश्वर्य की कामना वाले व्यापारी को जैसे वेगयुक्त नौका यन्त्रादि के अव्यक्ष जन पतवारों द्वारा पार करते हैं वैसे हे (अश्विना) जितेन्द्रिय उत्तम शिष्यो ! एवं रथी-सारथि-वत् गृहस्थ-रथ में स्थित स्त्री-पुरुषो ! ( युवम् ) आप दोनों (समुद्रे अवविद्धं) कामनामय समुद्र में अवपीडित, ( भुज्युम् ) एक दूसरे का सहारा चाहने वाले या सांसारिक भोग वा संसार में रक्षा चाहने वाले सहचर को (अर्णसः) पितृक्रण से (अस्त्रिधानैः) नष्ट न होने वाले (अभ्रमैः) न थकने वाले, ( अव्यथिभिः ) पीडित न होने और अन्यों को पीड़ा न देने वाले ( पतत्रिभिः ) गमन योग्य तीन आश्रमों से और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों से (पारयन्ता) पार करते हुए (उद् ऊहथुः) उत्तम मार्ग से ले जाओ ।



नू मे हवमा शृणुतं युवाना आसिष्टं वर्तिरश्विना विराजत् ।  
 धत्ते रत्नानि जरतं च सूरिन् ययं पात स्थितिभिः सदा नः ८।१६॥  
 भा०—आख्या देखो सू० ६७ । मन्त्र १० ॥ इति षोडशो वर्गः ॥

[ ७० ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ।  
 २, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।  
 अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदधुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१॥

भा०—हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे वरणीय उत्तम स्त्री-पुरुषो !  
 आप दोनों ( नः ) हमारे ( आगतम् ) पास आओ । (वां) आप दोनों  
 का ( पृथिव्याम् ) पृथिवी पर (तत् स्थानम्) गृहस्थाश्रम (प्र अवाचि)  
 उत्तम कहा है, (यत्) जिसमें (वाजी) बलवान् पुरुष (शुन-पृष्ठः) सुखद  
 पीठ वाले अश्व के समान सुखों का आश्रय होकर (अस्थात्) रहता  
 है । आप पति-पत्नी (ध्रुवसे) स्थिरता के लिये (योनिम् सेदधुः) एक  
 गृह में विराजते हो ।

सिषक्तिं सा वां सुमतिश्च निष्ठातापि धर्मो मनुषो दुरोणे ।

यो वां समुद्रान्तरितः पिपत्येतं ग्वा क्षिप्त्वा सुयुजां युजानः ॥२॥

भा०—(दुरोणे धर्मः) जहां कोई चढ़ नहीं सकता ऐसे ऊंचे आकाश  
 में सूर्य के समान (मनुषः) मनुष्य (दुरोणे) घर में और राजा राष्ट्र में  
 उच्च पद पर विराज कर (अतापि) तप करे । ऐसे ही ब्रह्मचारी (धर्मः)  
 ज्ञान-बल से सिक्त-स्नातक होकर (मनुषः दुरोणे) मननशील आचार्य  
 के गृह में (अतापि) तप करे, उस समय (वां) तुम दोनों को (चनिष्ठा)  
 श्रेष्ठ व गुरुवचनमय (सुमतिः) शुभमति (सिषक्ति) प्राप्त हो । (एतग्वा  
 चित्) अश्व के समान गृहस्थ-रथ में नियुक्त आप दोनों (सुयुजा) उत्तम  
 सहयोगी जनों को ( युजानः ) जोड़ता हुआ, सत्कर्म में नियुक्त करता



हुआ (यः) जो (समुद्रान् सरितः) समुद्रों को नदियों के समान (पिपत्ति) पूर्ण करे वह उत्तम ज्ञानी गुरु सूर्यवत् तेजस्वी हो ।

यानि स्थानान्यश्विना दधार्थे दिवो यद्दीप्त्वोषधीषु विश्वु ।  
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषु जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! (दिवः ओषधीषु) सूर्य-ताप को धारण करने वाली (विश्वु) प्रजाओं में दिन-रात्रि के समान आप दोनों भी (दिवः) इस पृथिवी की (यद्दीप्त्वु) बड़ी २ (ओषधीषु) शत्रु-सन्तापक तेज की धारक सेनाओं और (यद्दीप्त्वु विश्वु) 'यद्' अर्थात् सन्तानवत् पालन-योग्य प्रजाओं के बीच में (यानि) जितने भी (स्थानानि) आदर के पद हैं उन सब पर आप लोग (पर्वतस्य मूर्धनि) पर्वत के शिरोभाग में सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सदन्ता) विराजते हुए, (दाशुषे जनाय) करादि व वस्त्राभूषणादि देने वाले (जनाय) प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वहन्ता) कार्य-भार को अपने कंधों पर लेते हुए (दधार्थे) धारण करो ।

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।  
पुरुषि रत्ना दधत्तौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४ ॥

भा०—हे (देवा) तेजस्वी स्त्री-पुरुषो ! (ओषधीषु) ओषधियों में और (अप्सु) जलों में (यत्) जो ओषधियां और जलवत् द्रव पदार्थ, (ऋषीणां योग्या) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों वा प्राणों के पोषण-योग्य हों उनकी ही आप दोनों (चनिष्टं) कामना करो और उनको ही (अश्नवैथे) खाया-पिया करो । आप दोनों (पुरुषि रत्ना) बहुत से रत्न और रम्य गुणों को (दधत्तौ) धारण करते हुए (अस्मे) हमारे आगे (पूर्वाणि) पूर्व के प्रसिद्ध (युगानि) पति-पत्नी के अनुकरणीय जोड़े का (अनु) अनुकरण (नि चख्यथुः) आदर्श-रूप होकर बतलाओ ।



शुश्रुवांसां चिदश्विना पुरुषाणि ब्रह्माणि चक्ष्वाथे ऋषीणाम् ।

प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्च निष्ठा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (चित्) ही (ऋषीणां) मन्त्रद्रष्टा पुरुषों के साक्षात् किये (पुरुषि) बहुत (ब्रह्माणि) वेद-मन्त्रों को (शुश्रुवांसा) श्रवण करते हुए (अभि चक्ष्वाथे) उनके तत्त्व-ज्ञान को प्राप्त करो । आप लोग (जनाय) मनुष्य के उपकारार्थ (वरम्) उत्तम उद्देश्य को (प्रति यातम्) लक्ष्य करके चलो । (वरम् प्र यातम्) उत्तम ज्ञान प्राप्त करो, (वरम् आ यातम्) वरण-योग्य श्रेष्ठ पुरुष और स्थान को ही आओ । (अस्मे) हमारे लिये (वाम्) आप दोनों की (चनिष्ठा) प्रशंसनीय (सुमतिः अस्तु) शुभमति हो ।

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्थोऽभवति ।

उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यच्यन्ते सुवभ्याम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! (यः) जो (यज्ञः) पूजा-सत्संग-योग्य (हविष्मान्) उत्तम ज्ञान अन्न से सम्पन्न (कृत-ब्रह्मा) वेदाध्यन में कृतश्रम और धनादि में समृद्ध (वां) आप दोनों के प्रति (समर्थः) नाना पुरुषों-सहित (भवति) होता है आप दोनों ऐसे वरण-योग्य (वसिष्ठं) सर्वोत्तम 'वसु', विद्वान् वा राजा को (उप आ यातम्) प्राप्त होओ, हे स्त्री-पुरुषो ! (सुवभ्याम्) आप दोनों के हितार्थ ही (इमा ब्रह्माणि) ये वेदोक्त ज्ञान, अन्न, धन (अच्यन्ते) ऋचाओं के रूप में प्रकट होते और प्रस्तुत किये जाते हैं ।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

इमा ब्रह्माणि सुवयून्त्यग्मन्ययं पात स्वस्तिभिः सदा नः । ७।१७।४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (इयं) यह (मनीषा) मन की उत्तम इच्छा और (इयं गीः) यह उत्तम वाणी है । आप दोनों (इमां) इस (सु-वृक्तिं) उत्तम वाणी को (वृषणा) बलवान् होकर



(जुषेथाम्) सेवन करें । (इमा ब्रह्माणि) ये वेद-वचन (युवयूनि) आप के हितार्थ हैं । (यूयं) हे विद्वान् लोगो ! आप (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम साधनों से हमारी रक्षा करो । इति सप्तदशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[ ७१ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अप स्वसुरूपसो नजिहीते रिणक्ति कृष्णारिरूपाय पन्थाम् ।  
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्योतम् ॥ १ ॥

भा०—( नक् उपसः अप जिहीते ) जैसे उषाकाल से रात्रि दूर चली जाती है वैसे ही ( उपसः ) प्रभात-वेला-तुल्य कान्तियुक्त, पति की याचना करने वाली ( स्वसु=स्व-सुः ) स्वयं वरणीय पति को प्राप्त करने वाली वरवर्णिनी कन्या से ( नक् ) सम्बन्धी जन उसके माता, पिता, भाई आदि (अप जिहीते) दूर हो जाते हैं । वह माता-पिता से छूटकर पति की हो रहती है । (कृष्णीः) कृष्णवर्णा रात्रि जैसे (अरूपाय पन्थाम् ऋणक्ति) तेजस्वी सूर्य के लिये मार्ग छोड़ती है वैसे ही (कृष्णीः) हृदय को आकर्षण करने वाली स्त्री ( अरूपाय ) तेजस्वी पुरुष के लिये (पन्थाम्) मार्ग ( रिणक्ति ) रिक्त करती है । आप आगे २ और पीछे पति को लेकर चलती है । (अश्वामघा गोमघा) अश्वों और गौओं आदि धन-संपन्न स्त्री-पुरुषो ! हम लोग ( वाम् हुवेम ) आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप (अस्मत्) हमसे (शरुम्) हिंसक को (द्योतम्) दूर करो ।

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वासमश्विना वहन्ता ।

युयुतमस्मदनिरामभीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! एवं गुरुजनो ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अपने को आप के प्रति समर्पण कर देने वाले के



हितार्थ ( उप आयातम् ) समीप आइये और ( रथेन वामम् वहन्ता ) गाड़ी आदि से जैसे उत्तम धन-सम्पदा लाई जाती है वैसे ही आप लोग ( रथेन ) उत्तम उपदेश से ( वामम् ) सुन्दर श्रवण योग्य ज्ञान को ( वहन्ता ) प्राप्त कराते हुए ( अस्मत् ) हमसे ( अनिराम् ) अन्नादि के दारिद्र्य और 'इरा' अर्थात् विद्योपदेशमय वाणी के अभाव को तथा ( अमीवाम् ) रोग-जनक दशा को ( युयुताम् ) दूर करो और ( दिवानक्तम् ) दिन रात ( माध्वी ) प्रसन्न चित्त वा 'मधु' अन्न जल वा ज्ञान से युक्त होकर ( नः त्रासीथाम् ) हमारी रक्षा करो ।

आ वां रथमवमन्त्यां व्युष्टौ सुस्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।

स्यूमगमस्तिमृतयुग्मिरश्वैराश्विना यसुमन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे रथ को बलवान् अश्व चलाते हैं और ( ऋतयुग्मिः अश्वैः स्यूमगमस्ति, वसुमन्तं रथं वहन्ति ) ज्ञान-पूर्वक लगे अश्वों से, सिली रासों वाले और धनादि-सम्पन्न रथ को ले जाते हैं वैसे ही हे ( अश्विना ) विद्या में व्यापक विद्वान् स्त्री-पुरुषों के स्वामी जनो ! ( वां ) आप के ( रथं ) गृहस्थोचित कर्त्तव्य आदि को ( अवमस्यां व्युष्टौ ) आगामी प्रभात वेला में ( सुस्नायवः ) सुखाभिलाषी ( वृषणः ) बलवान् पुरुष ( वर्तयन्तु ) सम्पादित करें और आप दोनों ( स्यूमगमस्तिम् ) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त ( वसुमन्तं रथं ) बसने वाले, वा वसु ब्रह्म-चारियों वा सुखैश्वर्य-युक्त गृहस्थाश्रम-रूप रथ को ( ऋतयुग्मिः ) सत्य से जुड़े हुए, ( अश्वैः ) विद्वानों की सहायता से ( वहेथाम् ) धारण करो ।

यो वां रथो नृपती अस्ति वोढा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्त्रयामा ।

आ न एना नास्त्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्यो जिगाति ॥ ४ ॥

भा०—हे ( नृपती ) मनुष्य पति पत्नी ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! जैसे ( रथः वोढा, त्रि-बन्धुरः ) रथ मनुष्यों को उठाकर ले जाने से 'वोढा' और तीन दण्डों से बने पीढ़े में युक्त होता है, वैसे ही ( यः ) जो पुरुष



(वां) आप दोनों में से (रथः) रथस्वभाव का, वा स्थिर होकर (वोडा) गृहस्थ-भार सहने वाला, ( त्रि-बन्धुरः ) तीन ऋणों से बद्ध, ( वसु-मान् ) ऐश्वर्यवान्, ( उन्नयामा ) सूर्यवत् तेजस्वी होकर जाने हारा है और ( यत् वां ) जो तुम दोनों में से ( विश्व-प्स्यः ) विशेष रूपवान् होकर (अधि जिगाति) प्राप्त होता है, हे ( नासत्या ) असत्य धारण न करने हारे स्त्री-पुरुषो ! ( एना ) उस व्यक्ति के बल से ही ( नः आ उप-यातम् ) हमें प्राप्त होओ ।

युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।

निरंहसस्तमसः स्पर्तमात्रि नि जाहुपं शिथिरे धातमन्तः ॥५॥

भा०—हे वेग युक्त रथों, अश्वों, वाहनों और विद्यावान् पुरुषों के स्वामी स्त्री-पुरुषो ! सभा-सेनापतियो ! ( युवं ) आप दोनों ( च्यवानं ) सन्मार्गगामी पुरुष को ( जरसः ) वृद्धावस्था वा आयु के नाश से ( अमुमुक्तम् ) दूर करो । ( पेदवे ) दूर देश-गामी के लिये ( आशुम् अश्वम् ) शीघ्रगामी अश्वतुल्य साधन को ( नि ऊहथुः ) निरन्तर चलाओ और ( अत्रिम् ) तीनों दोषों से रहित पुरुष को ( अंहसः ) पाप और ( तमसः ) अज्ञान-अन्धकार से ( निः स्पर्तम् ) पार करो, ( जाहुष्म् ) त्यागी, पुरुष को ( शिथिरे ) शिथिल राष्ट्र में ( अन्तः नि धातम् ) भीतर केन्द्र स्थान पर नियुक्त करो ।

इयं मनीषा इयमश्विन गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ७० ॥ मं० ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[ ७२ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचूत् त्रिष्टुप् ।

५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चच सूक्तम् ॥

आ गोमता नासत्या रथेनाश्ववता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।

अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पर्हया श्रिया तन्वा शुभाना १



भा०—हे विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! हे ( नासत्या ) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजने वाले प्रतिष्ठित जनो ! आप दोनों ( गोमता ) उत्तम बैलों वाले वा ( अश्ववत्ता ) घोड़ों वाले ( पुरु-चन्द्रेण ) बहुतों के आह्लादक ( रथेन ) रथ से ( आ यातम् ) आओ । ( विश्वा नियुतः ) सब उत्तम प्रजाएं वा सेनाएं ( वाम् अभि सचन्ते ) आप दोनों की ही सेवा करती हैं । आप दोनों ( स्पार्हया ) स्पृहा-योग्य, मनोहर ( श्रिया ) शोभा और ( तन्वा ) स्वस्थ शरीर से ( शुभाना ) शोभित होकर हमें प्राप्त होओ ।

आ नो देवाभिरुप यातसर्वाक् सजोपसा नासत्या रथेन ।

युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुर्दत्त तस्य वित्तम् ॥२॥

भा०—हे ( नासत्या ) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप ( देवेभिः ) विद्वान् पुरुषों के साथ ( स-जोपसा ) प्रीति से सेवने योग्य, ( रथेन ) रथ से, ( नः आयातम् ) हमें प्राप्त होओ । ( युवोः हि नः ) आप दोनों के ( पित्र्याणि सख्या ) पिता पितामहादि से आये सौहार्द भाव हमारे साथ बने रहें । ( युवोः नः बन्धुः समानः ) हमारे और तुम्हारे बन्धु भी समान हों ( उत ) और आप दोनों ( तस्य ) उस बन्धु को ( वित्तम् ) भली प्रकार जानें ।

उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रज्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।

आ विवासन्नोदसी धिष्यायेमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥३॥

भा०—(स्तोमासः) वेद के सूक्त और (अश्विनोः स्तोमासः) विद्वान् स्त्रियों, पुरुषों, उपदेशकों के उपदेश और ( ब्रह्माणि ) वेद के मन्त्र ( जामि ) बन्धुवत् ( उपसः ) उत्तम प्रकाश-युक्त ( देवीः ) दानशील, विद्या-मिलायी प्रजाओं को ( उत्-अबुध्रन् ) ज्ञानयुक्त करें । ( विप्रः ) विद्वान् पुरुष ( नासत्या अच्छ ) सत्याश्रयी स्त्री-पुरुषों की ( आविवासन् ) सेवा करता हुआ ( इमे ) इन दोनों को ( रोदसी ) सूर्य-चन्द्रवत्, माता-पिता-वत् ( जिण्ये ) उत्तम-बुद्धि-युक्त, और योग्य भी ( विवक्ति ) कहता है ।



वि चेदुच्छन्त्यश्विना उपासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।  
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्वेद् बृहद्भयः समिधा जरन्ते ॥४॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! ( चेत् ) जैसे ( उपासः )  
प्रभात वेलाएं ( वि उच्छन्ति ) विशेष रूप से प्रकाश करें तब ( कारवः )  
स्तोता विद्वान् ( ब्रह्माणि ) स्तुति-मन्त्र ( प्र भरन्ते ) उच्चारण करते हैं  
और जब ( सविता देवः ) प्रकाशमान सूर्य ( ऊर्ध्वं ) ऊपर ( भानुम् अश्वेत् )  
कान्ति धारण करे तो ( अभयः ) यज्ञाग्नियें ( समिधा ) उत्तम समिधा-  
सहित होकर ( बृहत् ) अच्छी प्रकार ( जरन्ते ) स्तुति को प्राप्त होते हैं,  
अर्थात् यज्ञ किये जाते हैं, वैसे ही जब ( उपसः ) कमनीय कान्ति से  
युक्त विद्वषी स्त्रियें और प्रजाएं ( वि उच्छन्ति ) विविध अभिलाषाएं प्रकट  
करती हैं तब ( कारवः ) विद्वान् पुरुष ( वां ) वर-वधू एवं राजा-रानी  
दोनों को लक्ष्य कर ( ब्रह्माणि ) वेद-मन्त्रों और नाना ऐश्वर्यों को ( प्र  
जरन्ते ) प्रकट करें । ( देवः सविता ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ही ( ऊर्ध्वं-भानुं )  
सर्वोपरि कान्ति को ( अश्वेत् ) धारण करता है और ( अभयः ) विद्वान्  
( समिधा ) अति तेज से ( बृहत् ) वृद्धिकारी, आशीर्वाद-वचन का  
( जरन्ते ) उपदेश करते हैं ।

आ पश्चाताञ्चासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।

आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिमिः सदा नः ५।१६

भा०—हे ( नासत्या अश्विना ) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे  
जनो ! ( पश्चातात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात् ) पश्चिम, पूर्व, उत्तर और  
दक्षिण से भी आप लोग ( पाञ्चजन्येन राया ) पांचों जनों के हितकारी  
धन-सहित ( विश्वतः आ यातम् ) सभी ओर आया-जाया करो । ( यूयं  
स्वस्तिमिः सदा नः पात ) आप हमारी उत्तम साधनों से रक्षा करो ।  
इत्येकोनविंशो वर्गः ॥



[ ७३ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप् । २,  
३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चचं सूक्तम् ॥

अतारिष्म तमसस्पा रमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।  
पुरुदंसां पुरुतमां पुरजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग ( देवयन्तः ) विद्वानों और शुभ गुणों को चाहते हुए, (स्तोमं) स्तुत्य कार्य को (प्रति दधानाः) प्रत्येक दिन धारण करते हुए (अस्य) इस ( तमसः ) अज्ञान, दुःख के (पारम् अतारिष्म) पार हों । हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! ( गीः ) विद्वान् पुरुष (पुरुदंसा) बहुत कमों के कर्ता, ( पुरु-तमा ) बहुतों में उत्तम, (पुरु-जा) सब के आगे चलने वाले, ( अमर्त्या ) साधारण मनुष्यों से विशेष आफ दोनों की (हवते) प्रशंसा करता है ।

न्यु प्रियो मनुषः साद्वि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।  
अश्वीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् २

भा०—हे (नासत्या) सत्यनिष्ठ, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (यः) जो (प्रियः) प्रिय (मनुषः) मननशील, (होता) ज्ञानदाता पुरुष (यजते) यज्ञ करता, (वन्दते च) भगवान् की स्तुति करता, या उप-देशादि करता है और जो ( विदथेषु ) यज्ञों में (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (वाम् आ वोचे) तुम दोनों की अभ्यर्थना करता है, आप उसके (उपाके) समीप (मध्वः अश्वीतं) ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करो ।

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।

श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामवोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (यज्ञम् उराणाः) यज्ञ करते हुए (पथाम्) जीवन-मार्गों की (अहेम) वृद्धि करें ! हे ( वृषणा ) बलवान् स्त्री-पुरुषो ! आप लोग इस (सुवृक्तिम्) सुमति का (जुषेथाम्) सेवन करो । (जर-



माणः वसिष्ठः) उपदेश करने हारा, वसु, ब्रह्मचारी पुरुष ( स्तोमै )  
उपदेश-योग्य वचनों से ( प्रेषितः श्रुष्टीवा इव ) भेजे दूत के समान,  
( प्रेषितः ) उत्तम इच्छा से युक्त ( श्रुष्टीवा ) श्रुति-वचनों का ज्ञाता  
होकर ( वाम् प्रति अबोधि ) आप दोनों को ज्ञानवान् करे ।

उप त्या वह्निं गमतो विशं नो रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणी ।  
समन्धोऽस्य गत मत्सराणि मा नो मर्धिष्ठमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

भा०—हे स्त्री-पुरुषो ! ( रक्षोहणा ) दुष्ट पुरुषों का नाशक, ( सम्भृता )  
परिपुष्ट, ( वीळुपाणी ) बलवान् हाथों वाले होकर ( त्या ) वे दोनों आप  
( वह्नी ) गृहस्थ को उठाने में अश्वों के समान दृढ़, अग्निश्रियों के समान  
तेजस्वी एवं विवाहित होकर ( नः विशं उप गमतः ) हमारे प्रजा-चर्ग  
में प्राप्त होवो । ( नः ) हमारे ( मत्सराणि ) नृसिंकारक ( अन्धोऽसि ) अश्वों  
को ( सम अगमत ) प्राप्त करो । ( शिवेन ) कल्याणकारक, सुखप्रद रूप से  
( नः आगतं ) हमें प्राप्त होवो, ( नः मा मर्धिष्ठं ) हमें पीड़ा मत दो ।

आ पश्चाताज्ञासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् । आ  
विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥२०॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ७२ । मं० ५ ॥ इति विशो वर्गः ॥

[ ७४ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४,

६ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती । षडृचं सूक्तम् ॥

इमा उ व्वां दिविष्टय उस्मा हवन्ते अश्विना ।

अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व अर्थात् राष्ट्र और अश्वदिसैन्य के स्वामी,  
सेनापति-सभापति जनो ! आप दोनों ( उस्मा ) उत्तम पदार्थों को देने  
एवं गृह और राष्ट्र में स्वयं बसने और अन्धों को बसाने वाले, तेजस्वी  
( व्वां ) आप दोनों को ( इमा दिविष्टयः ) ये उत्तम ज्ञान और कान्ति



चाहने वाली प्रजाएं (हवन्ते) बुलाती हैं और (अयं) यह विद्वान् वर्ग भी, हे (शचीवसू) शक्ति और वाणी के धनी युगलो ! (वां) आप दोनों को (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (अहो) पुकारता है, आप दोनों (विशं विशं हि) प्रत्येक प्रजावर्ग में (गच्छथः) जाया करो ।

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥ २ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक जनो, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (सूनृतावते) उत्तम सत्यवाणी से युक्त मनुष्य के हितार्थ (चित्रं) आश्चर्यकारक और नाना (भोजनं) पालन-सामर्थ्य और भोग-योग्य उत्तम ऐश्वर्य (ददथुः) प्रदान करो और (अर्वाक् रथं चोदेथां) अपने रमणीय व्यवहार को रथ के समान आगे प्रेरित करो, उसको (समनसा नियच्छतम्) एक चित्त होकर नियम में रखो और (सोम्यं मधु) 'सोम' अर्थात् ओषधिरस से मिले मधु के समान अति गुणकारी, रोगनाशक अन्न के समान पुष्टिकारक, सोम अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्यान्तरूप मधुर भोग, मधुर सुख का (पिबतम्) उपभोग करो ।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।

दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! हे (जेन्यावसू) बसने वाले प्रजा-वर्गो, आप लोग (आ यातम्) आदर पूर्वक आइये । (उप भूषतम्) समीप विराजिये (मध्वः पिबतं) गुरुगृह में मधुमय ज्ञानरस का (दुग्धं पयः) दुहे हुए दूध के समान (पिबतम्) पान करिये । हे (वृषणा) मेघ के समान ज्ञान-सुखों के वर्षक पुरुषो ! (नः मा मर्धिष्टम्) हमारा नाश न करो ।

अश्वांसो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति विभ्रतः ।

मक्षयुमिनरा हयैभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥ ४ ॥



भा०—हे (अश्विना) विद्वानों के स्वामी जनो ! हे (नरा) नायक-  
चक्र-पुरुषपवर्गो ! (ये) जो ( वाम् ) आप लोगों के (अश्वसः) अश्व,  
वेग से जाने वाले साधन वा विद्यावान् पुरुष ( युवां विभ्रतः ) आप  
दोनों को धारण करते हुए, ( दाशुषः गृहं ) उस देने वाले प्रभु के घर  
तक ( दीयन्ति ) पहुँचा देते हैं उनही ( मक्षूयुभिः हवेभिः ) शीघ्रकारी  
अश्वों, साधनों वा विद्वानों से (देवा) हे स्त्री-पुत्रो ! हे (नरा) नायक  
जनो ! आप ( अस्मयू ) हमें चाहते हुए ( यातस् ) आओ-जाओ ।

अथा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।  
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिस्मभ्यं नासत्या ॥५॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री-पुरुष तथा विद्वान् और सामान्य जनो !  
(अथ ह) निश्चय से ( यन्तः सूरयः ) आगे बढ़ते हुए, विद्वान्, परि-  
व्राजक जन ( पृक्षः सचन्त ) सर्वत्र अन्न और स्नेह-सम्पर्क प्राप्त करते  
हैं । हे ( नासत्या ) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (ता)  
वे आप दोनों ( अस्मभ्यस् मघवद्भ्यः ) हम ज्ञान वाले पुरुषों को  
ध्रुवं स्थिर ( यशः ) यश और अन्न ( छर्दिः ) आवास के लिये घर  
(यंसतः) प्रदान करो ।

प्र ये अयुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।  
उत स्वेन शवसा शूशुर्वुनरं उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥६॥२१॥

भा०—( ये ) जो ( अवृकासः ) चोर-स्वभाव से रहित,  
निश्छल ( रथाः ) रथों के समान ( स्वेन शवसा ) अपने ज्ञान-सामर्थ्य  
और पराक्रम से ( प्र ययुः ) आगे जाते हैं और जो (नरः) नेता जन  
(शूशुवुः) खूब उन्नति को प्राप्त होते हैं (उत) और ( सुक्षितिम् ) उत्तम  
भूमि को (क्षियन्ति) प्राप्त कर उसमें रहते हैं वे ही (जनानां नृपातारः)  
सब मनुष्यों को पालने में समर्थ 'नृपति' होते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥



[ ७५ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५  
विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्ची त्रिष्टुप् ॥  
अष्टर्चं सूक्तम् ॥

व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।  
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥ १ ॥

भा०—(दिविजाः उषाः) सूर्य के आश्रय प्रकट होने वाली प्रभात  
वेला जैसे ( आवः ) विशेषरूप से खिलती, (ऋतेन महिमानम् आवि-  
ष्कृण्वाना आगात्) तेज से स्वरूप को प्रकट करती हुई आती है, (तमः  
अप आवः) अन्धकार को दूर करती और (पथ्याः अजीगः) मार्गवर्त्ती  
प्रजाओं को जगाती है, वैसे ही ( दिविजाः ) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के  
अधीन जन्म-लाभ करके (उषाः) कान्तियुक्त युवती (वि आवः) विविध  
गुणों को प्रकट करे, वह ( ऋतेन ) सत्य ज्ञान से ( महिमानम् ) मातृ-  
सामर्थ्य को ( आविः कृण्वाना ) प्रकट करती हुई, ( आगात् ) आवे ।  
( अजुष्टम् ) न सेवने योग्य ( तमः ) अज्ञान को अन्धकारवत् और  
(द्रुहः) अप्रीति भावों को (अप आवः) दूर करे । वह ( अङ्गिरस्तमा )  
प्राणवत् प्रियतमा वा ज्ञानवती विदुषी होकर (पथ्याः) उत्तम हित-  
कारी, शिष्टाचारों को (अजीगः) जागृत करे ।

महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौमगाय प्र यन्धि ।

चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( मानुषि देवि ) मानवोचित शुभ गुणों से युक्त स्त्री !  
तू (नः) हमें (अद्य) आज, (महे सुविताय) बड़े सुख की प्राप्ति के लिये  
(बोधि) हो । हे (उषः) प्रभात-वेलावत् कान्तियुक्त, स्त्री ! तू भी (महे  
सौमगाय) बड़े सौभाग्य प्राप्त करने के लिये ( प्र यन्धि ) उत्तम रीति  
से विवाह के बन्धन में बंध । (अस्मे) हमारे लिये (चित्रं रयिं) आश्चर्य-



कर ऐश्वर्य और (मर्तेषु) मनुष्यों के बीच (यशसं) यशस्वी (अवस्युम्)  
ज्ञानी पुत्र (धेहि) धारण कर ।

एते त्वे भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।

जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥३॥

भा०—( दर्शताः उषसः भानवः ) दर्शनीय उषा वेला के किरण  
जैसे आते हैं, वे ( दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः अन्तरिक्षा वि तिष्ठन्ति )  
देव, सूर्य वा किरणों के योग्य प्रकाशादि कार्यों को करते हुए अन्त-  
रिक्ष में विराजते हैं, वैसे ही ( दर्शतायाः ) रूप-गुणादि में दर्शनीय  
(उषसः) पति की कामना वाली, कान्तिमती कन्या वा विदुषी स्त्री  
से ही (त्वे) ये नाना (एते) ये (अमृतासः भानवः) कभी नाश न होने  
वाले, दीर्घायु, (चित्राः) आश्चर्यकारी बलवान् वीर्यवान् होकर (आगुः)  
हमें प्राप्त होते हैं । वे ( दैव्यानि ) विद्वान् पुरुषों से करने योग्य  
(व्रतानि) कर्मों को (जनयन्तः) प्रकट करते हुए, ( अन्तरिक्षा ) अन्त-  
रिक्ष में वायु के समान ( आ पृणन्तः ) सबको तृप्त करते हुए ( वि  
अस्थुः ) विविध रूपों में विराजें ।

एषा स्या युञ्जाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सृचो जिगाति ।

अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

भा०—(एषा) यह (स्या) वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत्  
उषा के समान तेजस्वी पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ  
(पराकात् युञ्जाना) दूर देश से विवाह-बन्धन में संयुक्त होकर विदुषी  
स्त्री, शासक-शक्ति के समान (सृचः) अति शीघ्र गुणों से (पञ्चक्षितीः)  
पाँचों प्रकार के निवासियों को ( परि जिगाति ) वश करती है । वह  
(जनानां) प्रजाओं के (वयुना) ज्ञानों और कर्मों को ( अभिपश्यन्ती )  
देखती हुई और (भुवनस्य) भुवन, जन समूह का (पत्नी) पालन करने  
वाली हो ।



वाजिनीवती सूर्यस्य योषां त्रिभामघा शाय ईशे वसूनाम् ।

ऋषिष्ठुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति यद्विभिर्गुणाना ॥ ५ ॥

भा०—( सूर्यस्य ) जैसे सूर्य की (योषा) स्त्री (उषा) प्रभात-वेला (वह्निभिः) यज्ञाग्निषों से (गुणाना) स्तुति की जाती हुई, ( जरयन्ती ) रात्री का नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों की भगवत्-स्तुति से युक्त होती है, वैसे ही ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र की (योषा) स्त्री, ( उषा ) कान्ति-युक्त होकर ( वह्निभिः ) विवाह-योग्य उत्सुक पुरुषों द्वारा ( गुणाना ) स्तुति की जाती है । वह ( मघोनी ) उपावत् पूज्य धन से युक्त, (वाजिनीवती) बलयुक्त और ज्ञानयुक्त क्रिया करने वाली (जरयन्ती) गुणों से अवगुणों, अज्ञान, शोक, मोहार्द्र को नाश करती हुई, ( ऋषि-स्तुता ) विद्वानों द्वारा उपदेश प्राप्त कर (उच्छति) गुणों का प्रकाश करे ।

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वश्चित्रा अदृशन्नुषसं वहन्तः ।

याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधत्ते जनाय ॥ ६ ॥

भा०—(अश्वाः) अश्वसमान बलवान् अंग वाले, (चित्राः) आश्चर्य-जनक बल और गुणों से सम्पन्न, (अरुषासः) रोपरहित, सौम्य-स्वभाव, (उपसः) स्वयं उत्तम पदार्थों के इच्छुक पुरुष ( द्युतानां ) कान्तिमती, ( उषसम् ) कामनावान् उत्तम वधू को (वहन्तः) विवाह द्वारा ग्रहण करते हुए ( प्रति अदृशन् ) देखे जावें । वह वधू (शुभ्रा) शुभगुणों से सुभूषित, (विश्वपिशा) नाना-रूप सुन्दर (रथेन) रथ से (याति) जाके और (विधत्ते जनाय) विशेष प्रेम के धारक पुरुष के लिये (रत्नं दधाति) उत्तम रत्न, उत्तम धन, उत्तम व्यवहार, उत्तम गुण और उत्तम पुत्र-रत्न (दधाति) धारण करे ।

सत्या सत्योर्मर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यज्ञैः ।

रुजद् दृळ्हानि दददास्त्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥



भा०—वह (सत्येभिः) सत्य व्यवहारवान् ( महद्भिः ) बड़े, गुण-  
वानों से (महती) पूज्य, (देवेभिः) उत्तम गुणों, विद्वानों और (यजत्रैः)  
दानशील पुरुषों के साथ ( सत्या ) सत्य शीलवती, सभ्य, ( महती )  
गुणों में महान्, (यजता) दानशील (देवी) विदुषी कन्या सत्संग लाभ  
करे । वह ( ददानि ) दद संकटों को भी ( रुजत ) नाश करती हुई  
(ददद्) सुख देवे । ( गावः ) वृषभ, जैसे (उत्त्रियाणां मध्ये उपसं वाव-  
शन्त) गौवों के बीच में से कामनावती कर्पला गौ को ही चाहते हैं  
वैसे ही ( गावः ) विद्वान् एवं बलवान् जन भी ( उत्त्रियाणाम् )  
घर बसाने की इच्छुक कन्याओं में से ( उपसं ) विशेष कामनावान्  
वधू के (प्रति वावशन्त) प्रति कामना करें ।

नू नो गोमद्वीरवद्वेहि रत्नमुषो अश्ववत्पुरुभोजो अस्मे ।

मा नो बर्हिः पुरुषतां निदे कयूय पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।२२

भा०—हे (उपः) कान्तिमति, कामना वाली, विदुषि ! वधू !  
तू (नः) हमारे ( गोमत् ) गौओं से युक्त, ( वीरवत् ) वीर पुत्रों से युक्त  
(रत्नं) उत्तम धन, व्यवहार, पतिसंगादि गृहस्थोचित कर्म (धेहि)  
धारण कर । तू (अस्मे) हमारे हितार्थ, (अश्ववत्) अश्वों से युक्त और  
(पुरुभोजः) बहुतां से भोगने योग्य ऐश्वर्य को भी (धेहि) धारण कर ।  
(नः बर्हिः) हमारा यज्ञ और वृद्धिशील राष्ट्र, पद ( Position ) आदि  
(पुरुषता) पुरुषों में (निदे मा कः) निन्दा-योग्य मत बना । हे विद्वान्  
पुरुषो ! आप ( नः सदा स्वस्तिभिः पात ) हमें सदा उत्तम साधनों से  
पालन करो । उषा-सूक्तों के प्रायः सब मन्त्र राजशक्ति और विशोका  
प्रज्ञा, तथा परमेश्वरी शक्ति युक्त पदार्थों में भी लगते हैं । इति द्वाविंशो  
वर्गः ॥

[ ७६ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्द—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् ॥

३, ४, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तचं सूक्तम् ॥



उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत् ।  
 क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकुर्भुवनं विश्वमुषाः ॥ १ ॥

भा०—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन । (सविता) संसार का उत्पादक, (देवः) सुखों का दाता, लोकों का प्रकाशक, (विश्वानरः) विश्व और समस्त जीवों का नायक, सञ्चालक परमेश्वर (विश्व-जन्यम्) सब जनों में विद्यमान, विश्व के उत्पादक (अमृतं) अविनाशी, (ज्योतिः) परम प्रकाशमय तेज को ( उद् अश्रेत् उ ) सर्वोपरि धारण करता है । वह अपने (क्रत्वा) कर्म और ज्ञान-सामर्थ्य से (देवानां) समस्त लोकों और विद्वान् पुरुषों के बीच ( चक्षुः ) सबको आंखवत् देखने वाला (उषाः) पापों का दाहक, उषा-समान कान्तियुक्त, (भुवनं) समस्त भुवनों को (आविः अकः) प्रकट करता है ।

प्र मे पन्था देवयानां अदृश्रन् अर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः ।  
 अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥ २ ॥

भा०—जैसे उषा के प्रकट होने पर ( वसुभिः इष्कृतासः पन्थाः ) देवयानाः प्र अदृश्रन् ) मनुष्य निर्मित और मनुष्यों से चलने योग्य मार्ग दिखाई देते हैं । वह (उषसः केतुः अभूत्) तेजस्वी सूर्य का ज्ञापक होती और ( अधि हर्म्येभ्यः पुरस्तात् प्रतीची आ अगात् ) बड़े २ महलों के ऊपर से पूर्व से पश्चिम की ओर आती है, वैसे ही वर के लिये वधू और वधू के लिये वर दोनों ही उत्सुक, एवं कामनायुक्त होने से दोनों ही 'उषा' हैं, अतः ऐसे (उषसः) कामना से उत्सुक पुरुष के (पुरस्तात्) आगे ( केतुः ) ध्वजा-समान गुणों की दर्शक विदुषी वधू (अभूत् उ) होवे । वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष में आहत होती हुई, (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) महलों में रहने के लिये अधिष्ठात्री रानी होकर आवे । इसी प्रकार ( उषसः ) कान्तिमती, कामनावती प्रिय वधू का (केतुः) ध्वजा के समान ज्ञानवान् पुरुष हो, वह भी पूर्व से पश्चिम को आने



वाले सूर्य के समान (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) महलों को आये । (वसुभिः) विद्वानों द्वारा (इष्कृतासः) सुशोभित और (देवयानाः) विद्वानों द्वारा चलने योग्य (मे पन्थाः) मेरे धर्ममार्ग, किरणों से प्रकाशित मार्गों के समान मेरे लिये (अमर्धन्तः) पीड़ादायक न होते हुए (मे) मुझे (प्रबद्धश्नः) उत्तम रीति से दृष्टिगोचर हों ।

तानीदहानि बहुलान्यासन्त्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य ।

यतः परिं जार इवाचरन्त्युपो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥ ३ ॥

भा०—( सूर्यस्य या प्राचीनम् उदितां ) जैसे सूर्य के पूर्व में उदय होने पर जो प्रकट होते हैं ( तानि इत् अहानि ) वे दिन कहाते हैं । ( उषा जारः इव परि आचरन्ती ) उषा भी रात्रि को जारण करने वाले सूर्य के समान ही आचरण करती हुई (न पुनः यती इव ददृक्षे) फिर नहीं लौटती सी दीखती है, वैसे हे (उषः) पति की कामना वाली अधू ! (या) जो तू (सूर्यस्य प्राचीनम् इत्) सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष के पूर्व भाग में आकर आगे आती है (तानि इत् बहुलानि अहानि) वे ही बहुत दिन उत्तम हैं । (यतः) क्योंकि उन दिनों में तू (जारः इव) तेरी आयु को अपने साथ पूर्ण रूपेण व्यतीत करने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पति के समान ही तू भी ( आचरन्ती ) धर्माचरण करती हुई (न पुनः यती इव) उसे भविष्य में कभी न त्यागती सी (परि ददृक्षे) सदा संग दिखाई दे ।

त इदेवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्यासः ।

गूल्लहं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्सत्यमेन्त्रा अजनयन्नुपासम् ॥ ४ ॥

भा०—जो ( ऋतावानः ) सत्य, वेद, तप आदि का सेवन करने वाले ( पूर्यासः कवयः ) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित, क्रान्तदर्शी पुरुष हैं ( ते इत् ) वे ही (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (सधमादः आसन्) साथ आनन्द प्राप्त करने वाले होते हैं । वे ही (पितरः) माता-पितावत्



पालक बनकर (गूढं ज्योतिः) भीतर छिपे तेज को (अनु अविन्दन्) प्राप्त करते हैं । जो (सत्य-मन्त्राः) सत्य, मननशील होकर (उषासम् अजनयन्) अज्ञान और पाप को दूर करने वाली 'विशोका' प्रज्ञा को प्रकट करते हैं ।

समान ऊर्वे अधि सङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।

ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥५॥

भा०—जो पुरुष ( समाने ) एक समान (ऊर्वे) समूह या वर्ग में (अधि) अध्यक्ष के अधीन ( संगतासः ) मिलकर (सजानते) सम्यक् ज्ञान और परिचय करते हैं ( ते ) वे परस्पर नाश की ( न यतन्ते ) चेष्टा नहीं करते । (ते) वे (देवानां व्रतानि) विद्वानों के कार्यों का ( न मिनन्ति ) नाश नहीं करते । वे ( वसुभिः ) धनों द्वारा ( यादमानाः ) यत्नवान् होते हुए ( अमर्धन्तः ) हिंसा न करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं ।

प्रति त्वा स्तोमैरलिते वसिष्ठा उपबुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।

गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

भा०—हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवति ! (तुष्टुवांसः) स्तुतिकर्ता, (उपबुधः) प्रभात में जागने वाले ( वसिष्ठाः ) विद्वान् गृहस्थ, ब्रह्मचारी (त्वा) तेरी (स्तोमैः) स्तुत्य वचनों से ( इडते ) स्तुति करते हैं । हे (उषः) पापनाशिके ! तू ( वाजयन्ती ) ऐश्वर्य और ज्ञान की पालक ( गवां नेत्री ) गो-मुख्य सौम्य वाणियों को अस्तुत करने वाली होकर (नः) हमारे बीच (उच्छ) गुणों का प्रकाश कर । हे ( सुजाते ) माता-पिता की उत्तम पुत्री ! तू ( प्रथमा ) सर्वश्रेष्ठ गिनी जाकर (जरस्व) प्रिय पुरुष के गुणों का वर्णन कर ।

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छ्रन्ता रिभ्यते वसिष्ठेः ।

दीर्घश्रुतं रयिस्मस्मे दधाना यूयं पाति स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७। २३॥



भा०—(एषा) वह (उषा) कान्तिमती, वधू (राधसः नेत्री) धन प्राप्त कराने वाली और वह (सूनुतानां नेत्री) ज्ञानमय वचनों और सत्य-विद्याओं को प्राप्त कराने वाली (उच्छन्ती) स्वयं उत्तम गुणों की प्रकाशक (वसिष्ठैः) उत्तम ब्रह्मचारियों और सन्तान के उत्तम माता-पिताओं द्वारा (रिभ्यते) स्तुति की जाती है, वह (अस्मे) हमारे (दीर्घ-श्रुतं) दीर्घ काल तक श्रवण-योग्य (रयिस्) ऐश्वर्य को (दधाना) धारण करने वाली हो। हे विद्वान् पुरुषो ! आप (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ ७७ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवताः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ५, निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।

अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥ १ ॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात वेला (उप रुरुचे) पतिवत् सूर्य के समीप स्त्रीवत् शोभित होती है। वह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) समस्त जीव-लोक को निन्द्रा से उठाकर विचरने के लिये प्रेरित करती है। (समिधे) प्रकाश करने के लिये (अग्निः अभूत्) सूर्य-रूप अग्नि प्रकट होता है, (मानुषाणां) मनुष्यों के लिये (तमांसि बाधमाना ज्योतीषि) अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाशों को (अकः) प्रकट करता है, वैसे ही परमेश्वरी शक्ति (युवतिः योषा न) युवती स्त्री के समान (विश्वं जीवं) समस्त विश्व और जीव-संसार को (चरायै प्रसुवन्ती) कर्म-फल-भोग के लिये उत्पन्न करती हुई (उप उ रुरुचे) सर्वत्र शोभा दे, (अग्निः) वह परमेश्वर अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप (समिधे) ज्ञान प्रकाश करने के लिये (अभूत्) हो और वही (मानुषाणाम्)



मनुष्यों के हृदय के ( तमांसि ) अज्ञानान्धकारों को ( बाधमाना ) दूर करता हुआ ( ज्योतिः ) वेदमय ज्ञान प्रकाश को ( अकः ) उपदेश करता है ।

विश्वं प्रतीचा सप्रथा उदस्थाद्गृह्णास्यो विभ्रती शुक्रमश्वैत् ।  
हिरण्यवर्णा सुदृशीकन्दर्ग गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

भा०—(अह्नां नेत्री) प्रभात वेला जैसे दिनों की प्रारम्भक नायिका, (गवां माता) किरणों को अपने में से माता के समान पैदा करती है, वह ( हिरण्य-वर्णा ) सुवर्ण-समान चमकती हुई ( सुदृशीक-सन्दर्ग ) आंखों को सब पदार्थ अच्छी प्रकार दिखलाती है, वह ( प्रतीची ) प्रत्यक्ष होती हुई, ( स-प्रथा ) विस्तृत होकर (रुशद् वासः विभ्रती) मानो चमकीला वस्त्र पहने (विश्वं शुक्रमश्वैत्) समस्त संसार को दीप्तियुक्त कर चमका देती और बढ़ती है वैसे ही परमेश्वरी शक्ति और नव बधू माता भी (अह्नां) न नाश होने वाले, नित्य जीवों, न मरने योग्य बालक जीवों को (नेत्री) प्राप्त कराने वाली, (गवां) लोकों और गौ आदि पशुओं को भी (माता) माता के समान पालक । (सुदृशीक-सन्दर्ग) सम्यक् दृष्टि से युक्त, रमणीय वर्ण वाली हो । वह ( प्रतीची ) प्रत्येक की दृष्टि में पूजनीय, (रुशद्-वासः) उज्ज्वल वस्त्रादि (विभ्रती) धारण करती हुई, ( सप्रथा ) समान रूप से विख्यात होकर (उत्-अस्थात्) उत्तम स्थिति प्राप्त करे और ( शुक्रमश्वैत् ) शुद्ध आचरण करे ।

देवानां जलुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम् ।

उषा अदृशि रश्मिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

भा०—जैसे ( उषा ) प्रभात की सूर्य-कान्ति (रश्मिभिः व्यक्ता अदृशि) किरणों से प्रकाशित दिखाई देती है, वह (चित्रामघा विश्वम् अनु प्रभूता) विश्व में प्रकट चित्र-चित्र-वर्णयुक्त प्रकाशों से मानों



पूज्य धनयुक्त होती है। वह ( सुभगा ) उत्तम भद्रवर्ण-युक्त होकर ( देवानां चक्षुः ) मनुष्यों की आंखों को ( श्वेतं वहन्ती ) श्वेत प्रकाश देती और ( सुदृशीकम् श्वेतं अश्वम् नयन्ती ) दर्शनीय, प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त कराती है वैसे ही ( उपा ) पति-कामना से युक्त नववधू, ( सु-भगा ) सौभाग्यवती, ( देवानां ) विद्वान् पुरुषों के बीच ( चक्षुः ) सोम्य दृष्टि करती हुई और ( श्वेतम् ) शुद्ध चरित्रवान् ( सु-दृशीकम् ) उत्तम दर्शनीय, ( अश्वम् ) अश्ववत् सुदृढ़ शरीर वाले पुरुष के प्रति अपनी ( चक्षुः नयन्ती ) चक्षु को पहुँचाती हुई, प्रेम से वरण करती हुई, ( चित्रा-मघा ) नाना धनों से युक्त और ( रश्मिभिः व्यक्ता ) कान्तियों से झुशोभित, ( विश्वम् अनु प्रभूता ) सबके समक्ष प्रकट होकर ( अदर्शि ) दीखे।

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छ्रोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।

यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

भा०—हे ( मघोनि ) धन की स्वामिनि राजशक्ते ! हे विदुषि ! तू ( अन्ति-वामा ) अपने समीप भोग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों को रखती हुई ( अमित्रम् दूरे ) शत्रु को दूर करती हुई ( उच्छ ) स्वयं चमक । तू ( उर्वीं ) बड़ी भूमि और विशाल ( गव्यूतिम् ) मार्ग को ( नः ) हमारे लिये ( अभयं कृधि ) भय-रहित कर । ( द्वेषः यवय ) द्वेष-भावों और द्वेषियों को दूर कर । ( वसूनि लाभर ) ऐश्वर्य प्राप्त करा, ( गृणते ) उपदेष्टा पुरुष को ( राधः चोदय ) ऐश्वर्य दे ।

अस्मो श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भ्रातृषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।

इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्वथवश्च राधः ॥ ५ ॥

भा०—हे ( उषः देवि ) शुभ गुणों से युक्त विदुषि ! तू ( श्रेष्ठेभिः ) श्रेष्ठ गुणों से ( वि भाहि ) विशेष चमक । तू ( नः ) हमें ( आयुः प्रति-रन्ती ) दीर्घ जीवन देती हुई और हे ( विश्ववारे ) विश्व अर्थात् हृदय में



प्रविष्ट पति द्वारा एकमात्र वरणीय ! (नः) हमारी ( इषं ) अन्न और ( गोमत् अश्ववत् रथवत् च ) गौओं, अश्वों और रथों से युक्त (राधः) समृद्धि को (दधती) धारण करती हुई, (वि भाहि) विशेष चमक ।

यां त्वां दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।

सास्मासु धा रयिमृष्यं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।२४

भा०—हे (उषः) उषा के समान कान्तिमति ! हे ( सुजाते ) शुभ गुणों सहित, उत्तम जन्म वाली ! हे ( दिवः दुहितः ) सूर्यवत् विद्वान् और वीर पुरुष की पुत्रि ! एवं पति-कामनाओं को पूर्ण करने हारि ! ( वसिष्ठाः ) उत्तम २ वसु, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, पिता जन (यां त्वा वर्धयन्ति) जिस तुल्यको बढ़ाते हैं, ( सा ) वह तू ( अस्मासु ) हमारे बीच (ऋषं) बड़े भारी (बृहन्तं) महान् ( रयिम् ) ऐश्वर्य को (धाः) धारण कर और हममें भी धारण करा । हे विद्वान् लोगो ! (यूयम् नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत् । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ ७८ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चचं सूक्तम् ॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रुर्ध्या अस्या अक्षयो वि श्रयन्ते ।

उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममुस्मभ्यं वक्षि ॥१॥

भा०—(अस्याः) उस विदुषी स्त्री के ( प्रथमाः केतवः ) श्रेष्ठ गुण रश्मिवत् ( प्रति अदृश्रन् ) दिखाई दें । ( अस्याः ) इसके (अक्षयः) गुण प्रकाशवत् (वि-श्रयन्ते) विविध प्रकार से प्रकट हों । हे (उषः) कान्तिमति ! तू (ज्योतिष्मता) तेजस्वी, ज्ञानी (बृहता) बड़े (अर्वाचा) अश्व से चलने वाले ( रथेन ) रथ के समान दृढ़, रम्य, पति के साथ मिलकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिए ( वामम् ) उत्तम गुणों को (वक्षि) धारण कर ।



प्रति श्रीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रांसो मतिभिर्गुणन्तः ।  
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरितापं देवी ।२

भा०—(उषा ज्योतिषा विश्वा तमांसि अप बाधमाना याति) उषा अर्थात् प्रभात की सौरी प्रभा जैसे प्रकाश से अन्धकारों को दूर करती हुई व्यापती है वैसे ही (देवी) विदुषी स्त्री (ज्योतिषा) अपने तेजः-प्रभाव से ( विश्वा दुरिता ) सब दुःखों और दुष्ट आचारों को (अप बाधमाना) दूर करती हुई (याति) प्राप्त होती है । ( समिद्धः अग्निः ) प्रज्वलित अग्नि के समान विद्वान् (सीम् प्रति जरते) सब प्रकार से सर्वत्र उपदेश करे और (मतिभिः) ज्ञानों से युक्त (विप्रासः) विद्वान् गुरुषु (गुणन्तः) उपदेश करते हुए (प्रति जरन्ते) प्रश्न किये जाने पर, उत्तर द्वारा उपदेश करते हैं ।

एता उ त्याः प्रत्यदृशन् परस्ताज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।  
अजीजनन्सूर्यं ब्रह्माग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

भा०—(एताः त्याः) ये वे ( विभातीः उपसः ) चमकती उपाओं के तुल्य उज्ज्वल, (ज्योतिः यच्छन्तीः) कान्ति प्रदान करती हुई नव-चतुष्टयं ( प्रति अदृशन् ) दीखें । वे ( सूर्यम् ) सूर्य-समान तेजस्वी ( यज्ञम् ) पूजनीय ( अग्निम् ) नायक को ( अजीजनन् ) अपने पीछे आता हुआ प्रकट करती हैं । ( अजुष्टम् ) न करने योग्य (तमः) शोक आदि ( अपाचीनं अगात् ) दूर चला जाता है अर्थात् उनके आने पर हर्ष होता है ।

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।  
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य-पुत्री के समान कान्तिमती (मघोनी) ऐश्वर्य-स्वामिनी, सौभाग्यवती, सुभगा ( अचेति ) जानी जाती है । इस ( विभातीम् ) विविध प्रकार से भासित ( उपसम् ) प्रभात वेला



के तुल्य ही अनुरागवती को (विद्वे पश्यन्ति) सब देखते हैं। (यस्) जिसको (अश्वासः) विद्या-निष्ठात जन अश्वों के तुल्य सहयोगी होकर सन्मार्ग पर ले जाते हैं उस (रथम्) रथवत् सुदृढ़ शरीर वाले और (स्वध्या) अपने सर्वस्व को धारण करने वाले, स्त्री के साथ (युज्यमानम्) योग प्राप्त करने वाले (रथम्) रमणकारी पति को (आ अस्थात्) प्राप्त करे।

प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मध्वानो वयं च ।  
तिल्वित्वाद्यध्वमुषसो विभातीर्युथं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।२५

भा०—हे विदुषि ! (सु-मनसः) उत्तम चित्त वाले (अस्माकासः) हमारे सम्बन्धी जन और (मघ-वानः) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् और (वयं च) हम लोग सभी (अद्य) आज के दिन (त्वा प्रति बुधन्त) तेरे साथ उत्तम परिचय प्राप्त करें। हे (विभातीः उषसः) चमकने वाली प्रभात-वेलाओं के समान कुलवधुओ ! आप लोग (तिल्विलायध्वम्) तिलों से सुशोभित भूमि के समान स्नेहोत्पादक भूमि के समान होवो। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत् । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[ ୭୭ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचूतत्रिष्टुप् । २, ३  
विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् ॥ ५ञ्चचं सूक्तम् ॥

व्यु॒षा आ॒वः प॒थ्या॒जना॑नां प॒ञ्च क्षि॑तीर्मानु॒षीर्बो॑धयन्ती ।  
सस॒न्द्गिभू॑क्षभिर्भानुम॒थ्रेद्वि सूर्यो॑ रोद॒सी चक्ष॑सावः ॥ १ ॥

भा०—( जनानां पथ्या ) मनुष्यों को प्रकाश से सत्पथ बतलाने वाली ( उषा ) प्रभात-वेला के तुल्य ( पथ्या ) धर्म-पथ बतलाने में हितकारिणी वधू ( वि-आवः ) विविध गुणों का प्रकाश करे । वह ( मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती ) मनुष्यों के पाँचों प्रकार के प्रजा-



जनों को बोध कराती हुई, ( सु-सं-दृग्भिः ) उत्तम सम्यग् दर्शन-युक्त, ( उक्षभिः ) पुरुष-पुंगवों द्वारा ( भानुम् अश्रत् ) विशेष दीप्ति धारण करे और ( सूर्यः ) आकाश और भूमि को प्रकाश से सूर्य के तुल्य पुरुष (रोदसी) माता पिता दोनों के कुलों को (चक्षसा) सम्यग् दृष्टि से, (वि-आवः) विशेष रूप से उज्ज्वल करता है ।

व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तान्विशो न युक्ता उपसो यतन्ते ।

सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२॥

भा०—(उपसः) प्रभात वेलाएं जैसे ( दिवः अन्तेषु ) आकाश के प्रान्त भागों में (अक्तून् वि अञ्जते) रात्रि-भागों या प्रकाशों को प्रकट करती हैं वैसे ही (उपसः) कामनायुक्त नववधुएं (अन्तेषु) प्रान्त भागों में विद्यमान (विशः न) प्रजाओं के समान (दिवः अन्तेषु) दिन के अन्त में, (अक्तून्) उज्ज्वल गृह-दीपकों को प्रकाशित करती हैं और (युक्ता यतन्ते) नियुक्त भृत्यजनों के समान नववधुएं पति की आज्ञा में रहकर गृह-कार्य करती हैं । हे नववधू ! जैसे ( गावः तमः आवर्तयन्ति ) किरणें अन्धकार दूर करती हैं और ( ज्योतिः यच्छन्ति ) प्रकाश देती हैं, वे (सूर्यस्य बाहू इव) सूर्य की बाहुओं के समान हैं वैसे ही (ते) तेरी (गावः) वाणियां ( तमः सम् आ वर्तयन्ति ) शोकादि दुःख दूर करें और (ज्योतिः) प्रकाशवत् स्फूर्ति दें । हे ( उपः ) नववधू । तू भी (सविता इव) प्रजोत्पादक पति के तुल्य हो, (बाहू) एक शरीर में दो बाहुओं के तुल्य तुम दोनों मिलकर रहो ।

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।

वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुहृते वसूनि ॥३॥

भा०—( उषा ) उषा के तुल्य कान्तिमती कन्या ( इन्द्र-तमा ) ऐश्वर्यवती, रानी के तुल्य और ( मघोनी ) धनैश्वर्य से युक्त ( अभूत ) हो । वह ( सुविताय ) ऐश्वर्य-प्राप्ति करने के लिये ( श्रवांसि ) यशों



और धनों को (अजीजनत्) उत्पन्न करे। वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् प्रभा के तुल्य उज्ज्वल कामनावान् पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली, ज्ञानवती स्त्री (अंगिरस्तमा) अति विदुषी होकर (सुकृते) पुण्यादि की वृद्धि के लिये (वसूनि) ऐश्वर्यों को (दधाति) धारण करे। तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना। यां त्वां जङ्घ्विषमस्या रवेण वि दृळहस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४॥

भा०—जैसे 'उषस्' अर्थात् कान्तियुक्त विद्युत् को (वृषमस्य रवेण) वर्षणशील मेघ के घोर गर्जन के साथ ही (जङ्घुः) जानते हैं और वह (दृढस्य अद्रेः दुरः वि और्णोत्) दृढ़ मेघ पर्वतादि के जलावरोधक मार्गों को खोल देती हैं वैसे ही हे विदुषी ! वधू ! (यां त्वा) जिस तुझको (वृषमस्थ) उत्तम पुरुष के (रवेण) उपदेश या नाम शब्द से लोग (जङ्घुः) जान लेते हैं वह तू (दृढस्य अद्रेः) दृढ़ 'अद्रि' अर्थात् पर्वतवत् विशाल भवन के (दुरः) नाना द्वारों को (वि और्णोः) उद्घाटन कर, तू गृहपति की स्वामिनी हो और (यावत्) जितना तू (गृणाना) स्तुतियुक्त होकर (स्तोतृभ्यः अरदः) विद्वानों को देवे (तावत् राधः) उतना ही धन (अस्मभ्यं) हमें प्रदान कर।

देवदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्भूतं तां ईरयन्ती।

व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।२६

भा०—हे विदुषि ! तू (देवं-देवं) प्रत्येक विद्वान् पुरुष को (राधसे) दान-योग्य धन (चोदयन्ती) स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और (अस्मद्भूतं) हमारे प्रति (सूनुता) उत्तम वचन कहती हुई, (वि उच्छन्ती) विशेष गुण प्रकट करती हुई (नः सनये) हमें दान देने के लिये (धियः धाः) लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प कर। हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) पूर्ववत्। इति पङ्क्तिश्चोः सर्गः ॥



[ ८० ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् ।

३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्न ।

विवर्तयन्ती रजसी समन्ते आविष्कृत्यतीं भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥

भा०—जैसे (रजसी समन्ते) आकाश और भूमि के प्रान्त भागों तक (वि-वर्तयन्तीं) व्यापी हुई और (विश्वा भुवना आविः कृत्यतीं) समस्त पदार्थों को प्रकट करती हुई (प्रति उपसं) प्रत्येक प्रभात वेला को प्रास कर (विप्रासः) विद्वान् (स्तोमेभिः गीर्भिः) स्तुतियुक्त मन्त्रों, वाणियों से (अबुध्न) ज्ञान प्राप्त करते हैं और अन्यो को कराते हैं वैसे ही (वसिष्ठाः) ब्रह्मचारी वा पितावत् (प्रथमाः) प्रथम कोटि के, उत्तम, विस्तृत ज्ञान वाले (विप्रासः) विद्वान् पुरुष, (समन्ते) समीपस्थ (रजसी) मातृ-पितृपक्ष के बन्धुजनों वा अति समीपस्थ (रजसी) गर्भ में प्राप्त शुक्र और रज दोनों के अंशों को (विवर्तयन्ती) विविध रूपों में परिणत करती हुई और (विश्वा भुवनानि) गर्भगत भ्रूण के सब रूपों को प्रकट करती हुई उस, सन्तान की इच्छुक माता को (प्रति) लक्ष्य कर (स्तोमेभिः) स्तुति-योग्य वचनों, व्यवहारों और (गीर्भिः) वेद-वाणियों से (अबुध्न) ज्ञान प्रदान करें, जिससे सन्तति का पोषण उत्तम और उस पर संस्कार भी उत्तम पड़े ।

उषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढवी तसो ज्योतिषोषा अबोधि ।

अग्रं पति युवतिरह्याणा प्राचिकित्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

भा०—जैसे (उषा) प्रभात-वेला, (ज्योतिषा तमः) प्रकाश से अन्धकार को दूर करती, (नव्यम् आयुः दधाना) सब प्राणियों को नया जीवन देती, (अग्रे) सूर्य के आगे आती, फिर सूर्य, यज्ञ और यज्ञाग्नि को प्रबुद्ध कराती है वैसे ही (उषा स्या युवतिः) वह यह युवति,



वधू (नव्यम् आयुः दधाना) नयी आयु धारण करती हुई (ज्योतिषा) कान्ति से (तमः गूढवी) गहरे शोक, मोहादि को दूर करके (अबोधि) जागे और पति को जागृत करे। वह (अह्रयाणा) लज्जा वा प्रमाद त्यागकर (युवतिः) नवयुवति गृहिणी, (अग्ने एति) आगे आवे, (सूर्यम्) सूर्यवत् अपने पति को (प्राचिकित्) जगावे, (यज्ञम् अग्निम्) और बाद में वही यज्ञ अर्थात् परमेश्वर और अग्निहोत्र की अग्नि को भी जगावे।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः । घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३१२७॥

भा०—(अश्वावतीः) अश्वों अर्थात् विद्यादि में निष्णात उत्तम पुरुषों से युक्त, (गोमतीः) देववाणियों से युक्त, (वीरवतीः) उत्तम पुत्रों से युक्त, (भद्राः) कल्याण देने वाली (उषासः) पति-पुत्रादि को चाहने वाली देवियां (नः सदम् उच्छन्तु) हमारे घरों को सदा प्रकाशित करें। वे (घृतं दुहानाः) घृतवत् स्नेह, जल आदि पुष्टिकारक पदार्थों की वृद्धि करती हुई स्वयं भी (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) सन्तुष्ट, हृष्ट-पुष्ट होकर रहें। हे उत्तम देवियो! (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[ ८१ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती। २ भुरिग्-बृहती। ३ आर्षी बृहती। ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती, निचृद् बृहती ॥

षडृचं सूक्तम् ॥

प्रत्यु अदृश्यायित्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।

अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्करोति सूनरी ॥ १ ॥



भा०—जैसे (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान प्रकाश से जगत् को पूर्ण करने वाली उपा (आयती) आती हुई और (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (प्रति अर्दशि उ) स्पष्ट दिखाई देती है, वह (महि तमः) बड़े अन्धकार को (अप व्ययति उ) दूर करती है और (चक्षसे) सबको दिखलाने के लिये (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है वैसे ही (सू-नरी) उत्तम विदुषी स्त्री, (दिवः दुहिता) सब कामनाओं, व्यवहारों को पूर्ण करने वाली, (आयती) आती हुई, (उच्छन्ती) गुणों को प्रकट करती हुई, (प्रति अर्दशि) प्रतिदिन दिखाई दे । वह (चक्षसे) सम्यग् दर्शन करने और अन्यों को उपदेश करने के लिये (महि तमः अपो व्ययति) बहुत अन्धकार, अज्ञान को दूर करे और (ज्योतिः कृणोति) ज्ञान-प्रकाश करे ।

उदुस्त्रियाः सृजते सूर्यः सचा उच्चक्षत्रमर्चिवत् ।

तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अर्चिवत्) तेजो-युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र रूप (सूर्यः) सूर्य (उदुस्त्रियाः सचा उत्सृजते) किरणों को एक साथ उपर फेंकता है, हे (उषः) उपा ! (तव इत् सूर्यस्य उषि) तेरे और सूर्य के उपा काल में जैसे (भक्तेन सं गमेमहि) हम भजन-योग्य प्रभु से संगति लाभ करें, वैसे ही हे (उषः) कान्तिमति, उत्तम विदुषि नववधु ! जब (उद्-यत्) उगता हुआ (अर्चिवत्) अन्यों के सत्कार योग्य (नक्षत्रम्) नक्षत्र के समान व्यापक राज्य पालन-सामर्थ्य हो और (सचा) साथ ही (सूर्यः) सूर्य-तुल्य तेजस्वी पुरुष (उदुस्त्रियाः) उच्चतिशील प्रजाओं को किरणों के समान (उत्सृजते) उच्चति की ओर ले जाता है, तब (तव इत् विउषि, सूर्यस्य च वि-उषि) तेरी और तेरे पति तेजस्वी पुरुष की विशेष इच्छा और प्रताप होने पर (भक्तेन सं गमेमहि) हम ऐश्वर्यादि लाभ करें ।

प्रति त्वा दुहितादेव उषो ज्ञीया अभुत्समहि ।

या वहसि पुरुषार्हं वनन्यति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥



भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी की कामनाएं पूर्ण करने वाली, हे (उषः) तेजस्विनि ! हम लोग (जीराः) शीघ्रकारी होकर (त्वा प्रति) तुझे (अमुत्स्महि) जानते हैं कि हे (वनन्वति) धन की स्वामिनि ! (या) जो तू (पुरु स्पार्ह) बहुत अधिक, चाहने योग्य ऐश्वर्य (वहसि) धारती है, वह तू (रत्नं न) रमणीय रत्नवत् और (मयः) सुखकारी पदार्थ (दाशुषे) दान देने वाले के लिये ही (वहसि) धारती है ।

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दशे ।  
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

भा०—(या) जो तू हे (देवि) दानशीले ! हे (महि) पूजनीये ! जैसे उषा (प्रख्यै) सब पदार्थों को बतलाने और (दशे) देखने के लिये (स्वः उच्छन्ती) स्वयं प्रकट होती, सूर्य को प्रकट करती है वैसे ही (उच्छन्ती) गुणों का प्रकाश करती हुई (प्रख्यै) उत्तम ख्याति पाने और (दशे) दर्शन के लिये (मंहना) अपने व्यवहार से (स्वः) आदित्यवत् तेजस्वी पुरुष, या पुत्र को (कृणोषि) उत्पन्न करती है । (रत्नभाजः) पुत्रादिरत्न को धारण करने वाली तुझसे हम (ईमहे) याचना करें और (वयम्) हम (मातुः सूनवः न) माता के पुत्रों के तुल्य (स्याम) तेरे कृपापात्र बनें ।

तच्चित्र राध आ भरोषो यद्विश्नुत्तमम् ।  
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहे ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) हे विदुषि ! हे प्रभुशक्ते ! तू हमें (तत्) वह (चित्रम्) अद्भुत, सच्चय-योग्य, (राधः) ऐश्वर्य (आ भर) दे (यत् दीर्घ-श्रुत्तमम्) जो दीर्घ काल तक श्रवण योग्य हो । हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री उषावत् तेजस्वी पिता की कन्ये ! एवं तेजस्वी पुरुष की कामना पूर्ण करने हारी ! (यत् ते मर्त-भोजनम्) जो तेरा मनुष्यों



को पालन करने वाला सामर्थ्य है (तत्) वह तू हमें (रास्व) दे, (भुन-  
जामहै) हम उसका भोग करें ।

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।

चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छ्रद्धं स्निधः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—हे ( सूनृतावति ) ऋत, ज्ञान और धन की स्वामिनि ! तू  
(सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लिये (अमृतम्) अमृतमय (श्रवः) श्रवण-  
योग्य ज्ञान, आयुप्रद अन्न, (वसुत्वनं) ऐश्वर्ययुक्त कीर्ति और (गोमतः  
वाजान्) पशु-भूमिसम्पन्न ऐश्वर्य दे । तू (मघोनः) ऐश्वर्य वालों को  
(चोदयित्री) अपने अधीन चलाती हुई (स्निधः) हिंसक दुष्टों को (अपः  
उच्छ्रत्) दूर कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

[ ८२ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९, निचु-  
ज्जगती । ३ आर्ची भुरिग् जगती । ४, ५, १० आर्षी विराड् जगती ।  
८ विराड् जगती ॥ दशचं सूक्तम् ॥

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।  
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढयः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा-वरुणा ) इन्द्र, शत्रु के हनन करने हारे ! हे  
वरणीय सर्वश्रेष्ठ ! ( युवम् ) आप दोनों (अध्वराय) हिंसा से रहित  
(नः) हमारे (विशे जनाय) प्रजाजन को (महि शर्म) बड़ा सुख (यच्छ-  
तम्) दो । ( दीर्घ-प्रयज्युम् ) दीर्घ-काल से उत्तम संगति वाले, एवं  
चिरकाल से कर, वृत्ति आदि देने वाले पुरुष की (यः) जो (वनुष्यति)  
मर्यादा का अतिक्रमण करके हिंसा करे या उससे अधिकार से अधिक  
मांगे, उसको और (दूढयः) दुष्ट कर्म करने वालों को (वयं) हम (पुत-  
नासु) संग्रामों के बीच (जयेम) विजय करें ।



सम्राट् अन्यः स्वराट् अन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।  
 विश्वे देवासः परमे व्योमनि सं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥२॥

भा०—इन्द्र और वरुण का स्वरूप । (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र और वरुण दोनों (महान्तौ) गुणों और बलों में महान् सामर्थ्यवान् और दोनों (महावसू) बड़े भारी वसु अर्थात् धन और अधीन वसे प्रजा के स्वामी हैं । एक के पास धनबल, दूसरे के पास जनबल, एक कोशवान् और दूसरा दण्डवान्, एक अर्थपति दूसरा बलाध्यक्ष है । (वाम्) आप दोनों में से (अन्य सम्राट्) एक तो 'सम्राट्' और (अन्यः स्वराट्) दूसरा 'स्वराट्' (उच्यते) कहलाता है । अच्छी प्रकार देदीप्यमान होने से सम्राट् और 'स्व' धन और 'स्व' अपने जन से राजावत् प्रकाशमान होने से 'स्वराट्' है । (वाम्) आप दोनों के (परमे) सर्वोत्कृष्ट (वि-ओमनि) विशेष रक्षण में रहते हुए (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, वीर और व्यवहारवान् मनुष्य (ओजः सं दधुः) पराक्रम या तेज एक साथ धारें और (बलं सं दधुः) अपना बल एक साथ लगावें ।

अन्वपां खान्यतन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।  
 इन्द्रावरुणा मदै अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३॥

भा०—आप दोनों (अपां) प्रजाओं के यातायात के लिये (खानि) जल मार्गों के समान नाना मार्ग (अनु अतन्तम्) उनके अनुकूल बनाते हो और (दिवि) शासन और व्यवहार में (प्रभुम्) सामर्थ्यवान् (सूर्यम्) सूर्य-समान तेजस्वी पुरुष को (ऐरयतम्) प्रेरित करते हो । (अस्य) इस (मायिनः) प्रजावान् और शिल्पशक्ति के स्वामी के (मदै) सन्तुष्ट रहने पर ही (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण, अर्थ और बल के अध्यक्ष जन (अपितः) अरक्षित प्रजाओं को भी (अपिन्वतम्) बढ़ाते और (धियः पिन्वतम्) नाना कर्मों, शिल्पों को पुष्ट करते हैं ।



युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।

ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रा वरुणा सुहवा हवामहे ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र ऐश्वर्यवान् ! हे वरुण, शत्रु-जनों, दुष्टों, और विघ्नों के वारक अध्यक्षो ! ( वह्नयः ) नाना कार्यों को वहन करने वाले प्रधान पुरुष (युत्सु) युद्धों, (पृतनासु) सेनाओं और प्रजाओं में (युवाम्) तुम दोनों को (हवन्ते) बुलाते हैं और (मित-ज्ञवः) मित ज्ञान वाले, ज्ञानी वा विनय से गोड़े सिकोड़ कर बैठने वाले, सम्य, वा परिमित कदम वाले जन (क्षेमस्य प्रसवे) अग्रास धन को प्राप्त करने के लिये (युवाम्) आप दोनों को याद करते हैं । (कारवः) क्रिया-कुशल, शिल्पी और वेद-मन्त्रों के द्रष्टा हम विद्वान् जन (उभयस्य वस्वः ईशाना) ऐहिक और पारमार्थिक वा चर और अचर जनों के स्वामी आप दोनों (सु-हवा) सुख से पुकारे जाने योग्य सुख-दाताओं को (हवामहे) पुकारते हैं ।

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्जना ।

क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥५॥२॥

भा०—आधिदैविक दृष्टान्तों से इन्द्र-वरुण का रहस्य । जैसे (मित्रः) सबका मित्र सूर्य (वरुणं) आकाश के आच्छादक भेघ को (क्षेमेण दुवस्यति) प्रजा के पालन-सामर्थ्य, अन्न-जलादि से युक्त करता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) प्रबल वायु (मरुद्भिः) मध्यस्थानीय वायुओं से (शुभम् ईयते) जल को प्राप्त कराता है और सूर्य, वायु वा विद्युत् दोनों (मज्जना) बल से (भुवनस्य इमा विश्वा जातानि) संसार के इन समस्त प्राणियों को (चक्रथुः) उत्पन्न करते हैं, ऐसे ही (यत् इन्द्रा-वरुणा) जो इन्द्र और वरुण ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष जन (मज्जना) अन्न और सैन्य-बल से ( इमानि विश्वा जातानि ) इन समस्त जनों को (चक्रथुः) अपने अधीन और समृद्ध करते हैं । वे कैसे करते हैं ? (मित्रः)



सबको मरने या नाश होने से बचाने वाला, ब्राह्मण-वर्ग (वरुणः) दुष्टों के वारक दण्डवान् क्षत्रवर्ग को (क्षेमेण) प्रजा के योग्य क्षेम, रक्षा या प्राप्त धन के सामर्थ्य से (दुवस्यति) युक्त करता है, उसको प्रजा की रक्षा और पालन का अधिकार सौंपता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) शत्रुमारक सुभटों से युक्त होकर (शुभम् ईयते) शोभित पद को प्राप्त करता है। इति द्वितीयो वर्गः ॥ महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुनमस्य यत्स्वम् । अजामिमन्यः श्रुथयन्तमातिरद्वेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥६॥

भा०—(अस्य वरुणस्य) इस 'वरुण' की (यत्) जो (ध्रुवम् स्वम्) स्थिर सम्पदा है उस (महे शुल्काय) बड़े ऐश्वर्य और (त्विषे) तेजोवृद्धि के लिये (नु) 'इन्द्र और वरुण' दोनों ही (ओजः) पराक्रम करते हैं। कैसे करते हैं कि—(अन्तः) एक तो (श्रुथयन्तम् अजामिमम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (आ अतिरत्) सब ओर से नष्ट करता है और (अन्यः) दूसरा (द्वेभिरः) हिंसाकारी शस्त्रास्त्रों से (भूयसः प्र वृणोति) बहुत शत्रुओं को आच्छादित करता और उनको दूर से ही वारण करता है।

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्च न ।

यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिहतिः ७

भा०—हे (देवा) दानशील, विजय-कामना वाले (इन्द्रा-वरुणा) शत्रुहन्ता और विघ्नवारक अध्यक्षो ! आप दोनों (यस्य मर्तस्य अध्वरं) जिस राष्ट्र या मनुष्य-वर्ग के 'अध्वर' अर्थात् हिंसा-रहित प्रजा-पालन के कार्य को (गच्छथः) जाते हो और (वीथः) रक्षा करते हो (तम् मर्तम्) उस मनुष्य तक (न अंहः नशते) न पाप पहुँचता है (न दुरितानि) न घुरे फल (कुतः च न तपः) न किसी से सन्ताप (तं न परिहतिः नशते) और न उसको किसी की कुटिल चाल सताती है।



अर्वाङ्मनरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।

युवोर्हि सख्यमुत वा यदार्थं मर्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ८

भा०—हे ( इन्द्रा-वरुणा ) ऐश्वर्यवान् ! हे शत्रुवारक ! (नरा) नायको ! (यदि) यदि आप दोनों (मे जुजोषथः) मुझसे प्रेम करते हो तो ( मे हवं शृणुतम् ) मेरा वचन सुनो और ( दैव्येन ) विद्वान्, वीर पुरुषों से बने (अवसा) रक्षा आदि साधन-सहित ( अर्वाङ् आगतम् ) हमारे पास आओ । (युवोः) आप दोनों की (हि) निश्चय से (यत्) जो (सख्यम्) मित्रता और (मर्डीकम् आप्यम्) सुखकारी बन्धुता है, उसे हमें (नि यच्छतम्) दो ।

अस्माकमिन्द्रा वरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवन्तं कृष्टयोजसा ।

यद्वां हवन्त उभये अथ स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥१॥

भा०—हे (कृष्टयोजसा इन्द्रावरुणा) 'कृष्टि' अर्थात् शत्रु का कर्षण, पीड़ा करने वाली सेनाओं, पराक्रम वाले इन्द्र और वरुण, शत्रुहन्ता, शत्रुवारक अध्यक्षो ! आप दोनों ( अस्माकं भरे-भरे ) हमारे प्रत्येक संग्राम में (पुरोयोधा भवतम्) आगे रहकर लड़ने वाले होंगे । (यत्) जो (नरः) मनुष्य (उभये) सबल, निर्बल दोनों ही (तोकस्य तनयस्य सातिषु) पुत्र-पौत्र तक के सेवन-योग्य स्थिर भूमि आदि को प्राप्त करने हेतु (स्पृधि) आपसी स्पर्धा में (वां हवन्ते) तुम दोनों को प्राप्त करते हैं । अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्थमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः । अवधं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे । १०।३

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी (वरुणः) मेघवत् उदार, वरणीय, (मित्रः) सखी, ( अर्थमा ) शत्रुओं के नियन्त्रण में कुशल पुरुष (अस्मे) हमें (महि द्युम्नं) बड़ा ऐश्वर्य और (सप्रथः शर्म) विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि (यच्छन्तु) प्रदान करें । ये सब ( ऋत-वृधः ) सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाने और स्वयं बढ़ने वाले होकर (अदितेः)



अखण्डः शासनकर्त्ता, प्रजा के माता पिता एवं पुत्रवत् पालक के ( अवधं ) न नाश होने वाले ( ज्योतिः ) ज्ञान और प्रताप का प्रदान करें । हम भी उसी ( देवस्य ) दाता ( सवितुः ) प्रभु की ( दलोकं ) वाणी-वेद तथा आज्ञा का ( सनामहे ) मान तथा मनन करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[ ८३ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ९ विराड् जगती । २, ४, ६ निचृज्जगती । ५ आर्ची जगती । ७, ८, १० आर्षी जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवां नरा पश्यमानासु आप्यं प्राचा गन्धन्तः पृथुपर्शवो ययुः । दासा च वृत्रा हतमार्थाणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

भा०—जैसे ( प्राचा ) पूर्व दिशा से ( आप्यं पश्यमानासः ) जलों के लक्षण देखते हुए ( गन्धन्तः ) भूमि-कर्षणादि के इच्छुक ( पृथु-पर्शवः ) बड़े हल, फावड़े आदि लेकर भूमि खोदने जाते हैं वैसे ही हे ( नरा ) नायक जनों ! ( प्राचा ) सम्मुख से परस्पर ( आप्यं ) बन्धुभाव वा प्राप्तव्य लक्ष्य को ( पश्यमानासः ) देखते हुए ( गन्धन्तः ) भूमि-विजय की कामना वाले ( पृथु-पर्शवः ) बड़े २ परशु आदि शस्त्रालि ( ययुः ) आगे बढ़ें । जैसे वायु और विद्युत् दोनों ( वृत्रा हतम् ) मेघस्थ जलों पर आघात करते हैं वैसे ही ( युवां ) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रु-हनन और शत्रु-वारण करने वाले ! आप दोनों ( दासा ) विनाशकारी और ( मार्थाणि ) 'अरि' अर्थात् शत्रु-पक्ष के ( वृत्रा ) बढ़ते हुए सैन्यों को ( हतम् ) मारो और ( दासा च ) अत्यादि तथा ( मार्थाणि ) 'आर्य' स्वामी वा वैद्यों के उपयोगी ( वृत्रा ) गाना धनों को भी ( हतम् ) प्राप्त करो । हे ( इन्द्रावरुणा ) ऐश्वर्यवान् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! तुम दोनों ( सु-



दासम् ) उत्तम दानशील, धनी, तथा उत्तम मृत्यु आदि की भी (अवसा अवतस्) रक्षा साधनों द्वारा रक्षा करो ।

यत्रा नरः सम्यन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं च न प्रियम् ।  
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दशस्तजा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में (कृत-ध्वजः नरः) झण्डे हाथ में लिये नायक जन (सम् अयन्त) एक साथ प्रयाण करते हैं और (यस्मिन् आजा) जिस संग्राम में ( किं च न प्रियं भवति ) शायद कुछ ही प्रिय होता हो, (यत्र) जहाँ ( स्वर्दशः ) सूर्यवत् तीक्ष्ण दृष्टि वाले तेजस्वी पुरुष से ( भुवना ) समस्त लोक, प्राणी (भयन्ते) भय करते हैं (तत्र) ऐसे संग्रामों में ( इन्द्रा-वरुणा ) इन्द्र, वरुण नाम पदाधिकारी जन (नः अधि वोचतम्) हमारे अध्यक्ष होकर शासन आदि करें ।

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृष्टतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत् ।  
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥ ३ ॥

म०—जब (भूम्याः अन्ताः) भूमि के प्रान्त भाग (ध्वसिराः सम् अदृष्टन्त) सब नष्ट-भ्रष्ट दिखाई दें (दिविः घोषः आरुहत्) आकाश या पृथ्वी में बड़ा कोलाहल गूँज रहा हो और (अरातयः) शत्रु लोग ( जनानाम् उप ) राष्ट्रवासी मनुष्यों के पास तक और (साम् उप अस्थुः) मुक्त प्रजा वर्ग तक आ पहुँचें ऐसी दशा में भी हे (इन्द्रा-वरुणा) शत्रु के नाशक और वारक जनो ( हवन-श्रुता ) आह्वान पुकार सुनने वाले आप दोनों दयार्द्र होकर ( अवसा आगतम् ) रक्षा-सामर्थ्य सहित प्राप्त होओ ।

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।

ब्रह्माग्रेषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितः ॥४॥

भा०—हे ( इन्द्रावरुणा ) शत्रु का हनन और वारण करने वाले वीर वर्गों ! आप दोनों (वधनाभिः) शत्रु को दण्ड देने और नाश करने



वाली नीतियों और सेनाओं से (अप्रति) अप्रत्यक्ष रूप से (भेदं) शत्रु को छिन्न भिन्न (वन्वन्ता) करते हुए, वा ( भेदं वन्वन्ता ) राष्ट्र-भेदक शत्रु का नाश करते हुए ( सु-दासम् ) शुभ दानशील श्रुत्यादि से युक्त राजा की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो । (हवीमनि) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा-योग्य संग्राम में (एषां) इन विद्वान् प्रजाजनों के (ब्रह्मणि) ज्ञान-वचनों को (शृणुतं) सुनो । (तृत्सुनां) शत्रुओं को मार गिराने वाले वीर सैन्यों और संशयोच्छेदी विद्वानों की ( पुरोहितिः ) सबसे आगे स्थिति और अग्रासन पर विराजना (सत्या अभवत्) सफल हो ।

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यथो वनुषामरातयः ।

युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽधं स्मा नोऽवतं पार्यै दिवि ॥५॥४॥

भा०—हे ( इन्द्रावरुणा ) इन्द्र, शत्रुहन्तः ! हे वरुण शत्रुओं के चारक (अर्यः) शत्रु के किये ( अघानि ) पापाचार और ( वनुषाम् ) हिंसक जनों या मांगने वालों में से भी (अरातयः) दूसरों का अधिकार हर कर न देने वाले जन ही (मा) मुझ राष्ट्र-वासी जन को ( अभि आ तपन्ति ) सताते हैं । ( युवं हि ) आप दोनों निश्चय से (उभयस्य) मुझे प्रजाजन और मुझे सताने वाले (वस्वः) राष्ट्र में बसने वाले दोनों के ऊपर (राजथः) राजावत् शासन करो, (अध) इसलिये आप दोनों (पार्यै दिवि) पालने वाले शासन व्यवहार के पद पर स्थित होकर (नः अवतं स्म) हमारी रक्षा करो ;

युवां हवन्त उभयांस आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।

यत्र राजभिर्दशभिर्निवाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः संहः ॥६॥

भा०—(यत्र) जिन संग्रामों में ( दशभिः राजभिः ) दसों राजाओं वा तेजस्वी पुरुषों से (नि वाधितम्) अति पीड़ित (सुदासं) उत्तम दानशील पुरुष की (तृत्सुभिः) शत्रु को काटने वाले वीर भदों से (प्र अव-सम्) रक्षा करते हो, उन ( आजिषु ) युद्धों में (इन्द्रं च) ऐश्वर्यवान्

और (वर्णं च) श्रेष्ठ (युवां) आप दोनों को (वस्वः सातये) धनैश्वर्यादि के लाभ के लिये ( उभयासः ) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के लोग (हवन्ते) पुकारते हैं ।

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।  
स्तुत्या नृणामंघ्रसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवद्देवहूतिषु ॥ ७ ॥

भा०—( अयज्यवः ) देवपूजा और संगति न करने वाले (दश राजानः) दस तेजस्वी पुरुष भी (सम् इताः) एक साथ आकर (सुदा-सम् न युयुधुः) उत्तम दानशील तथा शत्रु-नाश में कुशल राजा से नहीं रुढ़ सकते । (अघ्रसदाम्) समान अन्न पर स्थित (नृणाम्) मनुष्यों की (उपस्तुतिं) समीप २ बैठ कर की हुई प्रार्थना भी (स्तुत्या) फलजनक होती है । (एषाम्) इनके (देवहूतिषु) विद्वान् वीरों को आह्वानों, यज्ञों, संग्रामों के अवसरों पर ( देवाः ) वीर पुरुष ( अभवन् ) सहायक होते हैं ।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।  
श्रित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असंपन्त  
तुत्सवः ॥ ८ ॥

भा०—(परियत्ताय) सब ओर से नियन्त्रित, (दाश-राज्ञे) दशों राजाओं के बीच प्रबल, (सुदासे) उत्तम दानशील राजा को हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुवारणकारी मनुष्य वर्गों ! ( अशिक्षतम् ) आप दोनों ज्ञान, बल दो (यत्र) जिसके अधीन ( श्रित्यञ्चः ) उज्ज्वल यश, या समृद्धि को प्राप्त ( कपर्दिनः ) उत्तम जटाजूट वा उत्तम धन-सम्पन्न और ( धीवन्तः ) बुद्धिमान्, ( तुत्सवः ) शत्रुनाशक, त्रिविध ऐश्वर्यों के स्वामी लोग (नमसा) आदर पूर्वक अन्न, वज्र, शस्त्रादि-सहित ( असंपन्त ) समूह बनाकर रहते हैं । [ कपर्दिनः—कपर्दः—जटाजूटः अथवा कपर्दः धनम् । कौडी इत्युपलक्षणम् । तद्वन्तः ] ऐसे वाले ।



अध्यात्म में—दश प्राण, दश इन्द्रियें दश राजा हैं, वे दस स्थानों पर पृथक् २ विद्यमान हैं। परस्पर उनका कोई सीधा सम्बन्ध न होने से 'अयञ्जु' हैं। वे एक ही साथ हमें प्राप्त ( सम्-इताः ) हैं। आत्मा 'सुदास' है, प्राण अपान इन्द्र-वरुण हैं। सुखप्रद ज्ञानतन्त्र 'वृत्सु' हैं। वे सुखपूर्वक होने से 'कपर्दी' हैं। वे 'नमसा, धिया' अन्न और बुद्धि के बल से आत्मा के अधीन हैं।

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिह्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।

हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रायरुणा शर्म यच्छतम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे वरुण ! दुष्टों के वारक ! आप दोनों में से ( अन्यः ) एक तो ( समिथेषु ) संग्राम और यज्ञों में (वृत्राणि जिह्नते) बढ़ते, विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता है और (अन्यः) दूसरा विद्वान् आचार्य—( सदा व्रतानि अभि रक्षते ) सदा व्रतों की रक्षा करता है। हम लोग ( सुवृक्तिभिः ) उत्तम स्तुतियों से (वह हवामहे) आप दोनों को बुलाते, अपनाते, धन, मान आदि देते हैं। हे इन्द्र ! हे वरुण ! सेना-समाध्यक्षो ! (अस्मे) हमें आप दोनों (शर्म यच्छतम्) सुख दो।

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युमन् यच्छन्तु महि शर्म स्वप्रथः ।

अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे १०॥५

भा०—व्याख्या देखो सू० ८२। मं० १० ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[ ८४ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणा देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत्त त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येमिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।  
प्र वा घृताचीं बाहोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे सर्वश्रेष्ठ ! (राजानौ वां) वीसियुक्त आप दोनों को मैं ( हव्येभिः नमोभिः ) अन्नों, शस्त्रों, उत्तम



वचनों और आदर-युक्त विनय कार्यों से ( वृत्त्यां ) वरण करता हूँ ।  
 ( विष्णु-रूपा घृताची ) बहुतप्रकार की तेजस्विनी वा स्नेहयुक्त प्रजा  
 (वां) आप दोनों को (वाहो: प्रदधाना) बाहुओं के समान शशुओं को  
 पीड़ा देने वाले प्रधान पदों पर स्थापित करती हुई, पुरुष को स्त्री के  
 समान (परि जिगाति) सब प्रकार से प्रास हो । जैसे स्त्री (वि-सु-रूपा)  
 विशेष सुन्दरी, (घृताची) घृताक्त, अंगप्रत्यंग स्नातानुल्लिख होकर पुरुष  
 को (वाहो: प्रदधाना) बाहुपाश में लेती हुई उसे (त्मना) स्वयं (परि  
 जिगाति) अपनाती है वैसे ही प्रजा भी अनुरक्त होकर उक्त इन्द्र-  
 वरण दोनों को, बाहुवत् सैन्यादि के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर,  
 अपनावे ।

युधो राष्ट्रं बृहदिन्वन्ति द्यौर्यौ सेतुभिररज्जुभिः सिनीथः ।  
 परि लो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

भा०—( यौ ) जो आप दोनों ( अरज्जुभिः ) बिना रस्सियों के  
 ( सेतुभिः ) बन्धन करने वाले राज-नियमों और व्रत-बन्धनों से  
 ( सिनीथः ) बांध लेते हो ( युधोः ) उन आप दोनों का (राष्ट्रम्) राष्ट्र  
 (वृज्यत्) बड़ा एवं (द्यौः) सूर्य तुल्य देदीप्यमान होकर (इन्वति) सबको  
 प्रसन्न करता है । ( वरुणस्य हेडः ) श्रेष्ठ जन का हमारे प्रति क्रोध का  
 भाव (नः परि वृज्याः) हम से दूर रहे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा वा  
 सेनापति (नः) हमारे लिये ( उरुं लोकं कृणवत् ) निवास हेतु विशाल  
 लोक करे, भूमि को बसने योग्य बनावे ।

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।  
 उपो रथिर्देवजूतो न पतु प्र णः स्पर्हामिरुतिमिस्तिरेतम् ॥३॥

भा०—हे विद्वान्, श्रेष्ठ और दुःख निवारक जनो ! आप दोनों  
 (नः विदथेषु) हमारे गृहों में ( चारुं यज्ञं कृतं ) उत्तम यज्ञ संपादन  
 करो और (सूरिषु) विद्वानों को ( प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतम् ) उत्तम धन



हो । (नः) हमें (देवजुतः रयिः) विद्वानों से उपदेश और सेवन योग्य ऐश्वर्य (नः उपो एतु) प्राप्त हो । आप दोनों (स्पर्धाभिः) चाहने योग्य उच्चम रक्षाओं द्वारा (प्र तिरेतम्) हमें बढ़ाओ ।

अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षम् ।  
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रा-वरुणा) हे ऐश्वर्यवन् ! हे वरणीय ! आप दोनों (अस्मे) हमें (पुरु-क्षम् वसुमन्तं) बहुत अन्नसम्पदा और सुवर्णादि से युक्त, (विश्ववारं) सबसे वरणीय (रयिं) ऐश्वर्य (धत्तं) दो । (यः) जो (आदित्यः) सूर्य-समान तेजस्वी और 'अदिति' अखण्ड शासन-नीति में कुशल और 'अदिति' भूमि का पुत्रवत् प्रिय वा शासक होकर (अनृता) प्रजा के असत्य व्यवहारों को (प्र मिनाति) नष्ट करता है वह (शूरः) वीर पुरुष (अमिता वसूनि दयते) अमित धन देता है ।

इयमिन्द्रं वरुणमष्टमे गीः प्रावृत्तोके तनये तूतुजाना ।  
सुरत्नासो देववीर्ति गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(मे) मेरी (इयं गीः) यह वाणी ( इन्द्रं ) शत्रुनाशक और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (अष्ट) लक्ष्य करके हो । वह (तूतुजाना) ज्ञान को देती हुई ( तनये तोके ) पुत्र-पौत्रादि तक को ( प्र अवत् ) प्राप्त हो । (वयम्) हम ( सु-रत्नासः ) शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए (देववीर्ति गमेम) विद्वानों के ज्ञान-प्रकाश और सत्कामना को (गमेम) प्राप्त करें । हे विद्वान् लोगो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) युर्ववत् । इति षष्ठो वर्गः ॥

[ ८५ ]

बसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ आर्षी त्रिष्टुप् ।  
२, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चच सूक्तम् ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत ।

धृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामनुकुरूप्यतामभीके ॥ १ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! हे श्रेष्ठ जन ! मैं (इन्द्राय वरुणाय) इन्द्र और वरुण ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये ( सोमं जुह्वत ) ऐश्वर्य देता हुआ ( वाम् ) आप दोनों की (अरक्षसं मनीषाम्) दुष्ट-संग-रहित शुद्धि कां (पुनीषे) पवित्र करूं । (धृत-प्रतीकाम्) जोह से सबको उत्तम लगने वाली, (उपसं देवीं) शत्रु को दग्ध करने और विजय की कामना वाली मन की प्रज्ञा को मैं स्वच्छ करूं । (ता) वे दोनों (अभीके यामन्) शुद्ध-प्रयाण-काल में (नः उरूप्यताम्) हमारी रक्षा करें ।

स्पर्धन्ते वा उ' देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।

युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

भा०—(अत्र) इस ( देव-हूये ) मनुष्यों के स्पर्धा-रूप संग्राम में लोग (स्पर्धन्ते उ वा) स्पर्धा करते हैं तब (येषु ध्वजेषु) जिन ध्वजाओं पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती बिजलियों के समान वे पड़ते हैं, हे ( इन्द्रा-वरुणा ) शत्रुहन्तः ! हे शत्रुवारक ! ( युवं ) तुम दोनों (ताम् अमित्रान्) उन शत्रुओं को (हतम्) मारो और (विषूचः पराचः शर्वा) शत्रुओं को हिंसक शस्त्रों से दूर भगाओ ।

आपंश्चिद्धि स्वयंशसः सदः सु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।

कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्रायन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥ ३ ॥

भा०—( स्व-यशसः ) अपने धनैश्वर्य से यशस्वी, (देवीः) दान-शील, (देवताः) मानुष-प्रजाएं (सदः सु) सभा-भवनों वा उत्तम पदों पर (इंद्रं वरुणं धुः) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुष को स्थापित करें । उन दोनों में से (एकः) एक इंद्र नाम अध्यक्ष (प्रविक्ताः) अच्छी प्रकार विभक्त ( कृष्टीः धारयति ) हलाकण्ठित भूमियों को मेघ तुल्य प्रजाओं को धारण करे और (अन्यः) दूसरा वरुण, शत्रुवारक अध्यक्ष (अप्र-



तीन वृत्ताणि) छिपे शत्रुओं को दण्डित करें। इंद्र का काम प्रजा को विभक्त करके शासनव्यवस्था करना और वरुण का काम दुष्टों को दमन है। १. दीवानी, २. फौजदारी।

स सुकृतुर्भूतविदस्तु होता य आदित्य शर्वसा वां नमस्त्वान् ।  
आवृवर्तदक्षसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्त्वान् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( आदित्याः ) अखण्ड राजनीति और भूमि के हितैषी  
जनों ! ( यः ) जो ( होता ) दानशील पुरुष ( श्रवसा ) स्व बल से तुम  
दोनों के प्रति ( नमस्वान् ) अज्ञादि सत्कार से युक्त होता है ( सः ) वह  
( सु-क्रतुः ) शुभ-कर्मकारी और ( ऋतश्चित् अस्तु ) सत्य ज्ञान का धना-  
जक हो और जो ( अत्रसे ) रक्षा के लिये ( वां आववर्त्तन् ) तुम दोनों को  
प्राप्त होता है, वह ( प्रयस्वान् ) प्रयत्नशील होकर ( सुविंताय इत्  
आत् ) सुख प्राप्त करने में समर्थ, ( हविष्मान् ) अन्नसम्पन्न हो ।

इयमिन्द्रं वरुणं सप्त मे गीः प्रावृत्तोक्ते तनये तूतुजाना ॥ १० ॥  
सुरतनासो देवव्रीतिं गमेमः यूयं पातं स्मस्तिभिः सदा नः ॥ ११ ॥ ७७

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ५ । ४ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[ ६७ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्द—१, ३, ४, ५, ८ निचृत्त  
त्रिष्टुप् । २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ६ आर्षी त्रिष्टुप् । अष्टचं सूक्तम् ॥  
धीरा त्वस्य महिना जूनुषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी क्षिबुर्वी ।  
प्र नाकमुष्यं नुनुदे वृहन्तं द्विता नक्षत्रं एप्रथञ्च भूमं ॥ १ ॥

आ०—वरुण परमेश्वर (अस्य महिना) इसके महान् सामर्थ्य से (जन्पि) जन्मधारी समस्त प्राणी (धीरा) बुद्धि और कर्म द्वारा प्रेरित होते हैं । (यः) जो (चित्) पूजनीय ( उर्वी रोदसी ) विशाल आकाश और भूमि को ( तस्तम्भ ) थामे है, वह ही (बृहन्तं) बड़े (क्षपन्) महान्



(नाकसु) सुखस्वरूप परमानन्द को (प्रनुनुदे) देता है। वह ही (भूम नक्षत्रं च) बहुत से नक्षत्रों को (प्रथयत्) फैलाता है।

उत स्वयां तन्वाऽसंवदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणं भुवानि ।

किं मे हव्यमर्हणानो जुषेत कदा सृलीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२॥

भा०—(उत) और (स्वया तन्वा) मैं अपने इस देह से ( तत् ) उसका (कदा) कब ( संवेद ) साक्षात् करूँ और ( कदा नु ) कब मैं (वरुणे अन्तः) उस वरणीय श्रेष्ठ पुरुष के हृदय में (भुवानि) एक हो सकूँगा। वह प्रभु, (अह्वणानः) मेरे प्रति कोप-रहित होकर (मे हव्यं) मेरे स्तुतिवचन को ( किं जुषेत ) क्योंकर प्रेम से स्वीकार करेगा और मैं (कदा) कब ( सुमनाः ) शुभ-चित्त होकर उस (सृलीकं) आनन्दमय का (अभि ख्यम्) साक्षात् करूँगा।

पृच्छे तदेनो वरुण विद्वक्षुषो एमि त्रिकितुषो विपृच्छम् ।

समानमिन्मे कुवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हणीते ॥ ३॥

भा०—हे ( वरुण ) वरणीय प्रभो ! मैं ( त्रिकितुषो ) दशनाभिखापी होकर ( तद् एनः पृच्छे ) तुझसे वह पाप पूछता हूँ जिसके कारण मैं बंधा हूँ। मैं (उच्यते एमि) जिज्ञासु होकर तेरे पास आया हूँ और मैं (त्रिकितुषः) क्षात्री पुरुषों से भी (वि पृच्छम्) पूछता रहा हूँ। (कुवयः चित् ये समानम् इत् आहुः) विद्वान् मुझे एक समान ही कहते हैं कि (अयं वरुणः) यह वरुण, श्रेष्ठ प्रभु ही (तुभ्यं हणीते) तुझ पर लब्ध है। जिसका आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।

प्र तन्मे चोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो ! (किम् आगः आसः) वह क्या अपराध है ? (यत्) जिसके कारण (ज्येष्ठं स्तोतारं) बड़े-बड़े स्तुतिकर्ता (सखायं) मित्र को भी (जिघांससि) दण्ड देना चाहता है। हे (दूळभ) दुर्लभ ! हे अविनाशिन ! हे दूरभ ! सदा दूर, विद्यमान ! हे (स्वधावः)



अन्नपते, जीवन के स्वामिन् ! ( मे तत् प्रवोचः ) मुझे वह उपाय बतला जिससे ( अनेनाः ) निष्पाप होकर ( नमसा ) भक्ति से (तुरः) शीघ्र (त्वा अव इयाम्) तुझ तक पहुँच जाऊँ ।

अव' द्रुग्धानि पित्र्या' सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।

अव' राजन्पशुत्पं न तायुं सृजा वत्सं न दास्यो वसिष्ठम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (राजन्) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू (नः) हमारे (पित्र्या) माता-पिता के दोष के कारण प्राप्त, ( द्रुग्धानि ) तेरे प्रति किये द्रोह आदि अपराधों को (अव सृज) दूर कर और (वयं) जिन अपराधों को हम (तनूभिः चकृम) देहों से करते हैं उनको भी (अव सृज) दूर कर । (तायुं न पशु-त्पं) चोरी की नियत से पशु को घासादि खिलाने वाले, सुन्देह मात्र में बद्ध चोर के समान बंधन में बंधे, ( पशु-त्पं ) अपने इंद्रियरूप पशुओं को भोग-विलासों से तृप्त करते हुए ( तायुं ) तेरे ऐश्वर्य को बिना पूछे भोगने वाले चोरवत् मुझ ( वसिष्ठं ) अति उत्तम- 'वसु', तुझमें ही बसने वाले तेरे भक्त को तू ( दास्यः वत्सं न ) रस्से से बछड़े के समान, दयालु पशुपालकवत् (अव सृज) बंधन से मुक्त कर । न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अर्चिन्ति । अस्ति ज्यायान्कनीयस उणरे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥ ६ ॥

भा०—हे (वरुण) न्यायकारिन् प्रभो ! (अनृतस्य) विवेक-रहित, असत्य और अविवेकमय दशा को ( प्रयोता ) ला देने वाला (सः स्वः दक्षः न) केवल वह अपना कर्म ही नहीं, प्रत्युत और बहुत कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जीव अनृत, पाप, दुःखादि मार्ग में जाता है । वे कारण कौन २ से हैं ? जैसे (१) अपने किये काम तो हैं ही, या (सः स्वः दक्षः) वह स्वस्वरूप कर्त्ता आत्मा । (२) (सा ध्रुतिः, सुरा) वह द्रुतगति से जाने वाले जल के समान आत्मा की 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने की ध्रुति, प्रवृत्ति अर्थात् रजोगुणी काम-वासना



भी कारण है। (३) (विभीदकः मन्थुः) वह मन्थु, क्रोध, जिससे सब प्राणी भय खाते हैं वह भी एक कारण है। (४) (अचित्तिः) ज्ञान न रहना भी एक कारण है। (५) (कनीयसः उप-आरे) छोटे, अल्पशक्ति वाले जीव के समीप (स्वप्नः चन इत्) अज्ञान में सोते के समान (ज्याथान् अस्ति) बड़ा भी अर्थात् उसके माता पिता, भाई बन्धु आदि स्वयं अज्ञान वा पाप में मूढ़ रहने से दूसरे को मार्ग दिखाने में असमर्थ होते हैं। छोटा भी संग दोष से उसी ओर जाता है। कोई भी (अनृतस्य प्रयोता न) अज्ञान को दूर करने वाला नहीं होता।

अरं दासो न मीळद्दुषे करायहं देवाय भूर्णयेऽनागाः।

अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

भा०—(अहं) मैं (अनागाः) पाप-रहित होकर (भूर्णये) पालक-देवाय प्रकाशक परमेश्वर के लिये (मीळद्दुषः दासः न) दाता स्वामी के दास के समान (अरं कराणि) बहुत सेवा करूं। वह (देवः) प्रभु, (अर्यः) स्वामी (अचितः) अज्ञानी जनों को (अचेतयत्) ज्ञान देता है और वह (कवि-तरः) सर्वाधिक विद्वान् होकर (गृत्सं) स्तुतिकर्त्ता भक्त को (राये जुनाति) ऐश्वर्य के लिये सन्मार्ग पर ले जाता है।

अय स तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रिताश्चिदस्तु।

शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।८

भा०—हे (वरुण) कष्टों के वारक ! हे (स्वधावः) जीवों के स्वामिन् ! हे अन्नपते ! (अयं सः स्तोमः) यह वह स्तुति-वचनादि (तुभ्यम्) तेरे लिये (हृदि चित् उप-श्रितः अस्तु) हृदय में पूजार्थ स्थिर रहे। घह (नः क्षेमे शं उ अस्तु) हमारे धन-प्राप्ति-काल में शान्तिदायक हो। हे विद्वान् जनो ! (सदा यूयं नः पात स्वस्तिभिः) पूर्ववत्। इत्यष्टमो वर्गः ॥



[ ८७ ]

चसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ५  
आर्षी त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्राणींसि समुद्रिया नदीनाम् ।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

भा०—(वरुणः) व्यापक परमेश्वर (सूर्याय) सूर्य के (पथः) मार्गों को (रदत्) बनाता है । वही (समुद्रिया) समुद्र की ओर जाने वाली (नदीनां अर्णांसि) नदियों के जलों को बहाता है । (सर्गः न सृष्टः अर्वतीः ऋतायन्) जैसे बरसा हुआ जल नीची, बहती नदियों की ओर जाता है वैसे (सर्गः) जगत् का बनाने वाला (सृष्टः) जगत् का स्वामी (अर्वतीः) अधीन महती शक्तियों और प्रकृति की विकृतियों को (ऋतायन्) ज्ञानपूर्वक सञ्चालित करता हुआ (अहभ्यः महीः रवनीः चकार) दिनों से रात्रियों को पृथक् करता है ।

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्गिर्यवसे ससवान् ।

अन्तर्मही वृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥ २ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वव्यापक प्रभो ! (वातः रजः) जैसे वायु धूलि को (आ नवीनोत्) सब तरफ उड़ाता है वैसे ही (वातः) बल-शाली (ते आत्मा) तेरा व्यापक सामर्थ्य (रजः) ब्रह्माण्डों में फैले, धूलि-कणवत् लोकों को (आ नवीनोत्) सञ्चालित करता है । अध्यात्म में—(ते आत्मा वातः) तेरा आत्मा, जीवभूत प्राण देह में (रजः आ नवीनोत्) रक्तप्रवाह को प्रेरित करता है । (यवसे पशुः न ससवान् भूर्गिः) घास, भूसा आदि पर पलने वाला पशु जैसे अन्नादि से लादा जाकर स्वामी के भरण-पोषण में समर्थ होता है वैसे ही यह (वातः) वायु वा (ते आत्मा) तेरा महान् सामर्थ्य ही (ससवान्) अन्नादि ऐश्वर्य से समृद्ध होकर (भूर्गिः) विश्व के भरण-पोषण में समर्थ होता



है । ( इमे बृहती मही रोदसी अन्तः ) इन विशाल, सुख देने वाले आकाश-भूमि या सूर्य-भूमि के बीच ( ते ) तेरे ( विश्वा ) समस्त (प्रियाणि) प्रिय (धाम) तेज और विश्वधारक लोक, सामर्थ्य हैं ।

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सु-मेके ।  
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इष्यन्त मन्म ॥ ३ ॥

भा०—( वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः ) जैसे दुष्टों के निवारक राजा के 'स्पश'—गुप्तचर, अभिप्रायवान् होकर ( उभे सु-मेके पश्यन्ति ) ऊपर से देखने में अच्छे २ और बुरे शास्य शासक दोनों वर्गों को देखते हैं वैसे ही (ये) जो ( प्र-चेतसः ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (मन्म) मनन योग्य ज्ञान की (इष्यन्त) अन्नवत् चाहना करते हैं वे ( ऋतावानः ) वेदमय तप का सेवन करते हुए, ( यज्ञ-धीराः ) त्यागयुक्त कर्म को करते, उसका अन्यों को उपदेश करते हुए (वरुणस्य स्पशः) प्रभु के सिपाहियों के समान, उसकी बनाई सृष्टि और व्यवस्थाओं का साक्षात् दृष्टा (स्मदिष्टाः) एक साथ समान इष्ट वा समान उत्तम लक्ष्य वाले होकर (उभे) दोनों ( सु-मेके ) सुखप्रद मेघादि से युक्त (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान (सुमेके) शुभ वीर्यसेचन में समर्थ, सन्तानोत्पादक माता-पिता को सृष्टि का कारण यथावत् (परि पश्यन्ति) देखते हैं ।

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाभ्यां विभर्ति ।

विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्गुगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥

भा०—(मे मेधिराय) मुझ बुद्धिमान् पुरुष को (वरुणः) वरणीय प्रभु (उवाच) उपदेश करता है कि ( अभ्या ) अविनाशी, परमेश्वरी या प्रकृति शक्ति (त्रिः सप्त नाम) तीन गुना सात अर्थात् २१ स्वरूपों को (विभर्ति) धारण करती है । ( विप्रः विद्वान् ) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् ( उपराय ) समीप-स्थित ( युगाय ) मनोयोग से विद्या-



ग्रहण करने वाले शिष्य को ( शिक्षन् ) उपदेश देता हुआ ( पदस्य ) परमप्राप्य ब्रह्म के ( गुह्या न ) रहस्यों का ( वोचत् ) उपदेश करे ।

‘त्रिः-सप्त नाम’-ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के २१ स्वरूप ‘त्रे त्रिपसाः०’ ( अथर्व० १ । १ । १॥ ) के भाष्य में स्पष्ट किये हैं । पञ्च-तन्मात्रा, पञ्च स्थूलभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन । यद्वा, त्रिः । सप्त पद पृथक् हैं । इदं रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति, महि विश्रुति एता ते अग्नये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं द्रुतात् ॥ यजु० ८ । ४२ ॥ वेद ने ये १० नाम अग्न्या के कहे हैं । यहां वे ही ( त्रिः= ३ + सप्त ७ = १० ) नाम हैं । ‘त्रि’ इत्यस्य प्रथमैकवचने त्रिः ॥ अथवा सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने सुः ।

तिस्त्रा द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्त्रो भूमिरुपराः षड्विधानाः ।  
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम ॥ ५ ॥

भा०—( तिस्त्रः द्यावः ) तीनों लोक, भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश में ( अस्मिन् अन्तः निहिताः ) वरुण परमेश्वर के ही भीतर स्थित हैं और ( तिस्त्रः भूमिः ) तीनों भूमियां ( उपराः ) एक दूसरे के समीप स्थित ( षड्विधानाः ) छः छः प्रकार के ऋतु आदि विधानों सहित उसके ही भीतर हैं । ( गृत्सः ) ज्ञान का उपदेष्टा ( राजा ) सर्वोपरि शासक ( वरुणः ) वरुण-योग्य प्रभु ही ( दिवि ) आकाश में ( प्रेङ्खं ) उत्तम गति से जाने वाले ( एतं ) उस ( हिरण्ययम् ) तेजोमय सूर्य को, अन्तरिक्ष में गतिमान्, हित, रमणीय रूप वायु को और भूमि पर तेजोमय अग्नि को ( शुभे ) दीप्ति, जल और कान्ति के लिये ( चक्रे ) बनाता है । कं पादपूरणः ।

अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थादृप्सो न श्वेतो मृगस्तु विष्मान् ।  
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥ ६ ॥



भा०—(द्यौः इव सिन्धुः) सूर्य जैसे अकेला समस्त आकाश में व्यापता है वैसे ही परमेश्वर (द्यौः) तेजस्वरूप, (वरुणः) सर्वव्यापक होकर (सिन्धुः) वेग वाले प्रकृति के बने जगत्प्रवाह को (अव स्थात्) व्यवस्थित करता है। वह (द्रप्सः न श्वेतः) जलविन्दुवत् रसस्वरूप व कान्तिमय है। वह (मृगः) सिंहवत् बलवान् वा, (मृगः) ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य और (मृगः) पावन स्वरूप, (तुविष्मान्) सर्व शक्तिमान् है। वह (गम्भीर-शंसः) गंभीर समुद्र तुल्य अगाध और प्रशंसा-योग्य, (रजसः विमानः) इस समस्त लोक-समूह का विशेष निर्माता है, वह (सुपार-क्षत्रः) सुख से सर्वपालक, बलैश्वर्यवान्, (अस्य सतः राजा) इस व्यक्त संसार का राजावत् शासक है।

यो मृळयाति चक्रुषे चिदागौ वयं स्याम वरुणो अनागाः।

अनु व्रतान्यदितेऽर्धन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥६॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आगः चक्रुषे चित्) अपराध करने वाले के भले के लिये (मृडयाति) उस पर दया करता है, उस (वरुणो) प्रभु के अधीन हम (अनागाः स्याम) निष्पाप रहें। उस (अदितेः) अखण्ड प्रभु के (व्रतानि अनु) नियमों के अनुकूल (ऋधन्तः) समृद्ध, हे विद्वान् जनों! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) पूर्ववत्। इति नवमो वर्गः ॥

[ ८८ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्द—१, २, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्।

४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र शुन्ध्युषं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीलहुषे भरस्व।

य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं वृहन्तम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (ईम्) इस (अर्वाञ्चं) अभिमुख आये (यजत्रं) आत्मसमर्पक और सत्संगति वाले पुरुष को (सहस्र-मघं)



सहस्रों धनों से सम्पन्न, (वृषणं) मेघवत् उदार और (बृहन्तम् करते) बड़ा बना देता है उस (वरुणाय) ऐश्वर्यदाता (मीढुषे) ऐश्वर्यों की वृष्टि करने वाले, परमेश्वर के निमित्त (प्रेष्टां) अति प्रिय (मतिं) स्तुति और बुद्धि का (प्र भरस्व) प्रयोग कर ।

अथा न्वंस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।

स्वः । यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृश्ये निनीयात् ॥ २ ॥

भा०—(अथ नु ) और मैं (अस्य) इस (अग्नेः) तेजोमय (वरुणस्य) परमेश्वर के विषय में (जगन्वान्) ज्ञान प्राप्त कर और उसकी शरण जाकर उसके (सं-दृशम्) सम्यक्-दर्शन-योग्य (अनीकं) तेज को (मंसि) मनन करता हूँ । (यद्) जैसे (अश्मन् अन्धः वपुः दृश्ये निनीयात्) चक्री आदि में पीसा अन्न या कुटी ओषधि, या (अश्मन् अन्धः) मेघ के आधार पर उत्पन्न अन्न शरीर को उत्तम, दर्शन योग्य बनाता है वैसे ही (यत्) जो (अधिपाः) सर्वोपरिपालक (स्वः) सुखकारी है वह (अन्धः) अन्नवत् प्राणों का धारक होकर (दृश्ये) साक्षात् करने के लिये (मा) मुझे (वपुः) रूप, शरीर आदि (निनीयात्) प्राप्त कराता है ।

आ यदुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।

अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेह्व ईह्यावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

भा०—(अहं) मैं और (वरुणः च) वरणीय स्वामी, दोनों दो मित्रों के समान वा पति-पत्नीवत् (यत् नावम् आ रहाव) जब नाव पर चढ़े (यत् समुद्रम् मध्यम् ईरयाव) और जब समुद्र के बीच उसको चलावें (यत् अधि अपां) जब जलों के ऊपर (स्नुभिः चराव) गमन-शील यानों से विचरें तो (शुभे) शोभा और (कम्) सुख पाने के लिये (प्रेह्वे) झूले पर (प्रेह्वयावहे) हम दोनों झूले ।



वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधावृषिं चकार स्वपा महोभिः ।

स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां याचु द्यावस्ततनन्यादुपालः ॥४॥

भा०—(वरुणः) वरणीय आचार्य (वसिष्ठं) अधीन वस कर ब्रह्म-  
चारी शिष्य को (नावि) ज्ञान-सागर से पार उतारने वाली वेदवाणी  
रूप नौका में (ह) अवश्य (आधात्) स्थापित करे । वह स्वयं (स्वपाः)  
कर्मशील होकर (महोभिः) बड़े २ गुणों से (वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम  
ब्रह्मचारी को वेद-मन्त्रार्थों को यथार्थ देखने में विद्वान् बनावे । (विप्रः)  
विद्याओं से शिष्य को पूर्ण करने वाला आचार्य (अह्नां सू-दिनत्वे )  
दिनों को शुभ बनाने के लिये ( यात् द्यावा नु यात् उपसः नु ) आये  
दिनों और आयी रातों में भी ( स्तोतारं ततनन् ) अध्ययनशील शिष्य  
को विस्तृत ज्ञानवान् करे ।

क्व॑ त्यानि नौ सख्या वभूवुः सचावहे यदवृकं पुराचित् ।

वृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय ! हे (स्वधावः) प्राणपते ! (नौ) हम  
दोनों के (त्यानि सख्यानि) वे नाना मित्रता के भाव (क्व वभूवुः) कहाँ  
हुए, ( यत् ) जो हम दोनों ( पुराचित् ) मानों पूर्वकाल से (अवृकं)  
परस्पर चोरी का भाव न रखते हुए ( सचावहे ) मिलकर रहें । हे  
(वरुण) वरणीय ! हे ( स्वधावः ) अमृत के स्वामिन् ! हम (वृहन्तं)  
महान् ( मानं ) परिमाण वाले ( सहस्रद्वारं ) सहस्रों द्वार वाले (गृहं  
जगाम) घर को प्राप्त हों ।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।

मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरुथम् ॥६॥

भा०—हे (वरुण) प्रभो ! राजन् ! तू (नित्यः) सदा का (आपिः)  
बन्धु (प्रियः) प्रिय (सन्) होकर हमें प्राप्त है, उस (त्वाम्) तेरे प्रति  
(ते सखा) तेरा मित्र यह जीव (आगांसि कृणवत्) नाना अपराध करता



है । हे (यक्षिन्) यक्ष 'अर्थात्' पूजा करने वाले भक्त जनों के स्वामिन् ! हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य का ( एनस्वन्तः ) पापी होकर (सा भुजेम) भोग न करें । तू ( विप्रः ) मेधावी ( स्तुवते ) स्तुतिशील को (वरुथं यन्धि) वरणीय एवं दुःखों को दूर करने योग्य उत्तम गृह और बल दे ।

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्युः स्मत्पाशं वरुणो मुमोचत् ।  
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः । ७।१०॥

भा०—परमेश्वर जीवों के कर्म-बन्धन किस प्रकार काटता है ? हम लोग ( आसु ध्रुवासु क्षितिषु ) इन धारने योग्य, कर्म और भोग-भूमियों में (क्षियन्तः) निवास करते हुए वा ऐश्वर्ययुक्त, वा क्षीण होते हुए, कभी ऊर्ध्वगति, कभी नीच गति प्राप्त करते हुए, (अदितेः उपस्थात्) भूमि से ( अवः वन्वानाः ) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करते हैं और जैसे ( अदितेः उपस्थात् अवः अन्वानाः ) सूर्य से दीप्ति प्राप्त करते हैं वैसे ही ( अदितेः ) अखण्ड परमेश्वर से हम (अवः) रक्षा, सुख, प्रेम (वन्वानाः) प्राप्त करते रहें । वह (वरुणः) प्रभु (अस्मत् पाशं) हम से पाश को (वि मुमोचत्) छुड़ाता है । हे विद्वान् पुरुषो ! (नः यूयं सदा स्वस्तिभिः पात) । आप लोग हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करो । इति दशमो वर्गः ॥

[ ८९ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१—४ आर्षी गायत्री । ५  
पादनिचृज्जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

मा शु वरुण मन्मथं गृहं राजन्नहं गमम् । मृत्ता सुक्षत्र मृत्यु ॥१॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! हे ( राजन् ) देदीप्यमान ! हे (सुक्षत्र) उत्तम धन, ऐश्वर्य, बल से सम्पन्न ! ( अहम् ) मैं (मन्मथं गृहम्) मिट्टी के बने गृह के तुल्य नश्वर, मृत्यु से आक्रान्त, वा ग्रहण-योग्य, वा आत्मा को पकड़े हुए इस देह को ( मोक्ष गमम् ) कभी न प्राप्त करूँ



तो अच्छा हो ! हे प्रभो ! (मृड) सबको सुखी करने हारे दयालो ! तू  
(मृडय) सुखी कर, हम पर दया कर ।

अदेमि प्रस्फुरन्निव दतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ २

भा०—हे ( अद्रिवः ) पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के स्वामिन् ! प्रभो !  
(यत्) जब मैं ( प्रस्फुरन् इव ) तड़पता हुआ-सा, (दतिः न ध्मातः)  
कुपे के समान फूला हुआ, फूंक से भरे चर्मवाद्य के समान रोता-गाता  
(एभि) शरण आऊँ, हे (सुक्षत्र) सुबल ! सुधन ! तू मुझे (मृड मृडय)  
सुखी कर ।

ऋत्वं समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ३ ॥

भा०—हे ( समह ) पूज्य ! ( दीनता ) दीन होने के कारण मैं  
(ऋत्वं) सत् कर्म और सत् ज्ञान के ( प्रतीपं जगम ) विपरीत चला  
नाया हूँ और (शुचे) शोक करता हूँ । अथवा हे (शुचे) शुद्ध प्रभो ! हे  
(सु-क्षत्र) बलशालिन् ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, कृपा कर ।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् ।

मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुक्षत्र) उत्तम बल के स्वामिन् ! ( अपां मध्ये तस्थि-  
वांसं ) जलों के बीच में खड़े ( जरितारं ) रोगादि से जीर्ण होते हुए  
पुरुष को जैसे ( तृष्णा अविदत् ) प्यास सताती है वैसे ही हे प्रभो !  
(जरितारं) तेरे स्तोता (अपां मध्ये तस्थिवांसं) आस पुरुषों के बीच या  
प्राणों या रक्त द्रव से पूर्ण शरीर के बीच रहने वाले मुझको भी  
(तृष्णा) भूख-प्यास के समान विषय-भोगादि की लालसा प्राप्त है, हे  
प्रभो ! हे (मृड, मृडय) सबको सुखी करने हारे ! तू मुझे सुखी कर ।

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनैर्भिद्रोहं मनुष्याः श्रामयि । अचिन्ती  
यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥ ५१११॥



भा०—हे (वरुण) प्रभो ! ( दैव्ये जने ) विद्वान् सत्पुरुष के हित-  
कारी जन के ऊपर रहकर हम ( मनुष्याः ) मनुष्य ( यत् किं च ) जो  
कुछ भी ( इदं अभिद्रोहं ) इस प्रकार का द्रोह आदि ( चरामसि ) करते  
हैं और ( अचित्ती ) बिना ज्ञान के ( यत् तव धर्मा युयोपिम ) जो तेरे  
बनाये नियमों को उल्लंघन करते हैं, हे ( देव ) प्रभो ! राजन् ! ( तस्माद्  
एनसः ) उस अपराध या पाप से ( नः मा रीरिपः ) हमें दुःखित मत  
कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

[ ९० ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—४ वायुः । ५—७ इन्द्रवायु देवते छन्दः—१, २, ७  
विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृद् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वीर्या शुचयो दद्विरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।

वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिवा सुतस्यान्धसो मदाय ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र-वायू ) ऐश्वर्यवान् ! हे वायुवत् बलवान् वीर  
सेनापते ! ( शुचयः ) शुद्ध आचारवान्, ईमानदार ( वीर्या = वीराः )  
वीर ( मधुमन्तः ) बलवान्, मधुरप्रकृति, ( सुतासः ) योग्य पदों पर  
अभिषिक्त पुरुष ( अध्वर्युभिः ) प्रजा की हिंसा पीड़ा न चाहने वाले  
सोम्यवृत्ति विद्वानों सहित ( वाम् प्र दद्विरे ) तुम दोनों को प्राप्त होते  
हैं । हे ( वायो ) वायुवत् बलवान् ! तू ( नियुतः ) सहस्रों अश्वादि सेनाओं  
को ( वह ) सन्मार्ग पर ले चल और ( सुतस्य अन्धसः ) ऐश्वर्य से  
समृद्ध अन्न को ( याहि ) प्राप्त कर और ( मदाय ) तृप्ति के लिये उसका  
( पिब ) उपभोग कर ।

ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।  
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं ज्ञातो जातो जायते वाज्यस्य ॥ २ ॥

भा०—हे ( वायो ) विद्वन् ! ( यः ) जो ( शुचि-पाः ) शुद्ध आचार,  
व्यवहार का पालक पुरुष ( ते ईशानाय ) तुम सर्वैश्वर्यवान् का ( शुचिं



सोमं शुद्ध अन्नादि, ऐश्वर्य और ( प्रभुति ) सर्वोत्तम दान ( आनन्द ) प्राप्त कराता है, ( तं ) उसको तू ( मर्त्येषु ) मनुष्यों के बीच ( प्रशस्तं कृणोषि ) कर्मकुशल बना देता है और वह ( जातः-जातः ) उत्तम रूप से प्रकट होकर ( अस्य ) इस प्रजाजन के बीच ( वाजी ) ज्ञानवान्, बलवान् ( जायते ) हो जाता है ।

राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।

अध्र वायुं नियुतः सञ्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥३॥

भा०—( इमे रोदसी ) आकाश व भूमि के मुख्य ये माता-पिता, राजसभा-प्रजासभा दोनों ( राये ) राष्ट्र में ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये ( नु ) ही ( यं ) जिसको ( जज्ञतुः ) उत्पन्न करते और ( यं देवम् ) जिस विजिगीषु को ( धिषणा देवी ) सर्वोपरि विद्यमान विद्वत्सभा भी ( राये ) ऐश्वर्य-रक्षा के लिये ( धाति ) स्थापित करती है, उस ( वायुं ) वायु को वायुवत् मूल से उखाड़ने में समर्थ पुरुष को ( स्वाः ) उसकी अपनी ( नियुतः ) लक्षों सेनाएं और प्रजाएं ( सञ्चत ) प्राप्त होती हैं ( उत ) और उसी ( श्वेतं ) शुद्धाचारी को ( निरेके ) श्रेष्ठ पद पर ( वसु-धितिम् ) ऐश्वर्य की ध्याति वाला ज्ञान कर प्राप्त होते हैं ।

उच्छन्नपसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीव्यानाः ।

गव्यं चिदूर्ध्वमुशिजो वि वन्नुस्तेषामनु प्रदिवः ससुरापः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे ( उपसः ) प्रभात वेलाएं वा सूर्य की दाहक कान्तियें ( सु-दिनाः उच्छन्न ) उत्तम दिन वाली होकर प्रकट होती हैं, ( अरि-प्राः ) पाप-रहित ( दीव्यानाः ) देदीप्यमान, ( उरु ज्योतिः विविदुः ) बहुत बड़े विशाल प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त करती ( उशिजः ) कान्तियुक्त होकर ( गव्यम् ऊर्वम् विवध्रुः ) रश्मियों के बड़े धन को फैलाती है ( अनु प्रदिवः आपः सस्रुः ) अनन्तर आकाश से मेघ जल बरसते हैं—वैसे ही ( उपसः ) उषावत् जीवन के प्रारम्भ भाग में वर्तमान नर—



सारीगण (सु-दिना) शुभ दिन युक्त होकर (उच्छन्) अपने गुण प्रकट करें और वे (दीध्यानाः) ईश्वर-ध्यान करते हुए (उरु ज्योतिः) बड़ी भारी ज्ञान-ज्योति को (विबिद्भुः) प्राप्त करें। वे (उशिजः) प्रीतियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम्) वेदवाणी के धन को (विवद्भुः) विविध प्रकार से विवरण करें, उसकी व्याख्या करें। (तेषाम् अनु) उनके पीछे २ ही (प्र-दिवः) उत्तम फल की कामना वाली (आपः) आस प्रजाएं (सत्तुः) चलें।

ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासुः युक्तासुः क्रतुना वहन्ति। इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ५  
भा०—(ते) वे ज्ञानवान्, विद्वान् लोग (सत्येन मनसा) सत्य चित्त और सत्य ज्ञान से (दीध्यानाः) चमकते हुए (स्वेन युक्तासुः) अपने आत्मसामर्थ्य से युक्त होकर (दीध्यानाः) चमकते हुए वा आत्म-योग का अभ्यास करते हुए (युक्तासुः) योगी होकर (स्वेन क्रतुना) अपने ज्ञान और बल से (वहन्ति) रथ को अश्वों के तुल्य देह को धारण करते हैं। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवान् ! ज्ञानवान् ! (ईशानयोः वाम्) शासक-रूप आप दोनों के (वीरवाहं रथं) वीरों के धारक, रथवत् रमणीय उपदेश वा स्थिर पद वा राष्ट्र की (वहन्ति) धारण करते और सञ्चालित करते हैं और वे (पृक्षः) प्रतियुक्त होकर (अभि सचन्ते) परस्पर समवाय बनाकर रहते हैं।

ईशानासो ये दधते स्वर्णां गोभिरश्वैर्भिर्वसुभिर्हिरण्यैः।

इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सङ्गुः ॥६॥

भा०—(ये) जो (ईशानासः) ऐश्वर्यवान् और शासन-अधिकार से युक्त होकर (नः) हमारे सर्वस्व राष्ट्र और सुखादि को (गोभिः) गौओं और भूमियों (अश्वेभिः) घोड़ों (वसुभिः) विद्वानों, (हिरण्यैः) सुवर्णादि धातुओं और रमणीय साधनों से (विश्वम् आयुः) पूर्ण जीवन (दधते)



धारण करते हैं। हे ( इन्द्रवायू ) ऐश्वर्यवान् बलवान् प्रधान नायक पुरुषो ! वे (सूरयः) विद्वान् ( अर्वञ्जिः वीरैः ) शत्रुनाशक वीर पुरुषों द्वारा (पुत्रनासु) संग्रामों में (सह्युः) विजय करें।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्ठुतिभिर्वसिष्ठाः।

वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥१२॥

भा०—हम लोग (अर्वन्तः) शत्रुनाशक वीर पुरुषों और अश्वों के समान बलवान्, (श्रवसः भिक्षमाणाः) श्रवण योग्य ज्ञान की योग्य गुरुओं और अन्न की गृहस्थों से याचना करते हुए, (वसिष्ठाः) उत्तम ऋषिचारी होकर (सु-अवसे) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं (वाजयन्तः) ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए (इन्द्रवायू हुवेम) ऐश्वर्यवान् और बलवान् जनों को प्राप्त करें। (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) पूर्ववत्। इति द्वादशो वर्गः ॥

[ ९१ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३ वायुः। २, ४—७ इन्द्रवायू देवते। छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप्। २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

कुविद्वङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन्।

ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (नमसा) शत्रु को नमाने वाले बल से (पुरा) पहले (वृधासः) बढ़ने हारे (अन-वद्यासः) अनिन्दिताचरण वाले, (देवाः) धन, पुत्र आदि के अभिलाषी (आसन्) रहते हैं (ते) वे (वायवे) वायु तुल्य बलवान् वा प्राणवत् प्रिय, (मनवे) मननशील, (बाधिताय) पीड़ित प्रजा की रक्षा के लिये (उषसं) प्रभात के समान तेजस्विनी सेना को (सूर्येण) तेजस्वी नायक पुरुष के साथ (बाधिताय मनवे) खण्डित वंश वाले मनुष्य की वंशवृद्धि के लिये (उषसं) सन्तान



की कामनायुक्त स्त्री को ( सूर्येण ) पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष के साथ  
( अवासयन् ) रखें ।

उशन्ता दूता न दमाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।

इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वाभियाना मर्डीकमीदृष्टे सुवितं न नव्यम् ॥ २ ॥

भा०—( उशन्ता ) सबको चाहने वाले ( दूता ) शत्रु सन्तापक,  
( गोपा ) प्रजा-रक्षक, ( इन्द्रवायू ) ऐश्वर्यवान्, बलवान् पुरुष ( मासः च  
शरदः च ) वर्षों और मासों तक ( पूर्वीः ) पूर्व विद्यमान प्रजा की ( पाथः )  
रक्षा करें । हे ( इन्द्र-वायू ) ऐश्वर्यवान् ! हे बलवान् ! ( वाम् इयाना )  
आप दोनों को प्राप्त होता हुआ, ( सुष्टुतिः ) उत्तम उपदेश ( मर्डीकम् )  
सुख और ( सुवितं ) उत्तम, ( नव्यम् ) स्तुत्यआचार ( ईदृष्टे ) चाहता है ।  
पीवोअन्नां रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।

ते वायवे समनसोः वि तस्थुर्विश्वेक्षरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥

भा०—( नियुताम् अभिश्रीः ) नियुक्त सैन्यों के बीच सबके आश्रय-  
योग्य एवं उत्तम राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न ( श्वेतः ) उज्ज्वल वस्त्र धारें  
( सुमेधाः ) बुद्धिमान् शत्रुनाशक पुरुष ( रयि-वृधः ) ऐश्वर्य बढ़ाने वाले,  
( पीवः अन्नान् ) अन्नादि से हृष्ट-पुष्ट पुरुषों का ( सिषक्ति ) समवाय बन  
कर रहता है और ( ते ) वे ( नरः ) नायक पुरुष ( समनसः ) एक चित्त  
होकर ( वायवे ) नायक पुरुष की वृद्धि के लिये ( वि तस्थुः ) उसके  
आस पास स्थित होते हैं । वे ( विश्वा ) सभी ( सु-अपत्यानि ) उत्तम से  
सन्तानों के समान ( चक्रुः ) काम करते हैं ।

यावत्तरस्तन्वोऽयावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।

शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं वहिरेदं ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्रवायू ) ऐश्वर्यवान् ! हे शत्रुहन्तः ! हे नायको !  
( यावत् ) जितना ( तन्वः तरः ) शरीर का बल हो और ( यावत् ओजः )  
जितना पराक्रम हो और ( यावत् ) जब तक ( नरः ) नेता लोग



(चक्षसा) उत्तम ज्ञान-दर्शन से (दीध्यानाः) देदीप्यमान हों तब तक आप दोनों (शुचिं) शुद्ध, (सोमम्) प्रजाजन को (पातम्) पालन करो और (शुचिं सोमं पातं) शुद्ध अन्न, ऐश्वर्य का उपभोग करो (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा पर (सदत्तम्) अध्यक्ष बन कर विराजो ।

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सुरथं यातमर्वाक् ।  
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध्रं प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्रवायू ) विद्युत् और वायु के तुल्य बलवान् नायक पुरुषो ! ( स्पार्हवीराः ) मनोहर वीर पुरुषों से युक्त ( नियुतः ) अश्व सेनाओं को (नियुवाना) सञ्चालित करते हुए आप दोनों (स-रथं) रथ-सहित ( अर्वाक् यातम् ) आगे बढ़ो । (इदं हि) यह कार्य ही (मध्वः अग्रं प्रभृतम्) आप दोनों को अन्न या आजीविका प्राप्त करने का साधन है । (अध) और ( प्रीणाना ) प्रजा को प्रसन्न करते हुए (अस्मे वि मुमुक्तम्) हमें विविध बन्धनों से युक्त करो ।

या वां शतं नियुतो याः सहस्रामिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।  
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्रवायू ) विद्युत्, पवन के समान तेजस्वी, बल-शाली पुरुषो ! (याः) जो (वां) आप दोनों के (शतं) सैकड़ों और (याः सहस्रं) जो हजारों (नियुतः) अश्वों के सैन्यगण ( विश्ववाराः ) शत्रुओं के वारण में समर्थ होकर (सचन्ते) संघ बनाकर रहते हैं (आभिः) इन (सु-विदत्राभिः) उत्तम ऐश्वर्य लाभ कराने वाली सुशिक्षित सेनाओं से आप दोनों (अर्वाक् यातं) आगे बढ़ो । हे (नरा) नायक पुरुषो ! आप दोनों (प्रतिभृतस्य) वेतन द्वारा परिपुष्ट (मध्वः) सैन्य बल की (पातम्) रक्षा करो ।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्ठुतिभिर्वसिष्ठाः ।  
वाज्रयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पातं स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥१३॥



भा०—व्याख्या देखो सू० ९० । ७ ॥ इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ୧୨ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३—५ वायुः । २ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१

निचृत् त्रिष्टुप् । २, ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ आर्षी त्रिष्टुप् ॥

आ वा॒यो भूष शुचि॒ष्वा उपं॑ नः स॒हस्रं॑ ते न्नि॒युतो॑ विश्ववार ।

उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥ १ ॥

भा०—हे (शुचिपः) शुद्ध चरित्रवन् ! ईमानदार की रक्षा करने वाले ! हे (वायो) तुष से अन्नों को पृथक् करने वाले वायु के समान सत्य, असत्य के विवेक वाले विद्वन् ! तू (नः उप आ भूष) हमें प्राप्त हो । हे ( विश्व-वार ) वरण योग्य ! पापों के वारक ! (ते सहस्रं नियुतः) तेरे अधीन सहस्रों आज्ञा पालक हैं । हे (देव) विद्वन् ! तू ( यस्य पूर्वपेयं ) जिसके पूर्व पालन वा भोग योग्य अंश को (दधिषे) धारण करता है, मैं उसी ( मधम् ) तृप्तिकारक, हर्षजनक (अन्धः) अन्न को (ते उतो अयामि) तेरे लिये प्राप्त कराऊँ ।

प्र सोतां जीरो अध्वरेष्वस्थात्सोममिन्द्राय वायवे पिबध्वै ।

प्र यद्वां मध्वौ अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥ २ ॥

भा०—( यत् ) जिस ( मध्वः ) शत्रुपीडक बल और मधुर ऐश्वर्य के ( अग्रियं ) प्रमुख पद तथा श्रेष्ठ भाग को ( देवयन्तः ) शुभ गुणों और उत्तम फलों की आकांक्षा वाले ( अध्वर्यवः ) प्रजा की हिंसा से रहित राष्ट्र-पालक जन ( वां प्र भरन्ति ) आप दोनों के लिये प्राप्त कराते हैं, उस ( सोमम् ) ऐश्वर्य या बल वीर्य को ( ह्यन्द्राय वायवे ) सूर्य वायुवत् तेजस्वी और बलवान् पुरुष के ( पिबध्वै ) उपभोग के लिये ( अध्वरेषु ) यज्ञादि उपकारक कार्यों में ( वीरः सोता ) विद्वान् वीर शासक, ( अस्थ्यात् ) प्राप्त करे ।



प्र याभिर्यासि दाश्वान्समच्छा नित्युद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।  
नि नो रयि सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३॥

भा०—हे (वायो) बलवन् ! ( याभिः नित्युद्भिः ) जिन अश्वादि-  
सेनाओं सहित ( दुरोणे ) गृहवत् राष्ट्र में विद्यमान (दाश्वान्सम्) कर  
आदि के दाता प्रजाजन को (अच्छ प्र यासि) भली प्रकार प्राप्त होता  
है उन द्वारा ही तू (नः) हमें ( सुभोजसं रयिम् ) उत्तम भोग्य पदार्थों  
और रक्षा-साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य को ( नि युवस्व ) दे और (वीरं)-  
वीरजन, ( गव्यं राधः ) गौ आदि और ( अश्व्यं च राधः ) अश्वों से  
बनी सम्पदा भी (नि युवस्व) दे ।

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।  
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः प्याम स सहांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४॥

भा०—(ये) जो (वायवः) बलवान् पुरुष (इन्द्र-मादनासः) प्राणों  
के समान शत्रुहन्ता, प्रजा को प्रसन्न करने में समर्थ ( आदेवासः )-  
सब ओर विद्वान् व्यवहारज्ञ पुरुषों को रखते और ( अर्यः ) शत्रु के-  
(नितोशनासः) मारने वाले हों ऐसे ( सूरिभिः ) शासकों और विद्वानों-  
द्वारा हम ( वृत्राणि घ्नन्तः ) विघ्नकारक शत्रुओं का नाश करते हुए  
(युधा) युद्ध द्वारा ( नृभिः अमित्रान् सासहांसः ) वीर पुरुषों द्वारा  
शत्रुओं का पराजय करने वाले हों ।

आ नो नित्युद्भि श्रुतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।  
वायो अस्मिन्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिमि सदा नः ५।१४

भा०—हे (वायो) बलवान् वीर ! तू (श्रुतिनीभिः सहस्रिणीभिः)-  
सौ २ तथा हजार २ के भटों के नायकों वाली (नित्युद्भिः) अश्व-सेनाओं  
सहित (नः) यज्ञं उप याहि) हमारे यज्ञ, राज्य को प्राप्त हो । (अस्मिन्  
सवने मादयस्व) इस शासन में तू प्रसन्न हो, अन्त्यों को प्रसन्न कर ।



वीर पुरुषो ! आप लोग ( स्वस्तिभिः नः सदा पात ) पूर्ववत् । इति  
चतुर्दशो वर्गः ॥

[ ९३ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नि देवते ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् ।

२, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातम्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।

उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्टा ॥ १ ॥

भा०—जैसे ( वृत्र-हणा ) विघ्ननाशन करने वाले माता-पिता  
( नव-जातं शुचिं ) नये उत्पन्न उत्तम शुद्ध बालक को (जुषेताम्) प्रेम  
करते और ( धेष्टा वाजं उशते दत्तः ) पालक माता पिता बुभुक्षित को  
अन्न देते हैं वैसे ही हे ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवन् और तेजस्विन् अग्रणी  
नायको ! आप दोनों ( वृत्र-हणा ) बढ़ते शत्रुओं के नाशक होकर  
(शुचिम्) पवित्र व्यवहार वाले ( नवजातम् ) नये ही प्राप्त, (स्तोमं)  
स्तुतियोग्य प्रजा के अधिकार (अद्य) आज के समान सदा (जुषेताम्)  
प्रेम और उत्साह से प्राप्त करें । (ता) वे दोनों (धेष्टा) प्रजा, सैन्य,  
सभादि के अधिकार को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होकर  
(सद्यः) शीघ्र ही ( उशते ) कामना वाले प्रजाजन को ( वाजं ) अमि-  
लषित धन, अन्न, बल, ज्ञान आदि दें । ( उभाहि वां ) आप दोनों को  
ही मैं ( सु हवा ) सुख से, आदर सहित बुलाने योग्य ( जोहवीमि )  
स्वीकार करता हूँ, आपको आदर से निमन्त्रित करूँ । माता पिता  
दोनों ही इन्द्र और दोनों ही अग्नि हैं । वे सन्तान के बाधक कारणों  
का नाश करने से 'वृत्रहन्' हैं ।

ता सानुसी शवसाना हि भूतं साकुंवृथा शवसा शूशुवांसा ।

क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरैः पूतं वाजस्य स्थविरस्य घृज्वैः ॥ २ ॥



भा०—(ता) वे दोनों ( सानसी ) सेवा योग्य, दान दाता और ( शवसाना ) बलपूर्वक ऐश्वर्य भोगने वाले, ( साकं-बृधा ) एक साथ बुद्धि को प्राप्त और ( शवसा ) बल से ( श्लुवांसा भूतम् ) बढ़ते रहो और ( भूरे: यवसस्य ) बहुत से अन्न और ( रायः ) दान-योग्य धन पर ( क्षयन्तौ ) प्रभुत्व करते हुए ( भूरे: ) बहुत बढ़े ( स्थविरस्य ) चिर-स्थायी ( धृष्वे: ) शत्रुनाशक ( वाजस्य ) बल को ( पुक्तम् ) साथ मिलाये रखो ।

उपो ह यद्विदथं वाजिना गुर्धीभिर्विप्राः प्रमत्तिमिच्छमानाः ।  
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवन्तो नरस्ते ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जो मनुष्य ( वाजिनः ) संग्रामचतुर, ऐश्वर्यवान् और ( प्रमत्तिम् इच्छमानाः ) बुद्धि को चाहने वाले ( विप्राः ) बुद्धिमान् पुरुष ( धीभिः ) बुद्धियों, कर्मों द्वारा ( विदथं उपो अगुः ) ज्ञान, ऐश्वर्य और संग्राम को प्राप्त करते हैं ( ते ) वे ( नरः ) जन ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र अग्नि, विद्युत् अग्नि, आचार्य और अध्यापक, सभापति और सेनापति इन २ को ( जोहुवन्तः ) प्रमुख स्वीकार करते हुए, ( काष्ठां अर्वन्तः ) दूर २ देश की सीमा की ओर अश्व के समान आगे बढ़ते हुए ( काष्ठां ) काष्ठा, अर्थात् 'क' परम सुखमय 'आस्था' स्थिति को ( नक्षमाणाः ) प्राप्त करते हुए ( विदथं उपो गुः ) प्राप्तव्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं ।

गीर्भिर्विप्रः प्रमत्तिमिच्छमान इहे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।

इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्यैभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

भा०—(विप्रः) विद्वान् पुरुष ( गीर्भिः ) वेदवाणियों द्वारा ( प्र-मत्तिम् ) उत्तम ज्ञान ( इच्छमानः ) चाहता हुआ, ( पूर्व-भाजम् ) पूर्व विद्वानों से सेवित, ( यशसं ) यशोजनक ( रयिम् ) ज्ञानैश्वर्य की ( ईष्टे ) याचना करे और ( इन्द्राग्नी ) आचार्य एवं विद्वान् दोनों वीर नायकों के समान ( वृत्रहणा ) विघ्नों के नाशक ( सु-वज्रा ) पापादि के वर्जक उपदेश



एवं ज्ञान-रूप वज्र से युक्त होकर ( नव्येभिः देवैः ) नये से नये उप-  
देष्टव्य ज्ञानों द्वारा (नः प्र तिरतम्) हमें बढ़ावें ।

सं यन्मही मिथ्यती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।

अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥१५॥

भा०—(यत्) जब (मही) बड़ी २ (मिथ्यती) परस्पर ललकारती  
हुई (तनू-रुचा) शरीर के तेज से (स्पर्धमाने) एक दूसरे से बढ़ने की,  
दो स्त्रियों के समान स्पर्द्धालु दो सेनाएं ( शूर-साता ) वीरों के संग्राम  
में ( सं-यतेते ) विजय का यत्न करती हैं उनमें, हे इन्द्र, अग्नि ! वीरों  
और अग्रणी नायक जनो ! आप दोनों (विदथे) संग्राम में (देवयुभिः)  
वृत्तिदाता राजा के पक्ष वाले वीर पुरुषों के साथ मिलकर ( अदेवयुं )  
राजा के अप्रिय, शत्रु जन को ( सोमसुता जनेन ) अन्नादि के उत्पादक  
प्रजाजन के साथ मिलकर (वृत्रा हतम्) विघ्नकारी शत्रुओं को मारो ॥  
इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।

नू चिद्धि परिमन्नाथे अस्मान् वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवान् ! हे विद्वन् ! आप दोनों (नः)  
हमारे (इमाम्) इस ( सोम-सुतिम् ) अन्न आदि द्वारा किये यज्ञ की  
(सौमनसाय) उत्तम मन बनाये रखने के लिये (सु-आ-यातम्) आदर  
पूर्वक आइये । (नू चित् हि) आप कभी भी ( अस्मान् परि मन्नाथे )  
हमें त्याग कर अन्य को न मानें । मैं प्रजाजन (वां) आप दोनों को  
(वाजैः शश्वद्भिः) बहुत ऐश्वर्यों से (आ ववृतीय) सम्मानित करूं ।

सो अन्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।

यत्सीमार्गश्चकृमा तत्सु सृल तदर्थमादितिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! (सः) वह तू (एना नमसा) इस  
आदरयुक्त वचन और दुष्टों के नमाने वाले बल से ( सम्-इद्धः ) खूब

तेजस्वी होकर ( मित्रं वरुणं इन्द्रं ) स्नेहवान्, श्रेष्ठ, ऐश्वर्यवान् पुरुष को ( अच्छ वोचे: ) भली प्रकार कह कि ( सीम् ) हम (यत्) जो भी ( आगः चक्रम् ) अपराध करें तु (तत्) उसे (सु) भली प्रकार (मृड) न्याय पूर्वक देख । ( तत् ) उसको ( अयंमा ) न्यायकारी पुरुष और ( अदितिः ) सद्व्यवस्था को न दूटने देने वाला, पुरुष हम प्रजाजनों के उस अपराध को (क्षिप्रथन्तु) निमूल करें ।

एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।

मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परिरख्यन्तूयं पात स्वस्तिमिः सदा नः ८।१६

भा०—हे (अग्ने) अग्नी जन ! हम लोग ( एताः ) इन (इष्टीः) दातव्य करादि अंशों को ( आशुषाणासः ) शीघ्र देते हुए, (युवोः) तुम दोनों के (वाजान्) ऐश्वर्यों को ( सचा अभि अश्याम ) एक साथ भोग करें । ( इन्द्रः विष्णुः ) ऐश्वर्यवान् जन और व्यापक अधिकार वाले शासक तथा (मरुतः) बलवान् वीर पुरुष (नः परिरखन्) हमारी निन्दा न करें । ( यूयं नः स्वस्तिमिः सदा पात ) पूर्ववत् । इति षोडशो वर्गः ॥

### [ ९४ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ८, १० आर्षो निचृद् गायत्री । २, ४, ५, ६, ७, ९, ११ आर्षो गायत्री । १२ आर्षो निचृद्-नुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्यस्तुतिः । अभ्राद्वष्टिर्वाजनि ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् ! हे (अग्ने) अंग में झुकने हारे, विनयशील शिष्य जन ! (इयं) यह ( पूर्यस्तुतिः ) पूर्व पुरुषों से प्राप्त ज्ञानोपदेश (अस्य मन्मनः) इस ज्ञानी पुरुष का (वाम्) आप दोनों के प्रति ( अभ्रात् वृष्टिः इव ) मेंघ से वृष्टि तुल्य ( अजनि ) प्रकट हो ।



शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य और विनयशील पुरुषो ! आप दोनों ही, ( जरितुः ) उपदेष्टा जन के (हवम्) उपदेश को सुनो । (गिरः) वेद-वाणियों और (गिरः) उपदेष्टा जनों की ( वनतम् ) सेवा करो । (ईशाना) अधिक समर्थ होकर (धियः) सत्कर्मों और सद्-बुद्धियों को ( पिप्यतम् ) बढ़ाओ ।

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिर्शस्तये । मा नो रीरधतं निदे ३

भा०—हे (नरा इन्द्राग्नी) उत्तम नायको ! हे इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्य-वन् ! विद्यावन् ! नायक, नायिका जनो ! आप (नः) हमें (पापत्वाय) पाप कर्म के लिये ( मा रीरधतम् ) अपने अधीन मत रक्खो । (अभि शस्तये मा रीरधतम्) शत्रु द्वारा पीड़ित करने के लिये भी मत रक्खो, (निदे) निन्दित कर्म वा निन्दा करने वाले के लाभ के लिये भी हमें किसी के अधीन मत रक्खो ।

इन्द्र अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिभेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ४

भा०—हम लोग (अवस्यवः) ऐश्वर्यादि चाहते हुए, (इन्द्रे अग्नौ) शत्रुहन्ता और अग्निवत् तेजस्वी वर्गों में ( बृहत् नमः ) बड़ा आदर, बल और ( सु-वृक्तिम् ) शुभ वर्त्ताव, शत्रु, पापादि को वर्जने का बल और ( धिया ) बुद्धि और कर्म के द्वारा ( धेनाः ) वाणियों को (आ ईरयामहे) प्रेरित करें ।

ता हि शश्वन्त ईळंत इत्था विप्रांस कृतये ।

सबाधो वाजसातये ॥ ५ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (शश्वन्तः विप्रांसः) बहुत से विद्वान् पुरुष ( सबाधः ) पीड़ित होकर दुःख पीड़ा आदि की चर्चा संदेशादि लेकर (उतये) अपनी रक्षा और ( वाजसातये ) संग्राम करने के लिये (ता हि ईळते) उन दोनों इन्द्र, अग्नि को अध्यक्ष रूप से चाहते हैं ।

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।

मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—हम ( वपन्यवः ) विविध व्यवहारों वाले, ( प्रयस्वन्तः ) प्रयास वा उद्योगशील और अन्यो को ( सनिष्यवः ) वृत्तिदाता ( ता वां ) उन आप दोनों इन्द्र, अग्नि जनों की ही ( मेध-साता ) यज्ञ और संग्राम के लिये ( गीर्भिः ) नाना वाणियों से ( हवामहे ) बुलाते हैं । इति सप्तदशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।

मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥

भा०—हे ( चर्षणी-सहा ) मनुष्यों के बीच शत्रुओं को हराने वाले ( इन्द्राग्नी ) सूर्य और अग्नि के तुल्य नायको ! आप ( अस्मभ्यं ) हमारी ( अवसा ) रक्षा के सहित ( आ गतम् ) आओ । जिससे ( नः ) हम पर ( दुःशंसः ) दुष्ट वचन बोलने वाला, पुरुष ( मा ईशत ) अधिकार न करे ।

मा कस्य नो अरंरुषो धूर्तिः प्र ण्डमर्त्यस्य ।

इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) सूर्यवत्, अग्निवत् तेजस्विन् ! आप दोनों ( नः शर्म यच्छतम् ) हमें सुख दो । ( कस्य ) किसी भी ( अररुषः मर्त्यस्य ) रोगकारी मनुष्य की ( धूर्तिः ) हिंसा-चेष्टा ( नः मा प्र ण्डम् ) इस तक न पहुँचे ।

गोमद्विरणयवद्वसु यद्वामश्वादिमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥ ९ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) सूर्य-अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! हम ( यत् ) जो और जैसा भी ( वाम ईमहे ) आप दोनों से मांगते हैं ( तत् ) वह ( गोमत् ) गौओं, ( हिरण्यवत् ) सुवर्णादि बहुमूल्य पदार्थ और ( अश्वा-वद् ) अश्वों से सम्पन्न ( वसु ) धन ( वनेमहि ) प्राप्त करें ।



यत्सोम आ सुते नरं इन्द्राग्नी अजोहवुः । ससीवन्ता सपर्यवः ॥ १०

भा०—हे (ससीवन्ता) उत्तम अश्वों के स्वामी, (इन्द्राग्नी) विद्युत्, अग्निवत् तेजस्वी, शत्रुसंतापक जनो ! (यत्) जब (सोमे सुते) पुत्रवत् प्रिय 'सोम' अर्थात् ओषधि, अन्नादिवत् भोग्य राष्ट्र में (नरः) नायक लोग (सपर्यवः) शुभ्रूपा करते हुए ( आ अजोहवुः ) आदर से बुलाते हैं तब आप आइये ।

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।

आङ्गूषैराविवासतः ॥ ११ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (वृत्रहन्तमा) दुष्टों को खूब दण्ड देने वाले, ( उक्थेभिः ) उत्तम वेद-वचनों से ( आमन्दाना ) सबको प्रसन्न करते हैं, वे ( गिरा चित् ) वेद वाणी से और (आङ्गूषै) उत्तम स्तुति-वचनों, उपदेशों से (आ विवासतः) ज्ञानप्रकाश करते हैं ।

ताविदुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।

आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥ १२ ॥ १८ ॥

भा०—(तौ इद्) वे दोनों ही (दुःशंसं) कठोर भाषणकर्ता (दुर्विद्वांसं) दुर्गुणी, विद्यावान्, ( रक्षस्विनम् ) अन्यो के कार्यों में विघ्नकारी के सहायक, ( आभोगं ) चारों तरफ से भोग विलास में मग्न, (मर्त्यं) मनुष्य को ( हन्मना ) हननकारी हथियार से ( हतम् ) दण्ड दो और (उद-धिम्) जल धारक घट या तालाब के समान उसको भी (हन्मना हतम्) शस्त्र द्वारा नाश करो । जैसे घट या जलाशय को तोड़ या खोदकर जल से खाली किया जाता है वैसे ही दुष्ट को दण्ड देकर उसका सर्वस्व हरना चाहिये । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[ ९५ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, २, ४—६ सरस्वती । ३ सरस्वाम् देवता ॥ छन्दः—

१ पादनितृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, विराट् त्रिष्टुप् ॥

षडृचं सूक्तम् ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती ध्रुवामायसी पूः ।  
प्र बाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

भा०—पत्नी, स्त्री के कर्त्तव्य—जैसे ( सिन्धुः ) बहने वाली नदी (क्षोदसा सस्र) पानी से बहती है, ( आयसीः पूः ) लोहे के प्रकोट के तुल्य नगर की रक्षा करती, ( रथ्या इव ) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (प्र बाबधाना) मार्ग के वृक्ष, लतादि को उखाड़ती हुई, (अन्याः अपः च प्रबाबधाना) अन्य सब जल-धाराओं को बाधती हुई, मुख्य होकर ( याति ) आगे बढ़ती है वैसे ही ( सरस्वती ) ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्री ( धायसा ) बालक को पिलाने योग्य दूध ( क्षोदसा ) और अन्न से (प्रसस्र) प्रेम से प्रवाहित होती है । वह ( धरुणम् ) गृहस्थ-धारक और सबका आश्रय हो, वह ( आयसी पूः ) लोहे के प्रकोट के तुल्य दृढ़ एवं ( आ-यसी ) सब प्रकार से श्रम वाली और ( पूः ) परिवार की पालक हो । वह ( रथ्या इव ) रथ में लगे अश्वों के तुल्य दृढ़ और (महिना) स्व सामर्थ्य से ( विश्वाः अन्याः अपः ) अन्य आस जनों को ( सिन्धुः ) महानद के समान ( प्र बाबधाना ) दृढ़ सम्बन्ध से बांधती हुई (याति) जीवन-मार्ग पर चले ।

एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

नायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरैर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ २ ॥

भा०—जैसे ( नदीनां एका सरस्वती शुचिः ) नदियों में से एक अधिक वेग व जल वाली नदी ( गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती ) पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई ( नाहुषाय ) मनुष्य वर्ग के लिये (घृतं पयः दुदुहे) जल और अन्न प्रचुर मात्रा में देती है, वैसे ही (सरस्वती) ज्ञान वाली स्त्री ( नदीनाम् ) धनसम्पन्न स्त्रियों के बीच भी ( शुचिः ) शुद्ध चरित्र, रूप और वाणी वाली होकर ( एका चेत् ) अकेली ही सर्व प्रशस्त जानी जाय । वह ( गिरिभ्यः ) उपदेष्टा पिता आदि गुरुओं से



( आ समुद्रात् ) कामना-योग्य पति-गृह को ( यती ) प्राप्त होती हुई ( भुवनस्य ) समस्त लोकों को ( भूरेः रायः चेतन्ती ) अपना बहुत ऐश्वर्य बतलाती हुई, ( नाहुपाय ) सम्बन्ध में बांधने वाले पति के लिये ( धूर्त पयः ) स्नेह, दुग्ध, अन्न आदि की ( दुदुहे ) वृद्धि करे ।

स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।

स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥ ३ ॥

भा०—नरश्रेष्ठ का वर्णन—( सः ) वह ( नर्यः ) मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष ( यज्ञियासु ) परस्पर संग, दान-प्रतिदान द्वारा प्राप्त ( योषणासु ) स्त्रियों में ( वृषा ) वीर्य सेचन में समर्थ, ( वृषभः ) बलवान्, ( शिशुः ) सहसायी होकर ( वावृधे ) पुत्र, धन-धान्यादि से बढ़े । ( सः ) वह ( मघवद्भ्यः = मखवद्भ्यः ) याज्ञिकों और धनैश्वर्य-सम्पन्न राजादि के हितार्थ ( वाजिनं ) धन, ज्ञानादि से सम्पन्न पुत्र को प्रजावत् ( दधाति ) धारण करे । वह ( सातये ) पुत्र, धन, अन्न, ज्ञानादि के लाभ एवं संग्राम के लिये भी ( तन्वं ) शरीर वा आत्मा को ( वि मामृजीत ) यज्ञ, दान, ज्ञान, उपदेश, तप आदि उपायों से शुद्ध करे ।

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।

मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—( उत ) और ( स्या ) वह ( सरस्वती ) ज्ञान वाली विदुषी स्त्री, ( जुषाणा ) स्नेह करती हुई ( अस्मिन् यज्ञे ) इस यज्ञ में ( सु-भगा ) सौभाग्यवती होकर ( नः उप श्रवत् ) हमारी बात सुने । वह ( नमस्यैः ) नमस्कार योग्य ( मित-ज्ञुभिः ) परिमित-संकुचित जानुओं वाले, ज्ञातव्य पदार्थों के ज्ञाता पुरुषों के साथ ( इयाना ) प्राप्त होती हुई ( राया ) ऐश्वर्य ( चित् ) और ( युजा ) सहयोगी पति से तु ( सखिभ्यः ) स्व सखियों से ( उत्तरा ) अधिक उत्कृष्ट हो ।

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोमिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।

तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( सरस्वति ) ज्ञान-युक्त विदुषी ! ज्ञानमय प्रभो ! तू ( स्तोमं प्रति जुषस्व ) स्तुत्यवचन की प्रेम से स्वीकार कर । हम ( नमोमिः ) विनय-वचनों सहित ( युष्मत् आशुह्वाना ) तुमसे ग्राह्य पदार्थ लेते हुए ( तव प्रियतमे शर्मन् ) तेरे प्रियतम गृह में स्वयं को ( दधानाः ) रखते हुए ( वृक्षं न शरणं ) वृक्ष तुल्य शरण दायक ( उप स्थेयाम ) तेरे पास आये ।

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।

वध्रे शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ६।१६

भा०—हे ( सरस्वति ) विदुषि ! हे ( सुभगे ) भाग्यशालिनि ! ( अयम् वसिष्ठः ) यह ब्रह्मचारी ( ते ) तेरे लिये ( ऋतस्य द्वारौ ) सत्य ज्ञान, अन्न और धन के दो द्वारों को ( व्यावः ) प्रकट करता है । हे ( शुभ्रे ) शुभ चरित्र वाली ! तू ( स्तुवते ) गुणप्रशंसक, गुणग्राही जन को ( वाजान् ) ऐश्वर्यादि ( रासि ) दे । हे विद्वान् लोगो ! ( यूयं स्वस्तिभिः न पात ) पूर्ववत् ।

[ ९६ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३ सरस्वती । ४-६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिगृहती । ३ निचृत् पंक्तिः । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ आर्ची गायत्री ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।

सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥ १ ॥

भा०—हे ( वसिष्ठ ) विद्वन् ! तू ( रोदसी ) भूमि और सूर्य दोनों में नायक और ( नदीनाम् असुर्या ) नदियों में बलवती नदी के तुल्य समृद्ध प्रजाओं में बलशाली, प्रभु की ( बृहत् उ गायिषे ) बहुत स्तुति



कर । ( सुवृत्तिभिः ) स्तुति, ( स्तोमैः ) वेद-सूक्तों और यज्ञादि से ( सरस्वतीम् इत् महय ) जो अनादि काल से ज्ञान, सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह बहा रहा है उसे ( महय ) पूज ।

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।

सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—( यत् ) जिस ( ते ) तेरे ( महिना ) सामर्थ्य से ( पूरवः ) मनुष्य ( उभे ) दोनों को ( अधि क्षियन्ति ) प्राप्त करते हैं हे ( शुभ्रे ) उज्ज्वल रूप वाली सरस्वति ! ज्ञानमयी ! ( सा ) वह तू ( मरुत्सखा ) विद्वानों की मित्र ( अवित्री ) संसार की रक्षक होकर ( नः बोधि ) हमें ज्ञान दे और ( मघोनां ) ऐश्वर्यवान् जनों को ( राधः चोद ) धनादि दे ।

भद्रमिन्द्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती ।

गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

भा०—( भद्रा सरस्वती ) सबका कल्याण करने वाली वह परमेश्वरी ( वाजिनी-वती ) ऐश्वर्य, अन्नादि और सूर्यादि की स्वामिनी, विद्वानों की स्वामिनी और ( अकव-अरी ) कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाली होकर सबके लिये ( भद्रम् इत् कृणवत् ) कल्याण ही करती है । वही ( चेतति ) सबको ज्ञान देती है । वह ( जमदग्निवत् ) अग्नि के तुल्य ( गृणाना ) स्तुति की जाती है और ( वसिष्ठवत् ) सब में बसने वाले के तुल्य ( स्तुवाना ) स्तुति की जाती है ।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः । सरस्वन्तं हवामहे ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग ( जनीयन्तः ) भार्या रूप संतति जनक क्षेत्र की कामना वाले, ( पुत्रीयन्तः ) पुत्रों की कामना वाले, ( अग्रवः जु ) आगे बढ़ने वाले और ( सु-दानवः ) उत्तम दानशील पुरुष ( सरस्वन्तं ) उत्तम ज्ञानवान् प्रभु को ( हवामहे ) प्राप्त होते, पुकारते, उसी से याचना करते हैं ।

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतक्षुतः । तेभिर्नोऽविता भव ॥५

भा०—हे ( सरस्वः ) ज्ञान और बलशालिन् ! ( ते ) तेरे ( ये ) जो ( मधुमन्तः ) जल, अन्नादि युक्त, ( घृतक्षुतः ) स्नेह और जल प्रदाता ( उर्मयः ) उत्तम तरङ्गवत् उत्कृष्ट मार्ग से जाने वाले विद्वान्, सूर्य, मेवादि हैं ( तेभिः ) उनसे तू ( नः ) हमारा ( अविता ) रक्षक ( भव ) हो ।

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः ।

भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—( यः ) जो ( विश्व-दर्शतः ) समस्त जीवों के लिए दर्शनीय, सूर्य समान तेजस्वी है, उस ( सरस्वतः ) ज्ञानवान् प्रभु के ( पीपिवांसं ) सबके पोषक, ( स्तनं ) बालक का स्तन के समान पुष्टिदाता प्रभु का दूध ( भक्षीमहि ) सेवन करें और उसी की दी हुई ( प्रजाम्, इषम् ) सन्तान, अन्न आदि का सेवन करें । इति विंशो वर्गः ॥

[ ९७ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १ इन्द्रः । २, ४-८ बृहस्पतिः । ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पति । १० इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यज्ञे दिवो नृपदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।

इन्द्राय यत्र सर्वानानि सुन्वे-गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर इन्द्र ! ( यत्र ) जिस ( यज्ञे ) सर्वप्रद प्रभु के आश्रय ( देवयवः ) दिव्य शक्तियों की कामना करने वाले जन ( दिवः पृथिव्याः ) आकाश और भूमि पर के ( नृ-सदने ) मनुष्यों के रहने के स्थान में ( मदन्ति ) हर्ष लाभ करते हैं । ( च ) और ( वयः ) ज्ञानी पुरुष ( मदाय ) मोक्षानन्द के लिये ( यत्र ) जिस प्रभु के आश्रय स्थिर होकर



( प्रथमं गमन् ) श्रेष्ठ पद को पाते हैं उस ( इन्द्राय ) प्रभु के लिये मैं (सवनानि) उपासनाएं (सुन्वे) करूं ।

आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।

यथा भवेम मीळद्दुषे अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥२॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (पिता इव) पिता तुल्य (परावतः) दूर २ से, वा परम पद से ( दाता ) सब सुख ऐश्वर्यादि दाता है वह (बृहस्पतिः) ब्रह्माण्ड का पालक (नः) हमें ( आ महे ) सब प्रकार से देता है । हे (सखायः) मित्रो ! हम उस (मीळद्दुषे) ऐश्वर्य सुखों के वर्षक प्रभु के प्रति (यथा) जैसे हो (अनागाः भवेम) निरपराध हों, इसीलिये हम ( दैव्यानि अवांसि ) सर्वप्रकाशक प्रभु के दिये बलों, ऐश्वर्यों और-रक्षाओं को (आ वृणीमहे) चाहते हैं ।

तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्माणस्पतिं गृणीषे ।

इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्माणो देवकृतस्य राजा ॥३॥

भा०—(यः) जो ( देव-कृतस्य ) परमेश्वर रचित दिव्य पदार्थ, पृथिवी आदि ( ब्रह्माणः ) महान् ब्रह्माण्ड का ( राजा ) स्वामी है उस (महि) महान् (इन्द्रं) प्रभु को (दैव्यः) विद्वानों की ( श्लोकः ) स्तुति और (दैव्यः श्लोकः) प्रभु से प्राप्त 'श्लोक' अर्थात् वेदवाणी, ( सिषक्तु ) प्राप्त होती है, वह उसी का वर्णन करती है । ( तमु उ ज्येष्ठं ) उसी सर्वश्रेष्ठ, (सु-शेवं) सुखदाता, आनन्दकन्द ( ब्रह्माणः पतिम् ) ब्रह्माण्ड और वेद के पालक प्रभु की मैं ( हविर्भिः ) उत्तम वचनों से (गृणीषे) स्तुति करूं ।

स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।

कामो रायः सुवीर्यस्य तं दातृर्षज्ञो अति सञ्चतो अरिष्टान् ॥४॥

भा०—(यः) जो ( विश्व-वारः ) सबसे वरणीय है और जो सब संकटों को दूर करता है (सः) वह (प्रेष्ठः) प्रियतम, (बृहस्पतिः)



ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह (नः) हमारे (योनिं) एकत्र मिलने के स्थान हृदय-देश में (आ सदतु) अनुग्रह कर प्राप्त हो। वही परमेश्वर हमारी जो (सुवीर्यस्य रायः कामः) उत्तम बलयुक्त ऐश्वर्य की अभिलाषा है (तं) उस को (दात्) पूर्ण करता और (सश्रतः) प्राप्त होने वाले (अरि-ष्टान्) मृत्यु-लक्षणों से भी (अतिपपत्) पार करता है।

तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः।

शुचिक्रन्दं यजतं प्रस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(नः) हमारे (पुराजाः) पूर्व काल में नाना जन्मों में उत्पन्न (इमे) ये (अमृतासः) अविनाशी जीवगण (अमृताय) दीर्घ जीवन के लिये (अर्कम्) अन्न के समान (अमृताय) मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये (जुष्टं) प्रेम से सेवनीय (अर्कं) अर्चना-योग्य (तम्) उस परमेश्वर को (धासुः) धारण करें और (प्रस्त्यानां) गृहस्थों के समान देह-रूप गृहों में रहने वाले जीवों के (यजतम्) उपासनीय, (शुचिक्रन्दं) न्यायकर्ता के समान शुद्ध, निर्दोष वचन कहने वाले, (अनर्वाणम्) अश्वादि की अपेक्षा न करने वाले स्वयंगामी रथ तुल्य जगत्-सञ्चालक, (बृहस्पतिम्) बड़े २ सूर्यादि के भी पालक प्रभु की हम (हुवेम) स्तुति करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

तं शमासो अरुवासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति।

सहश्चिद्यस्य नीलवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

भा०—(सहवाहः अश्वाः यथा बृहस्पतिं वहन्ति) एक साथ चलने वाले अश्व जैसे बड़े सैन्य के स्वामी को अपने ऊपर धारते हैं वैसे ही (यस्य) जिस परमेश्वर का (सधस्थं) साथ रहना ही (नीलवत्) गृह के समान आश्रय देता और (सहः चित्) सब दुखों को सहन कराने में समर्थ बल है और जिसका (रूपं नभः न) रूप आकाश वा सूर्य के समान व्यापक और (अरुषं) तेजोमय है, (तं) उस प्रभु को, (वसानाः)



उसकी भक्ति में रहने वाले, (शम्भासः) आनन्दमग्न, शक्तिमान्, (अरु-  
 वासः) उज्ज्वल रूपयुक्त, सूर्यवत् प्रकाशमान (अश्वाः) विद्या-विज्ञान  
 में निष्णात पुरुष वा सूर्यादि लोक (सह-वाहः) एक साथ मिलकर  
 संसार यात्रा करते हुए (बृहस्पतिं वहन्ति) महान् ब्रह्माण्ड के पालक  
 प्रभु को अपने ऊपर धारण करते हैं।

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।  
 बृहस्पतिः स स्वविश ऋष्वः पुरु संखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

भा०—(सः हि) वह प्रभु ही (शुचिः) पवित्र, (शतपत्रः) शत-  
 दल कमल के समान उज्ज्वल, निस्संक्र है (सः शुन्ध्युः) वह सबको  
 शुद्ध करने वाला, (हिरण्य-वाशीः) हित, रमणीय वेदवाणी से युक्त,  
 (इषिरः) सबके चाहने योग्य, (स्वः-साः) सुखदाता है। (सः सु-  
 आवेशः) वह उत्तम रीति से विश्व में व्यापक, (ऋष्वः) महान्,  
 (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति, आत्मा नाम वाले जीवों के लिये  
 (पुरु आसुतिं) बहुत सा अन्न आदि ऐश्वर्य (करिष्ठः) उत्पन्न करने  
 वाला है, वही (बृहस्पतिः) जगत्-पालक बृहस्पति है। ऐसा ही राष्ट्र  
 का स्वामी भी हो। वह (शुचिः) ईमानदार, शुद्ध हो (शतपत्रः)  
 सैकड़ों रथों का स्वामी, (शुन्ध्युः) राज्य के कण्टकों का शोधक,  
 (हिरण्य-वाशीः) लोह आदि के चमकते शस्त्रास्त्रों वाला, (इषिरः)  
 सेना का सञ्चालक, (स्वर्षाः) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों  
 का दाता, (सु-आवेशः) सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट, (ऋष्वः) महान्  
 (सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्रों के लिये ऐश्वर्य का उत्पादक हो।  
 देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।  
 दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरां सुगन्धा ॥ ८ ॥

भा०—(देवी) ऐश्वर्यों के दाता (रोदसी) भूमि और आकाश,  
 (देवस्य महित्वा) सर्वप्रकाशक प्रभु के सामर्थ्य से (जनित्री) जगत्

को उत्पन्न करते हैं। वे दोनों ( बृहस्पति ) महान् जगत्-पालक प्रभु की महिमा को ही (ववृधतुः) बढ़ा रहे हैं। हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (दक्षाध्याय) महान् सामर्थ्य के स्वामी को (दक्षत) बढ़ाओ और जैसे ( सुतरा सुगाधा ब्रह्मणे करत् ) उत्तम, सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा अन्न उत्पत्ति की सहायक है वैसे ही (सुतरा) दुःख-सागर से सुख से तरा देने वाली उत्तम, ( सु-गाधा ) वेदवाणी ( ब्रह्मणे ) सामर्थ्यवान् परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ज्ञानोपदेश (करत्) करे।

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।  
 अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( ब्रह्मणस्पते ) वेद और राष्ट्र के पालक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! जीव ! (वां) आप दोनों की ( इन्द्राय वज्रिणे ) शक्तिशाली आत्मा की (इयं) यह (सुवृक्तिः) उत्तम स्तुति (अकारि) की है। आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम बुद्धियों, कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) देह के पुरवत् धारक जीवों को उपदेश करो। (वनुषां) कर्म-फल सेवन करने वाले जीवों के (अरातीः) सुखादि न देने वाले, बाधक (अर्यः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नष्ट करो।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्भूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः १०।२२

भा०—हे ( बृहस्पते ) महान् विश्व-पालक ! हे ( इन्द्रः च ) जीवात्मन् ! (युवम्) आप दोनों, ( दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः ) आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के (ईशाथे) प्रभु हो। आप दोनों (स्तुवते कीरये चित्) स्तुतिशील विद्वान् को (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य दो। हे विद्वान् जनो ! ( यूयं स्वस्तिभिः न सदा पात ) पूर्ववत् । इति द्वाविंशो वर्गः ॥



[ ९८ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-६ इन्द्रः ७ इन्द्रावृहस्पती देवेते ॥ छन्दः—१, २,  
६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ षट्चं  
सूक्तम् ॥

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।

गौराद्वेदीयां अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ के इच्छुक दयाशील प्रजाजनो ! आप  
लोग (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (वृषभाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (अरुणं)  
कभी न रुकने वाले, (दुग्धम्) दूध के तुल्य, समस्त भूमि-भागों से  
प्राप्त (अंशुम्) अन्नादि का अंशभाग करवत् (जुहोतन) दो । (सुत-  
सोमम् इच्छन्) अभिषेक द्वारा प्राप्ति योग्य ऐश्वर्य का इच्छुक, (इन्द्रः)  
शत्रुहन्ता राजा, (गौरात्) भूमि में रमण करने वाले प्रजाजन से  
(अवपानं वेदीयान्) प्रजा-पालन का वेतन प्राप्त करता हुआ (विश्वाहा  
इत् याति) सदा प्राप्त हो ।

यदधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।

उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान् ॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (प्र-दिवि) उत्तम तेज  
होने पर (चार्वन्नं दधिषे) उत्तम अन्न को पुष्ट करता है, (दिवेदिवे)  
दिनो-दिन जलपान के समान (अस्य पीतिम् इत् वक्षि) इस राष्ट्र के  
पालन और उपभोग की कामना कर । (उत) और (हृदा उत मनसा)  
हृदय और मन से राष्ट्र को (जुषाणः) सेवन करता और (उशन्) निरन्तर  
चाहता हुआ (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) प्राप्त ऐश्वर्यों और सोम्य वीरों  
की रक्षा कर ।

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

एन्द्रं पप्राथेर्वान्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३ ॥

भा०—विजिगीषु राजा का कर्त्तव्य । हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! तू (जज्ञानः) प्रकट होकर (सहसे) शत्रुविजयी बल को बढ़ाने के लिये (सोमं) ऐश्वर्यमय राष्ट्र को (पपाथ) पालन कर और (माता) जगत्-उत्पादक भूमि माता ( ते महिमानम् ) तेरे सामर्थ्य को (प्र उवाच) उत्तम रीति से कहे । हे (इन्द्र) सेनानायक ! तू (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष को ( युधा ) युद्ध-साधनों से (अ पप्राथ) विस्तृत कर और (देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) विजयेच्छुक सैनिकों के लिये धन उत्पन्न कर ।

यद्योधया महतो मन्यमानान्साक्षाय तान्बाहुभिः शाशदानान् ।

यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

भा०—(यत्) जब तू (महतः) बड़े २ ( मन्यमानान् ) अभिमानी शत्रुओं को ( योधयाः ) हमसे लड़ा और हम ( शाशदानान् ) मारते हुए (तान्) उनको ( बाहुभिः ) बाहुओं से (साक्षाय) पराजित करें । (वा) और (यत्) जब हे (इन्द्र) सेनापते ! तू ( नृभिः वृतः ) वीर नायकों से घिर कर ( अभियुध्याः ) शत्रुओं का सामना करे तब हम (त्वया) तेरे बल से (तं) उस ( सौश्रवसं आनि ) कीर्ति-जनक संग्राम को जीतें ।

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।

यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्व ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता सेनापति के (प्रथमा) मुख्य (कृतानि) कर्त्तव्यों को मैं ( प्र-वोचम् ) कहता हूँ । ( मघवा ) ऐश्वर्यवान् (या) जिन (नूतना) नये २ कार्यों को (चकार) करे, उनको (प्र वोचं) अच्छी प्रकार कहूँ । (यत्) जब वह ( अदेवीः मात्राः ) दुष्ट पुरुषों के कपट-



कृत्यों को भी ( असहिष्ट ) पराजित करे (अथ) अनन्तर (सोमः) यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र ( केवलः ) केवल ( अस्य अभवत् ) उसी के अधीन हो जाता है ।

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।

गवामसि गोपतिरेकं इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! राजन् ! (यत्) जो तू (सूर्यस्य चक्षसा) सूर्य के प्रकाश से (पश्यसि) देखता है, इसलिये ( इदं विश्वम् ) यह समस्त विश्व (अभितः) सब तरफ (तव) तेरे ही (पशव्यं) 'पशव्य' अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य है । तू ( गवाम् गोपतिः असि ) सब वाणियों, भूमियों और सूर्यादि लोकों का गो पालक के समान स्वामी है । ( प्रयतस्य ) सर्वोत्कृष्ट सञ्चालक तेरे ही दिये (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करें ।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।

धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२३

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ९७ । १० ॥ इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

## [ ९९ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १-३, ७ विष्णुः । ४-६ इन्द्राविष्णु देवते ॥ छन्दः—

१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ।

सप्तचं सूक्तम् ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।

उमे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१॥

भा०—हे (वृधाना) सबसे बड़े ! वा जगत् के बढ़ाने वाले ! (विष्णो) सर्वव्यापक ! ( तन्वा ) जगत् को फैलाने वाले, ( मात्रया ) जगत् को बनाने वाली प्रकृति से भी (परः) उत्कृष्ट (ते) तेरी (महि-



त्वम्) महिमा को कोई भी ( न अनु अनुवन्ति ) पा नहीं सकते । हे (देव) सर्वप्रकाशक ! ( पृथिव्याः ते ) संसार के विस्तारक तेरे ही बनाये इन (उभे) दोनों (रजसी) सूर्य, पृथिवी, वा आकाश और भूमि लोकों को (विद्य) जानते हैं । तू (अस्य) इससे भी (परम्) उत्कृष्ट तत्व को (वित्त्वे) जानता है ।

न ते विष्णो जायमानो न ज्ञातो देवं महिम्नः परमन्तमाप ।

उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थं प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२॥

भा०—हे ( विष्णो ) जगदीश्वर ( न जायमानः ) न उत्पन्न होता हुआ और (जातः) उत्पन्न हुआ कोई (ते महिम्नः) तेरे महान् सामर्थ्य की (परम् अन्तम्) परली सीमा को ( न आप ) प्राप्त नहीं कर सका है । हे (देव) सर्वप्रकाशक ! तू ( बृहन्तं ) बड़े भारी, ( ऋष्वं ) महान् (नाकम्) दुःख-रहित, मोक्ष धाम और आकाश को ( उत् अस्तभ्नाः ) उठा रहा है और (पृथिव्याः) पृथिवी की ( प्राचीं ककुभं ) प्राची दिशा को जैसे सूर्य प्रकाशित करता है वैसे ही तू (पृथिव्याः) जगत् की फैलाने वाली प्रकृति को ( प्राचीं ककुभम् ) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विद्वति भाव को (दाधर्थं) धारण कराता है ।

इरावती धेनुमती हि भूतं सूर्यवसिनी मनुषे दशस्या ।

व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णावेते दाधर्थं पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३॥

भा०—हे ( द्यावापृथिव्यौ ) आकाश और भूमि, सूर्य और भूमि ! तुम दोनों (इरा-वती) जलों, अक्षों से युक्त तथा ( धेनुमती ) रसपान कराने वाली, गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त और (मनुषे) मनुष्य के लिये (सु-यवसिनी) उत्तम अन्न वाली और (दशस्या) सुख देने वाली (भूतम्) होवो । हे (विष्णो) प्रभो ! तू (एते रोदसी) इन पृथ्वी और



आकाश को ( वि अस्तन्नाः ) विशेष रूप से थामे है, तृ ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( अभितः ) सब ओर से ( मयूखैः ) किरणों से ( दाधर्थ ) धारण किये है ।

उरुं यज्ञाय चक्रथुः लोकं जनयन्ता सूर्यमुपासमग्निम् ।  
दासस्य चिद्वषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥ ४ ॥

भा०—हे ( नरा ) नायको ! हे स्त्री-पुरुषो ! हे ( इन्द्र-विष्णू ) विद्युत्, जल को वर्षाने हारे, सूर्य वा पवन के समान लोकोपकारक जनो ! जैसे विद्युत् तथा मेघ को वर्षाने वाले तुम दोनों मिलकर (सूर्यम्) सूर्य, (उपासम्) और उसकी दाहिका ताप शक्ति को (जनयन्ता) उत्पन्न करते हुए ( यज्ञाय ) तत्त्वों के परस्पर मिलने के लिये (उरुं लोकं चक्रथुः) विशाल स्थान अन्तरिक्ष को उपयोगी बनाते हो और ( वृषशिप्रस्य दासस्य ) वर्षक जल-स्वरूप जल वाले मेघ की (मायाः) नाना रचनाओं को (पृतनाज्येषु) जलों के निमित्त आघात करते वैसे ही आप दोनों, (सूर्यम्) सूर्य तुल्य तेजस्वी और (उपासम्) उषा के तुल्य कान्तियुक्त विदुषी और (अग्निम्) अग्नि तुल्य ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रकट करते हुए ( यज्ञाय ) परस्पर दान, प्रतिदान, सत्संगादि के लिये ( उरुं लोकं चक्रथुः उ ) विशाल गृहादि स्थान बनाओ और ( पृतनाज्येषु ) संग्रामों में (वृष-शिप्रस्य) बलवान् नेता वाले (दासस्य) प्रजानाशक शत्रु जन की ( मायाः ) कुटिल चालों का (जघ्नथुः) नाश करो ।

इन्द्राविष्णू दंष्टिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्रथिष्टम् ।  
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अमृत्यसुरस्य वीरान् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्राविष्णू ) ऐश्वर्यवान् ! हे व्यापक शक्तिशालिन् ! आप दोनों ( शम्बरस्य ) शान्ति-सुख-नाशक शत्रु के ( नव नवतिं च पुरः ) ९९ नगरियों, प्रकारों को (श्रथिष्टम्) नाश करो । (असुरस्य)



बलवान् शत्रु के (अप्रति) बेजोड़, ( शतं सहस्रं च बर्चिनः वीरान् ),  
सौ हजार तेजस्वी वीरों को (साक हथः) एक साथ दण्डित करो ।

इयं मनीषा वृहती वृहन्तोरुक्रमा त्वसां वर्धयन्ती ।  
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनैष्विन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक वीर ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (इयं)  
यह (वृहती) बड़ी, ( मनीषा ) मन की प्रेरक शक्ति, ( उरुक्रमा ) बड़े  
पराक्रमी (वृहन्ता) बड़े सामर्थ्यवान् (वां) आप दोनों को ( त्वसा )  
बल से (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई ( विदथेषु ) संग्रामों में (स्तोमं ररे)  
उत्तम संघ-बल देती है । आप दोनों ( वृजनेषु ) शत्रु नाशक प्रयाण-  
कारी बलों में (इषः पिन्वतम्) तीव्र प्रेरणाएं दो ।

वषट् ते विष्णावांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।  
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरों मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥२४

भा०—हे ( विष्णो ) व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे ! नियमों में  
बद्ध ! (ते) तेरा (आसः) स्थापन (वषट्) सत्कार-पूर्वक (आकृणोमि)  
करता हूँ । हे (शिपिविष्ट) तेजों से युक्त ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (मे)  
मुझ राष्ट्र जन का (तत् हव्यम् जुषस्व) वह उपायन, भेंटादि स्वीकार  
कर (त्वा) तुझे (मे) मेरी ( सु-स्तुतयः गिरः ) स्तुति में विद्वान् जन  
(वर्धन्तु) बढ़ावें । हे विद्वान् पुरुषो ! ( यूयं सदा स्वस्तिभिः नः पात )  
पूर्ववत् । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ १०० ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ विष्णुदेवता छन्दः—१, २, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ।

३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ अर्षी त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्थो विष्णाव उरुगायाय दाशत् ।  
प्र यः सूत्राच्चा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥ १ ॥



भा०—(यः) जो (मत्तः) मनुष्य, (सनिष्यन्) दान देने की इच्छा से (दयते) दान देता, दया करता है वही ( उरु-गायाय ) बहुतों से स्तुतियोग्य (विष्णवे) परमेश्वर के निमित्त ( दाशत् ) दान करे ! (यः) जो मनुष्य (सन्नाचा मनसा) सत्यनिष्ठ मन से (प्र यजाते) दान करता वा देव पूजा करता है वह (एतावन्तं) उतना ही (नयम्) मनुष्यों के हित की ( आ विवासत् ) सेवा करता है ।

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्त्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः ।

पक्षी यथा नः सुचितस्य भूरेरेश्वावतः पुरुचन्द्रस्य रायः ॥ २ ॥

भा०—हे ( विष्णो ) व्यापक प्रभो ! (त्वे) तू (विश्वजन्त्या) सब जनों की हितकारिणी, ( अग्रयुताम् ) सबके साथ मिली हुई, (सुमतिं मतिम्) उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि को ( दाः ) दे । (यथा) जिससे, (नः) हमारे ( सुचितस्य ) उत्तम रीति से प्राप्त ( भूरेः अश्वावतः ) बहुत से अश्वों से युक्त, ( पुरु-चन्द्रस्य ) बहुतों के आह्लादकारी ( रायः ) ऐश्वर्य का (पक्षः) सम्पर्क हो ।

त्रिदेवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।

प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

भा०—(देवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ने (महित्वा) महान् सामर्थ्य से ( एतां ) इस ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( त्रिः ) तीन प्रकार से ( शत-अर्चसम् ) सैकड़ों दीप्ति युक्त पदार्थों से पूर्ण (वि चक्रमे) बनाया है । सूर्य, विद्युत्, आग्नि से पृथ्वी को सहस्रों चमकते पदार्थों का भण्डार बनाया है । वह ( तवसः तवीयान् ) बलवान् से बलवान् (विष्णुः) प्रभु ( प्र अस्तु ) सबसे उत्तम है । उस (स्थविरस्य) नित्य प्रभु का (नाम) नाम, स्वरूप और शासन सूर्य-प्रकाश के समान (त्वेषं हि) तेजोमय और उज्ज्वल है ।



वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।

ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥

भा०—(एषः) वह (विष्णुः) व्यापक परमेश्वर (एतां पृथिवीम्) इस पृथिवी को (मनुषे दशस्यन्) मनुष्यों को दान देता हुआ (क्षेत्राय) निवास करने के लिये ( वि चक्रमे ) विविध प्रकार का बनाता है । (अस्य) इसकी (कीरयः) स्तुति करने वाले (जनासः) जन्तु, आत्मगण (ध्रुवासः) नित्य हैं । वह पृथ्वी को ( उरु-क्षितिम् ) बहुत जीवों से बसने योग्य और ( सुजनिम् ) उत्तम रीति से जन्तुओं, अन्नादि, वनस्पतियों को उत्पादक (आ चकार) बनाता है ।

प्र तत्तै अद्य शिपिविष्ट नाम्नायः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।

तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥५॥

भा०—हे (शिपिविष्ट) सूर्य तुल्य रश्मियों से आवृत ! तू (अयं) सबका स्वामी, (वयुनानि) सब कर्मों को ( विद्वान् ) जानने हारा है । (तत्) जो तेरे ही (नाम) स्वरूप और ( वयुनानि ) कर्मों की (अद्य) आज मैं (शंसामि) स्तुति करता हूँ । मैं (अतव्यान्) अल्पशक्ति मनुष्य, ( त्वा तवसं ) तुझ बलवान् की स्तुति करता हूँ और ( अस्य रजसः पराके) इस विश्व के परे विद्यमान, महान् से महान् (त्वा तं गृणामि) उस तेरी मैं प्रार्थना करता हूँ ।

किमिच्छे विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्वक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।

मा वर्षो अस्मदपं गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे वभूथ ॥ ६ ॥

भा०—(ते) तेरा ( किम् इत् ) कौनसा रूप ( परिचक्ष्यं भूत् ) कथन-योग्य है (यत्) जिसको तू ( वक्षे ) स्वयं बता रहा है कि मैं ( शिपिविष्टः अस्मि ) रश्मियों में प्रविष्ट, उनसे घिरे सूर्य तुल्य तेजोमय हूँ । (अस्मत्) हमसे अपने (एतत्) उस तेजोमय (वर्षः) रूप को



(मा अप गूह) मत छिपा । (यत्) क्योंकि तू (समिथे) मिलने पर  
(अन्यरूपः बभूथ) दूसरे रूपों में प्रकट होता है ।

वषट् ते विष्णवांस आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।  
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरौ मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२५।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ९९ । ७ ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥  
इति षष्ठोऽध्यायः ॥

### अथ सप्तमोऽध्यायः

[ १०१ ]

वसिष्ठ कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप् ।  
२, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्बुद्धे मधुदोधमूधः ।  
स वत्सं कृणवन्गर्भमोषधीनां सद्यो ज्ञातो वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—जैसे (वृषभः) वरसता मेघ (रोरवीति) गर्जता है (ज्योति-  
रग्राः वाचः वदति) प्रथम विद्युत् को चमका कर बाद में गर्जना  
करता है और ( ऊधः मधुदोधम् बुद्धे ) अन्तरिक्ष से जल को दोहता  
है और (ओषधीनां गर्भं कृणवन्) ओषधियों को गर्भित करता है वैसे ही  
हे विद्वन् ! तू (ज्योतिरग्रा) ज्ञान-ज्योतियों से युक्त (तिस्रः वाचः) तीनों  
वेदवाणियों-यजुष, ऋग् और साम को (प्र वद) उपदेश कर (याः)  
जिनसे (वृषभः) मनुष्यों में श्रेष्ठ जन (एतत् ऊधः) इस ऊर्ध्वस्थित  
ब्रह्म से (मधु-दोधम्) ऋग्वेदमय ज्ञान-रस को (बुद्धे) दोहन करता  
है (सः) वह (ओषधीनां) अन्नादि के ग्रहण करने वाले (वत्सं) छोटे

बच्चे के समान बालक को अपना ( वत्सं कृण्वन् ) शिष्य बना कर (सद्यः) शीघ्र ही ( जातः ) स्वयं प्रकट होकर ( रोरवीति ) उपदेश करता है ।

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।  
स त्रिधातुं शरणं शर्म यंसन्निवर्तु ज्योतिः स्वमिष्ट्यस्मे ॥२॥

भा०—( ओषधीनां वर्धनः ) ओषधियों को बढ़ाने वाला, (अपां वर्धनः) जलों को बढ़ाने वाला, मेघवत् सूर्यवत् (देवः) प्रकाश, जल का दाता (विश्वस्य जगतः ईशे) सब जगत् का स्वामी है । वह (त्रिधातुं ज्योतिः यंसत्) तीनों क्रतुओं में सुखप्रद प्रकाश देता है वैसे ही (यः) जो (देवः) प्रभु (ओषधीनां वर्धनः) उष्णता के धारक जीवों को बढ़ाने वाला, (यः) जो (अपां वर्धनः) जलचारी जीवों को बढ़ाने वाला और (यः) जो ( विश्वस्य जगतः ) समस्त जगत् का ( ईशे ) स्वामी है । (सः) वह परमेश्वर (अस्मे) हमें (सु-अभिष्टिः) सुख से चाहने योग्य (त्रिवर्तु ज्योतिः) त्रिविध ज्ञानदाता वेदमय प्रकाश और (त्रि-धातु) तीन धातु सुवर्णादि से बने ( शरणं ) गृह और तीन धातु वात, पित्त, कफ से बने शरणयोग्य देह और (त्रिवर्तु) तीनों कालों में वर्तने वाला सुख (यंसत्) दे ।

स्तरीरं त्वद्भवति सूतं उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः ।

पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

भा०—(त्वत्) मेघ का एकरूप (स्तरीः उ) न प्रसवने वाली गौ तुल्य होता है, ( सूते त्वत् ) और उसका एक रूप प्रसवशील गौ के तुल्य जल-धाराएँ उत्पन्न करता है । (एषः यथावशं तन्वं चक्रे) वह सूर्य-कान्ति के अनुसार अपना व्यापक रूप बना लेता है । वह (पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति) सूर्य रूप पिता से जल ग्रहण करता और (तेन) उससे ( माता ) पृथिवी भी जल ग्रहण करती है । (तेन) उस जल से



(पिता वर्धते) सूर्य महिमा से बढ़ता और ( तेन पुत्रः वर्धते ) उसी जल से पुत्रवत् ओषधि वनस्पति तथा जीवादि भी बढ़ते हैं। वैसे ही हे प्रभो ! (त्वत्) तेरा एक रूप ( स्तरीः भवति उ ) सर्वाच्छादक होता है और (त्वत्) दूसरा रूप ( सूते उ ) जगत् को उत्पन्न करता है। ( यथावशं ) जितनी इच्छा होती है उतना ही ( एषः ) वह परमेश्वर (तन्वं) अपना विस्तृत संसार (चक्रे) बनाता है। (माता) जैसे माता (पितुः) पिता से ( पयः प्रतिगृह्णाति ) वीर्य ग्रहण कर गर्भ धारण करती है और उससे ( पिता पुत्रः वर्धते ) पिता का वंश, पुत्र बढ़ता है। वैसे ही ( पितुः ) सर्वपालक पिता से ही ( माता ) सर्वनिर्मात्री प्रकृति (पयः) वीर्य, शक्ति को (प्रति गृह्णाति) प्रति सर्ग ग्रहण करती है और (तेन) उससे ही ( पिता ) प्रभु-महिमा ( वर्धते ) बढ़ती है।

यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुस्त्रिस्तो द्यावस्त्रेधा सद्गुराणः ।

त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्रोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोक, (तस्थुः) स्थित हैं, ( यस्मिन् तिस्रः द्यावः ) जिसके आश्रय तीनों लोक पृथ्वी, आन्तरिक्ष और सूर्य स्थित हैं। (यस्मिन्) जिसका आश्रय लेकर ( आपः त्रेधा सद्गुः ) जल तीन प्रकार से गति करते हैं, पृथिवी से वाष्प बनकर ऊपर उठते हैं, मेघ से जल बन कर नीचे आते और समुद्र से वायु के बल पर भूमि पर आते हैं और ( यस्मिन् ) जिसके आश्रय (त्रयः कोशासः) तीन कोश (मध्वः उप-सेचनासः) जल वर्षक मेघों के समान मधुर आनन्द की वर्षा करने वाले होकर (विरप्शम् अभितः) उस महान् के चारों ओर (श्रोतन्ति) गति करते हैं। अध्यात्म में तीन कोश-विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय। सूर्य में तीन कोश-क्रोमोस्फीयर फोटोस्फीयर और उद्गजन। यह सब कर्म उसी महान् प्रभु के ही अधीन हो रहे हैं।



इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।

मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥ ५ ॥

भा०—(इदं वचः) यह वचन (स्वराजे) स्वप्रकाशस्वरूप, (पर्जन्याय) सब रसों के दाता प्रभु के लिये (हृदः अन्तरं अस्तु) हृदय के भीतर हो । (तत्) उस स्तुति-वचन को प्रभु (जुजोषत्) स्वीकार करे (अस्मे) हमारे सुख के लिये (मयः-भुवः वृष्टयः शन्तु) सुखदात्री वृष्टियां सदा हों और (सुपिप्पलाः) उत्तम फलयुक्त (देव-गोपाः) मेघ-द्वारा रक्षित (ओषधीः) ओषधियों भी (मयः-भुवः सन्तु) सुखकारी हों ।

पर्जन्यः—पर्जन्यस्तृपेः आद्यन्त विपरीतस्थ । तर्पयिता जन्यः परो जेता वा । जनयिता वा । प्रार्जयिता वा रसानाम् । निर० ।

स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगत्तस्थुषश्च ।

तन्म श्रुतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥१

भा०—(सः) वह परमेश्वर (रेतोधाः) प्रकृति देवी में विश्व के उत्पादक परम बीज, तेज को आधान करने वाला (शश्वतीनां वृषभः) मेघ तुल्य सुखों का वर्षक, गौओं में सांड के समान पृथिवियों में जीवों का बीज बोने वाला है, (तस्मिन्) उसके ही आश्रय (जगतः तस्थुषः च आत्मा) जंगम और स्थावर संसार का आत्मा या सत्ता विद्यमान है । (तत् कृतं) वह ज्ञानमय परमेश्वर (मे शतशारदाय पातु) मेरे जीवन को सौ वर्षों तक पालन करे । हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) पूर्ववत् । इति प्रथमो वर्गः ॥

[ १०२ ]

वसिष्ठ कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ याजुषी

विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचूत त्रिष्टुप् । द्वयुचं सूक्तम् ॥

पर्जन्याय प्र गांयत दिवस्पुत्राय मीळहुषे ।

स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥



भा०—हे विद्वान् लोगो ! (दिवः पुत्राय) सूर्य से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र व ( मीढुवे ) सेचन करने में समर्थ, ( पर्जन्याय ) जल दाता मेघ सदृश ज्ञान-प्रकाश से बहुतों के रक्षक और हृदय में आनन्द के सेचक, ( पर्जन्याय ) सब रसों के दाता, सबके उत्पादक, परमेश्वर के लिये ( प्र गायत ) अच्छी प्रकार स्तुति करो । (सः) वह (नः) हमें (यव-सम्) अन्नादि देना (इच्छतु) चाहे ।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।

पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो ( ओषधीनाम् ) मेघ तुल्य ओषधियों, (गवाम्) गौओं, (अर्वताम्) अश्वों और ( पुरुषीणाम् ) मानव स्त्रियों के (गर्भम् कृणोति) गर्भ उत्पन्न करता है, वही (पर्जन्यः) सर्वोत्पादक प्रभु है ।

तस्मा इवास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तम् ।

इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥ २ ॥

भा०—जो परमेश्वर वा गुरु (नः) हमारे (आस्ये) मुख में (इडाम्) वाणी को (संयतं) सुनियन्त्रित (करत्) करता है (तस्मै इत्) उसी के गुणगान के लिये (आस्ये) मुख में ( मधुमत्-तमम् ) अत्यन्त मधुर गुण युक्त (हविः) वचन (जुहोत) धारण करो । ऐसे ही जो प्रभु मेघ तुल्य (नः इडां संयतं करत्) हमें नियम से अन्न देता है उसके लिये मधुर हवि को ( आस्ये ) छिन्न भिन्न करके दूर तक फैला देने वाले अग्नि में (हविः) मधुर अन्नादि चक्षु प्रदान करो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[ १०३ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मण्डूका देवताः ॥ छन्दः—१ आर्षी अनुष्टुप् । २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । वृचं सूक्तम् ॥



संवत्सरं शशयानां ब्राह्मणां व्रतचारिणः ।

वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूकां अवादिषुः ॥ १ ॥

भा०—जैसे ( संवत्सरं शशयानाः ) वर्ष भर पड़े रहने वाले (मण्डूकाः) जलवासी मेंढक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं प्र अवादिषुः) मेघ से दी हुई वाणी को खूब ऊंचे २ बोलते हैं वैसे ही (व्रत-चारिणः) व्रत का आचरण करने वाले (संवत्सरं शशयानाः) वर्ष भर तप करते हुए (ब्राह्मणाः) 'ब्रह्म', वेद के जानने वाले, वेदज्ञ, विद्वान् जन (मण्डूकाः) ज्ञान, आनन्द में मग्न होकर (पर्जन्य-जिन्वितां) प्रभु की दी हुई (वाचं) वेद वाणी का ( प्र अवादिषुः ) उत्तम रीति से प्रवचन किया करें ।

दिव्या आपो अभि यदेतमायुन्दति न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥ २ ॥

भा०—(इति शुष्कं न) सूखे चर्म-पात्र के तुल्य (सरसि शयानं) तालाब में पड़े ( एनम् ) इस मण्डूक को ( दिव्या आपः ) आकाश के जल ( यद् अभि आयन् ) जब प्राप्त होते हैं तब ( मण्डूकानां वग्नः ) मेंढकों का शब्द (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछड़े वाली गौओं के शब्द के तुल्य ही (सम् एति) आता है वैसे ही ( शुष्कं इति न ) सूखे चर्म-पात्र के तुल्य (सरसि) ज्ञानमार्ग में (शयानम्) तप करते हुए (एनम् प्रति अभि) इस ब्राह्मण वर्ग को ( दिव्याः आपः ) परमेश्वर से प्राप्त होने वाली ज्ञान-वाणियां वर्षा-जल के तुल्य ही ( आयन् ) प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां) ज्ञान में मग्न विद्वानों का ( वग्नः ) उपदेश और ( वत्सिनीनाम् ) नियम से ब्रह्मचर्यवास करने वाले शिष्यों से युक्त (गवाम् मायुः) वेद-वाणियों की ध्वनि भी (अत्र) इस लोक में (सम् एति) अच्छी प्रकार सुनाई देती है ।

यदमिनां उशतो अभ्यवर्षी नृप्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।

अक्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥ ३ ॥



भा०—(उशतः) वर्षा को चाहने वाले और (तृष्यावतः एनान्) प्यासे इनके प्रति (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा काल आ जाने पर (अभि-  
अवर्षीत्) मेघ वर्षता है, (पुत्रः पितरं न) पिता के प्रति पुत्र के तुल्य  
(वदन्तस् अन्यस् अन्यः उप एति) बोलते एक मेंडक के पास दूसरा  
जैसे आ जाता है वैसे ही (आगतायां प्रावृषि) वर्षाकाल आने पर (यद्-  
ईम्) जब भी (उशतः) विद्या के इच्छुक और (तृष्यावतः एनान्) ज्ञान-  
पिपासा से युक्त इन शिष्यों के प्रति विद्वान् पुरुष मेघ के तुल्य (अभि-  
अवर्षीत्) ज्ञान-वर्षा करता है तब (वदन्तस् अन्यस् उप) उपदेश करते  
हुए एक के पास (अन्यः) दूसरा शिष्य (पुत्रः पितरं न) पिता के पास  
पुत्र के तुल्य ही (अखलीकृत्य) विनम्र होकर (उप एति) आता है  
और ज्ञान प्राप्त कराता है ।

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।

मगद्वको यदभिदृष्टः कनिष्कन्पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥४॥

भा०—जैसे (अपां प्रसर्गे) जलों के खूब हो जाने पर (यत् अम-  
न्दिषाताम्) जब दो मेंडक प्रसन्न हो जाते हैं (अन्यः अन्यस् अनु-  
गृभ्णाति) एक दूसरे को पकड़ लेता है, (कनिष्कन् मंडकः पृश्निः हरि-  
तेन वाचं सम्पृङ्क्ते) पीला, कूदता मेंडक हरे मेंडक से अपनी आवाज  
मिलाता है वैसे ही (यत्) जब (अपां प्रसर्गे) आस वेदज्ञानों के देने  
के लिये गुरु शिष्य दोनों (अमन्दिषाताम्) प्रसन्न हो जाते हैं (एनोः)  
इन गुरु और शिष्य में से (अन्यः) एक, गुरु, (अन्यस्) दूसरे को  
(अनुगृभ्णाति) अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करता है और (यत्) जो (अभि-  
वृष्टः) अभिषेचित विद्याव्रत-स्नातक (मगद्वकः) हर्षवान् होकर (कनिष्कन्)  
विद्या प्रदान करता है तब (पृश्निः) वेद का विद्वान् (हरितेन) ज्ञान-  
ग्राहक शिष्य से (वाचम् संपृक्ते) अपनी वाणी का सम्पर्क कराता है,  
उसे ज्ञान देता है ।



यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।  
 सर्वं तदेषां समृद्धेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब ( एषाम् ) इन विद्वानों में से ( अन्यः ) एक-  
 विद्वान् शिष्य ( शिक्षमाणः ) शिक्षा पाकर ( अन्यस्य शाक्तस्य ) दूसरे-  
 विद्या आदि से सम्पन्न गुरु की ( वाचम् वदति ) वाणी को कहता है  
 और (यत्) जब ( अप्सु अधि ) प्राप्त शिष्यों वा प्रजाओं के बीच, इन-  
 विद्वानों में ( सुवाचः ) उत्तम वाणी वाले आप लोग ( वदथन ) उपदेश  
 करते हैं ( तत् ) तब ( एषां ) इनका ( सर्वं ) समस्त ( पर्व ) पालन योग्य  
 व्रत, वेदादि-अध्ययन ( समिधा इव ) समृद्ध उत्सवादि के समान हो  
 जाता है । इति तृतीयो वगः ॥

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरितः एकं एषाम् ।  
 समानं नाम विभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥ ६ ॥

भा०—(एषाम्) इन विद्वानों में से (एकः) एक (गो-मायुः) वेद-  
 वाणियों के प्रवचन में समर्थ होता है । (एकः अज-मायुः) एक विद्वान्  
 अजन्मा, परमेश्वर के प्रवचन में समर्थ है । (एक पृश्निः) एक प्रश्नोत्तर  
 करने में कुशल है । (एक हरितः) एक ज्ञानों को ग्रहण करने में कुशल  
 है । ये सब (समानं) एक समान (नाम) 'ब्राह्मण' 'विद्वान्' नाम धारण  
 करते हुए भी ( वि-रूपाः ) विविध विद्याओं को धारण करते हैं । वे  
 ( वदन्तः ) प्रवचन करते हुए ( पुरुत्रा वाचं पिपिशुः ) नाना प्रकार से  
 वाणी को प्रकट करते हैं ।

ब्राह्मणासौ अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।  
 संवत्सरस्य तदहः परिंष्टु यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (यत्) जब ( संवत्सरस्य ) वर्ष के बीच (प्रावृषीणं  
 अहः बभूव) वर्षा का दिन होता है, ( तत् अहः ) उस दिन (मण्डूकाः)  
 मेंढक (पूर्ण सरः अभितो वदन्तः परि तिष्ठन्ति) भरे तालाब के चारों



और बोलते हुए विराजते हैं। वैसे ही ( अति-रात्रे ) अति रात्र सोम-याग की रात्रि को अतिक्रमण कर व्रतधारी विद्वान् (सोमे) सोम अर्थात् शिष्य के निमित्त (न) भी, हे ( ब्राह्मणासः ) वेदज्ञ लोगो ! आप (पूर्ण सरः अभितः वदन्तः) पूर्ण ब्रह्म का उपदेश करते हुए (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्ष के उस दिन (परि स्थ) सब एक घर सा बना कर बैठा करो।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्।  
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥८॥

भा०—( सोमिनः ब्राह्मणासः ) सोमयाग करने वाले, वा ब्रह्म-चारियों को शिक्षा देने वाले विद्वान् लोग (परि वत्सरीणम्) वर्ष भर (ब्रह्म कृण्वन्तः) वेदोपदेश करते हुए ( वाचम् अक्रत ) प्रवचन करें। (अध्वर्यवः) यज्ञ-कर्त्ता (घर्मिणः) सूर्यवत् तेजस्वी, (सिष्विदानाः) स्वेद-युक्त होकर भी ( केचित् ) कुछ विद्वान् लोग ( गुह्याः न ) गुहा में बैठे तपस्वियों के तुल्य (गुह्याः) बुद्धि, ज्ञान या हृदय-गुहा में रमण करते हुए (आविर्भवन्ति) प्रकट होते हैं।

देवहितं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्रमिनन्त्येते।  
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९॥

भा०—(संवत्सरे) वर्ष में (तप्ताः घर्माः) तपे घाम अर्थात् सूर्य के तेज (प्रावृषि आगतायां) वर्षाकाल आने पर ( विसर्गम् अश्नुवते ) विविध प्रकार से जलों को व्याप लेते हैं, मेघ रूप से प्रकट करते हैं, वे (द्वादशस्य) बारह मास के बने वर्ष के ( देव-हितं ) जलप्रद मेघ की (जुगुपुः) रक्षा करते और (नरः) नायक वायुगण (ऋतुं न प्रमिनन्ति) वर्षा ऋतु को नष्ट नहीं होने देते वैसे ही (संवत्सरे) एक वर्ष में (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा के आने पर (तप्ताः) तप से संतप्त, (घर्माः) तेजस्वी पुरुष भी (विसर्गम् अश्नुवते) विविध अध्याय, काण्डादि से युक्त वेद का अभ्यास करते हैं। वे (द्वादशस्य) बारहों मास (देव-हितं जुगुपुः)



परमेश्वरदत्त ज्ञान की रक्षा करते हैं और (एते) वे (नरः) उत्तम पुरुष (ऋतुं न प्रमिनन्ति) 'ऋतु' अर्थात् ज्ञानयुक्त वेद को वैसे ही नष्ट नहीं होने देते जैसे नर-जीव अपने जातिवर्ग में ऋतु का व्यर्थ नाश नहीं होने देते ।

गोमाथुरदाडजमाथुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।

गवां मृगङ्गका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः १०।४

भा०—(गो-माथुः) वाणियों का उपदेश (नः वसूनि अदात्) हमें ऐश्वर्य दे । (अज-माथुः नः वसूनि अदात्) नित्य पदार्थ जीव, आत्मा और प्रकृति का उपदेशक हमें ऐश्वर्य दे । (हरितः) ज्ञान-संग्रही विद्वान् (नः वसूनि अदात्) हमें ऐश्वर्य दे । (मंडूकाः) मोक्षादि आनन्द में मग्न और अन्यो को आनन्दित करने वाले विद्वान् (सहस्रसावे) सहस्रों के ऐश्वर्यों और सुखों के देने के निमित्त (गवां शतानि) सैकड़ों वाणियों का (ददतः) उपदेश करते हुए (आयुः प्र तिरन्ते) आयु की वृद्धि करें । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[ १०४ ]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ देवता—१—७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ । ८, १६, १९—२२, २४ इन्द्रः ९, १२, १३ सोमः । १०, १४ अग्निः । ११ देवाः । १७ आवाणः । १८ मरुतः । २३ वसिष्ठः । २३ पृथिव्यन्तरिक्षे ॥ छन्दः—१, ६, ७ विराड्जगती । २ आर्षी जगती । ३, ५, १८, २१ निचृज्जगती । ८, १०, ११, १३, १४, १५, १७ निचृत् त्रिष्टुप् । ९ आर्षी त्रिष्टुप् । १२, १६ विराट् त्रिष्टुप् । १९, २०, २२ त्रिष्टुप् । २३ आर्षी भुरिज्जगती । २४ याज्ञवी विराट् त्रिष्टुप् । २५ पाद-निचृदनुष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रासोमा तपंतं रक्षं उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।

परां शृणोतिमचितो न्योषतं हतं नुदेष्टुं नि शिशीतमत्रिणः ॥१॥

९ प.



भा०—दुष्टों का दमन । हे (इन्द्रा सोमा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् ! शत्रु-  
हन्तः ! हे सोम, शासक जन ! आप दोनों मिलकर (रक्षः तपतम्) दुष्टों को इतना पीड़ित करो कि वे पश्चात्ताप करें । (उज्जतम्) उनको झुकाओ, । हे (वृषणा) प्रबन्धक, बलवान् जनो ! (तमः-वृधः) अज्ञान,-  
अन्धकार बढ़ाने वालों को (नि अर्पयतम्) नीचे दबाओ । उन (अचितः) मूर्ख लोगों को (परा शृणीतम्) पीड़ित करो कि वे दुरे पथ से हट-  
जायं । उनको (नि ओपतं) सन्तापित करो, (हतं) दण्डित करो, (नुदेयाम्) उनको भगाते रहो । (अत्रिणः) प्रजा का सर्वस्व खा जाने वालों को भी (नि शिशीतम्) तीक्ष्ण दण्ड दो ।

इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यः । घं तपुर्यस्तु चरुरग्निवाँ इव ।  
ब्रह्मद्विषे क्रव्याद घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान् ! हे शासक जनो ! आप दोनों (अघ-शंसं) पाप-चर्चा करने वाले (अघं) पापी पुरुष को (सम् अग्नि धत्तम्) अच्छी प्रकार बांधो, वह (तपुः) संतप्त होकर, (अग्निवान् चरु- इव) अग्नि-युक्त पात्र के समान सन्तप्त होकर (ययस्तु) पीड़ित हो । आप दोनों (ब्रह्म-द्विषे) वेद और वेदज्ञ के द्वेषी (क्रव्यादे) कच्चे मांस-  
खोर और (किमीदिने) अब क्या, अब क्या इस प्रकार मूढ़ और (घोरचक्षसे) क्रूर-दृष्टि पुरुष को (अनवायं) निरन्तर (द्वेषः धत्तम्) अप्रीति करो ।

इन्द्रासोमा दुष्कृतो वज्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।  
यथा नातः पुनरेकैश्चनोदयत्तद्रामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रोसोमा) ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! हे (सोम) विद्वान् जनो ! आप लोग (दुष्कृतः) दुष्ट और दुःखदायी कामना वाले पुरुषों को (वज्रे अन्तः) चारों ओर से घिरे कैद, कारागारादि स्थान के भीतर



और (अनारम्भणे तमसि) अवलम्बन-रहित, ऐसे अन्धेरों में जहाँ कार्य न किया जा सके (प्र वि ध्यतम्) रखकर दण्डित करो । (यथा) जिससे (अतः) वहाँ से (पुनः एकः चन) फिर एक भी कोई (न उद् अयत्) उठ के ऊपर न आवे । (वाम्) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (मन्यु-मत् शवः) क्रोध से पूर्ण पराक्रम (सहसे अस्तु) दुष्ट पराजय के लिये हो ।

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।  
उत्तक्षतं स्वर्ग्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन्, हे विद्यावान् दोनों जनो ! आप (अघ-शंसाय) पाप-चर्चा कारी पुरुष को दण्ड देने के लिये (दिवः) स्वर्ग और (पृथिव्याः) पृथिवी से (वधं वर्तयतम्) दण्ड किया करो और उसके लिये (तर्हणम्) नाशकारी (स्वर्ग्यं) सन्तापजनक, नादकारी (पर्वतेभ्यः) मेघों से आने वाले विद्युत् को (उत् तक्षम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो । (येन) जिससे (वावृधानं रक्षः) बढ़ते दुष्ट जन को (निजूर्-वथः) दण्डित कर सको ।

इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्शितसेभिर्युवमश्महन्मभिः ।

तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शानि विध्यतं यन्तु निःस्वरम् ५॥५

भा०—हे (इन्द्रासोमा) राजन् ! शासक जन ! (युवम्) आप दोनों (अग्नि-तसेभिः) अग्नि से तपे हुए, (अश्म-हन्मभिः) मेघ से विद्युत् तुल्य आघात करने वाले (तपुर्वधेभिः) दुष्ट नाशक अश्वों से (दिवः परि) आकाश से दूर से ही मार कर (अत्रिणः) प्रजा नाशक दुष्ट पुरुष के (पर्शानि) दोनों पासों के बल समुदाय को (नि विध्यतम्) छिन्न-भिन्न करो । जिससे वह (निः-स्वरम्) बिना आवाज किये, बिना कष्ट पहुँचाये (यन्तु) चला जावे । इति पञ्चमो वर्गः ॥



इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं कक्ष्याश्वेव वाजिना ।

यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥६॥

भा०—( कक्ष्या वाजिना अश्वा-इव ) जैसे वेग वाले, अश्वों को बगलबन्द की रस्सी चारों ओर से बांधती है हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्य-वान् वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य ! हे सोम ! सौम्य भावयुक्त शिष्य ! (वां) आप दोनों को (इयं मतिः) यह ज्ञान वा वाणी (कक्ष्या) अवगाहन-योग्य गंभीर, (विश्वतः परि भूतु) सब ओर से प्राप्त हो । (वां) आप दोनों की (यां) जिस (होत्रां) ग्रहण योग्य उत्तम वाणी को (मेधया) धारणावती बुद्धि द्वारा (परि हिनोमि) मैं प्राप्त करूँ, (इमा ब्रह्माणि) इन वेद-वचनों को (नृपती इव) राजाओं के समान तुम दोनों (जिन्व-तम्) प्राप्त करो ।

प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।

इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासन्ति द्रुहा ७

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों ! (तुजयद्भिः) शत्रुनाशक (एवैः) प्रयाणशील, सैन्यों तथा अज्ञाननाशक ज्ञानों में (प्रति स्मरेथाम्) प्रत्येक वस्तु का स्मरण करो । (भङ्गुरावतः) गृहादि को तोड़ने वाले तथा व्रतादि के नाशक, (द्रुहः रक्षसः) विघ्न-कारी दुष्ट पुरुषों और दुष्ट भावों को (हतम्) दण्ड दो, नष्ट करो । (यः) जो (नः) हमें (कदाचित्) कभी भी (द्रुहा) द्वेष से (अभिदासन्ति) नाश करता, वा हमें अपना दास बना लेता है, ऐसे (दुष्कृते) दुराचारी को (सगं मा भूत्) कभी सुख न हो ।

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।

आप इव काशिना सङ्गभीता असन्नस्त्वासन्त इन्द्र वक्ता ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यः) जो (पाकेन मनसा) परि-पक्व = दृढ़, ज्ञान वा चित्त से अथवा (पाकेन = वाकेन) सत्य वचन



और (मनसा) उत्तम ज्ञान-सहित (चरन्तम्) आचरण करने वाले (मा) मुझ पर (अनृतेभिः वचोमि) असत्य वचनों द्वारा (अभि-चष्टे) आक्षेप करता है वह (असन्) असत्य का (वक्ता) कहने वाला (काशिना संगृ-भीताः अपः इव) मुट्ठी में लिये जलों के समान (असन् अस्तु) नहीं-सा होकर नष्ट हो ।

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधामिः ।

अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥६॥

भा०—(ये) जो लोग (एवैः) बुरे अभिप्रायों से (पाक-शंसं) परि-पक्व, सत्य वचन कहने वाले को (विहरन्ते) विरुद्ध मार्ग में ले जाते हैं (वा) अथवा जो (स्वधामिः) अपने बल, अन्न, गृह के बल से वा वेतन भोगी पुरुषों द्वारा (भद्रं दूषयन्ति) भले आदमी को दूषित करते हैं, (सोमः) शासक राजा, न्यायाधीश (तान्) उनको (वा) भी (अहये प्र ददातु) सर्पादि जन्तु के काटने, वा सर्पवत् कुटिलाचार करने के लिये दण्ड दे । (वा) अथवा, (तान्) ऐसे पुरुषों को (निः क्रतेः) दुःख-दायी जन्तु, सिंह, रीछ आदि वा पीढ़क के (उपस्थे) समीप (आ दधातु) रक्खें ।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्त-  
 नूनाम् । रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्भ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा-  
 तनां च ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (यः) जो दुष्ट पुरुष (नः) हमारे (पित्वः रसं) अन्न के रस, सारभाग को (दिप्सति) नष्ट करना चाहता है और (यः) जो हमारे (अश्वानां) घोड़ों, (गवां) गौओं, और (तनूनां) शरीरों के (रसं) सारवान् बलयुक्त अंश को नाश करता है वह (रिपुः) शत्रु, (स्तेनः) चोर (स्तेयकृत्) चोरी करने वाला, पुरुष



(दध्नम् एतु) पीड़ा वा मृत्यु दण्ड को प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) शरीर और (तना च) पुत्रादि से (नि हीयताम्) वञ्चित रहे ।

परः सा अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरथो अस्तु विश्वाः ।  
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सन्ति यश्च नक्तम् ११

भा०—हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो ! (यः च) और जो (नः) हमें (दिवाः) दिन में या (नक्तम्) रात में (दिप्सन्ति) हानि पहुँचाता, (सः) वह (तन्वा तना च) शरीर और पुत्रादि से भी (परः अस्तु) दूर हो । वह (विश्वाः) समस्त (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियों, लोकों से (अधः अस्तु) नीचे रहे, वह गढ़े में, या नीची कोटि में रक्खा जावे । (अस्य यशः) उसका यश, बल (प्रति शुष्यतु) प्रति-दिन सूखता जाय ।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्छ वचसी पस्पृधाते ।  
तयोर्यत्सत्यं यतरद्वज्जीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२॥

भा०—(चिकितुषे) जानने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (सत् च असत् च) सत्य और असत्य दोनों (सुविज्ञानं) अच्छी प्रकार जानने योग्य हैं, क्योंकि (सत् च असत् च वचसी) सत्य और असत्य दोनों वचन (पस्पृधाते) परस्पर स्पर्द्धा करते हैं । दोनों विरोधी होते हैं (तयोः) उन दोनों में (यत् सत्यं) जो सत्य है और (यतरत् ऋजीयः) जो अधिक ऋजु, धर्मानुकूल है (तद् इत्) उसकी ही, (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् (अवति) रक्षा करता है और (असत् हन्ति) असत् को विनष्ट करता है ।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।  
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक (वृजिनं) असत्य को (न वै उ



रिहिनोति) कभी वृद्धि न दे और (मिथुया धारयन्तं) असत्य के धारक (क्षत्रियम्) बलशाली पुरुष को भी (न रिहिनोति) न बढ़ने दे । (रक्षः) दुष्ट पुरुष को (हन्ति) दण्ड दे, और (असद् वदन्तम् हन्ति) असत्य-वादी को दण्ड दे । (उभौ) वे दोनों भी (इन्द्रस्य प्रसितौ) दुष्टों के भयकारी पुरुष के उत्तम बन्धन में (शयाते) डाले जायँ ।

यदि चाहमनृतदेव आस मोघं वा देवां अप्युहे अग्ने ।

किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋतं सचन्ताम् ॥१४

भा०—(यदि वा) और यदि (अहम्) मैं (अनृतदेवः) असत्य बात का प्रकाश करने वाला हूँ, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अथवा मैं (देवान् अपि) विद्वान् पुरुषों से भी (मोघं) झूठ-सूठ, (ऊहे) नाना तर्क चित्तक करता हूँ, हे (जातवेदः) विद्वन् ! ज्ञानवन् ! (अस्मभ्यम्) विचार करो कि हमारे सुधार के लिये (किम् हृणीषे) क्या २ क्रोध कर हमें किस प्रकार दण्डित करो । क्योंकि (द्रोघ-वाचः) द्वेष की बात कहने वाले (ते) वे लोग (निर्ऋतं) अति दुःखी और सत्य, ऐश्वर्यादि से रहित, कष्टमय जीवन को (सचन्ताम्) प्राप्त हों ।

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।

अद्या स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥७॥

भा०—(यदि) यदि मैं (यातुधानः) अन्धों का पीड़क (अस्मि) होऊँ और (यदि वा) जो मैं (पूरुषस्य) मनुष्य के (आयुः) जीवन को (ततप) पीड़ित करूँ, तो मैं (अद्य मुरीय) आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊँ । अन्य को पीड़ा देने और मनुष्य को हानि पहुँचाने वाले को मृत्यु-दण्ड हो । (अद्य) और (यः) जो (मोघं) व्यर्थ, (मा) मुझे (यातुधान इति आह) पीड़ादायक कहे (सः) वह तू (दशभिः वीरैः) दशों प्रकार के प्राणों या दशों अंगुलिओं, दोनों हाथों से (वि यूयाः) वियुक्त हो । इति स्वसमो वर्गः ॥



यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।

इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोर्धमस्पदीष्ट ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (अयातुं मा) अन्य को पीड़ा न देने वाले मुझ-  
 को (यातुधान इति आह) 'पीड़ा देने वाला' ऐसा कहे (वा) और  
 (यः) जो (रक्षाः) स्वयं दुष्ट पुरुष होकर (शुचिः अस्मि इति आह) मैं  
 निर्दोष हूँ, ऐसा कहे (इन्द्रः) राजा (तं) उसको (महता वधेन) बड़े  
 भारी शस्त्र से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य जन्तोः) समस्त पापियों  
 से (धमः) नीचा (पदीष्ट) समझा जावे ।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।

वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट आवाणो भन्तु रक्षसं उपवदैः ॥ १७ ॥

भा०—(या) जो स्त्री, (खर्गला इव) उल्लुनी के समान (द्रुहा)  
 पति-द्रोह करके (तन्वं गूहमाना) शरीर को छिपाकर (नक्तम्) रात के  
 समय (प्र अप जिगाति) घर छोड़ कर जाती है (सा) वह (अनन्ताँ  
 वव्राँ) खूब गहरे गढ़ों को (अव पदीष्ट) प्राप्त हो । (आवाणः) क्षत्रिय  
 लोग (उपवदैः) घोषणाओं सहित (रक्षसः भन्तु) दुष्ट पुरुषों को विनष्ट  
 करें ।

वि तिष्ठध्वं मरुतो विद्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।

वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तमिथे वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे १८

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो ! (ये) जो (नक्तभिः)  
 रातों के समय आप लोग (वयः भूत्वी) प्रकाशयुक्त होकर (पत-  
 यन्ति) नगर स्वामी के समान रक्षा करते हैं (ये वा) और जो आप  
 लोग (अध्वरे) हिंसारहित (देवे) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (रिपः)  
 दुष्ट पुरुषों को (दधिरे) पकड़ते हो वे आप लोग (विश्व) प्रजाओं में  
 (वि तिष्ठध्वम्) विशेष २ पदों पर विराजें और (वि इच्छत) विविध  
 ऐश्वर्यों की कामना करें । (रक्षसः वि गृभायत) दुष्ट पुरुषों को विविध



प्रकार से कैद करो और उनको (सं पिनष्टन) खूब पीसो, दण्डित करो, कुचलो ।

प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमंशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।  
प्राक्तादपाक्तादधरादुक्तादभिर्जहि रक्षसः पर्वतेन ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (दिवः अश्मानम्) आकाश से गिरे ओलों के तुल्य (दिवः) आग्नेय अस्त्र से ( अश्मानम् ) शत्रुनाशक-गोली आदि कठिन वस्तु (प्र वर्तय) फेंक । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू ( सोम-शितम् ) ऐश्वर्य और उत्तम शासक से तीव्र हुए शत्रु और प्रजाजन दोनों का (सं शिशाधि) अच्छी प्रकार शासन कर । (प्राक्तात्, अपाक्तात्, उक्तात्, अधरात्) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे, दक्षिण-से भी (पर्वतेन) दृढ़ पोर वाले दण्ड से, पशु तुल्य (रक्षसः जहि) दुष्ट पुरुषों को दण्ड दे ।

एत उ त्वे पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।  
शिशीति शक्रः पिशुनेभ्यो बधं नूनं सृजदशानि यातुमद्भ्यः ॥ २०।८

भा०—(एते उ त्वे) ये वे बहुत से (श्व-यातवः) कुत्ते के समान चाल चलने और अन्धों को पागल कुत्ते के समान बिना प्रयोजन काटने और गुर्रा २ कर डराने वाले लोग ही (पतयन्ति) मालिक से बनना चाहते और प्रजा के धन को हरना चाहा करते हैं (दिप्सवः) हिंसाकारी लोग ही (अदाभ्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति) अहिंसनीय, राजा को मारना चाहा करते हैं । (शक्रः) शक्तिशाली राजा (पिशुनेभ्यः) क्षुद्र पुरुषों का दमन करने के लिये (बधं शिशीते) शस्त्र-बल को तेज करे । (नूनं) अवश्य ही वह (यातुमद्भ्यः) प्रजापीडक पुरुषों के दमन के लिये (अशनिं) विद्युत्त्वत् आघातकारी अस्त्र (सृजत्) बनावे । इत्यष्टमो वर्गः ।

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवांसताम् ।  
अमीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत पति रक्षसः ॥ २१ ॥



भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (हविर्मथीनां) प्रजाओं के अन्न, यज्ञों के चरु आदि को हरने वाले (यातूनां) प्रजापीडादायी-मनुष्यों और (अभि आ विवासताम्) सामने से आक्रमण करने वाले पुरुषों को (परा-शरः) दूर तक मार मारने वाला (आ भवत्) हो । (परशुः यथा वनं) जैसे फरसा, वन को काट गिराता है, (पात्रा इव) जैसे पत्थर वर्तनों को तोड़ डालता है वैसे ही (शक्रः) शक्तिशाली राजा (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (परशुः) कुल्हाड़ा-सा होकर (अभि एति) प्राप्त हो और (रक्षसः सतः भिन्दन् एति) उन दुष्टों को भेद-नीति से तोड़ता-फोड़ता हुआ प्राप्त हो ।

उल्लूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।  
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! राजन् ! (उल्लूक-यातुम्) बड़े उल्लू के समान चाल चञ्चने और छिप कर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करने वाले को, (शुशुलूकयातुम्) छोटे उल्लू के समान कर्कश बोल कर डराने और गरोब जनों को पीड़ित करने वाले को, (श्व-यातुम्) कुत्ते के समान भौंक कर, कठोर वचन कह कर प्रजाजनों को पीड़ा देने वाले, (कोक-यातुम्) उल्लू की तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देने वाले (सुपर्ण-यातुम्) बाज़ के समान झपटने वाले (उत) और (गृध्र-यातुम्) गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोच कर खा जाने वाले, (रक्षः) दुष्ट जनों को (दृषदा इव) सिलबट्टे या चक्री के पाटों के समान पीस डालने वाले (प्र मृण) दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल ।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।  
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वहंसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥

भा०—(रक्षः) दुष्ट पुरुष (नः) हम तक (मा अभिनङ्) न पहुँचे ।  
(यातुमा-वताम्) पीड़ा देने वाले जनों के (मिथुना) जोड़े, स्त्री-पुरुष



(या किमीदिना) जो क्षुद्र कोटि का स्वार्थमय स्नेह करते हैं वे (अप-  
उच्छतु) दूर हों । (पृथिवी) पृथिवीवत् सर्वाश्रय, विस्तृत शक्ति (नः  
पार्थिवात् अंहसः पातु) हमें पृथिवी से होने वाले कष्ट से बचावे और  
(अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अस्मान्) हमें (दिव्यात् अंहसः पातु) आकाश  
की ओर से आने वाले कष्ट से बचावे ।

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।

विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू ( यातुधानं पुमांसं ) पीड़क पुरुष  
को और (मायया शाशदानाम्) माया से प्रजा की नाशक (स्त्रियं उत)  
स्त्री को भी (जहि) दण्डित कर । (मूर-देवाः) मूढ़ होकर विषयों में  
क्रीड़ा करने वाले दुष्ट लोग (वि-ग्रीवासः) बिना गर्दन के होकर (ऋद-  
न्तु) नष्ट हों । (ते) वे (उत्चरन्तं) उगते हुए (सूर्यं मा दृशन्) सूर्य  
को भी न देख पावें ।

प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।

रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५॥१६॥७॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे शासक ! तुम और (इन्द्रः च)  
शत्रुहन्ता सेनापति दोनों ही (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार  
को देखो और (वि-चक्ष्व) विविध प्रकार से देखो (जागृतम्) तुम दोनों  
सावधान रहो । (रक्षोभ्यः वधम् अस्यत) दुष्टों के नाश के लिये शस्त्र  
प्रहार करो और (यातुमद्भ्यः अशनिम् अस्यत) पीड़ा देने वाले पर  
विद्युत् के तुल्य अस्त्र का प्रयोग करो । इति नवमो वर्गः ॥ इति  
अष्टोऽनुवाकः ॥

इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम्





## अथाष्टमं मण्डलम्

—:\*\*\*:—

[ १ ]

प्रगाथो घौरः काण्वो वा । ३—२९ मेघातिथिमेध्यातिथी काण्वी ७  
३०—३३ आसङ्गः प्लायोगिः । ३४ शश्वत्याङ्गिरस्यासंगस्य पत्नी  
ऋषिः ॥ देवताः—१—२९ इन्द्रः । ३०—३३ आसंगस्य दानस्तुतिः ।  
३४ आसंगः ॥ छन्दः—१ उपरिष्ठाद् बृहती , २ आर्षी भुरिग् बृहती ।  
३, ७, १०, १४, १८, २१ विराड् बृहती । ४ आर्षी स्वराड् बृहती ।  
५, ८, १५. १७, १९, २२, २५, ३१ निचृद् बृहती । ६, ९, ११, १२,  
२०, २४, २६, २७ आर्षी बृहती । १३ शङ्कुमती बृहती । १६, २३,  
३०, ३२ आर्षी भुरिग्बृहती । २८ आसुरी स्वराड् निचृद् बृहती । २९  
बृहती । ३३ त्रिष्टुप् । ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ चतुस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

मा चिद्वन्यद्वि शंसत् सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमिस्तोता वृषणं सचा सुते मुहुःकथा च शंसत ॥१॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (अन्यत्) और किसी को (मा चित्  
शंसत्) उपास्य मत कहो, (मा रिषण्यत) हिंसा मत करो । (वृषणं)  
सुखवर्षक, जगत् के प्रबन्धक (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के स्वामी की (इत्)  
ही (स्तोत) स्तुति करो । (सुते) इस जगत् में (सचा) एक साथ बैठ  
कर (मुहुः) बार २ (उक्था च) नाना स्तुति (शंसत) कहो ।

अवक्रक्षिणं वृषभ यथाजुरं गां न चर्षणीसहम्  
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥

भा०—(अव-क्रक्षिणं गां न) हल, शकट आदि को खेंचने वाले बैल  
के समान अपने अधीन जगत् भर को चलाने वाले (यथा वृषभं) मेघ



के तुल्य सुखवर्षक, वृषभ तुल्य बलशाली, (अजुरं) अविनाशी, (चर्षणी-  
सहस्र) सब मनुष्यों से ऊपर, (वि-द्वेषणं) द्वेष के भावों से विवर्जित,  
(सं-वनना) अच्छी प्रकार से सेवा करने योग्य (मंहिष्ठम्) अति दान-  
शील ( उभयं-करम् ) दोनों लोकों में कल्याण करने वाले, (उभया-  
विनम्) दोनों लोकों में, कर्म और भोग दोनों योनियों में विद्यमान  
जीवों के रक्षक परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति करो ।

यच्चिच्छि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।

अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा न वधनम् ॥३॥

भा०—(यत् त्वा चित् हि) जिस तुझ पूज्य को ही (इमे नाना  
जना) ये नाना जन (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये (हवन्ते)  
शुकारते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) उस तेरा (इदं ब्रह्म) यह वेद-  
ज्ञान (विश्वा अहा) सब दिनों ही (अस्माकं वधनं भूतु) हमें बढ़ाने  
वाला हो ।

वि तर्तूर्यन्ते मघवन्विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।

उप क्रमस्व पुरुषरूपा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (विपश्चितः) विद्वान् (वि तर्तू-  
र्यन्ते) विशेष रूप से तेरे अनुग्रह से संसार से पार हो जाते हैं । (जना-  
नाम्) मनुष्यों को तू ही (विपः) कंपाने वाला और (अर्यः) उनका  
स्वामी है । तू (पुरु-रूपम्) बहुत प्रकार से (उप क्रमस्व) हमें प्राप्त  
हो और (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (नेदिष्ठं वाजं भर) अति समीप  
बल एवं ज्ञान दे ।

महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।

न सहस्राय नायुताय वाज्रिवो न शताय शतामघ ॥५॥१०॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिमन् ! ( त्वाम् ) तुझको (महे चन  
शुल्काय) बड़े भारी अर्थ-लाभ के लिये (न परा देयाम्) कभी न त्यागूं ।



हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन् ! हे (शत-सघ) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! मैं तुझे (सहस्राय) हजारों के लिये (न) नहीं त्यागूँ । (शतुताय न) दस हजार के लिये न त्यागूँ (शताय न) सैकड़ों के लिये भी न त्यागूँ । इति दशमो वर्गः ॥

वस्यौ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुजतः ।

माता च मे हृदयथः समा वसो वसुत्त्वनाय राधसे ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! प्रभो ! तू (मे) मेरे (अभु-जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता और (भ्रातुः) भाई से भी (वस्यान् असि) श्रेष्ठ है । हे (वसो) सब में बसने हारे ! तू और (माता च) मेरी माता दोनों (समौ) बराबर हैं । दोनों ही (हृदयथः) मुझे आच्छादित करते हो । और (वसुत्त्वनाय) मुझे बसाने और (राधसे) धनैश्वर्य देने के लिये भी (समौ) माता और तू दोनों बराबर हो ।

के यथ केदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।

अर्लर्षि युध्म खजकृत्पुन्रन्दर प्र गायत्रा अंगासिषुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुन्रन्दर) देह-रूप पुरों का नाश करने वाले ! हे देह-बन्धन से छुड़ाने वाले ! प्रभो ! (क इयथ) तू कहां गया है ? (क इत् असि) तू कहां है ? (ते) तेरे लिये (मनः) मेरा मन (पुन्र चित् हि) बहुत २ स्थानों पर जाता है । हे (युध्म) दुष्टों को ताड़ना देने हारे ! हे (खजकृत्) इन्द्रियों के बीच प्रकट होने वाले ! प्राण शक्तियों को प्रकट करने हारे आत्मन् ! तू (अर्लर्षि) सर्वत्र व्यापता है । (गायत्राः) गान करने वाले विद्वान् और वेदमन्त्र (ते) तेरा ही (प्र अंगासिषुः) उत्तम रूप से गान करते हैं ।

प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुन्रन्दरः ।

यामिः कारवस्योप वर्हिरासदं यासद्विजी मिनत्पुन्रः ॥८॥



भा०—जैसे सेनापति वा राजा, (वावातुः) हिंसक वा प्रबल शत्रु की भी (पुरंदरः) नगरियों को तोड़-फोड़ देने में समर्थ होकर (वज्री) बलवान् होकर (बर्हिः उप आसदं) राष्ट्र-प्रजा के ऊपर अध्यक्षतासन पर बैठने वालों के लिये (यासत्) उद्योग करता है और (पुरः भिनत्) शत्रु के नगरों को तोड़ता है वैसे ही (यः) जो परमेश्वर (वावातुः) निरन्तर भोगों को सेवने वाले जीव के भी (पुरन्दरः) देह-बन्धन का नाश करता है और वह जीव (यामिः) जिन देहपुरी रूप साधनों से, (क्व-स्थ) बुद्धिमान् पुरुष के (बर्हिः उप आसदम्) महान् यज्ञ में उपासना करने के लिये (यासत्) यत्न करता है, उसी से वह (वज्री) वीर्यवान् आत्मा भी (पुरः भिनत्) देह-पुरियों को काटता है ।

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये संहस्त्रिणः ।

अश्वारो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते ! (ते) तेरे (ये) जो (दशग्विनः) दश गतियों से जाने वाले, या दश गौओं या भूमियों या भटों के स्वामी, (शतिनः) सौ ग्रामों, या सौ भटों के नायक (सहस्त्रिणः) हजार भूमियों, या भटों के स्वामी, अथवा (शतिनः) सौ संख्या वेतन और (सहस्त्रिणः) सहस्र संख्या वेतन वाले (अश्वारो) अश्वारोही वीर पुरुष हैं और (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (रघु-द्रुवः) वेग से जाने वाले हैं (तेभिः) उन सबके साथ (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र (आ गहि) प्राप्त हो ।

आ त्वद्य सबर्द्धां हुवे गायत्रैवैपसम् ।

इन्द्रं धेनुं सुदुग्रामन्यामिषमरुधारां मरुद्वृतम् ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—( सु-दुघां धेनुम् ) सुख से दोहने योग्य गौ जैसे (उरु-धारां) बहुत दूध की धारा वाली, ( सबर्द्धां ) उत्तम गोरस देने वाली होती है वैसे ही मैं (इन्द्रं) प्रभु को भी ( धेनुम् ) गौ के समान



( सु-दुघाम् ) आनन्द-रस देने वाली, ( अन्याम् ) अन्य, इन लौकिक गौओं से सर्वथा भिन्न, ( इषम् ) सदैव इच्छा करने योग्य ( उरु-धाराम् ) बहुत से लोकों को धारने में समर्थ, सुख की मेघवत् वर्षाने वाली, ( अरं कृतम् ) प्रचुर अन्न उत्पन्न करने वाली, ( गायत्र-वेपसम् ) गान करने वालों को आवेश और प्रेमोद्रेकों से कंपा देने, गद्-गद् कर देने वाली और ( सवर्दुघाम् ) मधुर दुग्धवत् परमानन्द एवं 'स्वः' परम सुख दोहन करने वाली, ( अथ आ हुवे ) जानकर तुझे स्वीकार और प्रार्थना करता हूँ । इत्येकादशो वर्गः ॥

यत्तुदत्सूर एतंशं ब्रह्म वातस्य पर्णिना ।

वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जो (सूरः) तेजस्वी पुरुष (एतंशं) अथ सैन्य को (तुदत्) मार्ग पर चलाता है और जो (वातस्य) वायु के से (वह्) चक्र गति वाले, (पर्णिना) पक्ष-युक्त विमानों को सञ्चालित करता है और (मार्जुनेयं) अर्जुनी शत्रुदल की नाशक सेना के बने (कुत्सुम्) शस्त्र-बल को (वहत्) धारण करता है वह (शत-क्रतुः) बहुत कर्म करने वाले कर्ता पुरुषों का स्वामी होकर (अस्तृतम्) अहिंसित, (गन्धर्वम्) भूमि को धारण करने वाले पद वा धनसैन्य (स्सरत्) प्राप्त कर चलावे ।

य ऋते चिदमिश्रिषः पुरा जनुभ्य आतृदः ।

सन्धाता सन्धि मघवा पुरुवसुरिष्कर्ता विहृतं पुनः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (पुरा) पहले भी (अमिश्रिषः ऋते) सरैस या जोड़ने वाले कील आदि पदार्थों के बिना (चित्) भी (जनुभ्यः) हंसलियों तक के (आतृदः) पृथक् २ मोहरों को (सन्धाता) अच्छी प्रकार जोड़ता है और जो (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (पुरुवसुः) बहुत से लोकों में बसा, (विहृतं सन्धि) विपरीत रूप से मुड़े या विच्छिन्न सन्धि को



अ०१।सू०१।१५] ऋग्वेदभाष्ये अष्टमं मण्डलम्

१४५

को भी (पुनः इष्कर्त्ता) फिर ठीक लगाने वाला है वही ईश्वर, इन्द्र वा जीवात्मा है ।

मा भूम निष्ठयाँ इवेन्द्र त्वदरणा इव ।

वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषांसो अमन्महि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (अद्रिवः) मेघों, नाना बलों के स्वामिन् ! हम ( निष्ठया इव मा भूम ) नीच, हीन के समान न हों । (त्वत्) तुझसे पृथक् ( अरणाः इव ) जीवन के आनन्द से रहित भी (मा भूम) न हों । (प्रजहितानि वनानि न) परित्यक्त, बिना देख-भाल के वनों के तुल्य कण्टकाकीर्ण भी (मा भूम) न हों । प्रत्युत (दुरो-षासः) उत्तम दुर्गों, गृहों में रहते हुए (अमन्महि) तेरा मनन करें ।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।

सकृत्सु ते महता शूर राघसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुनाशक प्रभो ! राजन् ! हम सदा (अना-शवः) शीघ्रता न करते हुए, धैर्यवान् और (अनुग्रासः च) सौम्य होकर (ते) तेरा (स्तोमं) स्तुत्य रूप और गुणों का (अमन्महि) मनन करें । हे (शूर) शूरवीर ! (ते) तेरे (महता राघसा) बड़े ऐश्वर्य से ( सकृत् ) एक बार तो (स्तोमं अनु मुदीमहि) हम तेरी स्तुति करके प्रसन्न हों ।

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्द्रवः ।

तिरः पवित्रं समृवांसं आशवो मन्दन्तु तुग्रयावृधः ॥ १५ ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन् ! (यदि) यदि तू (मम स्तोमं) मेरे स्तुति-ध्वन को (श्रवत्) सुने तो ( अस्माकम् ) हम प्रजाजनों के बीच (इन्द्रवः) ऐश्वर्यवान् जन और (तिरः समृवांसः) तिरछे या दूर तक जाने वाले (आशवः) वेग से जाने वाले (तुग्रयावृधः) शत्रुओं के नाशक सैन्य बलों के हितों को बढ़ाने वाले पुरुष भी (पवित्रं) पवित्राचार वाले,



(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुभ्यं प्रभु को (मन्दन्तु) प्रसन्न करें । इति द्वादशो वगः ॥

आ त्वं सधस्तुतिं वाचातुः सख्युरा गहि ।

उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावृत्तवधां ते वशिम सुष्टुतिम् ॥ १६ ॥

भा०—(अद्य) आज, तू (वाचातुः) सेवा करने वाले और (सख्युः) मित्र की (सधस्तुतिम्) साथ की स्तुति को (आ गहि) प्राप्त हो । (मघोनां) ऐश्वर्यवानों की (उपस्तुतिः) उपमा द्वारा की गई स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तुझे प्राप्त हो । (अद्य) और मैं (ते) तेरी (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति करना (वशिम) चाहता हूँ ।

सोता हिं सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।

गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वृक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—है विद्वान् पुरुषो (अद्रिभिः) जैसे मेघों से जल बरसता और 'सोम' ओषधि उत्पन्न होता है वैसे ही (अद्रिभिः) शस्त्र-बलों से (सोमं सोत) ऐश्वर्य उत्पन्न करो । (अद्रिभिः सोमं सोत) मेघवत् कलशों से अभिषेक योग्य का अभिषेक करो । (ईम् एनम्) उसको (अप्सु) प्रजाओं में (आ धावत) प्राप्त कराओ । हे (नरः) वीर नायक जनो ! जैसे वायुगण आकाश में मेघों को तम्बुओं की तरह फैला देते हैं और जल को (वृक्षणाभ्यः) नदियों की वृद्धि के लिये मेघों को दोह देते हैं वैसे ही तुम भी (वृक्षा इव) वृक्षों के समान (गव्या वासयन्त) गोधनों को बसाओ । उन (वृक्षणाभ्यः) दूध देने वाली गौओं से (निःशुक्षन्) खूब दोहो ।

अध ज्मो अधं वा द्विवो बृहतो रोचनादधि ।

अथा वर्धस्व तन्वां शिरा समा जाता सुक्रतो पृण ॥ १८ ॥

भा०—हे (सु-क्रतो) उत्तम कर्म करने वाले ! तू (अध ज्मः) पृथिवी से (अध वा दिवः) वा अन्तरिक्ष से (बृहतः रोचनात्) बढ़े



चमकते सूर्य से (जाता) उत्पन्न प्राणियों का (आ पूज) पालन कर और (अथा मम तन्वा गिरा) इस मेरी विस्तृत वाणी से (वर्धस्व) बढ़ ।

इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।

शक्र षणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (इन्द्राय) शत्रुहन्ता पुरुष के लिये (मदिन्तमं) आनन्द और तृप्तिकारक (सोमं) ओषधि रस के समान (वरेण्यं) धनैश्वर्य को (सोत) उत्पन्न करो । (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष ही (एनं) इसको (हिन्वानं वाजयुं न) वृद्धिकारक ऐश्वर्य के इच्छुक प्रजाजन के समान ही (पीपयत्) बढ़ावे ।

मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।

भूणि मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२०॥१३॥

भा०—(सोमस्य) ऐश्वर्य के लिए (गल्दया) स्तुति व (गिरा) वाणी से (सदा) सदा (अहं याचन्) मैं मांगता हुआ (भूणि) प्रजा-पालक (सवनेषु) शासनकार्यों में (मृगं न) सिंह के तुल्य (त्वा) तुझ को (मा चुक्रुधं) क्रोधित न करूं । (ईशानं) स्वामी से (कः न याचिषत्) कौन नहीं मांगता ? इति त्रयोदशो वर्गः ॥

मदेनेषितं मदमग्रमुग्रेण शवसा ।

विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥ २१ ॥

भा०—वह राजा, वा प्रभु (उग्रेण मदेन) अति आनन्द और (उग्रेण शवसा) उग्र बल से, (इषितं) अभीष्ट (मदम्) आनन्द (नः ददाति) हमें देता है और (मदे) आनन्द में ही (विश्वेषाम्) सबको (तरुतारं) पार उतारने वाला और (मदच्युतं) हर्षजनक ज्ञान भी हमें देता है ।

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्तीय द्राशुषे ।

स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूतो अरिष्टतः ॥२२॥



भा०—(दाक्षुषे मर्त्याय) दानादि के दाता मनुष्य के लिए (देवः) दानी राजा (शेवारे) सुख प्राप्त करने हेतु (पुरुषार्था रासते) बहुत र धन देता है। (सः) वह (विश्व-गूत्तः) सबसे प्रशंसित और (अरि-स्तुतः) शत्रुओं से भी प्रशंसित होकर (सुन्वते स्तुवते च) स्तुति और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के लिये भी (रासते) ऐश्वर्य देता है।

एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।

सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सामेमिरु स्फिरम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (देव) तेजस्विन् ! तू (आ याहि) आ और (चित्रेण राधसा) आश्चर्यजनक धनों से (मत्स्व) हर्षित हो। तू (स-पीतिभिः) मिलकर उपभोग और पालन क्रियाओं से (सरः न) सरोवर के तुल्य (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से (स्फिरम्) प्रतिष्ठित (उर) बड़े (उदरम्) पेट के तुल्य राष्ट्र-कोश को (यासि) पूर्ण कर।

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।

ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ २४ ॥

भा०—(हिरण्यये रथे) सुवर्ण रथ में जुते (केशिनः हरयः) अयाल वाले अश्व जैसे रथस्वामी को ले जाते हैं वैसे, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सहस्रं) हजार २ और (शतम्) सौ सौ (ब्रह्मयुजः) अन्न, वेतनादि पर नियुक्त (केशिनः) उत्तम केशों वाले तेजस्वी (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) सावधान होकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्यमय राज्य-पालन के लिये (हिरण्यये रथे) हित और सुन्दर राष्ट्र में (त्वा) तुझे (आ वहन्तु) अपने पर धारण करें।

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।

शितिपृष्ठा वहतां मन्त्रो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥ २५ ॥ १४ ॥



भा०—(रथे हरी) रथ में दो अश्वों के तुल्य (हिरण्यये) ऐश्वर्य युक्त (रथे) राष्ट्र में (मयूरशेण्या) मयूर के तुल्य शिर पर आदर सूचक कलगी धारण करने वाले, (हरी) उत्तम दो नेता पुरुष (शिति-पृष्ठा) शुद्ध रूप वाले, निर्दोष होकर (त्वा) तुझको (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न के तुल्य (विवक्षणस्य) विविध प्रकार से धारण करने योग्य राष्ट्र में स्वामी के कार्य के (पीतये) पालन के लिये (वहताम्) अपने ऊपर धारण करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

पिबा त्वत्स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।

परिष्कृतस्य रसिनं इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों के दाता आचार्य ! हे वाणियों से स्तु-  
त्य ! राजन् ! तू ( पूर्व-पा-इव ) पूर्व काल के अनुभवी पालक के तुल्य,  
(अस्य सुतस्य) इस शिष्य वा प्रजाजन को पुत्र के तुल्य (पिब) पालन  
कर । (परिष्कृतस्य) अच्छी प्रकार बनाये (रसिनः) रसयुक्त अन्न का  
(आसुतिः) पदार्थ जैसे हर्पजनक होता है वैसे ही (परिष्कृतस्य) सजे-  
सजाये, विद्यादि गुणों से अलंकृत (रसिनः) बलवान् पुरुष की (इयम्)  
यह (आ-सुतिः) अभिप्रेक क्रिया भी, (चारुः) सबको अच्छी लगाने  
वाली होकर (मदाय) सब के आनन्द के लिये (पत्यते) पालकवत्  
उसको सब का स्वामी बना देती है ।

य एको अस्ति दंसनां महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।

गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्भवं न परि वर्जति ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो (एकः) अकेला ही (दंसना) कर्म-सामर्थ्य से  
(महान् अस्ति) महान् है और जो (व्रतैः महान्) कर्त्तव्य-पालनों द्वारा  
(उग्रः) उग्र है (सः) वह (शिप्री) उत्तम मुख नासिका वाला, सुमुख  
पुरुष (अभिगमत्) हमें प्राप्त हो । (न सः योषत्) वह हम से प्रथक्



न हो । वह ( हवं गमत् ) स्तुति को प्राप्त हो । वह ( न परि वर्जति )  
हमारा त्याग न करे ।

त्वं पुरं चरिष्यं वधैः शुष्णास्य सं पिणक् ।

त्वं मा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! (शुष्णस्थ) प्रजाशोपक दुष्ट  
पुरुष के (चरिष्यं) अस्थिर या प्रजा के ऐश्वर्य के भोक्ता (पुर) नगर-  
वत् अड्डे, या छावनी को (वधैः संपिणक्) दण्डों और शस्त्रों से पीस  
डाल और (अध यत्) जब तू ( हव्यः भुवः ) स्तुतियों को प्राप्त करे  
तों (अध द्विता अनु चरः) अनन्तर दोनों प्रकार के तेजों को प्राप्त कर,  
अर्थात् शत्रुदमन और प्रजापालन दोनों कीर्ति तुझे प्राप्त हों ।

मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।

मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसुवा स्तोमासो अवृत्सत ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने वाले राजन् ! प्रभो ! (सूर  
उदिते) सूर्योदय काल में, (दिवः मध्यन्दिने) दिन के, मध्याह्न में और  
(प्रपित्वे) समाप्ति काल में और (अपिशर्वरे) रात्रि के तमोमय काल  
में (मम) मेरे (स्तोमासः) स्तुति-वचन (त्वा अवृत्सत) तुझे लक्ष्य  
करके निकलें ।

स्तुहि स्तुहीदिते धा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।

निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥ ३० ॥ १५ ॥

भा०—(घ) निश्चय से हे (मेध्यातिथे) सत्संग-योग्य, पूज्य  
अतिथे ! विद्वान् ! ( मघोनां ) ज्ञानादि के धनी गुरुजनों की (स्तुहि  
स्तुहि इत्) तू बार २ स्तुति कर, क्योंकि (ते) वे पूज्य जन (मघस्य)  
धन, ज्ञानादि के (मंहिष्ठासः) उत्तम दाता हैं और (निन्दिताश्वः) दुष्टे-  
न्द्रिय, अजितेन्द्रिय पुरुष (प्रपथी) सन्मार्ग को उल्लाघने वाला और



(परमज्या) श्रेष्ठ पुरुषों के मान, आयु की हानि करने वाला होता है ।  
इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ॑ यदश्वा॒न्वन् न॒न्वतः॑ श्रद्धया॒हं रथे॑ रु॒हम् ।

उ॒त वाम॑स्य वसु॒नश्चिकेत॑ति यो अस्ति॒ याद्वः प॒शुः ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जब मैं उत्तम सारथी या रथारोही के तुल्य (वन-  
नूतः) विषयों के भोक्ता (अश्वान्) इन्द्रियरूप 'अश्वों' को (आ) सब  
ओर से रोक लेता हूँ तब मैं (श्रद्धया) संत्य धारण के बल से (रथे)  
इस देह रूप रथ पर भी (रुहम्) चढ़ सकता हूँ । (याद्वः पशुः)  
मनुष्यों के हितकारी पशु के समान (यः) जो मनुष्य (याद्वः) यत्त-  
वान् मनुष्यों के बीच कुशल, (पशुः) सम्यक्-दर्शी है वही (वामस्य)  
सुन्दर (वसुनः) परमैश्वर्य का (चिकेतति) ज्ञाता है ।

य ऋ॒ज्जा म॒ह्यं मा॒म॒हे स॒ह त्व॒चा॑ हिर॒ण्यया॑ ।

एष॑ वि॒श्वान्य॒भ्यस्तु॑ सौ॒भगा॑स॒ङ्गस्य॑ स्व॒नद्र॑थः ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (हिरण्यया त्वचा) सुवर्ण की बनी सुन-  
हरी पोषाक के तुल्य उज्ज्वल ज्योतिर्मय रूप से (मह्यं) मुझे (ऋज्जा)  
सरल व्यवहार, ज्ञान और ऐश्वर्य (मामहे) देता है (एषः) वह (आस-  
ङ्गस्य) सङ्ग-रहित आत्मा वा सबको सत्कार्यों में लगाने हारे का (स्व-  
नद्र-रथः) श्रेष्ठ प्राण-धारक रथ, देह ( विश्वानि सौभगानि ) समस्त  
सुलैश्वर्यों को (अभि-अस्तु) साक्षात् करे ।

अ॒ध प्ला॒यौगिरि॑ति॒ दास॑द॒न्याना॑स॒ङ्गो अ॒ग्ने द॒शभिः॑ स॒हस्रैः॑ ।

अ॒धोक्ष॑णो द॒श म॒ह्यं रु॒शन्तो॑ न॒ळा इ॒व सर॑सो निर॑तिष्ठन् ॥ ३३ ॥

भा०—(अध) और जैसे ( दशभिः सहस्रैः अन्यान् अतिदासत् )  
विजयी दसों हजारों भटों से शत्रुओं को पराजय कर नष्ट कर देता है,  
जैसे ही (प्लायोगिः = प्रायोगिः) प्रयोग कुशल वा प्रयस् = उद्यम से,



ज्ञानपूर्वक जाने हारा ( आसङ्गः ) उत्तम सत्संगी, वा असंग पुरुष (दशमिः) दश (सहस्रैः) बलवान् इन्द्रियों के साथ ( अति दासत् ) सबको अपने वश कर लेता है । हे (अग्ने) प्रकाशक प्रभो ! (अध) तव (दश उक्षणः) दसों देह के उठाने वाले प्राण-गण (मह्यं) मेरी सहायता के लिये (सरसः नडाः इव) तालाब के तट पर खड़े नदों के तुल्य (नडाः = नराः) वीर पुरुषों के समान ही (निर् अतिष्ठन्) निकल खड़े होते हैं ।

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्बमाणः ।

शश्वती नार्यमिचक्ष्याह सुभद्रमर्थं भोजनं विभर्षि ॥३४॥१६॥

भा०—(अस्य) इस आत्मा का (स्थूरम्) स्थूल देह (अनु) इसके अनुरूप ही (पुरस्तात्) आगे (ददृशे) दीखता है । वह स्वयं (अनस्थः) अस्थि आदि से रहित, (उरुः) जंघों के समान शरीर का आश्रय होकर भी (अवरम्बमाणः) देह का आश्रय ले रहा है । (शश्वती) सदातनी (नारी) आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि (अमिचक्ष्य) आत्मा का साक्षात् करके (आह) कहती है—हे (अर्थ) स्वामिन् ! तू ही (सु-भद्रम्) उत्तम सुखदायी (भोजनं) भोग-साधन देह को (विभर्षि) धारण करता है । इति षोडशो वर्गः ॥

[ २ ]

मेध्यातिथि काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः । ४१, ४२ मेधातिथिर्ऋषिः ॥  
 देवताः—१—४० इन्द्रः । ४१, ४२ विभिन्दोर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—  
 १—३, ५, ६, ९, ११, १२, १४, १६,—१८, २२, २७, २९, ३१, ३३, ३५, ३७, ३८, ३९ आर्षी गायत्री । ४, १३, १५, १९—२१, २३, २४, २५, २६, ३०, ३२, ३६, ४२ आर्षी निचृद्गायत्री । ७, ८, १०, ३४, ४० आर्षी विराड् गायत्री । ४१ पाद निचृद् गायत्री । २८ आर्षी  
 स्वराडनुष्टुप् ॥ चत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥



इदं वसो सुतमन्धः पिब। सुपूर्णमुदरम् ।

अनामयिन्नरिमा ते ॥ १ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजा को बसाने वाले राजन् ! वा प्रत्येक में बसने वाले आत्मन् ! तू (अन्धः) अन्न के तुल्य ( सु-पूर्णम्-उदरम् ) अच्छी प्रकार पेट भर कर (सुतम् पिब) जलवत् उत्पन्न ऐश्वर्य का भोग कर । हे (वसो) गृहस्थ पिता तू (सुतम्) पुत्र को (सुपूर्णम् उदरम् अन्धः पिब) पेट भर कर अन्न खिलाकर पाल । हे ( अनामयिन् ) अभय ! (ते) तुझे हम ऐश्वर्य (ररिम्) दें ।

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः ।

अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अश्नैः सुतः) प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमरस (नृभिः धूतः) ऋत्विजों द्वारा हिला २ कर (अव्यः वारैः परिपूतः) भेड़ के बालों से छनता है वैसे ही (अश्नैः) शस्त्र बलों से (सुतः) अभिषिक्त राजा (नृभिः धूतः) नायक पुरुषों द्वारा शिक्षित और (अव्यः) रक्षा योग्य राष्ट्र के (वारैः) ऐश्वर्यों वा शत्रुवारक सैन्यों से (परिपूतः) परिगत राजा (नदीषु निक्तः अश्वः) नदियों में नहाये अश्व के तुल्य (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं के बीच (निक्तः) अभिषिक्त हो ।

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।

इन्द्र त्वा स्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जैसे (यवं) जौ के भोजन को (गोभिः श्रीणन्तः) गाय के दूधों से मिलाते हुए (स्वादुम् अकर्म) स्वादु बना लेते हैं और जैसे (ते) तेरे (यवं) शत्रुनाशक सैन्य बल को (गोभिः) भूमियों से उत्पन्न अर्थों द्वारा (श्रीणन्तः) परिपक्व, दृढ़ करते हुए राष्ट्र को (स्वादुम्) सब से भोग करने योग्य (अकर्म) करें । वैसे ही हे (इन्द्र) सूर्यवत् तेजस्विन् ! (अस्मिन् सधमादे) इस एक साथ हर्षित होने योग्य



अवसर में (त्वा) तुझको हम ( गोभिः श्रीणन्तः ) उत्तम वाणियों से संगत करते हुए (स्वादुम् = स्व-आदुम्) निज ऐश्वर्य-भोक्ता (अकर्म) बनाते हैं ।

इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः ।

अन्तर्देवान्मर्त्याश्च ॥ ४ ॥

भा०—(एकः इन्द्रः इत्) अद्वितीय, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही (सोम-पाः) ओषधि वर्ग के पालक मेघ या सूर्य के समान ऐश्वर्य का पालक है । वही (एकः इन्द्रः) अद्वितीय, 'इन्द्र', ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु (सुत-पाः) उत्पन्न ऐश्वर्य का भोक्ता, (सु-तपाः) शत्रु को अच्छी प्रकार पीड़ित करने वाला, (विश्वायुः) समस्त प्रजा का जीवन-स्वरूप, सब को प्राप्त है । वही ( देवान् मर्त्यान् च अन्तः ) सब दिव्य पदार्थों, मरणधर्मा प्राणियों के भीतर रहकर उनका (सोम-पाः) शिष्यवत् और पुत्रवत् पालक है ।

न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् ।

अपस्पृण्वते सुहार्दम् ॥५॥१७॥

भा०—(उरु-व्यचसं) महान् राष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध (सु-हार्दम्) उत्तम हृदय वाले (यं) जिसको (न शुक्रः) न देह में बलवीर्यवत् तेजो-वर्धक बल और (न दुराशीः) न दुर्भावना और (न तृप्राः) न तृप्त, धनी जन ही (अप-स्पृण्वते) द्वेष कर सकते हैं । इति सप्तदशो वर्गः ॥

गोभिर्यदमिन्ये अस्मन्मृगं न ब्रा मृगयन्ते ।

अमित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

भा०—(ब्राः न मृगं) घेरने वाले जन जैसे मृग अर्थात् सिंह को (गोभिः मृगयन्ते) हांकों से ढूँढ़ते हैं वैसे ( यत् ) जिसको (अस्मत् अन्ये) हमसे दूसरे भी (गोभिः) स्तुति वाणियों से (मृगयन्ते) खोजते



हैं वे (धेनुभिः) वाणियों, स्तुतियों द्वारा ही (अभि त्सरन्ति) प्राप्त होते हैं ।

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य ।

स्वे क्षये सुतपावन्ः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (सुतपावन्ः) यज्ञ में सोमपायी इन्द्र के लिये (सोमाः त्रय सुताः) सोम तीन बार सेवन किया जाता है वैसे (स्वे क्षये) अपने निवास-योग्य राष्ट्र में (सुतपावन्ः) गृह में सुतों के तुल्य राष्ट्र में प्रजापालक, (इन्द्रस्य) शत्रुनाशक, (देवस्य) राजा के लिये (त्रयः सोमाः) तीनों ऐश्वर्य जन, धन, मनन वल, (सुतासः) अच्छी प्रकार तैयार (सन्तु) हों ।

त्रयः कोशासः श्रोतन्ति तिस्रश्चम्बुः सुपूर्णाः ।

समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥

भा०—(समाने) एक समान, (भार्मन् अधि) भरण-पोषण-योग्य राष्ट्र वा युद्ध के अध्यक्ष पद पर स्थित राजा के (त्रयः कोशासः) तीनों कोश और (तिस्रः) तीन प्रकार की (सु-पूर्णाः) खूब पूर्ण, (चम्बुः) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं वा सेनाएं (श्रोतन्ति) उसे ऐश्वर्य देती हैं । तीन कोश—जनकोश, राष्ट्र, धनकोश खजाना और मन्त्रकोश राजविद्वत्सभा वा सचिव परिषद् और तीन चमू, प्रजाएं, सेनाएं और शासक वर्ग । (२) भरणीय, पोष्य देह में तीन कोश विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय, तीन चमू, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, समी आनन्द, ज्ञान, कर्म और फल देती हैं ।

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः ।

दध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (पुरु-निःष्ठाः) बहुतों में स्थिर होकर, (क्षीरैः) जलों से (मध्यतः) सब के बीच (आशीर्तः) आसेवित होकर



और (दत्ता) राष्ट्रधारक बल से (शूरस्य) पुरुष को भी (मन्दिष्ठः) आनन्दित करने वाला होकर (शुचिः असि) पवित्र हो ।

इमे तं इन्द्र सोमांस्तीव्रा अस्मे सुतासः  
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (इमे) ये (सोमाः) प्रजाजन और (अस्मे सुतासः) हमारे पुत्रादि (शुक्राः) आशु-कार्यकारी, तेजस्वी, (तीव्राः) वेगवान् होकर (ते) तेरा (आशिरं याचन्ते) आश्रय मांगते हैं । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

तां आशिरं पुरोडाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।  
रेवन्तं हि त्वां शृणोमि ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (हि) क्योंकि मैं (त्वा) तुझको (रेवन्तं) धन का स्वामी (शृणोमि) सुनता हूँ । जैसे (आशिरम् पुरोडाशम्) रसादि से मिश्रित अन्न को अग्नि तपाता और जैसे ओषधि अन्नादि का सूर्य परिपाक करता है वैसे ही तू (तान्) उन पूर्वोक्त शुद्धाचारवान् पुरुषों को और (आशिरम्) आश्रय देने योग्य (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र तथा (इदं) उस (पुरोडाशम्) आगे आदर पूर्वक देने योग्य की (श्रीणिहि) सेवा कर ।

हत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् ।  
ऊर्ध्वं न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥

भा०—(दुर्मदासः न) दुष्ट मद से युक्त पुरुष जैसे (हत्सु पीतासः) हृदयों तक पीकर, (युध्यन्ते) लड़ते हैं ऐसे ही (सुरायाम्) सुख देने वाली, राज्यलक्ष्मीवत् सुख से रमण-योग्य आनन्द दशा में (हत्सु पीतासः) हृदयों में आनन्द रस का अनुभव कर लेने वाले विद्वान् (युध्यन्ते) अन्तःशत्रु, काम क्रोधादि से शुद्ध करते हैं और (नग्नाः) वेद-

वाणियों का त्याग न करने वाले विद्वान् (ऊधः न) मातृस्तन वा मेघ-  
चत् सुखवर्षी प्रभु की (जरन्ते) स्तुति करते हैं ।

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वाचतो मघोनः ।

प्रेदुं हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे जैसे (मघोनः) उत्तम ज्ञान,  
शक्ति, ऐश्वर्य के स्वामी और (रेवतः) धन स्वामी की (स्तोता) स्तुति  
करने वाला पुरुष भी ( रेवान् इत् स्यात् ) धनाढ्य ही हो जाता है ।  
वह (प्र इत् उ) निश्चय ही (श्रुतस्य) वेदज्ञों द्वारा सुने गये ज्ञान का  
(हरिवः) आहरण करने वाला अपने में समा लेने वाला होता है ।

उक्तं च न शस्यमानमगौरिरिवा चिकेत ।

न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥

भा०—(अरिः) व्यापक, प्रभु (अगोः) वाणीरहित, मूक जन के  
भी (शस्यमानम् उक्तं चन) मन में कहे गये स्तुति वचन की (आचि-  
केत) जानता है वैसे ही (न गायमानं गायत्रं च) न गाये गये गायत्र  
स्तोम, गान योग्य गीत को भी जानता है । भगवान् मूक की भी  
सुनता है ।

मा न इन्द्र पीयन्नवे मा शर्धते परा दाः ।

शिक्षां शक्षीवः शचीभिः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (पीयन्नवे) क्रूर पुरुष  
के लाभ के लिये (मा परा दाः) मत त्याग और (शर्धते मा परा दाः)  
हमें पीड़ित करने वाले के हाथ मत दे । हे (शक्षीवः) शक्ति के स्वा-  
मिन् ! तू (नः) हमें (शक्षीभिः) शक्तियों और वाणियों से दुष्ट पुरुष  
के दण्ड के लिये (शिक्ष) शिक्षा या बल दे । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

वयमु त्वा तदिदंर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः

करवा उक्थेभिर्जरन्ते ॥ १६ ॥



भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य पद स्वामिन् ! (वयम् कणाः) हम विद्वान् लोग (तदिदर्याः) उस, इस पारमार्थिक, ऐहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाले, (सखायः) मित्र होकर (त्वायन्तः) तुझे सदा चाहते हुए वा तुझे प्राप्त होकर (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (जरन्ते) स्तुति करते हैं ।

न घेमुन्यदा पपन्न वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।

तवेदु स्तोमं चिकेत ॥ १७ ॥

भा०—हे ( वज्रिन् ) शक्तिशालिन् ! (अपसः) कर्म करने वाले तेरी (नविष्टौ) उत्तम पूजा के अवसर पर मैं (अन्यत् न घ आ पपन्न) और कुछ स्तुति नहीं करूँ, मैं (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमं चिकेत) स्तुति करना मानूँ ।

इच्छन्ति देवा सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।

यन्ति प्रमादमर्तन्द्राः ॥ १८ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् जन (सुन्वन्तं) यज्ञ और ईश्वर-स्तुति करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं । वे (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) सोने वाले वा आलस्य से प्रेम नहीं करते । (अतन्द्राः) आलस्यरहित पुरुष भी (प्रमादम् यन्ति) प्रमादी हो जाते हैं इसलिये आलस्य से प्रेम न करो । अथवा—( अतन्द्राः प्र-मादम् यन्ति ) आलस्य से रहित लोग ही उत्तम आनन्द पाते हैं ।

ओ षु प्र याहि वाजेभिर्मा हृणीथा अभ्यस्मान् ।

महाँइव युवजानिः ॥ १९ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (युवजानिः महान् इव) जैसे युवती स्त्री का पति (वाजेभिः) उत्तम ऐश्वर्यों सहित महान् होकर राजा अनुभव नहीं करता, वैसे ही हे ऐश्वर्यधन् ! तू भी (महान्) गुणों में महान् होकर

(अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ उ सु-प्र याहि) आ और सुखपूर्वक,  
आदर से जा (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (मा हणीथाः) क्रोध मत कर ।

मा ष्वऽद्य दुर्हणावान्सायं करदारे अस्मत् ।

अश्रीर इव जामाता ॥ २० ॥ २० ॥

भा०—हे स्वामिन् ! तू (दुर्हणावान्) दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु  
(अद्य) आज (अस्मत्) हम से दूर रहकर ( मो सु सायं करत् ) सारा  
दिन बिता कर सायंकाल न कर दे । (अश्रीरः इव जामाता) सौभा-  
ग्यादि से रहित जंवाई जैसे दिन भर व्यतीत करके रात्रि काल में आता  
है, जिससे उसकी दुरी दशा प्रकट न हों । वैसे ही हे स्वामिन् ! तेरा  
भी विरह असह्य है । इति विंशो वर्गः ॥

विद्या ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम् ।

त्रिषु ज्ञातस्य मनांसि ॥ २१ ॥

भा०—(अस्य वीरस्य) इस वीर के तुल्य बल से युक्त, विद्याओं  
के उपदेष्टा, स्वामी की ( भूरि-दावरीं ) बहुत सुखैश्वर्य देने वाली (सु-  
मतिम्) कल्याणकारी बुद्धि और वाणी को (विद्य हि) अवश्य जानें ।  
(त्रिषु) तीनों वेदों में (ज्ञातस्य) प्रसिद्ध, तीनों के ज्ञाता के (मनांसि)-  
ज्ञानों को भी (विद्य) जानें ।

आ तू षिञ्च कण्ववन्तं न घा विद्य शवसानात् ।

यशस्तरं शतमूतेः ॥ २२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (कण्ववन्तं) विद्वान् पुरुषों से युक्त जन को  
(आ सिञ्च) वनस्पतिवत् सींच, बढ़ा । (शतम्-उतेः) सैकड़ों रक्षाओं  
से युक्त (शवसानात्) शक्तिशाली से (यशस्तरं) अधिक यशस्वी दूसरे  
को हम (न घ विद्य) नहीं जानते

ज्येष्ठैन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शुक्राय ।

भरा पिबन्नयाम् ॥ २३ ॥



भा०—हे (सोतः) उपासक ! तू (वीराय) विविध बुद्धियों की प्रेरणा देने वाले, (शक्राय) शक्तिशाली (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् और (नर्याय) मनुष्यों के हितकारी के लिये (ज्येष्ठेन) उसे सर्वश्रेष्ठ जान कर (सोमं भर) ऐश्वर्यादि, वा अपने आत्मा को अर्पण कर । वह (पिवत्) उसका पालन करे ।

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः ।

वाज स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (अव्यथिषु) अन्धों के अपीडक जनों में (वेदिष्ठः) सबसे अधिक वेदनावान् है, वह (जरितृभ्यः) विद्वानों और (स्तोतृभ्यः) उपदेशकों को (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) अश्वों और गौओं से सम्पन्न ऐश्वर्य देता है ।

पन्यं पन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय ।

सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोतारः) विद्वान् जनो ! हे यज्ञकर्त्ता जनो, हे ऐश्वर्य, अन्नदि के उत्पादक प्रजा जनो ! आप लोग (मद्याय) आनन्द हर्ष के योग्य (वीराय) वीर (शूराय) शूर पुरुष के लिये (पन्यं-पन्यं सोमं) स्तुत्य, एवं सर्वोत्तम अन्न ऐश्वर्यादि प्राप्त कराओ । इत्येकविंशो वर्गः ॥

पाता वृत्रहा सुतमा धां गमन्तारे अस्मत् ।

नियमते शतमूतिः ॥ २६ ॥

भा०—(अस्मत् आरे) हमसे दूर रहकर भी (वृत्रहा) विघ्नो, विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक राजा (पाता) राष्ट्र का पालक होकर राष्ट्र को (सुतम्) पुत्रवत् जान कर (आ घ गमत्) अवश्य आवे । वह (शतम्-कतिः) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न होकर (नियमते) राष्ट्र की व्यवस्था करे ।

पह हरीं ब्रह्मयुजां श्रमा वक्षतः सखायम् ।

गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥

भा०—(ब्रह्म-युजा) बृहद् राष्ट्र के पालक पद पर नियुक्त, बड़े वेतनादि पर सहयोगी (हरीं) स्त्री-पुरुष (इस) इस राष्ट्र में (श्रमा) सुखदायी होकर (गीर्भिः श्रुतं) वाणियों से विख्यात, ( गिर्वणसम् ) वाणियों को स्वीकारने और देने वाले ( सखायम् ) मित्रवत् इन्द्र को (आ वक्षतः) अपने ऊपर धारण करते हैं ।

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।

शिप्रिन्क्षीवः शचीवो नायमच्छा सध्रमादम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) तेजस्विन् ! हे (क्षवीवः) इन्द्रियों के स्वामिन् ! हे (शचीवः) शक्तियों के स्वामिन् ! (सोमाः) ये अन्नादि जगत् के उत्पन्न पदार्थ; अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द और ये जीवगण (स्वादवः) सुखकारी और ( सु-आदवः ) सुख की कामना करते, (सोमाः श्रीताः) समस्त रस परस्पर मिल गये हैं और समस्त जीवगण रस से नृत्य हैं । (आ याहि आ याहि) हे प्रभो ! तू आ, तू आ । (न) अभी (अयम्) यह (सध्र-मादम्) साथ मिलकर हर्ष उत्पन्न करने वाले को (अच्छ) साक्षात् कर ।

स्तुतश्च यास्तु वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।

इन्द्रं कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (या स्तुतः) जो स्तुतियां (त्वा कारिणं वर्धन्ति) तुझ कर्त्ता को बढ़ाती हैं जो पुरुष (महे राधसे) बड़े ऐश्वर्य और (नृम्माण) ज्ञान के लिये (वृधन्तः) बढ़ते हुए (त्वा कारिणं) तुझ कर्त्ता को प्राप्त करते हैं वे (दधिरे) उन स्तुतियों को धारते हैं ।

गिरिश्च यास्तै गिराह उक्था च तुभ्यं तानि ।

सुत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥ २२ ॥



भा०—हे (गिरिवाहः) मनुष्यों को वाणियां देने वाले ! (याः च गिरः) जो वाणियां और (यानि च उक्थानि) जो उत्तम वेद-वचन (ते) तेरे लिये प्रयुक्त हैं विद्वान्जन उन वाणियों और (तानि) उन उत्तम वचनों और (शवांसि) नाना बलों को (तुभ्यं) तेरी स्तुति के लिये ही (सत्रा दधिरे) सदा धारण करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः ।

सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥

भा०—(एव इत्) निश्चय से ही, (एपः) यह (तुवि-कूर्मिः) बहुत से लोकों का कर्त्ता (एकः) अकेला, (वज्रहस्तः) अपने हाथ में समस्त शक्तियों को लिए हुए, (सनात्) सनातन से प्रसिद्ध, (अमृक्तः) अविनाशी प्रभु ही (वाजान् दयते) समस्त ऐश्वर्यों और सुखों को देता है ।

हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरु पुरुहूतः ।

महान्महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् ( पुरुहूतः ) बहुतों द्वारा स्तुति-योग्य है । वह (दक्षिणेन) प्रबल ज्ञान और सामर्थ्य से (वृत्रं) अज्ञान का अन्धकारवत् (हन्ता) नाश करता है । वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों और पूज्य वाणियों से गुरुवत् (महान्) महान् है ।

यस्मिन्विश्वाश्चर्षण्य उत ज्यौत्ना ज्रयांसि च ।

अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥

भा०—( यस्मिन् ) जिस परमेश्वर के आश्रय (विश्वाः चर्षणयः) समस्त मनुष्य (उत ज्यौत्ना) समस्त बल, और (ज्रयांसि) श्रेष्ठ विजय सामर्थ्य हैं उसी (मघोनः) ऐश्वर्य के स्वामी के (अनुः घ इत्) अनुकूल रहने वाला पुरुष ही (मन्दी) अति सुखी, आनन्दवान् होता है ।

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृणवे ।

वाज्रदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर ( अति शृण्वे ) सब वैभवों में सबसे अधिक सुना जाता है, जो (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानों को भी (वाज्रदात्रा) ऐश्वर्यदाता है (एषः) वह (एतानि) इन सब सूर्यादि को (चकार) बनाता है ।

प्रमर्ता रथं गन्त्यन्तमपाकाच्छिद्यमवन्ति ।

इनो वसु स हि वोढा ॥ ३५ ॥ २३ ॥

भा०—वह (प्र-मर्ता) सबसे उत्कृष्ट, प्रजा-पोषक प्रभु, (अपा-कात्) कच्चे मार्ग से रथ को सारथि के तुल्य ( यम् ) जिस (गन्त्यन्तं) स्तुति-वाणी या भूमि आदि के इच्छुक ( रथम् ) रमणकारी भक्त की (भवति) रक्षा करता है (सः हि) वही (इनः) स्वामी (वसु वोढा) ऐश्वर्य धारण करने वाला होता है ।

सनिता विप्रो अर्वाङ्गिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।

सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

भा०—वह (वृत्रं हन्ता) अज्ञान, विघ्नकारी दुष्टों का नाशक, (शूरः) वीर सेनापति के तुल्य प्रभु (विप्रः) ज्ञानों का दाता है, वही (नृभिः) उत्तम पुरुषों और (अर्वाङ्गिः) ज्ञान-साधनों से (सनिता) सुखों का दाता है । वह (विधन्तम्) सेवा करने वाले का (सत्यः अविता) सच्चा रक्षक है ।

यजत्वेनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्रात्रा मनसा ।

यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥ ३७ ॥

भा०—जैसे (सोमैः) जलों से सूर्य व्यक्त जगत् को तृप्त और प्रसन्न करता है वैसे ही (यः) जो (सोमैः सत्य-मद्वा भूत्) ऐश्वर्यों, बलों से सत्य ज्ञान और व्यक्त जगत् में रमण करने वाला और ज्ञानी पुरुषों वा ऐश्वर्यों से सत्य रूप से स्तुति करने योग्य होता है, हे (प्रियमेधाः)



यज्ञप्रिय जनो ! ( एनं इन्द्रं ) इस इन्द्र, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (सन्नाचा मनसा) सत्य से युक्त, एवं तद्गत चित्त से (यजध्वम्) उपासना करो ।

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् ।

कण्वांसो गात वाजिनम् ॥ ३८ ॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान् पुरुषो ! आप (गाथ-श्रवसं) जिसका श्रोतव्य ज्ञान वा स्वरूप गाने योग्य है, उस (सत्पतिं) सत् पदार्थों के पालक, (श्रवः-कामं) श्रवणीय ज्ञान, संकल्प वाले, ( पुरु-त्मानम् ) इन्द्रियों में की आत्मा के समान बहुतों के प्रिय (वाजिनम्) ज्ञानवान् प्रभु की (गात) स्तुति करो ।

य ऋते छिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान् ।

ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥ ३९ ॥

भा०—(यः) जो (ऋते) ज्ञानमय प्रभु में या सत्य ज्ञान के बल पर (पदेभ्यः) प्राप्त होने वाले (नृभ्यः) मनुष्यों का (शचीवान् सखा) शक्तिशाली मित्र होकर (गाः दात्) वाणियों को देता है और (ये) जो ( अस्मिन् ) इसमें (कामम्) अपनी कामना को ( अश्रियन् ) प्राप्त करते हैं उनका वह मित्र है ।

इत्था धीवन्तमाद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् ।

मेषो भूतोऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार हे (आद्रिवः) सर्वशक्तिमान् ! (धीवन्तम्) बुद्धिमान्, ध्यान-धारणा-युक्त, (काण्वं) विद्वान्, (मेध्यातिथिम्) व्यापक प्रभु वा अतिथि के उपासक के प्रति तू (मेघः) सब सुखों का देने वाला, मेघवत् (भूतः) होकर (अभि यन्) प्रत्यक्ष होकर (अयः) प्राप्त होता है ।

शिक्षां विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् ।

अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥

भा०—हे ( विभिन्दो ) अज्ञानों के नाशक ! प्रभो ! तू (दत्त) ऐश्वर्यादि देता हुआ (अस्मै) इस उपासक को (अयुता) एकत्र सम्मिलित (चत्वारि) चारों पुरुषार्थों को (शिक्ष) प्रदान कर, (परः) और भी अधिक (सहस्रा) बलवान् (अष्टा) सात मुख्य प्राण और आठवीं वाणी को भी प्रदान कर ।

उत सु त्वे पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या ।

जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥ २४ ॥

भा०—(उत) और (त्वे) उन (पयः-वृधा) माता पिता के समान दूध और ज्ञान से बालकवत् बढ़ाने वाले (रणस्य माकी) रम्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (नप्त्या) सदा परस्पर सम्बद्ध, प्रभु और प्रकृति दोनों को (जनित्वनाय) जीवों और जगत् के उत्पन्न करने के लिये (सु मामहे) उत्तम रीति से पूज्य जाँने । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ ३ ]

मेध्यातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—२० इन्द्रः । २१—२४ पाक-स्थाम्नः कौरयाणस्य द्रानस्तुतिः ॥ छन्दः—१ कुकुम्भती बृहती । ३, ५, ७, ९, १९ निचृद् बृहती । ८ स्वराड् बृहती । १५, २४ बृहती । १७ पथ्या बृहती । २, १०, १४, सतः पंक्तिः । ४, १२, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । २० विराट् पंक्तिः । १३ अनुष्टुप् । ११, २१ भुरिगनुष्टुप् । २२ विराड् गायत्री । २३ निचृत् गायत्री ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

पिबां सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।

आपिनीं बोधि सध्माद्यो वृधेऽस्माँ अवनतु ते धियः ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (गोमतः) वाणी से युक्त प्रार्थी वा इन्द्रियों से युक्त (रसिनः) बल या सुख के अभिलाषी (सुतस्य) उत्पन्न



जीव का (पिब) पालन कर । (नः मत्स्व) हमें हविर्त कर । तू (सध-  
माद्यः) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने हारा होकर गुरुवत् (नः) हमारा  
(आपिः) आस बन्धु होकर हमें (वृधे) वृद्धि के लिये ऐश्वर्य (बोधि)  
प्रदान कर । और (ते धियः) तेरे कर्म, बुद्धियां और स्तुतिचां (अस्मान्  
अवन्तु) हमारी रक्षा करें ।

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरमिमांतये ।

अस्माच्चित्राभिरवतामिष्टिमिरा नः सुक्षेपुं यामय ॥ २ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (वयं) हम (वाजिनः) ऐश्वर्य के स्वामी होकर  
भी (ते) तेरी (सु-मतौ) उत्तम बुद्धि के अधीन (भूयाम) रहें । तू (नः)  
हमें (अभि-मातये) अभिमानी पुरुष के स्वार्थ के लिये (मा स्तः) पीड़ित  
मत कर । तू (नः) हमें (सुक्षेपु) सुखदायक प्रबन्धों में (आ यामय)  
बांध और (चित्राभिः अमिष्टिभिः) अद्भुत कामनाओं से (अस्मान् अव-  
ताव) हमारी रक्षा कर ।

इमा उ त्वा पुरुवसो गिरो वार्धन्तु या मम ।

पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत धनों के स्वामिन् ! (याः) जो (मम)  
मेरी (गिरः) नाना वाणियां हों (इमा उ त्वा) वे सब भी तुझको  
(वार्धन्तु) बढ़ायें । और (पावकवर्णाः) अग्नि समान तेजस्वी, पवित्र  
करने वाले शरीरयुक्त, (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (विपश्चितः)  
विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुतियों से (त्वा अभि-अनूषत) तेरा स्तवन  
करें ।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।

सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शर्वो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह स्वामी (सहस्रं) सहस्रों वार वा सहस्रों  
(ऋषिभिः) तत्त्वज्ञानी पुरुषों से (सहस्कृतः) बल युक्त किया जाकर

(समुद्रः इव) समुद्र के तुल्य (पप्रथे) विस्तार को प्राप्त होता है ।  
(सः अस्य) वह इसका (सत्यः महिमा) सच्चा सामर्थ्य है जो (विप्र-  
राज्ये) विद्वानों के शासन में (यज्ञेषु) सत्संगादि में (शवः) उसके बल  
और ज्ञान की (गुणे) स्तुति की जाती है ।

इन्द्रमिद्वेवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥५॥२५॥

भा०—(देव-तातये) विद्वानों से किये जाने वाले यज्ञादि उत्तम  
कार्य के लिये (वयं) हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (हवामहे)  
बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति) यज्ञ प्रवृत्त होने पर भी हम (वनिनः) दान-  
शील होकर (इन्द्रं हवामहे) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की स्तुति करते हैं ।  
(समीके) युद्ध के अवसर पर (वनिनः) ऐश्वर्यवान् होकर हम (इन्द्रं)  
शत्रुहन्ता स्वामी को स्वीकार करते हैं, (धनस्य सातये) धन लाभ के  
लिये हम उसकी ही स्तुति करते हैं ।

इन्द्रो मङ्गा रोदसी पप्रथच्छ्व इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।

इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (मङ्गा) महान् सामर्थ्य से  
(रोदसी) आकाश और भूमि को (पप्रथत्) विस्तारित करता है । वह  
(शवः इन्द्रः) बलवान् सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को  
प्रकाशित करता है । (इन्द्रे ह) उस प्रभु के अधीन ही (विश्वा भुव-  
नानि) समस्त भुवन (येमिरे) सुव्यवस्थित हैं । (इन्द्रे) उस प्रभु के  
अधीन ही (सुवानासः) उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) मेघ, सूर्य, चन्द्रादि  
लोक और शुभ-कर्मकारी विद्वान् रहते हैं ।

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमैभिरायवः ।

समीचीनास अभवः समस्वरघुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥७॥



भा०—हे (इन्द्र) शत्रु वा दुष्टजनों के नाशक स्वामिन् ! (आयवः) मनुष्य लोग (पूर्वपीतये) सर्व प्रथम राष्ट्र के उपभोग और पालन के लिये (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर ही (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से (समीचीना) उत्तम भाव से युक्त होकर (ऋभवः) धन, ज्ञान से सम्पन्न जन (सम् अस्वरन्) मिलकर तेरी स्तुति करते हैं। (रुद्राः) दुष्टों को हलाने वाले वीर तथा मेघ, सूर्यादि, वा उपदेष्टा विद्वान् जन (पूर्व्यस् गृणन्त) सबसे पूर्व विद्यमान तेरी ही स्तुति करते हैं।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्णयं शवो मदे सुतस्य विष्णावि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु घुवन्ति पूर्वथा ॥८॥

भा०—(सुतस्य) इस उत्पन्न जगत् के (विष्णावि) व्यापक (मदे) आनन्द में ही (अस्य) इस जीव गण के (इत्) भी (वृष्णयं शवः) बल-युक्त सुखप्रद ज्ञान और बल को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वावृधे) बढ़ाता है। (आयवः) ज्ञानी मनुष्य (अद्य) आज भी (अस्य तस् महिमानम्) इसके उस महान् सामर्थ्य का (पूर्वथा अनु स्तुवन्ति) पूर्ववत् स्तुति करते हैं।

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये ।

येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९॥

भा०—हे प्रभो ! (त्वा) तुझसे मैं (तत्) वह (सुवीर्यं) उत्तम बल (तत् ब्रह्म) वह ज्ञान, ऐश्वर्य (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान और सन्नय के निमित्त (यामि) मांगता हूँ (येन) जिससे (यतिभ्यः) जितेन्द्रिय पुरुषों और (भृगवे) पुष्ट वाणी वाले तेजस्वी के उपकार के लिये (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त (प्रस्कण्वम्) उत्कृष्ट मेधावी पुरुष की (आविथ) रक्षा करता है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवंः ।

सद्यः सो अस्य महिमा न सन्नशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१०॥२६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (येन) जिस बल से तू (समुद्रम्) समुद्र को (महीः अपः) भूमियों और जलों को (असृजः) रचता है (ते) तेरा (तत्) वह (शवः) ज्ञान और बल (वृष्णि) सब सुखों को देने वाला है । (यम्) जिसके अनुकूल (क्षोणीः अनु चक्रदे) भूमि, मनुष्य चलते और स्तुति करते हैं (सः अस्य महिमा) वह उसकी महिमा है । (सद्यः न संनशे) शीघ्र उसको नहीं जाना जा सकता ?

शन्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।

शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्य ॥११॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यत् रयिम्) जिस ऐश्वर्य और (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को मैं तुझ से (यामि) मांगता हूँ । तू वह (नः शग्धि) हमें देकर समर्थ कर । (प्रथमम्) सर्वोत्तम पुरुष को (वाजाय) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (शग्धि) समर्थ कर । हे (पूर्य) पूर्व के जनों में सर्वोत्तम ! हे पूर्ण ! तू (सिषासते) भजन की इच्छा वाले (स्तोमाय) स्तुतिकर्ता जन के हितार्थ (शग्धि) सब को समर्थ कर ।

शन्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धियं इन्द्र सिषासतः ।

शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धियः सिषासतः) कर्मों और बुद्धियों का सेवन करने वाले के (पौरम्) पुरवासी जन को (यत् ह) जिससे तू (आविथ) रक्षा करता है, (अस्य) इस ऐश्वर्य को (नः शग्धि) हमें भी दे और (यथा) जैसे (रुशमं) रोगों के शान्तिकारक, (श्यावकम्) विद्वान्, (कृपम्) कृपालु (स्वः-नरम्) सुखप्रद नायक तेजस्वी पुरुष की (आवः) रक्षा करता है वैसे हमें भी (शग्धि) समर्थ बना ।

कन्नव्यौ अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।

नहीन्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १३ ॥



भा०—(अतसीनां) निरन्तर एक से दूसरे देह में विचरने वाले जीवों में से (कः) कौन सा (तुरः) शीघ्रकारी (नव्यः) अपूर्व ऐसा (मर्त्यः) मनुष्य है जो (अस्य) इस प्रभु के (महिमानम्) महात्त्व सामर्थ्य का (गृणीत) वर्णन कर सके। (इन्द्रियं) 'इन्द्र' के ही महात्त्व ऐश्वर्य, प्रभु के बनाये जगत् को ही (स्वः) परम सुख (गुणन्तः) कहते हुए जीव (अस्य) इसके सामर्थ्य का पार (नही) नु आनशुः) कभी नहीं पा सकते।

कदुं स्तुवन्तं ऋतयन्तं देवतं ऋषिः को विप्रं ओहते ।  
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतं कदुं स्तुवत आ गमः ॥१४॥

भा०—हे (देवत) प्रकाशस्वरूप ! (ऋतयन्तः) ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना वाले तुझे (कदुं उ स्तुवन्ते) कौन स्तुति करते हैं (कः) कौन (ऋषिः) तत्त्वदर्शी (विप्रः) विद्वान् (आ ऊहते) प्रार्थना कर सकता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! हे (इन्द्र) प्रकाशस्वरूप ! तू (सुन्वतः) उपासक के (हवं) स्तुति-वचन को (कदा आगमः) कब प्राप्त होता और (स्तुवतः) स्तुतिकर्ता के समीप (कत् उ आ गमः) तू कब आता है ?

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरुः स्तोमास ईरते ।  
सन्नाजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५॥२७॥

भा०—(वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथ वा रथारोही वीर (अक्षित-ऊतयः) अक्षय बल से युक्त होकर (सन्नाजितः) एक साथ शत्रुओं को जीतने और (धनसाः) धन को प्राप्त करने वाले होते हैं वैसे ही हे (इन्द्र) प्रभो ! (त्ये) वे (मधु-मत्त-माः) उत्तम रीति से गुरु द्वारा सज्जित विद्या-मधु के धारक (स्तोमासः) स्तुतिकर्ता और (गिरुः) उपदेष्टा लोग (सन्नाजितः) सत्य के बल पर विजयी, (धनसाः) ऐश्वर्य के भागी और दानी (अक्षितोतायः) अक्षय तृप्तियुक्त वा

अधुण मार्गं बाले, (वाजयन्तः) ज्ञानैश्वर्य के अभिलाषी होकर (उत्  
ईरते) ऊंचे उठते हैं ।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धितीमानशुः ।

इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

भा०—(सूर्याः इव) सूर्यों के तुल्य तेजस्वी, (कण्वाः इव) विद्वान्  
जनों के तुल्य ही (भृगवः) पापों को भूतने वाले, वा वाग्मी जन,  
(विश्व इव धीतम्) विश्व रूप से ध्यान करने योग्य प्रभु को (आनशुः)  
प्राप्त होते हैं, और (स्तोमेभिः महयन्तः) स्तुतियों से पूजा करते हुए  
(प्रिय-मेधासः) सत्संगप्रिय, अन्नार्थी जन (इन्द्रम्) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की  
(अस्वरन्) स्तुति करते हैं ।

युद्धा हि वृत्रहन्तस् हरीं इन्द्र पद्मावतः ।

अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥

भा०—हे ( वृत्रहन्-तम ) विघ्नों और वारण योग्य व्यसनों के  
नाशक स्वामिन् ! तू (पद्मावतः) दूर २ देश से ही (हरी युद्ध हि) स्त्री-  
पुरुषों को परस्पर जोड़ा कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (उग्र)  
बलवन् ! तू (सोमपीतये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (अर्वाचीनः) आगे  
बढ़ कर (ऋष्वेभिः) बड़े पुरुषों या विद्वानों द्वारा दिये उपदेश से हमें  
(आगहि) प्राप्त हो ।

इमे हि ते कारवो वावशुधिया विप्रांसो मेघसातये ।

स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न ऋणुध्री हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) हे प्रकाशस्वरूप !  
हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति करने योग्य ! (इमे हि ते कारवः) ये  
तेरे स्तुतिकर्ता (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मेघ-सातये) यज्ञ, दान प्राप्त  
करने के लिये, (वावशुः) तुझ ईश्वर को चाहते हैं । (सः त्वं) वह तू



(वेनः न) अभिलाषी के तुल्य (नः हवस् शृणुधि) हमारी पुकार सुन ।  
 निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।  
 निरवुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बड़ी २ धनु-  
 धर सेनाओं की प्रतिष्ठा के लिये तू (वृत्रं निर् अस्फुरः) धन का विनाश-  
 मत कर (अवुदस्य) अत्यन्त ज्ञानी (मृगयस्य) स्वामी प्रभु के अन्वे-  
 षक, (मायिनः) बुद्धिमान् (पर्वतस्य) मेघ-तुल्य सबके पालक पुरुष  
 की (गाः निर् अजः) वाणियों को हृदय से निकाल वा ग्रहण कर ।

निरग्नयो रुरुचिर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः  
 निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥२०॥२८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जो तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से  
 (महाम् अहिम्) बड़े, आघातकारी मेघ वा अन्धकार को दूर करता है,  
 तब तू (पौंस्यं कृषे) मनुष्यों के हितकर बल को प्रकट करता है । उस  
 समय (अग्नयः निर् रुरुचुः) अग्नियें खूब प्रज्वलित होती हैं (सूर्यः निर्)  
 सूर्य खूब प्रकाशित होता है और (इन्द्रियः रसः) इन्द्र, आत्मा से  
 सेवन-योग्य, रसवत् आत्मिक आनन्द भी प्रकट होता है । इत्यष्टा-  
 विंशो वर्गः ॥

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः ।  
 विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

भा०—परमेश्वर का स्वरूप—(यम्) जिसको लक्ष्य करके (इन्द्रः)  
 आचार्य और (मरुतः) विद्वान् तथा आत्मा और प्राण (मे दुः) मुझे  
 ज्ञान देते हैं और परमेश्वर (पाकस्थामा) परिपक्व बल वाला (कौर-  
 याणः) क्रियावान्, सबको चलाने वाला है । मैं (विश्वेषां) सबके बीच  
 (त्मना शोभिष्ठम्) आत्मा-रूप से शोभावान् उस तेजोमय को (दिवि  
 धावमानम् उप इव) आकाश में गति करते सूर्य के तुल्य देखता हूँ ।

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यग्राम् ।

अदाद्रायो विवोधनम् ॥ २२ ॥

भा०—सर्वनियन्ता प्रभु मुझे (सुधुरं) सुख से धारण योग्य (कक्ष्य-ग्राम्) कक्षाओं, कोखों में पूर्ण (रोहितं) निरन्तर बढ़ने वाला वा तेजस्वी आत्मा वा शरीर (अदात्) देता है, वह (रायः) नाना ऐश्वर्य देता है और वह (विवोधनम् अदात्) मन, इन्द्रिय आदि ज्ञानों के साधन और विशेष ज्ञान को भी देता है ।

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः ।

अस्तं वयो न तृग्र्यम् ॥ २३ ॥

भा०—(तृग्र्यं वयः न) शत्रुहिंसक, गृह-स्वामी को वेगवान् अथ जैसे ((अस्तं) घर ले जाते हैं वैसे ही (यस्मै) जिस प्रभु के दर्शन के लिये (अन्ये दश वह्नयः) और दस अभिवत् तेजस्वी शरीर को गाड़ी के तुल्य उठाने वाले दश प्राण (धुरं प्रति वहन्ति) धारक आत्मा के अधीन उसको उठाते हैं ।

आत्मा पितुस्तनूर्वासं ओजोदा अभ्यञ्जनम् ।

तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४॥२५॥

भा०—मैं (रोहितस्य) तेजस्वी, शरीर में उत्पन्न होने वाले जीव को (दातारम्) देने वाले (पाकस्थामानम्) बलशाली (भोजम्) पालक प्रभु को ही (तुरीयम् इत् अब्रवम्) तुरीय, चतुर्थ परम पद के नाम से कहता हूँ । वही (आत्मा) चेतन है, वह (पितुः) अब्रवत् जीवनाधार है । वह (तनूः) देहवत् प्रिय जगत् का विस्तारक है । वह (वासः) वस्त्रवत् आच्छादक, सर्वत्र बसने वाला है । वही (भोजः दाः) देह में आत्मा के तुल्य समस्त बल का दाता और (अभ्यञ्जनम्) तैलादि स्निग्ध पदार्थों के तुल्य कान्ति, स्नेह और प्रकाश को देने वाला है । इत्ये-  
कोनविंशो वर्गः ॥



[ ४ ]

देवातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—१४ इन्द्रः । १५—१८ इन्द्रः  
 पूषा वा । १९—२१ क्रुगस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, १३ भुरिगनुष्टुप् ।  
 ७ अनुष्टुप् । २, ४, ६, ८, १२, १४, १८ निचृत् पंक्तिः । १० सप्त  
 पंक्तिः । १६, २० विराट् पंक्तिः । ३, ११, १५ निचृद् बृहती ।  
 ५, ६ बृहती पथ्या । १७, १९ विराड् बृहती । २१ विराड्बृष्णिक् ॥  
 एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यदिन्द्रं प्रागप्रागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।

सिमां पुरु नृषूतो अस्यानवेऽसिं प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत्) जो तू (प्राग्, अपाक्, उदङ्  
 न्यग् वा) पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण या ऊंचे नीचे, (नृभिः हूयसे)  
 मनुष्यों से स्तुति किया जाता है हे (प्र-शर्ध) उत्तम बलशालिन् ! हे  
 (सिम) सर्वश्रेष्ठ ! तू सचमुच (तुर्वशे) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्य-  
 संघ के बीच भी (पुरु नृ-सूतः) बहुत प्रकार के मनुष्यों से उपासित  
 (असि) होता है ।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्रं मादयसे सचा ।

कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २ ॥

भा०—(यद् वा) और जो तू (रुमे) उपदेष्टा, (रुशमे) अन्यो की  
 पीड़ा शान्त करने वाले रक्षक, (श्यावके) इधर-उधर जाने वाले  
 व्यापारी और (कृपे) दयाशील, श्रमी, जनघर्ग में (सचा) एक साथ  
 सबको (मादयसे) प्रसन्न करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! और (स्तोम-  
 वाहसः) स्तुतिधारक, (कण्वासः) बुद्धिमान् ( ब्रह्मभिः त्वा यच्छन्ति )  
 वेदमन्त्रों से तूझे अपने को अर्पित करते हैं, वह तू (आ गहि) हमें  
 प्रास हो ।

यथा गौरो अपा कृतं तृणक्षेत्यवेरिणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे त्वयमा गंहि कण्वेषु सु सचा पिव ॥३॥

भा०—(यथा) जैसे (गौरः) गौओं में रति, अनुरागादि करने वाला वृषभ पशु वा गौर नाम मृग, (तृण्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतम्) जल से भरे (हरिणम्) जलाशय को (अवः एति) प्राप्त होता है वैसे ही (गौरः) 'गो' इन्द्रियों में रमने वाला जीव, (तृण्यन्) तृणा-युक्त होकर (अपा) जलादि के विकाररूप रुधिरादि से (कृतं) बने (हरिणम्) 'इरा' अन्न के विकार से बने देह को (अव एति) प्राप्त होता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमारे (आपित्वे) बन्धु-भाव को (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (नः) हमें (त्वम्) शीघ्र ही (आ गंहि) प्राप्त हो और (कण्वेषु) विद्वान् जनों के बीच (सचा) साथ रहकर (सु-पिव) अच्छी प्रकार मोक्ष-आनन्द रस का पान कर ।

मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्देन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।

अमुष्या सोममपिवश्चमू सुतं ज्येष्ठं तदधिषे सहः ॥४॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) दुष्टों के नाशक प्रभो ! राजन् ! (इन्दवः) ऐश्वर्य युक्त जीवगण (त्वा मन्दन्तु) तुझे प्राप्त होकर प्रसन्न हों । (सुन्वते) उपासक तथा (राधो-देयाय) उपहार देने वाले पुरुष के (सोमम्) ज्ञानसम्पन्न, (चमू-सुतम्) उत्तम माता पिता के बीच उत्पन्न जीव को पुत्रवत् (आ-मुष्य) स्वीकार कर, उसका गुणवत् (अपिवः) पालन कर । तू ही (तत्) उस (सहः) बल को (दधिषे) धारण करने हारा है ।

प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा ।

विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षा इव येमिरे ॥५॥३०॥

भा०—वह शत्रुहन्ता स्वामी (सहसा) बल से (सहः) शत्रुओं का पराजय (प्र चक्रे) अच्छी प्रकार करे और (ओजसा) पराक्रम से



(मन्युम् बभञ्ज) शत्रु के क्रोध को तोड़ डाले । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् !  
हे (यहो) महान् ! (ते) तेरे अधोन (विश्वे) सब (पुत्रनायकः) सेना-  
बल और प्रजास्थ मनुष्यों के स्वामी नायक (वृक्षाः इव) वृक्षों के  
समान भूमि को घेर कर (नि येमिरे) भूमि या राज्य का प्रबन्ध करें ।  
इति त्रिंशो वर्गः ॥

सहस्रेणैव सचते यवीयुधा यस्त आनलुपस्तुतिम् ।  
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्यं दाशनोति नमउक्तिभिः ॥६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! (यः) जो (ते) तेरी (उप-स्तुतिम्)  
स्तुति (आनङ्) करता है, वह (सहस्रेण इव) अनेक (यवीयुधा) शत्रु-  
नाशक बल से (सचते) सम्पन्न होता है, वह (सु-वीर्यं) उत्तम बल के  
आश्रय पर (पुत्रं) प्रजा को (प्रावर्गं) शत्रु निवारण में समर्थ (कृणुते)  
बनाता है और (नमः-उक्तिभिः) विनय वचनों से (दाशोति) दान  
करता है ।

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।  
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥७॥

भा०—हे प्रभो ! हम (उग्रस्य) बलवान् (तव) तेरे (सख्ये)  
मित्रभाव में रहकर (मा भेम) कभी न डरें, (मा श्रमिष्म) कभी न  
थकें । (वृष्णः ते) उत्तम प्रबन्धक और सुखों के वर्पक तेरे (कृतं) किये  
(महत्) भारी (अभि-चक्ष्यं) प्रत्यक्ष कार्य को तथा (यदुम्) यत्नशील  
(तुर्वशम्) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि के अभिलाषी मानव को  
(पश्येम) देखें ।

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।  
मध्वा सम्पृक्ताः सारधेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥८॥

भा०—जैसे (दानः न वृषा) सुखदाता, वीर्यवान् सेक्ता पुरुष

(सव्याम् स्फिग्यं) वाम भाग में रखने वा प्रजोत्पादन योग्य अर्धाङ्गिनी को (अनु ववसे) प्राप्त कर उसके अनुकूल होकर रहता, उसको आच्छादन करता है और वह भी (अस्य न रोषति) उससे रुष्ट नहीं होती न उसको रुष्ट करती है, वैसे ही (वृषा) प्रबन्ध-कुशल, प्रजा पर सुखों का वर्षक, बलवान् (दानः) दानशील, एवं दुष्टों का नाशक पुरुष (सव्याम्) ऐश्वर्य-सम्पन्न वा शासन-योग्य (स्फिग्यं) प्रतिष्ठा-योग्य प्रजाजन को (अनु ववसे) उसके अनुकूल रहकर बसावे, उसकी रक्षा करे। वह प्रजागण (अस्य न रोषति) उसे रोष न दिखावे न उसके प्रति रोष करे। हे ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्तः ! (धेनवः) गौओं के समान वाणियाँ और भूमियाँ (सारधेण मध्वा) मधु के समान मधुर दुग्ध और ज्ञान से (सम्पृक्ताः) युक्त हैं। तू (तूयम्) शीघ्र ही (आ इहि) आ, और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ पिब) ऐश्वर्य का उपभोग कर।

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमा इदिन्द्र ते सखा ।

श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥६॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! (ते) तेरा (सखा) मित्र (अश्वी) अश्वों का स्वामी, (रथी) रथों का स्वामी (सुरूपः) उत्तम रूपवान् (गोमान्) इन्द्रियों, वाणियों, भूमियों का स्वामी (इद्) ही हो जाता है। वह (श्वात्र-भाजा वयसा) घनादि से समृद्ध अन्न, बल, आयु से (सदा सचते) सदा युक्त होता और (चन्द्रः) सबको सुखी करने वाला होकर (सभाम् उप याति) सभा को प्राप्त होता है। सभापति वा सभासद् बनता है।

ऋश्यो न तृष्यन्नवपान्मा गंहि पिब सांमं वशां अनु ।

निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१०॥३१॥

भा०—हे (मघवन्) धनों के स्वामिन् ! (तृष्यन् ऋषयः न)



पियासा मृग जैसे (अवपानम् आगच्छति) जलाशय या घाट को प्राप्त होता और (वशान् अनु पिबति) यथेच्छ पान करता है वैसे ही तू भी (ऋषयः) दर्शनीय, महान् (तृष्यन्) ऐश्वर्य के लिये तृष्णायुक्त (न) के समान (अव-पानम्) अधीन पालन योग्य राष्ट्र को (आ गहि) प्राप्त कर । (वशान् अनु) अपनी अभिलाषाओं के अनुकूल (सोमं) राष्ट्रैश्वर्य का (पिब) पालन और उपभोग कर । तू (दिवे-दिवे) दिनों-दिन (नि-मेघमानः) नियम से प्रजा पर सुखों का वर्षण करता हुआ मेघवत् उदार होकर (ओजिष्ठं सह) अति पराक्रम युक्त, सैन्य-बल को (दधिषे) धारण कर ।

{ अध्वर्यो द्राविष्य त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।

उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के 'ध्वर' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि को न चाहने वाले सेनापते ! राजन् ! (त्वं) तू (द्रवय) शत्रु को दूर भगा क्योंकि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सोमं) राष्ट्र को (पिपासति) पालन करना चाहता है । वह (नूनं) निश्चय से (वृषणा हरी) बलवान् अश्वों को (उपयुयुजे) रथ में जोड़ता और बल वीर्यवान् री पुषों का (उप युयुजे) परस्पर सम्बन्ध करे । इस प्रकार वह (वृत्रहा) बढ़ते शत्रु तथा विघ्नों का नाश करता हुआ (आजगाम च) आवे ।

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृप्सि ।

इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२॥

भा०—हे राजन् ! (यत्र) जिस राष्ट्र में (सोमस्य) तू ऐश्वर्य से (तृप्सि) तृप्त होता है (सः) वह राष्ट्रवासी प्रजाजन (दाशुरिः) कर आदि देने वाला होकर (स्वयं चित्) स्वयं ही (मन्यते) राष्ट्र-कार्य को समझता है । (ते) तेरे लिये (इदं) यह (अन्नं) अन्न (युज्यं) और सहयोगी बल (सम्-उक्षितम्) अच्छी प्रकार सींचा जावे । (तस्य)



उसको तू (आ इहि) प्राप्त कर और (प्र द्रव) अन्नादि के लिये जल धाराएं प्रद्वित कर और (प्र द्रव) वेग से शत्रु पर आक्रमण कर और (पिब) राष्ट्र का पालन कर ।

रथेष्टायार्ध्वर्यः सोममिन्द्राय सोतन ।

अधि ब्रध्नस्याद्र्यो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥१३॥

भा०—हे (अर्ध्वर्यः) प्रजा के नाश को न चाहने वाले राष्ट्र के उत्तम पुरुषो ! आप (रथेष्टाय इन्द्राय) रथ पर स्थित शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (सोमस्) ऐश्वर्य (सोतन) उत्पन्न करो । (ब्रध्नस्य अधि) अन्तरिक्ष में जैसे ( दाशु-अध्वरम् सुन्वन्तः ) वृष्टि, अन्नादि देने वाले सूर्य के जीवनप्रद जलप्रद, यज्ञ करते हुए (अद्र्यः) मेघगण (वि चक्षते) दिखाई देते हैं वैसे ही (ब्रध्नस्य अधि) मूल आधार राष्ट्र के ऊपर (दाशु-अध्वरम्) ऐश्वर्यप्रद राजा के प्रजापालक यज्ञ को (सुन्वतः) करते हुए (अद्र्यः) शस्त्र-बल के अभ्यक्ष जन ( वि चक्षते ) विविध प्रकार से दीखें ।

उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।

अर्वाञ्च त्वा सप्तयोऽध्वरश्चियो वहन्तु सचनेदुषं ॥१४॥

भा०—जैसे (वावाता वृषणा हरी ब्रध्नं इन्द्रम् उप वक्षतः) वेग से जाने वाले वृष्टिकारक वायु और मेघ आकाश में 'इन्द्र', विद्युत् को धारण करते हैं और जैसे (ब्रध्नं वृषणा हरी वावाता ब्रध्नं इन्द्रम् सु उप वक्षतः) बलवान्, वेगवान् दो अश्व प्रबन्ध-कुशल ऐश्वर्य-पति राजा को ढो ले जाते हैं वैसे ही (ब्रध्नं इन्द्रम्) राष्ट्र के प्रबन्धक, सूर्य-मुख्य तेज-स्वी पुरुष को (वावाता) वायुवत् वेग से जाने और शत्रु-नाश करने में समर्थ (वृषणा) बलवान्, मेघवत् उदार (हरी) दोनों विद्वानों के वर्ग (अप-सु) राष्ट्र के कार्यों में (उप वक्षतः) धारण करें वा सपीप जाकर



उत्तम वचन कहें। हे ऐश्वर्यवान् ! (अर्वाङ्ग) शत्रुनाशक सैन्य गण से युक्त (त्वा) तुझको (अध्वर-श्रियः ससयः) शत्रुओं से न पराजित होने वालों की वा युद्ध-यज्ञ की शोभा धारण करने वाले, वेग से जाने वाले वीर (सवना इत् उप वहन्तु) नाना ऐश्वर्य तुझे प्राप्त करावें।

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरुवसुम् ।

स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥३२॥

भा०—हम (युज्याय) उत्तम पद पर नियुक्त करने के लिये (पूषणं) पोषक (पुरु-वसु) बहुत से ऐश्वर्य और राष्ट्रवासी जनो के स्वामी को (वृणीमहे) वरण करें। हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (पुरु-हूत) बहुत से मनुष्यों से स्वीकृत ! हे (वि-मोचन) बन्धनों से छुड़ाने हारे ! (सः) वह तू (नः) हमें (तुजे) शत्रु के नाश करने और प्रजा को शरण देने तथा (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (धिया) बुद्धिपूर्वक (शिक्ष) उत्तम शिक्षा दे।

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।

त्वे तन्नः सुवेदमुत्थियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥१६॥

भा०—(भुरिजोः इव क्षुरम्) दोनों बाहुओं में पकड़ कर जैसे छुरे को तेज करते हैं वैसे ही हे राजन् ! हे (विमोचन) बन्धनों से छुड़ाने हारे ! तू (भुरिजोः) दोनों पालनशील बाहुओं में सुरक्षित कर (नः) हमें (सं शिशीहि) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर, प्रखर शक्ति वाला बना और (रायः रास्व) ऐश्वर्य दे। (त्वं) तू (यं) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य वर्ग को, या शत्रु को मारने वाले सैन्य को (हिनोषि) सञ्चालित करता है, हे राजन् ! (त्वे) तेरे अधीन (नः) हमारा (उत्थियं) गवादि पशु-सम्पदा से युक्त, (तत् वसु) वह धन (सुवेदम्) सुख से प्राप्ति-योग्य, सर्वोत्तम है।

वेमि त्वा पूषन् वृक्षसे वेमि स्तोतव आघृणे ।

न तस्य वेम्यरणां हि तद्वसो स्तुषे पञ्चाय सान्ने ॥१७॥

भा०—हे (पूषन्) पोषक ! (वृक्षसे) उत्तम रीति से कार्य करने के लिये मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझे (वेमि) चाहता हूँ । हे (आघृणे) सब ओर से प्रदीप्त, तेजस्विन् ! (स्तोतवे) स्तुति के लिये भी (त्वा वेमि) तुझे चाहता हूँ । हे (वसो) सब में बसने वाले प्रभो ! (वरणं हि तत्) क्योंकि वह रमणीय नहीं है, इसलिये ( तस्य न वेमि ) उसको मैं न चाहूँ । (पञ्चाय) विद्वान् (सामने) समान व्यवहार वाले श्रेष्ठ पुरुष की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ।

परा गावो यवसं कञ्चिदाघृणे नित्यं रेक्णां अमर्त्य ।

अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

भा०—हे (आघृणे) सर्वत्र प्रकाशमान ! हे (अमर्त्य) मनुष्यों में विशेष ! (कञ्चित्) चाहे (गावः) गौवं (यवसम्) चारे को लक्ष्य कर (परा) दूर भी हों तो भी (रेक्णः) वह धन (नित्यं) स्थिर बना रहे । हे (पूषन्) पोषक स्वामिन् ! तू (अस्माकम् अविता) हमारा रक्षक और (शिवः) कल्याणकारक (भव) हो और तू (वाजसातये) ऐश्वर्य के संविभाग बल को प्राप्त करने के लिये (मंहिष्ठः) अति पूज्य (भव) हो ।

स्थरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।

राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥१९॥

भा०—( दिविष्टिषु ) उत्तम दान देने और उत्तम इच्छाओं वाले (रातिषु) दानशील, (तुर्वशेषु) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्यों के ऊपर (कुरुङ्गस्य) कर्मकारी समस्त जीवों को प्राप्त उनमें भी व्यापक (राज्ञः) दीप्तियुक्त, (त्वेषस्य) कान्तिमान्, ( सुभगस्य ) उत्तम ऐश्वर्यवान् प्रभु के ( शताश्वं ) सैकड़ों अश्वों, सूर्यादि, वा भोक्ता जीवों से



सम्पन्न (स्थूरं राधः) बड़े ऐश्वर्य को देखकर हम (अमन्महि) उसका मनन करें ।

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।

षष्टिं सहस्रान् निर्मजामजे निर्युथानि गवामृषिः ॥ २० ॥

भा०—(वाजिनः) ऐश्वर्यावान् (काण्वस्य) विद्वान्, राजा के (निर्मजाम्) आते विशुद्ध (गवां) गौओं के (षष्टिं सहस्रा) ६०००० साठ २ हजार के (यूथानि) समूह (अभि-द्युभिः) तेजस्वी (प्रिय-मेधैः) यज्ञ के प्रिय विद्वानों, (धीभिः) बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा (सातानि) अच्छी प्रकार विभक्त हों । उनको (ऋषिः) निरीक्षक पुरुष (अनु निर्मजं) सञ्चालित करे ।

वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।

गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥ २१ ॥ ३३ ॥ ७ ॥

भा०—(वृक्षाः चित्) वृक्ष जैसे वायु के झकोरे से मर्मर ध्वनि करते हैं, वे जैसे (मेहना) वृष्टियुक्त (गां भजन्त) भूमि का सेवन करते हैं और (मेहना अश्वं भजन्त) वृष्टिकारक आशुगामी वायु का सेवन करते हैं वैसे ही (मे) मुझ स्वामी को (अभिपित्वे) प्राप्त होने पर (वृक्षाः चित्) भूमि को वश करके स्थित भूपति भी (अरारणुः) हर्ष-ध्वनि करते हैं । वे (गां) भूमि को (भजन्त) पाते तथा (मेहना अश्वं भजन्त) उत्तम अथादि सैन्य को प्राप्त करते हैं । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः । इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

[ ५ ]

ब्रह्मातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१-३७ अश्विनौ । ३७-३९ चैद्यस्य कर्शोदानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ५, ११, १२, १४, १८, २१, २२, २९,

३२, ३३, निचृद् गायत्री । २—४, ६—१०, १५—१७, १९, २०,  
२४, २५, २७, २८, ३०, ३४, ३६ गायत्री । १३, २३, ३१, ३५  
विराड् गायत्री । १३, २६ आर्ची स्वराड् गायत्री । ३७, ३८ निचृद्  
वृहती । ३९ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ एकोनचत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥

दूरादिहेव यत्सत्यंरुणप्सुरशिशिवत् ।

वि भानुं विश्वधातनत् ॥ १॥

भा०—(यत्) जैसे ( अरुणप्सुः ) अरुण कान्तियुक्त उषा (दूरात् सती) दूर रहकर भी (इह एव) यहां ही, समीप विद्यमान के तुल्य (अशिशिवत्) जगत् को श्वेत कर देती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं) कान्ति को ( वि अतनत् ) फैलाती है वैसे ही (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त, स्वस्थ, (दूरात् सती) दूर देश में रहती हुई भी, सच्चरित स्त्री (इह इव) जैसे यहां ही हो, ऐसे गृहवत् ही (अशिशिवत्) अपने उज्ज्वल चरित्र से जगत् को शुभ्र काती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं वि अहनत्) अपनी कीर्ति फैलाती है ।

नृवहंसा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।

सचेथे अश्विनोपसम् ॥ २ ॥

भा०—हे (दत्ता) दर्शनीय, तुष्टों वा शरीरस्थ दोषों के नाशक स्त्री पुरुषो ! मुण्डय नायको ! हे (अश्विना) अश्वों, इन्द्रियों और मन के स्वामी जनो ! (नृवत्) दो नायकों के समान आप (मनः-युजा) मन रूप सारथि या अश्व की शक्ति से युक्त (पृथुपाजसा) अधिक बलशाली (रथेन) रथ रूप देह से युक्त होकर (उपसम् सचेथे) अपने चाहने वाले को प्राप्त होओ ।

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोभां अदक्षत ।

वाचं दूतो यथोहिजे ॥ ३ ॥



भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, बल, ऐश्वर्य युक्त प्रजा, सेना और भूमि से उत्पन्न धन के धनी स्त्री पुरुषो ! (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (स्तोभाः) उत्तम स्तुतिवचन ( प्रति अदक्षत ) प्रत्येक कार्य में दीर्घ । (यथा दूतः) दूत के समान मैं (वाचं ओहिषे) वाणी को धारण करूँ ।

पुरुप्रिया गं ऊतये पुरुमन्द्रा पुरुवसू ।

स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष दोनों (पुरुप्रिया) बहुत को प्रिय, (पुरुमन्द्रा) बहुतों को प्रसन्न करने वाले और (पुरु-वसू) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी होकर ( नः ऊतये ) हमारी रक्षा के लिये हों । उन दोनों को (कण्वासः) विद्वान् लोग (स्तुषे) उपदेश के लिये हों ।

मंहिष्ठा वाजसातमेष्यन्ता शुभस्पती ।

गन्तारा दशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मंहिष्ठा) अति पूज्य (वाज-सातमा) शान, अन्न बल के देने वालों में उत्तम (इष्यन्ता) उत्तम अन्न की कामना करने वाले (शुभः पती) उत्तम कल्याण कर्म और शुद्ध जल को पालन वा पान करने वाले स्वयं पति पत्नी (दाशुषः गृहम्) ज्ञानादि देने वाले के गृह को ( गन्तारा ) जाने वाले होओ । इति प्रथमो वर्गः ॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् ।

घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों उत्तम विद्वान् और उत्तम विजिगीषु वा विद्यादि के अमिलाषी शिष्यों के स्वामी (दाशुषे) ज्ञानदाता गुरु, आचार्य वा धनप्रद स्वामी की ( सु-मेधाम् ) उत्तम बुद्धियुक्त (अवि-तारिणीम्) विनाश न होने देने वाली (गव्यूतिम्) वाणियों के सम्मि-

अण होने की यज्ञ क्रिया वा नीति को गोचर भूमि के समान ही (धृतैः उक्षतम्) खेहों और धृतादि पवित्र पदार्थों वा (धृतैः) जलों से सींचो, बढ़ाओ, उन्नत करो ।

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः ।

यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी जनो ! आप दोनों (द्रवत् तूयम्) शीघ्र-शीघ्र ही (नः) हमारे (स्तोमम् उप) उपदेश को प्राप्ति के लिये (श्येनेभिः) उत्तम गति वाले, (आशुभिः) शीघ्रगामी और (अश्वेभिः) अश्वोंवत् प्राण वृत्तियों से ( उप यातम् ) प्राप्त होओ ।

येभिस्त्रिदिवः परावतो दिवो विश्वानि रोचना ।

त्रिरिक्तून्परिदीयथः ॥ ८ ॥

भा०—(येभिः) जिन वेग-युक्त साधनों से तुम दोनों (त्रिदिवः दिवः त्रीन् अक्तून्) तीन दिन और तीन रातों में ही (परावतः) दूर २ के देशों और (विश्वानि रोचना) समस्त रुचिकर स्थानों को भी (परि दीयथः) परिभ्रमण कर सको, उन साधनों से हमारे (स्तोमम् उपयातम्) स्तुत्य यज्ञादि कार्य को भी प्राप्त होओ ।

उत नो गोमतीरिषं उत सातीरिहर्विदा ।

वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन को प्राप्त कराने या ज्ञान करा देने वाले उषा सूर्यवत् (अहर्विदा) अविनाशी आत्मा वा दिन-कृत्य के ज्ञाता जनो ! आप दोनों (उत) भी (नः) हमारी ( गोमतीः इषः ) उत्तम वाणियों से युक्त इच्छाओं, भूमियों वा गोरस—दुग्ध, दही धृतादि से युक्त अन्नों (उत सातीः) और सेवनीय सम्पदाओं को प्राप्त करो और ( पथः सातये ) सन्मार्ग प्राप्त करने और सेवन के लिये (वि सितम्) विविध प्रकार से नियम-बन्धन करो ।



आ नो गोमन्तमाश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् ।

बोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (नः) हमें (गोमन्तं) गौओं (सु-वीरं) उत्तम वीरों (सुरथं रयिम्) और उत्तम रथों वाला ऐश्वर्य (आ वोढम्) प्राप्त कराओ और (अश्वावतीः इषः) अश्वों वाली सेनाओं को भी (आ वोढम्) रखो । इति द्वितीयो वर्गः ॥

वावृधाना शुभस्पती दत्ता हिरण्यवर्तनी ।

पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥

भा०—हे (दत्ता) दुःखों के नाशक आप दोनों (शुभस्पती) उत्तम गुणों और आचार का पालन करते हुए (वावृधाना) बढ़ते हुए (सोम्यं मधु पिबतम्) ओषधि-रस से युक्त मधु, अन्न, जल का उपभोग करो ।

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः ।

छर्दियन्तुमदाभ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, ऐश्वर्य, बल आदि उत्पन्न करने वाली क्रिया, सेना आदि को धनवत् पालने वाले वीर, विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे और (मघवद्भ्यश्च) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के लिये (अदाभ्यम् छर्दिः) न नाश होने योग्य, गृह प्रदान करो ।

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् ।

मो ष्वान्य उपारतम् ॥ १३ ॥

भा०—हे शक्तिमान् सेनापति, सैन्य वर्ग जनो ! (यौ) जो आप दोनों (जनानां ब्रह्म) मनुष्यों के धन, अन्न और राष्ट्र को (नि सु अविष्टम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो वे आप (तूयम् आ गतम्) शीघ्र प्राप्त होओ । (अन्यान्) और विरोधियों को (मो सु उप अरतम्) मत प्राप्त होओ ।

अस्य पिवतमश्विना युवं मदस्य चारुणाः ।

मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी जनो ! आप दोनों (धिष्ण्या) उत्तम बुद्धियुक्त और पूज्य आसन वा पदों के योग्य होकर (एतस्य) आदर पूर्वक दिये (अस्य चारुणः मदस्य) इस तृप्तिजनक मधुपर्कादि अन्न का (पिवतम्) उपभोग करो ।

अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सङ्गस्त्रिणम् ।

पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५॥३॥

भा०—हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा रथी सारथिवत् राजा और सचिव जनो ! आप दोनों (अस्मे) हमारे लिये (शतवन्तं) सौ और (सङ्गस्त्रिणं) हजार संख्यायुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (आवहतम्) प्राप्त कराओ । वह ऐश्वर्य (पुरुक्षुं) बहुतों को अन्न देने और बसाने में समर्थ और (विश्वधायसम्) सबका पालक पोषक हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

पुरुत्रा त्रिद्वि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।

वाघद्भिर्गश्विनागतम् ॥१६॥

भा०—हे (नरौ) नायक जनो ! वा स्त्री-पुरुषो ! (मनीषिणः) ज्ञानी लोग (वां) आप दोनों को (पुरुत्र चित् हि) बहुत से कार्यों में (विह्वयन्ते) आदर पूर्वक बुलावें । आप दोनों (वाघद्भिः) कार्य भार उठाने में समर्थ, अश्वों के समान क्षमतायुक्त पुरुषों सहित (आगतम्) आओ ।

जनांसो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।

युवां हवन्ते अश्विना ॥१७॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा और सेना-सभा के अध्यक्ष जनो ! (युवां) आप दोनों को (वृक्त-बर्हिषः) कुशा को काट लाने वाले, चतुर पुरुषों के तुल्य शत्रुओं को काटने वाले (हवि-



मन्तः) अन्नादि से समृद्धिमान् (अरंकृतः) उद्योग करने वाले, कर्मण्य जन (हवन्ते) बुलाते हैं ।

अस्माकमद्य वांस्यं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।

युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

भा०—हे ( अश्विना ) अश्वादि सैन्य, और विद्यादि में निष्णात विद्वानों के स्वामी जनो ! (अस्माकम्) हमारा (अयं) यह (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके किया (स्तोमः) वचन एवं व्यवहार (युवाभ्यां) आप के लिये (अन्तमः) अति समीप और ( वाहिष्ठः ) अति सुखदायी (भूतु) हो ।

यो ह वां मधुनो दतिराहितो रथचर्षणे ।

ततः पिबतमश्विना ॥१९॥

भा०—हे (अश्विना) रथी-सारथिवत्, विद्यावान् एवं राष्ट्रादि के स्वामी जनो ! जैसे (रथचर्षणे आहितः दतिः) रथ को खेंचने के स्थान पर जल की मशक लटकी रहती है और रथस्थ पुरुष (मधुनः पिबतः) जल का पान और अन्न का भोजन करते हैं वैसे ही (रथ-चर्षणे) रमण योग्य गृहस्थ वा राष्ट्र-कार्य के उठाने के समय भी (वां) आप दोनों के लिये (मधुनः) मधुर अन्न तथा ऐश्वर्य का (यः) जो (दतिः) पात्र (आहितः) आदर पूर्वक प्रस्तुत किया जावे (ततः) उससे ( पिबतम् ) जल अन्नादि का उपभोग करो ।

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।

वहतं पार्वरीरिषः ॥२०॥४॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाजिनी' ज्ञानयुक्त बुद्धि, बल-युक्त सेना और ऐश्वर्य युक्त-समृद्धि के स्वामी ! आप दोनों (तेन) उस पूर्वोक्त मधु से पूर्ण पात्र वा शत्रुकर्षक बल से (नः) हमारे (पश्वे) पशुओं,

(तोकाय) सन्तानों और (गवे शं) गौओं की शांत्यर्थ (पीवरीः इषः) हृष्ट पुष्ट सेनाओं, सम्प्रदाओं को (वहतं) धारण करो, प्राप्त कराओ । इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत नो दिव्या इष उत सिन्धूरहर्विदा ।

अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन के कृत्यों के ज्ञाता प्रधान, गौण जनो ! आप (नः) हमारे लिये (दिव्याः इषः) उत्तम अन्न और विजयिनी सेनाओं (उत) और (सिन्धून्) बहने वाली जल धाराओं और वेगवान् अश्वों को (द्वारा इव) उत्तम साधनों और मार्गों से (अप वर्षथः) दूर तक वर्षाओ और ले जाओ ।

कदा वां तौर्ग्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा ।

यद्वां रथो विभिष्यतात् ॥२२॥

भा०—हे (नरा) नायक वरो ! ( तौर्ग्यः ) 'तुम', शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों में कुशल, स्वामी, सेनापति (समुद्रे) उमड़ते हुए शत्रु सैन्य के बीच (जहितः) आकर (वां) तुम दोनों की (कदा) कब (विधत्) सेवा करे ? [उत्तर] (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ सैन्य (विभिः) वेगवान् अश्वों से (पतात्) प्रयाण करे ।

युवं कर्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये ।

शश्वदूतीदिशस्यथः ॥२३॥

भा०—हे (नासत्यौ) सत्य का उपदेश देने और सत्य का विधान करने और कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (युवं) आप दोनों (हर्म्ये) उत्तम गृह में रहते हुए (अपि-रिप्ताय कर्वाय) पीड़ित विद्वान् जन को बचाने के लिये (शश्वत्) सदा (उतीः दशस्यथः) नाना रक्षाएं, अज्ञादि तृप्तिकारक पदार्थ भी प्रदान किया करो ।



ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः ।

यद्वा वृषणवसू हुवे ॥२४॥

भा०—हे ( वृषण-वसू ) बलवान् पुरुषों को राष्ट्र में बसाने वाले नायको ! ( यत् वां ) जब २ मैं आप को ( हुवे ) पुकारूं, तब २ आप दोनों ( ताभिः ) इन ( नव्यसीभिः ) नवीन, उत्तम ( सुशस्तिभिः ) शासन व्यवस्थाओं और ( कृतिभिः ) रक्षा-साधनों सहित ( आ-यातम् ) प्राप्त होओ ।

यथा शिक्करावमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।

अत्रिं शिक्षारमश्विना ॥२५॥५॥

भा०—( यथा चित् ) जैसे भी हो वैसे हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय बलवान् विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप ( कण्वम् आ भवतम् ) विद्वान् पुरुष की रक्षा करो और आप दोनों ( उप-स्तुतम् ) प्रशंसनीय ( प्रिय-मेधम् ) यज्ञ और शुद्धादि के प्रिय विद्वान् और वीर पुरुष की रक्षा करो । ( शिक्षारम् अत्रिम् ) मधुर शब्द करने और मधुर वचन कहने वाले वाद्य, गान प्रिय, गायक, कवि और उपदेष्टा वर्ग की रक्षा करो । इति पञ्चमोऽष्टकः ॥

यथोत कृत्व्ये धनेऽशुं गोष्वगस्त्यम् ।

यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् बलवान् स्त्री पुरुषो ! ( यथा उत ) और जैसे हो वैसे, ( कृत्व्ये धने ) धन पैदा करने के लिये ( अशुम् ) खाने और भोगने योग्य अन्नादि की रक्षा करो और ( गोषु ) किरणों के प्राप्त्यर्थ और भूमियों को सम्पन्न बनाने के लिये ( अगस्त्यम् ) स्थावर पर्वत वृक्षों की रक्षा करो । ( यथा ) जैसे हो वैसे ( वाजेषु ) जानों, अश्वों और बलों की रक्षा के लिये ( सोभरिम् ) उनके उत्तम पालक की रक्षा करो !

एतावद्वां वृषणवसू अतो वा भूयो अश्विना ।

गृणन्तः सुस्रमीमहे ॥२७॥

भा०—हे ( वृषण-वसू ) बलवान् शासकों को राष्ट्र में बसाने वा उनको धन समझने वाले पुरुषो ! (गृणन्तः) आप के प्रति उपदेश करते हुए हम ( वाम् ) आप दोनों के (एतावत्) इतने (सुस्रम्) सुखकारी ऐश्वर्य (अतो वा भूयः) वा इससे भी अधिक को (ईमहे) मांगते हैं ।

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्यामीशुमश्विना ।

आ हि स्थायो दिविस्पृशम् ॥२८॥

भा०—हे (अश्विना) वेग से जाने वाले रथ, अग्नि, जल आदि के स्वामी, तत्सम्बन्धी कार्यकुशल विद्वान् शिल्पी जनो ! आप दोनों ( हिरण्यवन्धुरम् ) सुवर्ण आदि धातु से सुन्दर, ( हिरण्यामीशुम् ) लोहादि धातु की बनी रोक-थाम वाले (दिवि-स्पृशम्) आकाश, भूमि दोनों को स्पर्श करने वाले दोनों में जाने वाले, (रथं स्थायः हि) रथ पर विराजो ।

हिरण्ययीं वां रमिरीषा अंक्षो हिरण्ययः ।

उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! तुम दोनों के (ईषाः) रथ के अग्र दण्ड (रमिः) दृढ़ और ( हिरण्ययी ) सुवर्णादि उत्तम धातु के बने हों और (अक्षः हिरण्ययः) अक्ष भी लोह के दृढ़ बने हों । (उभा) दोनों (चक्रा) चक्र भी (हिरण्यया) लोह से बने, दृढ़ हों ।

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् ।

उपेमां सुगृतिं मम ॥३०॥६॥

भा०—हे (वाजिनीवसू) बलवती सेना, अन्नसम्पदा वाली भूमि के स्वामी जनो ! (तेन) उस पूर्वोक्त रथ से (परावतः चित्) दूर देश से



भी (नः आगतम्) आप लोग हमारे पास आया करो, (इमाम्) इस (मम सु-स्तुतिम्) मेरी उत्तम स्तुति, उपदेशादि श्रवण करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना ।

इषो दासीरिमर्त्या ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) असाधारण मनुष्यो ! आप दोनों (पराकात्) दूर देश से प्राप्त (इपः आ वहेथे) अन्नादि सामग्रियों को लाया करो और (पूर्वीः) पूर्व प्राप्त अन्नों को (अश्नन्ता) भोग करते हुए (दासीः) श्रुत्यादि प्रजा को भी अन्न सामग्री देते रहो। उसी प्रकार (पराकात्) दूर देशों तक भी (इपः दासीः वहेथे) तीव्र शत्रुनाशक सेनाएं रक्खो।

आ नो द्युम्नैराश्रवोभिरायायातमश्विनो ।

पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचारण न करने वाले, (अश्विना) राष्ट्र, बल के स्वामी जनो ! आप दोनों (पुरु-चन्द्रा) बहुत प्रजा को आह्लादित करने वाले तथा बहुत सुवर्णादि के स्वामी होओ और (नः) हमें (द्युम्नैः) यशों, धनों, (श्रवोभिः) अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों और प्रशंसाओं (राया) और ऐश्वर्य सहित (नः आ उप यातम्) हमारे पास आया करो।

एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः ।

अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (प्रुषित-प्सवः) स्निग्ध और परिपक्व भोजन करने वाले, (पर्णिनः) रथों, वाहनों के स्वामी (वयः) पक्षिवत् शीघ्रगामी विद्वान् पुरुष घोड़ों के समान नियुक्त होकर (वां) आप दोनों ही (सु-अध्वरं जनं) उत्तम यज्ञयुक्त प्रजा को (अच्छ आ वहन्तु) भली प्रकार धारण करें।

रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह ।

न चक्रमभि बाधते ॥३४॥

भा०—(यः इषा सह वर्तते) जो अन्नादि तथा सैन्य से सम्पन्न है तुम दोनों के (अनु-गायसं) अनुगमन करने योग्य, प्रशंसनीय (रथम्) रमणीय राष्ट्र को (रथं चक्रं न) रथ को चक्र के समान (चक्रं) चक्रवत् पर-सैन्य, अथवा कर्मकर्तृगण (न अभि बाधते) पीड़ित नहीं करें ।

हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिमिरश्वैः ।

धीजवना नासत्या ॥३५॥७॥

भा०—हे ( नासत्या ) नासिका स्थित प्राणों के समान राष्ट्र में विद्यमान प्रमुख स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (धी-जवना) कर्म और बुद्धि में तीव्र वेग होकर ( द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः रथेन ) वेगयुक्त चरणों वाले अश्वों से रथ के समान ही शीघ्र कर्मकारी, सिद्ध हस्त विद्वानों से सज्जित ( हिरण्ययेन रथेन ) सुवर्णादि से सज्जद उत्तम राष्ट्र सहित हमें प्राप्त होओ । इति सप्तमो वर्गः ॥

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषणवसू ।

ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥३६॥

भा०—हे ( वृषणवसू ) बलवान् पुरुषों को धनवत् पालने वाले राजा सचिव जनो ! (युवं) आप दोनों (मृगं) सिंहवत् बलवान्, (जागृ वांसं) जागरणशील, सावधान, पुरुष को (स्वदथः) उत्तम ऐश्वर्य, तथ-पुष्टिकारक भोजन दो । (ता) वे सेनादि के स्वामी आम लोग (नः) हमें (इषा) बलवती सेना सहित ( रयिम् पृङ्क्तम् ) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ ।

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।

यथा विचित्रैद्यः कशुः शतमुष्टानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ॥३७॥



भा०—हे (अश्विना) अश्वदि के स्वामी स्त्री पुरुषो ! (ता) वे आप दोनों (मे) युद्ध विद्वान् वा राष्ट्र के ( नवानाम् ) नये-नये ( सतीनां ) ऐश्वर्यों और ज्ञानों का सदा ( विद्यातम् ) ज्ञान करते वा प्राप्त कराते रहो । (यथा चित्) जिससे (चैद्यः कशुः) विद्वानों में उत्तम और तेजस्वी पुरुष ( उष्टानां ) राष्ट्र में बसने और शत्रु को दग्ध करने वाले (शतम्) सैकड़ों प्रजाओं, वीरों, (गोनाम् दशसहस्रा) दस सहस्र पशुओं व भूमियों को (ददत्) दे ।

यो मे हिरण्यसन्देशो दश राज्ञो अमंहत ।

अधस्पदा इच्छैद्यस्य कृष्टयश्चर्मन्ना अभितो जनाः ॥३८॥

भा०—(यः) जो राजा, प्रभु (मे) युद्धे ( हिरण्य-संदेशः ) सुवर्ण या सूर्य के समान दीखने वाले वा हित और रमणीय तत्त्व ज्ञान की देखने वाले सम्यक्दर्शी (दश राज्ञः) दसों तेजस्वी, राजसभासदों को (मे) मेरे हितार्थ (अमंहत) राष्ट्र को देता है उस (चैद्यस्य) ज्ञानी, सर्वोत्तम पुरुष के ( अधः पदाः ) अधीन (कृष्टयः) शत्रु पीड़क जन और (अभितः) चारों ओर (चर्मन्नाः जनाः) चर्म, खड्ग आदि के अभ्यासी वीर पुरुष (इत्) अवश्य रहें ।

मार्किरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः ।

अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥३९॥८॥१॥

भा०—(येन पथा) जिस मार्ग से (इमे चेदयः) ये विद्वान् (यन्ति) जाते हैं (एना पथा) उस मार्ग से (मार्किः गात्) कोई जा नहीं सकता । (अन्यः) दूसरा कोई (भूरिदावत्-तरः जनः) बहुत धनादि देने वाला और (सूरिः) विद्वान् भी (नः ओहते) इतना भारादि उठाने में समर्थ नहीं होता है । इत्यष्टमो वर्गः ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

[ ६ ]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ १—४४ इन्द्रः । ४६—४८ तिरिन्दिरस्य पारणा-  
व्यस्य दानस्तुतिर्देवताः ॥ छन्दः—१—१३, १५—१७, १९, २५—

२७, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ४२ गायत्री । १४, १८, २३, ३३, ३४, ३६, ३७, ३९—४१, ४३, ४५, ४८ निचृद् गायत्री । २० आर्ची स्वराङ् गायत्री । २४, ४७ पादनिचृद् गायत्री । २१, २२, २८, ३१; ४४, ४६ आर्षी विराङ् गायत्री ॥

मृहो इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वष्टिमाँ इव ।

स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१॥

भा०—(यः इन्द्रः) जो ऐश्वर्य दाता परमेश्वर (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि वाले मेघ के तुल्य ( इन्द्रः ) अन्न जलवत् उत्तम फलों का दाता (पर्जन्यः) सब सुखों-रसों का दाता है, वह प्रभु (ओजसा महान्) बल पराक्रम से महान् है । वह ( स्तोमैः ) स्तुति वचनों और वैदिक सूक्तोपदेशों से गुरुवत् ( वत्सस्य ) अधीन बसने वाले शिष्यवत् प्रभु में ही निवास करने वाले एवं बालकवत् प्रिय भक्त की (वावृधे) वृद्धि करता है ।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।

विप्रा अृतस्य वाहसा ॥२॥

भा०—हे प्रभो ! ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञानमय (पिप्रतः) जगत् को पूर्ण करने वाले तेरी ( प्रजाम् ) उत्तम प्रजा को ( यत् ) जो (वह्नयः) सूर्यादि और जगत् में अग्निवत् ज्ञान-प्रकाश धारण करने वाले विद्वान् (प्र भरन्त) अच्छी प्रकार प्रजा का पोषण करते हैं वे ही (ऋतस्य वाहसा) सत्य ज्ञान को धारण करने से ( विप्राः ) सच्चे 'विप्र' विद्वान् हैं ।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।

जामि ब्रुवन् आयुधम् ॥३॥

भा०—( यत् ) जब ( कण्वाः ) विद्वान् पुरुष, ( इन्द्रं ) प्रभु को



(स्तोमैः) स्तुति वचनों तथा अधिकारों, पदों से ( यज्ञस्य ) परस्पर मिलकर करने योग्य देवपूजा, संगतिकरण भावना, दान आदि सत्कर्मों का ( साधनम् ) साधक, ( अकृत ) बना लेते हैं तब वे ( आयुधम् ) संकटों को पराजित करने वाले आयुध के समान प्रभु की ही (जामि द्रुवते) अपना बन्धु कहते हैं ।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।

समुद्रायैव सिन्धवः ॥४॥

भा०—(समुद्राय-इव सिन्धवः) नदियें जैसे समुद्र को प्राप्त होने के लिये (नमन्तः) उसकी ओर ही झुकती हैं वैसे ही (विश्वाः विशाः कृष्टयः) समस्त प्रजाएं, शत्रु-कर्षक सेनायें और कृषक जन (अस्य मन्यवे) इस प्रभु के ज्ञान की प्राप्ति के लिये उसी के समक्ष (सं नमन्त) झुकती हैं ।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यात्समवर्तयत् ।

इन्द्रश्चर्मैव रोदसी ॥५॥६॥

भा०—( इन्द्रः चर्म इव ) जैसे शत्रुहन्ता वीर रक्षा-साधन ढाल और शत्रुछेदन-साधन खड्ग को (सम अवर्तयत्) अच्छी प्रकार चलाता है तब ( अस्य ओजः तित्विषे ) उसका पराक्रम चमकता है, वैसे ही (यत्) जब (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु (चर्म इव) खड्ग ढाल के तुल्य ही (रोदसी उभे सम् अवर्तयत्) प्रजा और शासक वर्ग दोनों को एक साथ संचालित करता है ( तत् ) तभी (अस्य) उस प्रभु का (ओजः तित्विषे) पराक्रम, तेज चमकता, प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाशवत् दृष्टिगोचर होता है । इति नवमो वर्गः ॥

वि चिद्वत्रस्य दोधतो वङ्गेण शतपर्वणा ।

शिरो विभेद वृष्णिना ॥६॥

भा०—जैसे सूर्य, विद्युत् वा वायु ( वृत्रस्य शिरः ) मेघ के ऊपर के भाग को (वृष्णिना वज्रेण) वृष्टिकारी विद्युत्-प्रहार से (वि विमेद) छिन्न-भिन्न करता है, जैसे ही ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रस्य) बढ़ते शत्रु के (शिरः) प्रमुख सैन्य को ( वृष्णिना ) शस्त्रादि वर्षक ( वज्रेण ) शत्रु-निवारक (शतपर्वणा) सैकड़ों खंड वाले सैन्य बल से (दोधतः वृत्रस्य) हृदय में भय पैदा करने वाले त्रासकारी शत्रुगण के ( शिरः वि विमेद ) शिर या प्रमुख अंग को छिन्न-भिन्न करे ।

इमा अमि प्र नोनुमो विपामग्रैषु धीतयः ।

अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥७॥

भा०—हम (अग्नेषु) अग्रगण्य विद्वानों के अधीन (विपाम्) वेद-वाणियों में से (इमाः) इन (धीतयः) धारण योग्य वाणी या कर्मों को (अमि प्र नोनुमः) साक्षात् कर अभ्यास करें, अन्यो के प्रति कहें । वे (अग्नेः शोचिः न) अग्निज्वाला के तुल्य (दिद्युतः) प्रकाशक हैं ।

गुहा सतीरुप तमना प्र यच्छोचन्त धीतयः ।

कण्वा ऋतस्य धारया ॥८॥

भा०—( यत् ) जो (धीतयः) संकल्प वा कर्म (गुहा सतीः) बुद्धि में विद्यमान रहकर (तमना) आत्मा के सामर्थ्य से (प्र यच्छन्त) प्रकाशित होते हैं उनको (कण्वाः) हम विद्वान् जन ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान की (धारया) वाणी से (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं ।

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् ।

प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥९॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य के दाता ! हम ( तम् ) उस (गोमन्तं रयिम्) गौओं से युक्त सम्पत्ति, इन्द्रियों से युक्त देह और वाणियों से युक्त ज्ञान और ( अश्विनम् ) अश्वों से युक्त सैन्य बल को (प्र नशीमहि)



अच्छी प्रकार प्राप्त करें। इसी प्रकार हम ( पूर्व-विद्यये ) सब से पूर्व विद्यमान एवं पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के लिये (गोमत् ब्रह्म) वाणियों से युक्त ब्रह्म = वेद ज्ञान को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभं ।

अहं सूर्यं इवाजनि ॥१०॥१०॥

भा०—(अहं) मैं जिज्ञासु (इत्) ही (हि) अवश्य (क्तस्य) वेद-मय सत्य ज्ञान के ( पितुः मेधाम् ) पितावत् पालक प्रभु वा गुप्त की ( मेधाम् ) ज्ञानवती बुद्धि को (परि जग्रभ) प्रेमपूर्वक ग्रहण करूं और (अहं) मैं (सूर्यः इव) सूर्य के समान ( अजनि ) होऊं। इत्ये-कादशो वरगः ॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।

येनेन्द्रः शुष्ममिदधे ॥११॥

भा०—(येन) जिस ज्ञान से ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष (शुष्मम् इत् दधे) शत्रुशोपक बल को धारण करता है (अहं) मैं भी (प्रत्नेन) पुराने (मन्मना) मनन-योग्य, वेदमय या आत्मज्ञान से ( कण्ववत् ) मेधावी पुरुष के तुल्य (गिरः शुम्भामि) वाणियों को सुशोभित करूं।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्भृष्यो ये च तुष्टुवुः ।

ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, प्रभो ! आचार्य ! (ये) जो यथार्थ ज्ञान के द्रष्टा न होकर ( त्वाम् न तुष्टुवुः ) तेरी स्तुति नहीं करते हैं (च) और ( ये च ऋषयः तुष्टुवुः ) जो ज्ञानद्रष्टा होकर स्तुति करते हैं उनसे तू (सु-स्तुतः) उत्तम रीति से स्तुतियुक्त होकर (मम इत्)मुझे अवश्य (वर्धस्व) बढ़ा, ज्ञान से पूर्ण कर।

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन् ।

अपः समुद्रमैरयत् ॥१३॥

भा०—( यत् ) जब ( अस्य मन्युः ) सूर्य या विद्युत् का ताप ( वृत्रं ) मेघ के ( पर्वशः ) पोर २ ( वि वज्रन् ) छिन्न-भिन्न करता है तब ( अपः समुद्रम् ऐरयत् ) जलों को वह मेघ समुद्र की तरफ प्रेरित करता है वैसे ही ( यत् ) जब ( मन्युः ) ज्ञानमय प्रभु वा गुरु ( अस्य ) इस जीव शिष्य की ( वृत्रं ) विस्तृत ज्ञान का ( पर्वशः विवज्रन् ) अंश २ खोलकर ( अध्वनीत् ) उपदेश करता है, तब वह ( अपः ) अपने कर्म को वा लिङ्ग शरीर को उस ( समुद्रम् ) प्रभु के प्रति ( ऐरयत् ) सञ्चालित करे ।

नि शुष्णं इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्य दस्यवि ।

वृषा शुभ्रं शृण्विषे ॥१४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् ! हे ( उग्र ) सर्वशक्तिमान् ! दुष्टों को भय देने हारे ! तू ( वृषा हि ) निश्चय से बलवान्, सुखों का वर्षक ( शृण्विषे ) सुना जाता है । तू ( शुष्णे दस्यवि ) प्रजाशोषक, कष्टदायी दुष्ट पर ( धर्णसिं वज्रं ) दृढ़ वज्र ( नि जघन्यः ) प्रहार कर कि वह दुष्ट कर्म से हटे ।

न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।

न विव्यचन्त भूमयः ॥१५॥११॥

भा०—( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान्, ( वज्रिणम् ) सर्व-शक्तिमान् प्रभु से ( न द्यावः ) न प्रकाशमान सूर्य तारे, ( न अन्तरिक्षाणि ) न अन्तरिक्ष-गत वायु आदि और ( न भूमयः ) न भूमिस्थ जल, जन्तु आदि ही ( भोजसा ) बल पराक्रम से ( वि व्यचन्त ) अधिक हैं । इत्येकादशो वर्गः ॥

यस्तं इन्द्र महीरपः स्तभूम्यमान आशयत् ।

नि तं पद्यासु शिशनयः ॥१६॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् ! ( यः ) जो ( ते ) तेरी ( महीः अपः ) बड़ी व्यापक, जगत् की प्रारम्भक प्रकृति की सूक्ष्म मात्राओं को ( स्त-



भूयमानः) निष्क्रिय करता हुआ (आशयत्) सर्वत्र प्रसुप्त किये रहता है (तं) उसको तू (पद्यासु) शक्तिरूप क्रियाओं के बीच में (नि शिश्नयः) सर्वथा नष्ट कर देता है। जड़ प्रकृति की जड़ता ही 'वृत्र' है, जो सृष्टि के पूर्व प्रकृति को शिथिल, प्रसुप्त सा रखता है।

य इमे रोदसी मही समीची लमजग्रभीत् ।

तामभिरिन्द्र तं गुहः ॥१७॥

भा०—(यः) जो (इमे) इन (मही) बड़ी (रोदसी) आकाश और भूमि (समीची) परस्पर मिली, ती पुरुषों की श्रौणियों को मेघ वा रात्रिवत् (तमोभिः) अज्ञान-अन्धकारों से (सस् अजग्रभीत्) ग्रस्त लेता है, हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (तं गुहः) उस अज्ञान को लुप्त कर।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः ।

ममेदुग्र शुधी हवम् ॥१८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ये यतयः) जो इन्द्रियों और मन के संयमी (ये च भृगवः) और जो पापों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करने या वेद वाणियों को धारण करने वाले तपस्वी, विद्वान् पुरुष हैं वे (त्वा) तेरी (तुष्टुवुः) स्तुति करते हैं। तू उनकी सुनता है। हे (उग्र) तुष्टों के प्रति भयंकर ! दण्डधर प्रभो ! (मम इत् हवम्) मेरी पुकार भी तू (शुधि) सुन।

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।

पुनामृतस्य पिप्युषीः ॥१९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (इमाः पृश्नयः) ये सूर्य, अन्तरिक्ष, भूमि आदि पदार्थ गौओं के तुल्य हैं। (ते) तेरे अधीन होकर (पुनम्) उस (आशिरम्) भोगने योग्य (घृतं) क्षरणशील दुग्धवत् जल अन्नादि को (इमाः) ये (दुहते) प्रदान करते और (ऋतस्य) तेज, जल, अन्न,

धन, ज्ञान की ( पिप्युषीः ) वृद्धि करते हैं । ज्ञान वृद्धि करने से ऋषि भी 'पृश्नि' हैं ।

या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन् ।

परि धर्मैव सूर्यम् ॥२०॥१२॥

भा०—( धर्म इव सूर्यम् ) धारण करने वाला मेघमय जल वा चायु जैसे 'सूर्य' के ताप को (गर्भ करोति) भीतर ग्रहण करता है वैसे ही हे (इन्द्र) प्रभो ! ( याः प्रस्वः ) जो जगत् में उत्पन्न करने वाली शक्तियें (आसा) मुख से अर्थात् मुख्य बल से, वा स्तुति द्वारा (त्वा) तुझे ( गर्भम् अचक्रिरन् ) अपने भीतर शक्तिरूप में धारण करते हैं । इसी प्रकार माताएं भी जो गर्भ में धारण करती हैं वे भी सूर्यवत् तेरे ही उत्पादकांश को भीतर धारण करती हैं । इति द्वादशो वर्गः ।

त्वामिच्छन्वसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः ।

त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल के पालक ! (कण्वाः) विद्वान् (त्वाम् इत्) तुझे लक्ष्य कर (उक्थेन) स्तुति वचनों से (वावृधुः) स्वयं वृद्धि करते हैं । (इन्दवः) भक्ति-रस से द्रवित (सुतासः) जीव, एवं भक्तजन पुत्रवत् (त्वाम्) तुझ पिता को प्राप्त कर स्तुति से (वावृधुः) तेरी महिमा गाते हैं ।

तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः ।

यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥२२॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी सूर्यवत् ! अनेक शक्तियों के स्वामिन् ! (उत्) और ( प्रणीतिषु ) उत्तम उत्कृष्ट नीतियों और रचनाओं में भी (तव इत्) तेरी ही (प्रशस्तिः) उत्तम कीर्ति और शासन है । वही (यज्ञः) सर्वोपास्य, सर्वदाता (वितन्तसाय्यः) अति विस्तृत महान् है ।



आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दधि गोमतीम् ।

उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमें ( महीम् ) बड़ी, पूज्य ( इषम् ) इच्छा, प्रेरणा, (गोमतीं पुरं न) गवादि सम्पदा युक्त नगरी के समान इन्द्रियों और वाणी से युक्त, पालन पोषण योग्य देह पुरी (उत) और (प्रजां) प्रजा, पुत्रादि और प्राणादि तथा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलवीर्य (आ दधिं) देता है ।

उत त्यदाश्वश्च्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा ।

अग्ने विश्व प्रदीदयत् ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (यत्) जो (अग्ने) सबसे पहले (नाहुषीषु विश्व) मानुषी प्रजाओं में (प्र दीदयत्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है (त्मन्) वह (आशु-अश्व्यम्) अति शीघ्र अश्व, मन, इन्द्रियादि को वश करने वाला मन, प्राण आदि सामर्थ्य ।

अभि व्रजं न तन्निषे सूर उपाकचक्षसम् ।

यदिन्द्र मृडयासि नः ॥ २५ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! राजन् ! (यत्) जो तू (नः) हमें (मृडयासि) सुखी करता है वह तू (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाशस्वरूप (उपाक-चक्षसम्) अति समीप, अन्तःकरण में दर्शनीय, गुह्यत् समीप रहकर उपदेष्टा (वज्रं न) शरण वा गमनयोग्य ज्ञान मार्ग को (अभि तन्निषे) विस्तार करता है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

यदुङ्ग तविषीयस इन्द्र प्र राजासि क्षितीः ।

महा अपार ओजसा ॥ २६ ॥

भा०—(अङ्ग इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू स्वयं ही (तवि-पीयसे) बलवती सेना के समान आचरण करता है तू स्वयं (क्षितीः)

सब बसी प्रजाओं पर (प्र राजसि) उत्तम राजा के समान है। तु-  
(ओजसा) बल पराक्रम में (महान्) बड़ा और (अपारः) अपार है।

तं त्वां हविष्मतीर्विशं उप ब्रुवत ऊतये ।

उरुप्रयसमिन्दुभिः ॥२७॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! ( हविष्मतीः विशः ) उत्तम अन्न आदि-  
देने और उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न प्रजापुं (इन्दुभिः)  
ऐश्वर्यों सहित (तं) उस (उरु-प्रयसं त्वा) महान् बल पराक्रम वाले  
तुझ से (उप ऊतये ब्रुवते) रक्षा के लिये प्रार्थना करती हैं।

उपह्वरे गिरीणाम् संङ्गथे च नदीनाम् ।

धिया विप्रो अजायत ॥२८॥

भा०—(गिरीणाम् उपह्वरे) पर्वतों के पास सुरक्षित स्थान में और  
(नदीनां च संगथे) नदियों के संगम स्थान में (धिया) कर्म और बुद्धि  
के योग से ( विप्रः अजायत ) मनुष्य विद्वान् हो जाता है। वैसे ही  
विद्यार्थी (गिरीणाम् उपह्वरे) ज्ञान के उपदेष्टा गुरुजनों के समीप और  
(नदीनां च संगथे) ज्ञान-सम्पन्न जनों के सत्संग में रहकर (धिया)  
कर्म और बुद्धि के योग से (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान्  
(अजायत) होता है।

अतः समुद्रमुद्धतश्चिकित्वाँ अव पश्यति ।

यतो विपान पजति ॥२९॥

भा०—(यतः) जिस कारण से (विपानः) विशेष रूप से पालक-  
वा व्यापक प्रभु (पजति) सब को चला रहा है, (अतः) इस कारण  
ही वह प्रभु (चिकित्वाँ) सर्वज्ञ है और वह सूर्य के समान (उद्धतः)  
ऊपर के लोकों को और (समुद्रम्) महा सागरवत् प्रवाह से अनादि-  
अनन्त जगत् सर्ग को भी (अव पश्यति) अपने अधीन देखता है।



आदित्यन्तस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् !

परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥१४॥

भा०—(यत्) जो (ज्योतिः) प्रकाश (दिवा) दिन के मुख्य स्वाभाविक रूप से (परः) काल और देश की मर्यादाओं के परे, (इध्यते) प्रकाशित होता है (प्रत्यस्य) सनातन, (रेतसः) सब के सञ्चालक, जल वा वीर्यवत् उत्पादक प्रभु की उस (वासरम्) सबको बसाने वाली ज्योति को (आत् इत्) योग साधनादि के पश्चात् योगीजन (पश्यन्ति) देखते हैं ।

कण्वास इन्द्र ते मूर्ति विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम् ।

उतो शविष्ठ वृष्णयम् ॥३१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) महान् शक्तिमन् ! (विश्वे) समस्त (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ते मूर्ति) तेरे दिये ज्ञान और (पौंस्यं) पौरुष युक्त बल, पराक्रम (उतो) और (वृष्णयम्) तेरे सुखवर्षा, बलवीर्य, धन धान्यादि को भी (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं ।

इमां मं इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव ,

उत प्र वर्धया मतिम् ॥३२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (मे) मेरी (इमां) इस (सु-स्तुतिम्) उत्तम स्तुति को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर तू (मा प्र सु अव) मुझे उत्तम रीति से रक्षा कर, दुःखों और पापों से बचा । (उत) और (मतिम् प्र वर्धय) मेरे ज्ञान, बुद्धि की वृद्धि कर ।

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः ।

विप्रा अतदम जीवसे ॥३३॥

भा०—(उत) और हे (प्रवृद्ध) सब से महान् ! हे (वज्रिवः) सर्व शक्तिमन् ! (वयं विप्राः) हम विद्वान् लोग (तुभ्यं ब्रह्मण्या) तेरे उपदेश

किये ज्ञानों, कर्मों को ( जीवसे अतक्षम ) सुखमय जीवन-वृद्धि के लिये करें ।

अभि कण्वा अनुषतापो न प्रवता यतीः ।

इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥३४॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इन्द्र) उस सर्वेश्वरवान् प्रभु को (अभि अनुषत) लक्ष्य करके स्तुति करते हैं । (यतीः आपः प्रवता न) बहती जलधाराएं जैसे नीचे जाने वाले मार्ग से ही बहती हैं वैसे ही (यतीः) यमनियमों के पालक इन्द्रिय और मन के वशीकर्त्ता (आपः) आसजन भी (प्रवता) उत्तम कर्म या मार्ग से (इन्द्रम् अभि अनुषत) प्रभु के समक्ष झुकते हैं । और (मतिः) उनकी बुद्धि और वाणी भी (इन्द्रं वनन्वती) प्रभु का भजन करती हुई स्तुति करती है ।

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।

अनुत्तमन्युमजरम् ॥३५॥१५॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) जैसे नदियें समुद्र को बढ़ाती हैं वैसे ही (उक्थानि) वेदमन्त्र (समुद्रम्) आनन्द के सागर और (अनुत्तमन्युम्) सर्वोपरि ज्ञान से युक्त (अजरम्) जरारहित, (इन्द्रम्) प्रभु को (वावृधुः) बढ़ाते हैं । उस की महिमा का विस्तार करते हैं ।

आ नो याहि परवतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।

इममिन्द्र सुतं पिब ॥३६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (हरिभ्यां परावतः) दो अश्वों से जैसे कोई शीघ्र दूर देश से आता है वैसे ही तू (हर्यताभ्याम्) कान्ति-युक्त, (हरिभ्याम्) दुःखों के हरने वाले चिन्मय, आनन्दमय, और क्रियामय रूपों से (परावतः) दृश्यमान जगत् की सीमा से परे, अन्य अगम्य दशा से (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो, हे प्रभो ! (इमं सुतं पिब) उत्पन्न इस जीव-संसार को पुत्रवत् पालन कर ।



त्वामिद्वृत्रहन्तम् जनांसो वृक्तवर्हिषः ।

हवन्ते वाजसातये ॥३७॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम्) आत्मा की घेरने वाले अज्ञान और दुःख-जनक वासना-पुञ्जों को नाश करने में सर्वोत्तम ! (वृक्त-वर्हिषः) कुशादि को छेदन कर यज्ञ करने वालों के समान वासनामूलों के उच्छेदक उपासना जीव (वाज-सातये) बल, अन्न और ज्ञानैश्वर्य प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हवन्ते) तुझे बुलाते, तुझे उद्देश्य करके आहुति देते हैं ।

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न व्यर्थेतशम् ।

अनु सुवानास इन्दवः ॥३८॥

भा०—(एतत्तं चक्रं न) जैसे घोड़े के पीछे २ रथ चक्र-जाता है वैसे ही (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथिवी (त्वा अनुवर्ति) तेरे पीछे २ चल रहे हैं । वैसे ही (सुवानासः) ऐश्वर्यशील या उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) सूर्यादि वा जीवगण (त्वा अनु) तेरे अनुकूल चलते हैं ।

मन्दस्या सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति ।

मत्स्वा विवस्वतो मती ॥३९॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! तू (स्वः-नरे) सुखमय परम पद को छुदय कर अपने को ले जाने वाले (उत) और (शर्यणावति) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष में (सु मन्दस्व) अच्छी प्रकार आनन्द उत्पन्न करे । (विवस्वतः) विशेष रूप में तेरी परिचर्या करने वाले पुरुष की (मती) बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द उत्पन्न कर ।

वावृधान उप चवि वृषा वज्रयरोरवीत् ।

वृत्रह सोमपातमः ॥४०॥१६॥

भा०—जैसे ( उप द्यवि वावृधानः वृषा वज्री अरोरवीत् ) आकाश में बढ़ता हुआ वर्षणशील, विद्युत्-मय मेघ गर्जता है, वह (वृष-हा) जल को प्राप्त कर (सोम-पातमः) ओषधि गण का सर्वोत्तम पालक होता है, वैसे (वृषा) सुखवर्षक, संसार प्रबन्धक, (वज्री) सर्वशक्तिमान्, पापादि को वर्जने वाले, ज्ञान-बल-सम्पन्न, (वृष-हा) विघ्न और आवरण अज्ञान का नाशक, (सोम-पातमः) ऐश्वर्यों, और जीवों का पालक परमेश्वर (द्यवि) ज्ञानमय, स्वरूप में (उप) हृदय के निकट रहकर (वावृधानः) सहिमा प्रकट करता हुआ (अरोरवीत्) उपदेश करता है । इति षोडशो वर्गः ॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा ।

इन्द्रं चोष्कूयसे वसु ॥४१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (हि) निश्चय से (ऋषिः) ज्ञानों का व्रष्टा, (पूर्वजाः) पूर्व विद्यमान रहकर सब को उत्पन्न करने वाला, (ओजसा) पराक्रम से ( एकः ईशानः ) अद्वितीय ईश्वर है, तू ही (वसु) बसे समस्त जीव को (चोष्कूयसे) वश करता, या ऐश्वर्य देता है ।

अस्माकं त्वा सुता उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः ।

शतं बहन्तु हरयः ॥४२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (अस्माकं) हम में से ( शतं हरयः ) अनेक मनुष्य ( वीत-पृष्ठाः ) कान्तियुक्त रूप वाले तेजस्वी (त्वा उप) तेरी उपासना करते हुए ( सुतान् ) नाना ऐश्वर्यों और पुत्रों तथा (प्रयः अभि) अन्न, ज्ञान आदि (अभि बहन्तु) प्राप्त करें, अन्यो को करावें ।

इमां सु पूर्या धियं मधोर्धृतस्यं पिप्युषीम् ।

करवा उक्थेन वावृधुः ॥४३॥



भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इमां) इस (पुरुषां) पूर्व पुरुषों वा पूर्ण पुरुष की (मघोः घृतस्य) मधुर ज्ञान को बढ़ाने वाले (धियं) बुद्धि और कर्म को (उक्थेन) वेदमन्त्र से (वावृधुः) बढ़ावां समृद्ध करें।

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे गतिं मर्त्यः ।

इन्द्रं सन्निष्युक्तये ॥४४॥

भा०—(विमहीनां) विविध सूर्य आदि बड़ी शक्तियों के बीच में भी (मेधे) पवित्र यज्ञ में (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रस्य इत्) परमेश्वरवान् प्रभु को ही (वृणीत) उपास्य जाने। (सन्निष्युः) दान देने की कामना वाला, पुरुष भी (उक्तये) रक्षा के लिये (इन्द्रस्य इत् वृणीत) परमेश्वर को ही वरे।

अर्वाञ्च त्वा पुरुषुत प्रियमेधस्तुता हरीं ।

सोमपेयाय वक्षतः ॥४५॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों द्वारा स्तुति योग्य, (प्रियमेधस्तुता) यज्ञ, उपासनादि के प्रेमी पुरुषों द्वारा स्तुत (हरीं) ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ दोनों (सोमपेयाय) ओषधि-रसवत् तेरे आनन्द-रस-पान के लिये (अर्वाञ्च) समीप प्राप्त, साक्षात् (त्वा वक्षतः) तुझे हृदय में धारते हैं।

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे ।

राधांसि याद्वानाम् ॥४६॥

भा०—(अहं) मैं (याद्वानां) मनुष्यों के (शतं सहस्रं राधांसि) सौ, और हजार भी ऐश्वर्य (तिरिन्दिरे) उस तीर्णतम, सर्वोपरि ऐश्वर्यवान्, (पर्शौ) सर्वस्पृष्ट प्रभु में ही (आददे) प्राप्त करता हूँ।

त्रीणि शतान्धर्वतां सहस्रा दश गोनाम् ।

ददुष्पञ्चाय सामने ॥४७॥

भा०—वह परमेश्वर (पञ्चाय) प्रार्थना वा ज्ञानार्जन करने वाले, (साम्ने) सब के प्रति समान बुद्धि, समदर्शी पुरुष को (अवन्तां त्रीणि शतानि) तीन सौ गतिशील वर्षों की आयु और (गोनां दशसहस्रा) वेद वाणियों के दश सहस्र मन्त्र, विद्वान् लोग (ददुः) प्रदान करते हैं ।

उदानद् ककुहो दिवमुष्ट्राश्चतुर्युजो ददत् ।

श्रवसा याद्वं जनम् ॥४८॥१७॥

भा०—(श्रवसा) श्रवण-योग्य ज्ञान के निमित्त ( याद्वं जनम् ) यत्नशील मनुष्य को ( ककुहः उद् आनद् ) सर्वश्रेष्ठ प्रभु उन्नत करता है और वह (चतुर्युजः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनो-योग करने वाली ( उष्ट्रान् ) नाना पदार्थों की कामना वाले लोगों को ( दिवं ददत् ) ज्ञानप्रकाश देता हुआ ( ककुहः ) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (श्रवसा उदानद्) ज्ञान द्वारा उन्नत करता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[ ७ ]

पुनर्वत्सः काण्व ऋषिः । मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३—५, ७—१३, १७—१९, २१, २८, ३०—३२, ३४ गायत्री । २, ६, १४, १६, २०, २२—२७, ३५, ३६ त्रिचृद्गायत्री । १५ पादत्रिचृद्गायत्री । २९, ३३ आर्षी विराट् गायत्री । षट्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।

वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥

भा०—जैसे जब ( मरुतः पर्वतेषु वि राजथ ) वायुगण मेघों में विशेष विद्युत् दीप्ति उत्पन्न करते हैं तब ( विप्रः इषं अक्षरत् ) रूप से विशेष जल से पूर्ण मेघ वृष्टि को ( त्रिष्टुभम् ) पृथिवी के प्रति सेचन करता है । वैसे ही हे (मरुतः) प्राणो ! ( यत् ) जब (विप्रः) पुरुष ( त्रिष्टुभम् ) तीन कालों में (इषं) अन्न-रस को ( प्र अक्षरत् ) अच्छी



प्रकार देह में सेचन करता है तब हे प्राणी ! तুম (पर्वतेषु) पर्व अर्थात् पोरुओं से युक्त देह के अंगों में (यि राजथ) विराजते हो ।

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।

नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

भा०—जैसे जब (तविषीयवः यामं चिन्वन्ति) बलयुक्त वायुगण अपने जल-संयमन करने वाले, बल की एक साथ लगाते हैं तब (पर्वताः नि अहासत) मेघ निश्चित दिशा में गति करते हैं । वैसे ही (अङ्ग) हे (तविषीयवः) बलवती सेना बनाने के इच्छुक वीरो ! आप लोग ( यत् ) जब (शुभ्रा) शस्त्रादि से सज कर (यामं) सैन्य बल को (अचिध्वम्) सज्जित करलो तब (पर्वताः) खण्डों से युक्त सैन्यबल के अध्यक्ष जन (नि अहासत) नियमपूर्वक प्रयाण करें ।

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः ।

धुक्षन्तः पिप्पुषीमिषम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे ( पृश्नि-मातरः ) प्रबल धारा वर्षक नीहारिका से उत्पन्न (वाश्रासः) गर्जनशील मेघ (वायुभिः इत् ईरयन्त) वायुओं के साथ उठते हैं तब वे (पिप्पुषीम् इषं धुक्षन्त) अन्न वनस्पति आदि को बढ़ाने वाली जलवृष्टि करते हैं । ऐसे ही (पृश्निमातरः ) भूमि, विद्वान् गुरुओं और विदुषी माताओं के पुत्र (वाश्रासः) उपदेष्टा पुरुष (वायुभिः) वायुवत् बलवान् प्राणों और नेता पुरुषों से युक्त होकर (उद् ईरयन्ते) ऊपर को उठते हैं तब वे ( पिप्पुषीम् ) राष्ट्र को बढ़ाने वाली (इषम्) सेना को (धुक्षन्त) पूर्ण करते हैं ।

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वैपयन्ति पर्वतान् ।

यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे ( मरुतः यद् यामं वायुभिः यान्ति ) सजल वायुर्ण स्थल वायुओं के साथ आकाश मार्ग से जाते हैं तब वे (पर्वतान् प्रवे-

पयन्ति) मेघों को गति देते और (मिहं वपन्ति) वर्षा को बीजवापन-वत् भूमि पर डालते हैं। ऐसे ही (मरुतः) प्रचण्ड वात के समान वीर गण (यत्) जब (वायुभिः) वायुवत् बलवान् सैनिकों के साथ (यामं) प्रयाण में गमन करते हैं तब वे (मिहं वपन्ति) शस्त्र-वृष्टि करते हैं और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ शत्रुओं को भी (प्रवेपयन्ति) विचलित कर देते हैं। विशेष वृष्टि लाने वाली मानसून वायुएं वेद में 'मरुतः' हैं।

नि यद्यमाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे ।

महे शुष्माय येमिरे ॥५॥१८॥

भा०—वृष्टि लाने वाले सज्जल वायुगण को (यामाय) रोकने के लिये जैसे (गिरिः = गिरयः) पर्वत या मेघ और (वि-धर्मणे) उनको विशेष रूप से धारण करने व (महे शुष्माय) बड़े वैद्युतिक आदि बल उत्पन्न करने के लिये (सिन्धवः) नदियों और नहरों (नियम्यन्ते) विशेष रूप से बनायी जाती हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीरो ! विद्वानो ! (वः यामाय) आप लोगों के नियन्त्रण और शिक्षण के लिये (गिरयः) उप-देष्टा गुरुजन नियत किये जावें। और (विधर्मणे) विशेष रूप से आप लोगों को दृढ़ रखने और (महे शुष्माय) बड़ी बलवृद्धि के लिये (सिन्धवः निवेमिरे) वेगवान् अश्वों को नियम में रखा जाय। इत्यष्टा-दशो वर्गः ॥

युष्मा उ नक्तमृतये युष्मान्दिवा हवामहे ।

युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (नक्तम्) रात्रि के समय (उक्तये) रक्षा के लिये (युष्मान् उ हवामहे) आप लोगों से ही हम प्रार्थना करते हैं। हे वीर पुरुषो ! (युष्मान्) तुम्हें हम (दिवा उक्तये हवामहे) दिन के समय रक्षा करने के लिये प्रार्थना करते हैं और



( अध्वरे प्रयति ) यज्ञ के अवसर में ( ऊतये हवामहे ) रक्षा के लिये बुलावें ।

उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते ।

वाश्रा अधि ष्णुना दिवः ॥ ७ ॥

भा०—जैसे वायुगण, ( वाश्राः ) शब्द करते हुए ( अरुणप्सवः ) सूर्य की दीसियों को मानो खा जाते हैं, अपने में विलीन कर लेते हैं, ( चित्राः ) अद्भुत रूप होकर ( यामेभिः ) वायु मार्गों से ( उद् ईरते ) उठकर आकाश से जाते हैं वे ( स्नुना अधि दिवः ) पर्वत शिखर के साथ २ आकाश में चले जाते हैं वैसे ही ( त्ये मरुतः ) वे विद्वान् और वीर ( अरुणप्सवः ) तेजोवर्धक पदार्थ का भोजन करने वाले हों, वे ( चित्राः ) अद्भुत कर्म करने वाले ( यामेभिः ) रथों से या उत्तम नियम व्यवस्थाओं से ( उद् ईरते ) उठें, शत्रु पर जा चढ़ें । वे ( वाश्राः ) गर्जन करते हुए ( स्नुना ) ऐश्वर्य के साथ ही ( दिवः अधि ) भूमि पर अधिकार करें ।

सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे ।

ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ८ ॥

भा०—जैसे वायुगण ( ओजसा ) पराक्रम से ( यातवे सूर्याय ) जाते सूर्य के ( पन्थाम् ) मार्ग को प्राप्त कर ( रश्मिं सृजन्ति ) दीप्ति उत्पन्न करते और ( भानुभिः वि तस्थिरे ) विद्युत् कान्तियों से विराजते हैं वैसे ही ( ते ) वे वीर ( भानुभिः वि तस्थिरे ) कान्तियों से विराजें और ( यातवे सूर्याय ) प्रयाणकर्ता तेजस्वी पुरुष के ( ओजसा ) बल से ( पन्थां सृजन्ति ) मार्ग बनावें ।

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणाः ।

इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ( मरुतः ) वीर पुरुषो ! हे ( ऋभुक्षणाः ) बलशाली पुरुषो ! आप लोग ( मे इमां गिरस् ) मेरी इस वाणी को और ( इमां



स्तोमं) इस स्तुत्य वचन को और (मे इमं हवम्) मेरे इस ग्राह्य उप-  
हार वेतनादि को भी (वनत) सेवन करो ।

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्वे वज्रिणे मधु ।

उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१०॥१६॥

आ०—जैसे (पृश्नयः) जल वर्षक सूर्य के रश्मि (वज्रिणे) विद्युत् से युक्त मेघ के लिये (त्रीणि सरांसि) तीन तालाबों के मुख्य भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश तीनों से (मधु दुदुह्वे) जल ग्रहण करते हैं । वे ही (उत्सं) ऊपर बहने वाले ( उद्रिणम् ) जल-युक्त मेघ से (कवन्धम्) जल को (दुदुह्वे) प्रदान करते हैं । वैसे ही (पृश्नयः) विद्वान् जन (वज्रिणे) शक्तिशाली राष्ट्रपति के लिये (त्रीणि सरांसि मधु दुदुह्वे) तीनों लोकों से मधुर ऐश्वर्य प्राप्त करें और उत्तम मेघ, जलाशय तथा (उत्सं) ऊपर से बहने वाले क्षरने आदि से राष्ट्र के लिये ( कवन्धम् ) धारावद् जल प्राप्त करें । इत्येकीनविंशो वर्गः ॥

मरुतो यद्धं वा दिवः सुन्नायन्तो हवामहे ।

आ तू न उप गन्तन ॥११॥

भा०—हे (मरुतः) जलवर्षी वायुगणों के समान विद्वान्, वीर जनो ! हम लोग (यत् ह वः) जब भी आप लोगों को (सुन्नायन्तः) सुख एवं ज्ञान चाहते हुए (हवामहे) आदर से प्रार्थना करें (आ तु) अनन्तर ही आप लोग (नः उप गन्तन) हमारे समीप प्राप्त हुआ करें । रक्षेच्छुक प्रजाजनों के लिये सिपाही जनों को तुरंत जाना चाहिये ।

यूयं हि घ्रा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणादमे ।

उत प्रचेतसो मदं ॥ १२ ॥

भा०—हे (सुदानवः) शोभन दानशील, शत्रुओं का अच्छी प्रकार खण्डन करने वाले (रुद्राः) दुष्टों को खलाने वाले ! (ऋभुक्षणाः) सत्य



का विवेचन करने वाले वीर, विद्वान् पुरुषो ! हे ( प्रचेतसः ) उत्कृष्ट ज्ञान और उत्तम चित्त वाले सदाशय पुरुषो ! (यूयं हि) आप लोग अवश्य (दमे) गृह में, शत्रुदमन के कार्य में (उत्त) और (मदे) समस्त प्रजाजनों को अन्नादि से तृप्त, सुखी और आनन्दित करने में (स्थ) दत्तचित्त रहो ।

आ नो॑ इयिं॑ म॒द॒च्युतं॑ पुरु॒क्षुं विश्व॑धा॒यसम् ।

इयं॑ता॒ मरुतो॑ दि॒वः ॥ १३ ॥

भा०—जैसे जलवर्षी वायुगण ( म॒द॒च्युतं ) तृप्तिदायक (पुरु॒क्षुं) बहुत-अन्न युक्त ( विश्व॑-धा॒यसम् रयिम् ) विश्व-पोषक सम्पदा (दि॒वः) अन्तरिक्ष से देते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप (नः) हमें (म॒द॒च्युतम्) आनन्ददायक (पुरु॒क्षुं) बहुतों के निवास-योग्य (विश्व॑-धा॒यसम्) समस्त प्रजापोषण में समर्थ ( रयिम् ) ऐश्वर्य (दि॒वः) भूमि से (आ इयत्तं) प्राप्त कराओ ।

अधी॑व॒ यद्गिरी॑णां॒ यामं॑ शु॒भ्रा अचि॑ध्वम् ।

सु॒वानै॑र्म॒न्दध्व॒ इन्दु॑भिः ॥ १४ ॥

भा०—जैसे जलवर्षी वायुगण (गिरी॑णाम् अधि) पर्वतों और मेघों के बीच (शु॒भ्राः) शुभ्र वर्ण होकर (यामं) पवन के मार्ग का (अचि॑ध्वम्) अवलम्बन करते या वायु-मण्डल के जल-राशि का सञ्चय करते हैं, तब ( सु॒वानैः इन्दु॑भिः ) उत्पन्न होते हुए द्रवणशील जलों से (म॒न्दध्वे) सवको आनन्दित करते हैं । वैसे ही हे वीर पुरुषो ! आप लोग (गिरी॑णां) पर्वतों के (अधि इव) मानो ऊपर भी (यामं) नियन्ता राष्ट्रपति के आदेश को ही (अचि॑ध्वम्) ग्रहण करो ।

पु॒ताव॑न्तश्चि॒देषां॑ सु॒क्ष्मं मि॑क्षेत् म॒र्त्यः ।

अदा॑भ्यस्य म॒न्मभिः॑ ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (एषां) इन वीर वा विद्वान् पुरुषों में से (अदाभ्यस्य) शत्रुओं से नाश न होने वाले, (एतावतः) ऐसे ही महान् गुणवान् पुरुष से (मन्मभिः) उत्तम स्तुति युक्त वचनों से (सुन्नम् भिक्षेत) सुखप्रद धन और शुभ ज्ञान की याचना करें। निर्गुण अल्प चित्त वाले से ज्ञान, धनादि लेना न चाहे। इति विंशो वर्गः ॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः ।

उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥

भा०—जैसे मरुद्गण (रोदसी धमन्ति) भूमि और आकाश को शब्द से पूरित करते और फिर (वृष्टिभिः अक्षितं उत्सं) वृष्टियों द्वारा अक्षय जल को मेघ में से दोहकर देते हैं। जैसे ही (ये) जो वीर पुरुष (द्रप्सा इव) राष्ट्र के बलवीर्य-रूप होकर (रोदसी) उभय पक्ष की सेनाओं को (धमन्ति) निनादित करते हैं, अग्नि-शस्त्र से आग लगाते हैं वे (अनु) पश्चात् (वृष्टिभिः) वाणवर्षाओं से (उत्सम्) उठने वाले शत्रु का नाशकर स्वयं (अक्षितं) अपराजित राष्ट्र और अक्षय ऐश्वर्य को (दुहन्तः) पूर्ण करते हुए रहते हैं।

उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः ।

उत्स्तामः पृथिनिमातरः ॥ १७ ॥

भा०—जैसे (पृथि-मातरः) जल-सेचन अर्थात् वर्षण करने वाले मेघों के माता के समान उत्पादक वायुगण (स्वानेभिः वायुभिः उदु ईरते) प्रबल वायु-वेगों से उठते हैं जैसे ही (पृथि-मातरः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि, आचार्य वा पृथिवी माता के पुत्र वीर पुरुष (स्वानेभिः) सिंह-गर्जनाओं-सहित (उत् ईरते) उठते हैं, (रथैः उत्) रथों और (वायुभिः उदु उ) वायुवत् प्रबल नायकों और (स्तोमैः उत्) स्तुतियोग्य प्रशंसा-वचनों से (उत् ईरते) उत्साहित होते और विजय करते हैं।



येनाव तुर्वशं यदुं येन कर्णं धनस्पृतम् ।

राये सु तस्य धीमहि ॥ १८ ॥

भा०—(येन) जिस साधन से आप लोग (तुर्वशं) शत्रु-नाशक वा हिसकों के वशकर्ता वा चारों पुरुषार्थ के इच्छुक (यदुं) यत्नशील, उद्योगी वर्ग और (येन) जिस उपाय से ( धन-स्पृतं ) धन के इच्छुक वैश्य वर्ग और (कर्णं) विद्वान् ब्राह्मण वर्ग की (आव) रक्षा करते हो (तस्य) उसी उपाय का हम (राये) ऐश्वर्य लाभ के लिये (सु धीमहि) अच्छी प्रकार धारण और विचार करें ।

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषिषः ।

वर्धन्काणवस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील एवं छेदन भेदन के कर्म में कुशल जनों ! (वः) आप लोगों की (इमाः इषः) ये जल-वृष्टियों के समान (इषः) सेनाएं (घृतं न पिप्युषीः) जल के समान परस्पर स्नेह और राजा के तेज की वृद्धि करती हुईं (काणवस्य) विद्वान् पुरुष के (मन्मभिः) सुविचारित वचनों से ( वर्धन् ) वृद्धि को प्राप्त करें ।

कं नूनं सुदानवो मदथा घृक्तवर्हिषः ।

ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥२०॥२१॥

भा०—जैसे जल वृष्टि और अन्न देने से वायुगण (सुदानवः) उत्तम दानशील हैं वे ( घृक्त-वर्हिषः ) अन्तरिक्ष चीर के जाने वाले होते और सबको आनन्दित करते हैं, उनके सम्बन्ध में भी प्रदत्त होता है कि उनको ( कः ब्रह्मा ) कौन महान् शक्तिशाली सञ्चालित करता है । वैसे ही हे (सु-दानवः) उत्तम धन, यथादि देने वाले वीर विद्वान् पुरुषों ! आप लोग (वृक्त-वर्हिषः) योग के निमित्त कुशादि काट लाने वाले वा शत्रुओं और अन्तरात्मा से क्रोध कामादि को समूल उच्छिन्न कर शुद्ध

पवित्र होकर (क्व मदथ) कहां २ आनन्द लाभ करते और किस २ स्थान वा अवसर पर अन्यो को आनन्दित करते हो ? (वः) आप लोगों का (कः) कौन (ब्रह्मा) महान् शक्ति वाला, ज्ञानवान् पुरुष (सपर्यति) सत्कार करता है ? इत्येकविंशो वगः ॥ उत्तर—

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तवर्हिषः ।

शर्धौ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥

भा०—हे ( वृक्तवर्हिषः ) यज्ञशील और शत्रुरहित वीर जनो ! (पुरा) पहिले के समान ही (वः) आप लोगों के (यत् नहि स्म) जो बल नहीं प्राप्त हो उन (ऋतस्य) धन, अन्न और सत्य ज्ञान के (शर्धान्) नाना बलों को (स्तोमेभिः) स्तुति वचनों द्वारा (जिन्वथ) बढ़ाओ ।

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—जैसे मेघ लाने वाले सजल वायुगण (महती अपः सं दधुः) बहुत भारी जल राशि को धारण करते हैं । (क्षोणी सं दधुः) भूमि पर उन जलों को प्रदान करते वा वे वृष्टि युक्त वायुगण (क्षोणी सं दधुः) भूमि और अन्तरिक्ष की परस्पर सुसम्बद्ध करते हैं वे ही (सूर्यम्) सूर्य की दीप्ति को (सं दधुः) धारण करते हैं और (वज्रं) विद्युत् को भी (पर्वशः) पौष्ट २, खण्ड २ कर धारण करते हैं वैसे ही (त्वे) वे वीर पुरुष भी (महतीः अपः सम दधुः) बहुत बड़ी प्रजाओं को धारण करें, (क्षोणी समु) स्व और पर-राष्ट्र की भूमि को सन्धि द्वारा व्यवस्थित करें, (सूर्य सं दधुः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा को धारण करें और (पर्वशः वज्रं सं दधुः) सेना की एक २ टुकड़ी का नायक महास्र को धारण करे ।

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वता अराजिनः ।

चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥



भा०—जैसे पूर्वोक्त वायुगण (वृत्रं) जल को (पर्वशः) पोर २ पर (वि ययुः) विशेष रूप से व्यापते हैं। वे (अराजिनः) स्वयं दीप्ति-रहित, श्याम (पर्वतान् वि ययुः) मेघों को भी व्यापते हैं और (वृष्णि) वर्षणशील मेघ पर विशेष (पौंस्यं विचक्राणाः भवन्ति) बल पराक्रम करते हैं वैसे ही वीर लोग (वृत्रं) अपने बढ़ते शत्रु को (पर्वशः वि ययुः) पोर २, सन्धि २ में व्याप लें, उसके सैन्य दल में घुस जाय (अराजिनः) राजा के विपरीत उच्छृंखल द्रोही (पर्वतान्) अचल शत्रुओं पर भी (वि ययुः) चढ़ाई करें। और (वृष्णि) बलवान् शत्रु पर (पौंस्यं) बल-पौरुष (चक्राणाः) करते रहा करें।

अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् ।

अन्विन्द्रं वृत्रतूर्यै ॥ २४ ॥

भा०—जैसे (वृत्रतूर्यै इन्द्रं अनु शुष्मम् क्रतुम् आवन्) मेघ को छिन्न-भिन्न करने के समय वायुगण सूर्य के अनुकूल ही बलयुक्त कर्म करते हैं वैसे ही वीर सैन्य भी (वृत्र-तूर्यै) शत्रु-नाशक संग्राम में (त्रितस्य युध्यतः) स्व और पर से अतिरिक्त तीसरे बलशाली से लड़ते हुए (इन्द्रम् अनु) सेनापति के साथ (उत) ही (शुष्मम् क्रतुम्) बल, कर्म को (अनु आवन्) प्राप्त करते और बलवान्, क्रियावान् भाग की रक्षा करते हैं।

विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षहिरण्ययीः ।

शुभ्र व्यञ्जत श्रिये ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! आप (विद्युद्-हस्ताः) विद्युत्-तुल्य चमकाले शत्रुओं को हाथ में लिये और स्वयं (अभिद्यवः) कान्ति युक्त (शुभ्राः) शोभायुक्त वस्त्रालंकार धारण कर (शीर्षन्) शिर पर (हिरण्ययीः) सुवर्ण से सजे सुन्दर लोह आदि के बने (शिप्राः) शिर

बचाने के दोषों को (श्रिये) शोभा के लिये ( वि-अज्ञत ) विशेष प्रकट करे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।

धौर्न चक्रदक्षिणा ॥२६॥

भा०—जैसे पवन गण ( परावतः ) दूर विद्यमान (उक्ष्णा) जल-सेचक मेघ के ( रन्ध्रम् ) छिद्र भाग की ओर (उशनाः) तीव्र कान्ति-युक्त होकर जाते हैं । तब (धौः न भिया चक्रदत्) आकाश व पृथिवी भी भय से कांप या गूँज उठती है वैसे ही आप भी (उशनाः) विजय कामना करते हुए हे वीरो ! (यत्) जब (परावतः उक्ष्णः) दूर देश से बलवान् शत्रु के ( रन्ध्रम् ) मर्म को पाकर ( अयातन ) प्रयाण करो तब (धौः न) मानो पृथिवी और आकाश भी (भिया चक्रदत्) भय से गूँज उठे, कांप उठे ।

आ नो मुखस्य दावनेऽष्टैर्हिरण्यपाणिभिः ।

देवास्य उप गन्तन ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! आप (नः) हमारे (मुखस्य) यज्ञ-निमित्त (दावने) दान देने के लिये (हिरण्य-पाणिभिः) सुवर्णादि पदार्थ को हाथ में लिये (अष्टैः) वेगयुक्त अश्वों से हमारे (उप गन्तन) पास आओ ।

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।

यान्ति शुभ्रा रिणन्तपः ॥ २८ ॥

भा०—जैसे वायुओं के (रक्षे) वेग में ( पृषतीः ) जल-सेचन-कर्त्री मेघमालाओं को (प्रष्टिः) तीव्र वायु और (रोहितः) रक्तवर्ण सूर्य (वहति) वहन करता है तब वे भी (यान्ति) गति करते और ( शुभ्राः अपः रिणन् ) स्वच्छ जल पहुँचाते हैं । वैसे ही (एषां) इन वीरों के (रथे) रथ-समुदाय में (पृषतीः) सेनाएं वा नियुक्त अश्व (प्रष्टिः) शीघ्र चालक



(रोहितः वहति) सारथिवत् सेनापति वहन करे तब ये भी (शुभ्राः) सुन्दर (अपः) जलधारा तुल्य सैन्यधाराओं का सञ्चालन करते हुए (यान्ति) प्रयाण करें ।

सुषोमे शर्यणावत्यार्ज्जुके पुस्त्यावति ।

ययुर्निचक्रया नरः ॥ २६ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सुषोमे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ( शर्यणावति ) उत्तम सेना से सुरक्षित, (आर्ज्जुके) धार्मिक निवासियों से वरणीय धार्मिक राजा से शासित ( पत्यावति ) उत्तम प्रजा से सम्पन्न, नगर या देश में (निचक्रया) नीचे लगे चक्रों से युक्त गाड़ियों से (ययुः) जाया-आया करें ।

कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।

मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (इत्था) इस प्रकार (हवमानं विप्रम्) स्तुतिशील वा यज्ञकर्त्ता, (मार्डीकेभिः) सुख-जनक वचनों से ( नाधमानम् ) प्रार्थना करते हुए विद्वान् पुरुष को (कदा गच्छाथ) कब प्राप्त होते हैं ? इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

कद् नून कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।

को वः सखित्व ओहते ॥ ३१ ॥

भा०—हे (कध-प्रियः) उत्तम कथा, स्तुति, उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाले पुरुषो ! (यद् इन्द्रम् अजहातन) जो आप लोग शत्रु-हन्ता और संशयच्छेत्ता वीर वा विद्वान् पुरुष वा प्रभु को त्यागते हो ऐसा भला (कद् ह नूनं) क्यों कर हो सकता है ? यदि छोड़ दिया करो तो भला (वः सखित्वे) आप लोगों की मित्रता में (कः ओहते) कौन विश्वास करे ?

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वांसो अग्नि मरुद्भिः ।

स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—हे ( कण्वासः ) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( हिरण्य-  
वाशीभिः ) लोह, सुवर्णादि के बने शस्त्रों से सजे, वा हितरमणीय  
बोलने वाले (वज्रहस्तैः) खड्ग और शस्त्र वर्जन करने वाले चर्म हाथ  
में लिये उत्तम बल सम्पन्न, (मरुद्भिः) वीरों, विद्वानों के (सह उ)  
सहित ( अग्निम् ) ज्ञानवान् नायक पुरुष के (नः सु स्तुषे) हमारे प्रति  
उत्तम रीति से गुण कथन करो ।

ओ षु वृष्णाः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय ।

वृष्ट्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥

भा०—मैं (वृष्णः) बलवान्, उदार, ( प्र-यज्यून ) उत्तम दान-  
शील ( चित्र-वाजान् ) अद्भुत बल और ऐश्वर्य के स्वामी जनों से  
(सुविताय) उत्तम धन प्राप्त करने और (नव्यसे) नये से नये धन प्राप्त  
करने के लिये ( आ वृष्ट्याम् ) प्रार्थना करूं और (नव्यसे सुविताय)  
स्तुत्य, उत्तम चरित्र शिक्षण के लिये अद्भुत ज्ञानी पुरुषों से प्रार्थना  
करूं ।

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः ।

पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

भा०—( चित् ) जैसे सजल वायुओं से स्पर्श पाकर (गिरयः नि  
जिहते) मेघ नीचे उतर आते हैं (पर्वताः चित् नियेमिरे) पर्वत उनकी  
रोक थाम करते हैं वैसे ही (पर्शानासः) उत्तम विद्वानों और वीरों से  
स्पर्श पाकर (मन्यमानाः) अभिमान युक्त ( गिरयः ) विद्वान् जन (नि  
जिहते) विनय से झुकते हैं और ( पर्शानासः ) पीड़ित होकर (पर्वताः  
चित्) पर्वतवत् दृढ़, शत्रु भी ( नि येमिरे ) बांधे जाते हैं, वश किये  
जाते हैं ।



आक्षणायावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।

धातारस्तुवते वयः ॥ ३५ ॥

भा०—( अन्तरिक्षेण पततः धातारः यथा वयः वहन्ति ) जैसे अन्तरिक्ष से जाते हुए सजल पवन विश्व के पोषक अन्न को प्राप्त कराते हैं वैसे ही (अक्षय-यावानः) आंख के इशारे से आगे बढ़ने और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश मार्ग से जाने वाले, (धातारः) राष्ट्र के धारक, (स्तुवते) स्तोता-प्रजाजन के हितार्थ (वयः वहन्ति) बल, अन्न धारण करते हैं ।

अग्निर्हि जानि पूर्यश्छन्दो न सूरौ अर्चिषा ।

ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६॥२४॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जैसे ( पूर्यः जनि ) सब से पूर्व विद्यमान रहता है और वह (अर्चिषा) ज्वाला से (सूरः न छन्दः) सूर्य के समान दीप्तियुक्त होता है और वायुगण ( भानुभिः ) विद्युत् आदि से (वि तस्थिरे) विविध प्रकार से चमकते हैं वैसे ही (अग्निः) अग्रणी नायक प्रभु (पूर्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है । वह ज्ञानदीप्ति से सूर्यवत् सब का उत्पादक और (छन्दः) रक्षक रहा । (ते) वे जीवगण और सूर्य आदि लोक उसी के (भानुभिः) प्रकाशों से ( वि तस्थिरे ) विविध प्रकारों से रहते हैं । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ ८ ]

सध्वंसः काण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ९, १२, १४, १५, १८—२०, २२ निचृदनुष्टुप् । ४, ७, ८, १०, ११, १३, १७, २१, २३ आर्षी विराडनुष्टुप् । ६, १६ अनुष्टुप् ॥ त्रयोविंशर्चं सूक्तम् ॥

आ नो विश्वाभिरुतिभि रश्विना गच्छतं युवम् ।

दस्त्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत्, चन्द्रसूर्यवत् सब के हृदयों में व्यापने वाले वा 'अश्व' अर्थात् शीघ्रगामी घोड़ों के समान वेग से विषय मार्गों में दौड़ने वाले इन्द्रियों के स्वामी पुरुषो ! ( युवम् ) आप दोनों (विश्वामिः) समस्त ( कृतिभिः ) रक्षा और ज्ञानों तथा तृप्तिदायक उपायों के सहित (नः) हमें ( आगच्छतम् ) प्राप्त होओ । आप दोनों (दत्ता) दुःखों का नाश करने वाले (हिरण्य-वर्त्सनी) स्वर्णादि-मण्डित रथ पर आरुढ़, एवं हितकारी, रमणीय मार्ग से जाने वाले, (सोम्यं मधु) ओषधि-रस और उत्तम मधुर अन्न आदि (पिबतम्) प्राप्त करो ।

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।

भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी-सारथिवद् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, की पुरुषो ! आप ( सूर्य-त्वचा ) सूर्य तुल्य कान्तियुक्त आवरण वाले, सुन्दर (रथेन) रथ से ( नूनं आयातम् ) अवश्य आया-जाया करो । आप दोनों (भुजी) सुखों के भोगने और प्रजा को पालने वाले, (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण तुल्य कान्तियुक्त, (कवी) दीर्घदर्शी, (गम्भीर-चेतसा) गम्भीर-चित्त होओ ।

आ यातं नहुषस्पर्शान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।

पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! सचिव और नृपति के तुल्य प्रधान पुरुषो ! आप (नहुषः परि) मनुष्य वर्ग से ऊपर (अन्त-रिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतिवाणियों-सहित ( आयातम् ) आया करो और (कण्वानां) विद्वान् पुरुषों के (सवने) यज्ञ में ( सुतम् ) तैयार किये (मधु) मधुर अन्न, यज्ञ-शेष और ज्ञान आदि (पिबाधः) पान करो ।



पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् सम्बद्ध स्त्री-पुरुषो ! हे (अध-  
धिया) अपने अधीन सेवक आदि को सुखी रखने वाले, उनके प्रिय  
पुरुषो ! आप (दिवः परि) भूमि मार्ग से, (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष  
मार्ग से भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ । (इह) इस  
स्थान में (वाम्) आप दोनों को लक्ष्य करके (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान्  
गुरुव का शिष्य, पुत्र (सोम्यं मधु) विद्वान् पुरुषों के योग्य मधुर अन्न  
और ज्ञान को (सुपा) प्रदान करे ।

आ ना यात्मुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।

स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिमिर्नरा ॥५॥२५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (स्तोमस्य) स्तुति, और उपदेश करने योग्य वेद-ज्ञान का (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा प्रकथन करते हुए और (धीतिभिः) अध्ययन, मनन द्वारा उसकी (वर्धना) वृद्धि करते हुए (प्र यातम्) आगे बढ़ो । हे (कवी) विद्वानो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! आप दोनों (सोमपीतये) ज्ञान और अन्नादि के पाकन और उपभोग के लिये ( उप-श्रुति ) उत्तम ज्ञान-श्रवण के लिये यज्ञ, सभाभवन आदि स्थानों में ( नः आयातम् ) हमारे पास आओ । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।

आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्ठुति मम ॥६॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गों ! हे (नरा) उत्तम पुरुषों ! (वां) आप के (अवसे) ज्ञान के लिये (पुरा) पहले काल में (ऋषयः) सम्प्रार्थ द्रष्टा ऋषियों ने ( यत् चित् हि ) जो कुछ भी (जुहूरे) उपदेश किया है और ( इमां सुस्तुतिम् ) इस उत्तम

स्तुति, उपदेशादि की (उप) प्राप्ति लिये (मम आयातम्) मेरे समीप आइये ।

द्विवाश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्चिदा ।

धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

भा०—हे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गों ! आप (दिवः चित् रोचना) सूर्य के समान प्रकाशमान, ( रोचनात् ) तेजस्वी गुरु से ( स्वर्चिदा ) प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करके (स्तोमेभिः) वेद के सूक्तों से (हवन-श्रुता) स्वयं ग्रहण करने और अन्यो को देने योग्य ज्ञान का श्रवण करके (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों से ( वत्स-प्रचेतसा ) 'वत्स' अर्थात् उपदेष्टा गुरु के अधीन ज्ञानवान् होकर ( अधि नः गन्तम् ) हमारे पास आओ ।

किमुन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना ।

पुत्रः कण्वस्य वामसृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् अन्ये) हम से अतिरिक्त अन्य विद्वान् भी (स्तो-मेभिः) स्तुति-उपदेशों सहित (किम् परि-आसते) क्यों विराजते हैं । हे (अश्विना) जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्याओ ! वे सब केवल ज्ञानोपदेश देने के लिये हैं । (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् पुरुष का पुत्र वा मेधावी पर-मेश्वर के (पुत्रः = पुरु = त्रायते) बहुत से ज्ञान का रक्षक (ऋषिः) मन्त्र-द्रष्टा विद्वान् (वत्सः) अभिवादन करने योग्य एवं विद्या का उपदेष्टा होकर (गीर्भिः) वेद वाणियों से ( वाम् अवीवृधत् ) तुम दोनों की उन्नति करे ।

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना ।

अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी वर्गों ! (इह) इस आश्रम में (विप्रः) विद्वान् आचार्य ( स्तोमेभिः ) वेद के



मन्त्रों से (वां अवसे) आप दोनों को ज्ञान देने के लिये (अह्वत्) उप-  
देश करे और (ता) वे आप दोनों (अरिप्रा) पाप-रहित और (वृत्र-  
हन्तमा) आवरणकारी अज्ञान के नाशक होकर (नः) हमारे लिये  
(मयोमुवा भूतस्) सुखदायक होओ ।

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।

विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥ १०॥ २६ ॥

भा०—हे (वासिनी-वसू) ज्ञान, विद्या और वीर्यरूप धन के  
धनी स्त्री-पुरुषो ! (यत्) जब तक आप दोनों में से (योषणा) पति से  
प्रेम करने वाली स्त्री और स्त्री को प्रेम करने वाला पुरुष (रथम् आ  
अतिष्ठत्) गृहस्थ रूप रमण योग्य आश्रम में प्राप्त होते हो, उससे पूर्व  
हे (अश्विना) इन्द्रिय, मनरूप अश्वों के स्वामी, ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी  
वर्गों ! आप दोनों ( विश्वानि धीतानि = अधीतानि ) समस्त अध्ययन  
योग्य विषयों को ( प्र अगच्छतम् ) अच्छी प्रकार ग्रहण करो । इति  
षड्विंशो वर्गः ॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।

वत्सो व्वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! जब (वत्सः) विद्या  
का उपदेष्टा, (काव्यः) विद्वानों में विद्वान् (कविः) क्रान्तदर्शी आचार्य  
(वां) तुम दोनों को (मधुमद् वचः) मधुविद्या, ब्रह्मविद्या से युक्त प्रव-  
चन, ( अशंसीत् ) कर चुके (अतः) उसके बाद आप दोनों (सहस्र-  
निर्णिजा) बहुत प्रकार के बने (रथेन) रथों से (आयातम्) गृह आओ ।

पुरुमन्द्रा पुरुवसू मनोतरां रथिणाम् ।

स्तोमं मे अश्विनाविमममि वहीं अनूषाताम् ॥ १२ ॥

भा०—( पुरु-मन्द्रा ) बहुत मनुष्यों के प्रसन्नकर्ता ( पुरु-वसू )

बहुतों को बसाने वाले, ऐश्वर्यों के स्वामी, (रथीणां) धनों की प्राप्ति, विनिमय आदि का उत्तम ज्ञानी (वह्नी) कार्य-भार-वहन में समर्थ (अश्विनौ) जितेन्द्रिय, वेगवान् अश्व, यान आदि चखाने में कुशल स्त्री-पुरुष वर्ग (इमं मे स्तोमं) मेरे इस स्तुति-वचन को (अभि अनुषाताम्) आदरपूर्वक ग्रहण करें ।

आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्या ।

कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नः) हमारे (विश्वानि) सब (राधांसि) धनों को आप (अह्या) बिना संकोच के (आ धत्तम्) धारण करो, और प्रदान करो । आप (नः) हमें (ऋत्वियावतः कृतम्) क्रतु २ में करने योग्य यज्ञ से सम्पन्न करो । (नः) हमें (निदे) निन्दक के लाभ के लिये (मा रीरधतं) अपने अधीन मत करो ।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अघ्यम्बरे ।

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् मुख्य स्थान पर स्थित वा (न-असत्या) असत्य व्यवहार न करने वाले, आप दोनों (यद्) चाहे (परावति स्थः) दूर देश में होओ (यद् वा) वा (अम्बरे अधि स्थः) समीप में हो हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों के स्वामी जनो ! (अतः) वृहत् से आप लोग (सहस्र-निर्णिजा रथेन) दृढ़ बल युक्त, रथ से (आ यातम्) आया करो ।

यो वाँ नासत्यावृषिर्गिर्भिर्वत्सो अवीवधत् ।

तस्मै सहस्रनिर्णिजामिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य व्यवहार न करने वाले और नासिकावत् प्रमुख पदों पर स्थित जनो ! (यः) जो (वत्सः ऋषिः) उत्तम उष-



देष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुष ( वां अवीवृधत् ) आप दोनों की वृद्धि करता है (तस्मै) उसके रक्षार्थ आप (घृतश्चुतम् इवम्) घृतयुक्त अन्न के समान (सहस्रनिर्णिजं) हजारों पुरुषों से बना, (घृतश्चुतम्) तेजोयुक्त पद, (इषं) सैन्य, वा खेह से युक्त इच्छा को (धत्तम्) धारण करो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।

यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयादानुनस्पती ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (वां) तुम दोनों को (सुम्नाय) सुख, शान्ति के लिये (तुष्टवत्) स्तुति, या उपदेश करे, हे (दानुनः पती) दानशील वा दातव्य धन के पालको ! (यः) जो जो (वसूयात्) आप दोनों के सुखार्थ धन चाहे, (अस्मै) उस पुरुष को (युवं) तुम दोनों हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (घृतश्चुतं) घी, जलादि से युक्त (ऊर्जं प्रयच्छतम्) बलकारक अन्न दे ।

आ नो गन्त रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।

कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥ १७ ॥

भा०—हे (रिशादसा) हिंसकों के नाशक जनो ! हे (पुरुभुजा) बहुतों के पालक ! आप लोग (नः आ गन्तं) हमें प्राप्त होओ । और (नः) हमारे (स्तोमं) स्तुत्य वचन का (कृतम्) पालन करो । हे (नरा) नायक स्त्री-पुरुषो (हमाः) ये (सु-श्रियः) उत्तम २ लक्ष्मियां (नः) हमें (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (दातम्) दो ।

आ वां विश्वाभिरुतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।

राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (प्रिय-मेधाः) यज्ञ के द्वारा अन्न आदि भौतिक तत्त्वों के सुगन्धादि से पूर्ण, शत्रु वा दुष्ट पुरुषों

की ताड़ना को अच्छा समझने वाले वीर पुरुष ( विश्वामिः ऊतिभिः ) समस्त विद्या और रक्षा साधनों, सेनाओं सहित ( वां आ अहूपत ) तुम दोनों को स्वीकार करें और आप (अध्वराणां) हिंसारहित यज्ञों और सब को मार्गोपदेश करने वाले कार्यों के बीच (यामहृतिषु) छोगों को चलने के मार्ग तथा उत्तम यमनियमादि व्यवस्था के उपदेश के कार्य में (राजन्तौ) राजावत् चमकते रहो ।

आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शुम्भुवा युवम् ।

यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवधत् ॥११॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वत्सः) उप-देष्टा, गुरु ( विपन्यू ) विशेष व्यवहार कुशल, एवं प्रार्थी (वां) आप दोनों को ( धीतिभिः ) उत्तम कर्मों और (गीर्भिः) वेद वाणियों द्वारा (अवीवधत्) वृद्धि कराता है उससे उपदिष्ट (युवम्) आप दोनों (मयो-भुवा) सुखप्रद और (शुम्भुवा) शान्तिदायक होकर (नः आगन्तम्) हमें प्राप्त होओ ।

यामिः कण्वं मेधातिथिं यामिर्वशं दशंवजम् ।

यामिर्गोशर्यमावतं तामिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥२८॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो, सेनापति-समापति आदि जनो ! आप लोग (यामिः) जिन उपायों से (कण्वं) विद्वान् (मेधातिथिम् अवतम्) अन्नादि सत्कार योग्य अतिथि की रक्षा करते और (यामिः) जिन क्रियाओं से ( दश-वज्रम् ) दशों दिशाओं में जाने वाले मार्गों से युक्त (वशं) वश करने योग्य राष्ट्रजन या मन आदि को वश करते हो, और (यामिः) जिन सैन्यादि से ( गो-शर्यम् ) 'गो' अर्थात् धनुष की डोरी और 'शर' बाण इनके चलाने में कुशल सैन्य व गो-भूमि के हिंसक, कृषकादि की ( आवतम् ) रक्षा करते (तामिः) उनसे ही हे (नरा) नायक पुरुषो ! ( नः अवतम् ) हमारी रक्षा करो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥



(यामिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।

ताभिः प्वस्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१ ॥

भा०—(यामिः) जिन सेना आदि से ( कृत्व्ये धने ) प्राप्ति-योग्य ऐश्वर्य की रक्षा हेतु ( त्रसदस्युम् ) दस्युओं को भयभीत करने वाले सिपाही आदि को ( आवतम् ) रखते हो उनसे ही हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! ( वाज-सातये ) अन्नादि के लाभ के लिये (अस्मान् सुप्र अवतम्) हमारी भी रक्षा करो ।

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरौ वर्धन्त्वश्विना ।

पुरुत्रा वज्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय एवं राष्ट्र के स्वामी जनो ! (स्तोमा) स्तुतियोग्य कार्य और ( सुवृक्तयः ) उत्तम रीति से पाप से बचाने वाली (गिरः) वाणियां (वां प्रवर्धन्तु) आप दोनों को बढ़ावें । (ता) वे आप दोनों (पुरुत्रा) बहुतों के रक्षक, (वज्र-हन्तमा) शत्रु और पाप को अच्छी प्रकार नाशक और (नः) हमारे बीच (पुरुस्पृहा बहुतों के प्रेम-पात्र और न्यायपूर्वक स्नेह करने वाले, प्रेमी ( भूतम् ) होओ ।

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।

कवी ऋतस्य पत्मभिर्वाग्जीविभ्यस्परि ॥ २३ ॥ २४ ॥

भा०—(त्रीणि) तीन (पदानि) प्राप्तव्य विषय (अश्विनोः) विद्वान् स्त्री-पुरुषों की (गुहा) बुद्धि में (परः) सर्वाधिक, उत्तम रीति से (आविः सन्ति) प्रकट होते हैं । उन (ऋतस्य) ज्ञान के (पत्मभिः) तीनों पदों से वे दोनों (अर्वाक) साक्षात् (कवी) क्रान्तदर्शी होकर (जीवेभ्यः परि) जीवों के हितार्थ हों । 'ऋत' सत्याचरण, धर्म, यज्ञ और वेद-ज्ञान के तीन पद ऋक्, सामः, यजुः, मन्त्र, गीति और क्रिया; ज्ञान, उपासना और यज्ञ हैं । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[ ९ ]

शशकणः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनी देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ बृहती ।  
१४, १५, निचृद् बृहती । २, २० गायत्री । ३, २१ निचृद् गायत्री । ११  
त्रिपाद् विराड् गायत्री । ५ उष्णिक् ककुप् । ७, ८, १७, १९ अनुष्टुप् ।  
९ पादनिचृदनुष्टुप् । १३ निचृदनुष्टुप् । १६ आर्ची अनुष्टुप् । १८ विराड्-  
नुष्टुप् । १० आर्षी निचृद् पङ्क्तिः । १२ जगती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।

आस्मै यच्छतमवृकं पृथु छर्दियुतं या अरातयः ॥ १ ॥

आ०—हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! ( युवं ) आप दोनों  
( नूनं ) अवश्य ही ( वत्सस्य अवसे ) बालक, भृत्यादि के रक्षण, वा  
भोजनादि से वृत्ति के लिये ( आ गन्तम् ) आया करो । ऐसे ही ( वत्सस्य  
अवसे ) उपदेष्टा विद्वान् की रक्षा और उसके ज्ञान और वृद्धि आदि के  
लिये आया करो । ( अस्मै ) उसको ( पृथु छर्दिः ) बड़ा विस्तृत गृह,  
( अवृकं ) छल-कपट-रहित होकर ( प्र यच्छतम् ) प्रदान करो । ( या  
अरातयः ) जो न देने के क्षुद्र विचार हैं उनको ( युयुतं ) दूर करो ।

यदन्तरिक्षे यद्विवि यत्पञ्च मानुषा अनु ।

नृणां तद्वत्तमश्विना ॥ २ ॥

आ०—( यत् ) जो ( नृणाम् ) धन ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में ( यत्  
दिवि ) जो आकाश में और ( यत् ) जो ( पञ्च मानुषान् अनु ) पाँचों  
मनुष्यों के अनुकूल है ( तत् ) उसे हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय एवं अश्वदि  
के स्वामी वर्गों ! आप लोग अवश्य ( धत्तम् ) धारण करो । आकाश में  
वायु, जल, मेघ, वृष्टि आदि और अन्तरिक्ष में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि,  
पाँचों मनुष्यों के अनुकूल भूमि, पर्वत, नदी, जलाशय आदि ये त्रिविध  
धन मनुष्य मात्र के सुखप्रद होने से 'नृणाम्' हैं ।



ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः ।

एवेत्कारवस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) उत्तम स्त्री पुरुषो ! ( ये ) जो ( विप्रांसः ) विद्वान् पुरुष ( वां ) आप लोगों के ( दंसांसि ) नाना कार्यों को ( परिमामृशुः ) करते, उन पर विचार करते हैं, उनका और ( कण्वस्य एव इत् ) विद्वानों के किये अनुष्ठान आदि का भी ( बोधतम् ) ज्ञान प्राप्त करो ।

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमैर्न परि बिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय पुरुषो ! ( वां ) आप दोनों का ( अयं ) यह ( घर्मः ) तेजोयुक्त सामर्थ्य है जिसको ( स्तोमैः ) स्तुति योग्य वचनों द्वारा ( परिबिच्यते ) परिषेक किया जाता, प्रतिष्ठा की जाती है । हे ( वाजिनीवसू ) बलादि से युक्त क्रिया के धनी जनो ! ( अयं मधुमान् सोमः ) यह मधुर अन्नादि से युक्त ऐश्वर्य उत्पादक बल है, ( येन ) जिससे आप दोनों ( वृत्रं ) जीवन के रोग दुखादि को ( चिकेतथः ) दूर करने में समर्थ हो ।

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।

तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे ( अश्विना ) जितेन्द्रिय, उत्तम भोगों को भोगने हारे ! हे ( पुरु-दंससा ) नाना कर्मों को करने में समर्थ स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( यत् अप्सु ) जो जलों, ( यद् वनस्पतौ ) जो वनस्पति और ( यद् ओषधीषु ) जो ओषधि, अन्नादि के प्राप्ति के लिये ( कृतम् ) यत्न करते हो ( तेन ) उससे ही ( मा अविष्टम् ) प्रजावत् मेरी रक्षा करो । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यन्नासत्या भुरगयथो यद्वा देव भिषज्यथः ।

अयं वां मतिमिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले आप दोनों (हविष्यमन्तं हि) उत्तम अन्न वाले प्रजाजन की माता-पितावत् (भुरण्यथः) पालन करते हो, (यद्वा) जो आप दोनों (हविष्यमन्तं भिषज्यथः) पवित्र अन्न वाले के ही रोगों को दूर करते हो और (हविष्यमन्तं गच्छथः) उत्तम अन्नादि के स्वामी राष्ट्रवासी जन को तुम प्राप्त होते हो, (अथं) यह (वत्सः) राष्ट्र निवासी जन बालक के समान होकर (मतिभिः) बुद्धियों से (वां) तुम दोनों को (न विन्धते) प्राप्त नहीं कर सकता ।

आ नूनमश्विनोऽश्विभिः स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥ ७ ॥

भा०—(ऋषिः) मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वान् पुरुष (नूनम्) अवश्य ही, (वामया) अपनी उत्तम बुद्धि से (अश्विनोः) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (स्तोमं) स्तुति-योग्य मन्त्रों का उपदेश (आचिकेत) करे । (अथर्वणि) स्थिर, प्रज्ञावान् पुरुष में ही वह अग्नि (घर्मः) तीव्र तेज के समान (मधुमत्तमम्) वा अति मधुर (सोमं) ओषधि रसवत् उत्तम ज्ञान और तेज का (सिञ्चात्) प्रदान करे ।

आ नूनं रघुवर्तनि रथं तिष्ठथो अश्विना ।

आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) इन्द्रिय और मन को वश में रखने वाले आप दोनों ! (नूनं) अवश्य ही (रघु-वर्तनि) लघु अर्थात् वेग से जाने में समर्थ, (रथं) रमणीय रथ पर (आ तिष्ठथः) विराजा करे । (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके (इमे) ये (स्तोमाः) स्तुत्य वचन, (नमः न) आकाश में सूर्य के प्रति किरणोंवत् वा पवनवत् (चुच्यवीरत) प्राप्त हों ।



यद्वद्य वां नासत्योक्थैराचुच्यवीमहि ।

यद्वा वाणींभिरश्विनेवेत्कारवस्य वाधतम् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( नासत्या ) सत्यभापी, सत्यकर्मा, स्त्री पुरुषो ! ( यत् अद्य ) जो आज, ( वां ) आप दोनों के प्रति हम ( उक्थैः ) उत्तम वचनों सहित ( अचुच्यवीमहि ) प्राप्त हों और आप दोनों ( यद् वा ) और ( अश्विना इव ) 'अश्व', इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय होकर ( कण्वस्य इव ) विद्वान् पुरुष की ( वाणीभिः ) वाणियों से ( बोधतम् ) ज्ञान प्राप्त करो ।

यद्वां कक्षीवां उत यद्वयंश्च ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।

पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेदेवतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! अश्व-सैन्यादि के स्वामी, सेनापति आदि पुरुषो ! ( वां ) तुम दोनों को ( यत् ) जिससे ( कक्षीवान् ) कुशल वा अन्धों की बागडोर अपने हाथों रखने वाला पुरुष, ( उत ) और ( यत् ) जब ( व्यश्वः ) विविध या विशेष अश्वों या विद्वानों का स्वामी और ( यत् ) जिस कारण से ( दीर्घतमाः ) बड़ी २ आकांक्षाओं वाला, ( ऋषिः ) दूरदर्शी पुरुष ( वां वां ) तुम लोगों को ( जुहाव ) उत्तम उपदेश करे वा उत्तम कार्य के लिये बुलावे और ( यद्वा ) जिससे तुम दोनों को ( वैन्यः ) तेजस्वी, यश का इच्छुक ( पृथी ) बड़े राष्ट्र-प्रेमार्थ का स्वामी ( सादनेषु ) नाना स्थानों, पदों पर ( एव जुहाव इत् ) कार्य के लिये बुलावे, ( अतः ) उससे पूर्व, हे जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों अवश्य ( चेतयेथाम् ) ज्ञान प्राप्त करें । एकत्रिंशो वर्गः ॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्या उत नस्तनूपा ।  
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों ( नः ) हमारे

(तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रादि के हितार्थ ( वर्त्तिः यातम् ) वृत्ति या चेतनादि प्राप्त करो । आप दोनों (नः) हमारे ( छर्दिष्वा. भूतम् ) गृहों के रक्षक होवो । ( नः परस्पा भूतम् ) हमें शत्रु से बचाने वाले होवो । ( उत नः जगत्पा तनूपा भूतम् ) और हमारे जंगम पशु-सम्पत्ति और हमारे शरीरों के भी रक्षक होवो ।

यदिन्द्रेण सूरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।  
यदादित्येभिर्मृभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः १२

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वदि के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (इन्द्रेण) शत्रु-विनाशी सेनापति आदि के साथ (स-रथं याथः) रथ के साथ रथ चलाकर प्रयाण करने वा युद्ध-यात्रा करते हो, (यद्वा) अथवा जो आप दोनों (वायुना समोकसा) वायु और वायुवत् बलवान् सेनापति के समान भवन या पद वाले (भवथः) हो जाओ । (यद्) या जो आप दोनों (ऋभुभिः) सत्य-ज्ञान से प्रकाशित (आदित्येभिः) आदित्यवत् तेजस्वी विद्वानों के साथ (स-जोषसा) समान-प्रीति-युक्त होवो (यद् वा) या तुम दोनों (विष्णोः) बलशाली राजा के (विक्रमणेषु) विशेष विक्रम के कार्यों में (तिष्ठथः) उच्चासनों पर विराजो, यही आदर्श, कर्त्तव्य और अधिकार है ।

यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत्पृत्सु तुवणो सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ १३ ॥

भा०—और ( यत् ) जो (अद्य) आज मैं (अश्विनौ) जितेन्द्रिय और अश्वदि के नायकों को (वाज-सातये) ऐश्वर्यादि-प्राप्ति के लिये सदावत् (हुवेय) बुलाया करूं । (यत्) क्योंकि जो (पृत्सु) संग्राम में (तुवणो) शत्रु-नाश करने में (सहः) शत्रु-पराजयकारी बल है ( तत् ) वही (अश्विनोः) उन अश्वदि के स्वामीजनों का (श्रेष्ठं अवः) श्रेष्ठ बल है ।



आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।

इमे सामासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथं ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! ( तुर्वशे ) चतुर्वर्गों की कामना वाले और (यदौ) यत्नशील, राष्ट्र प्रजाजन और (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के (अधि) बीच (वाम्) तुम दोनों को ( इमे सोमासः ) ये नाना बल, अधिकार, ऐश्वर्य प्राप्त हों और (नूनं) अवश्य ही (इमा) ये (हव्यानि) ग्रहण योग्य ऐश्वर्य, अन्न ( वां हिता ) आप लोगों के लिये नियत हैं, आदर से ( आ यातम् ) आओ और स्वीकार करो ।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।

तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छुर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥ १५ ॥ ३२ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य ज्ञान से रहित, ज्ञानवान् पुरुषो ! (यत् भेषजम् पराके) रोगादि नाशक जो पदार्थ दूर देश में हो वा जो (अर्वाके अस्ति) समीप स्थान में हो (तेन) उससे हे (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले जनो ! (वत्साय) पुत्रवत् राष्ट्र में वसे प्रजाजन के उपकारार्थं ( वि-मदाय ) विशेष आनन्द लाभ के लिये (नूनं) अवश्य ( छुर्दिः यच्छतम् ) आवास प्रदान करो । इति द्वात्रिंशोऽवर्गः ॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।

अयावर्देव्या मतिं वि शतिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

भा०—मैं (अश्विनोः) दिन रात दोनों में (देव्या) प्रकाशमान उषा के समान कान्तियुक्त और स्त्री पुरुषों में से ( देव्या ) गुणवती विदुषी के समान (अश्विनोः) विद्या के पारंगत स्त्री पुरुषों की (वाचा) वाणी से (प्र अभुत्सि) उत्तम रीति से प्रबोध, ज्ञान, जागृति को प्राप्त होऊँ । हे (देवि) विदुषि ! हे वाणि ! तू (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ

(मतिं वि आ आवः) उत्तम सुमति, ज्ञान विशेष प्रकट कर और (रतिं वि) दान भी विविध दे ।

प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।

प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७॥

भा०—हे (उषः) प्राभातिक कान्ति के समान शोभित हे (देवि) विदुषी ! ज्ञान का प्रकाश देने वाली ! दानशीले ! हे (सूनृते) उत्तम ज्ञान से युक्त ! हे (महि) पूज्ये ! जैसे उषा सब को जगाती है वैसे ही तू भी (प्र प्र बोधय) ज्ञानोपदेश से जगा । हे (यज्ञ-होतः) यज्ञ में होता के समान गृहस्थ तू भी (आनुषक्) निरन्तर (प्र बोधय) ज्ञान का उपदेश कर । (मदाय) आनंद प्राप्ति के लिये (बृहत् श्रवः) बहुत अन्न और बड़े उत्तम, श्रवण-योग्य वेदोपदेश देकर सबको ज्ञानवान् कर ।

यदुषो यासि मानुना सं सूर्येण राचस ।

आ हायमाश्वना रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८॥

भा०—हे (उषः) कान्तिमति ! विदुषि ! तू जब प्राभातिक सूर्य की दीप्ति के तुल्य (मानुना) प्रकाश के साथ (यासि) गमन करती है और (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से (सं रोचसे) युक्त होकर अच्छी लगती है तभी (अश्विनोः) आप दोनों जितेन्द्रिय वर, वधू का (अयम्) यह (रथः) रमणीय सुंदर गृहस्थ रथ, (नृपाय्यं वर्तिः याति) मनुष्य-मात्र के पालक गृह अर्थात् प्रजापति पद या मार्ग की ओर गति करता है ।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊर्ध्वभिः ।

यद्वा वाणरिर्नूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९॥

भा०—जैसे (गावः ऊर्ध्वभिः दुह्ने) गौवं स्तन-मण्डलों से दूध देती हैं वैसे ही (यत्) जब (आपीतासः) ईषत् पिंगल वर्ण के, वा ज्ञान



का पान किये हुए (बुद्धे) प्रदान करते और (देवयन्तः) प्रभु की कामना करते हुए (प्र अनूपत) वाणियों का उच्चारण करते हैं उस समय हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों उसका लाभ लो ।

प्र द्युम्नाय प्र शर्वसे प्र नृषाह्याय शर्मणे ।

प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥२०॥

भा०—हे (प्र-चेतसा) उत्तम चित्त और ज्ञान वाले जनो ! आप दोनों (द्युम्नाय) उत्तम ऐश्वर्य, (शर्वसे) बल और (नृ-षाह्याय) सब शत्रु-नायकों को पराजय करने, (शर्मणे) शत्रुहंसक बल और प्रजा को शांतिदायक शरण देने और (दक्षाय) बल और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (प्र प्र प्र प्र) सदा उत्तम से उत्तम मार्ग पर आगे बढ़ो ।

यन्नूनं धीमिरश्विना पितुर्योनां निषीदथः ।

यद्वा सुमनोभिरुक्थ्या ॥२१॥३३॥

भा०—(यत्) जब हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (नूनं) निश्चय से (धीमिः) उत्तम कर्मों (यद्वा) और जब (सुमनेभिः) सुख-जनक कार्यों से (पितुः योना) माता पिता गुरु के गृह में (निषीदथः) रहते हो तब आप दोनों (उक्थ्या) प्रशंसा योग्य हो जाते हो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ १० ]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ आर्ची स्वराङ् बृहती । २ त्रिष्टुप् । ३ आर्ची भुरिगनुष्टुप् । ४ आर्चीभुरिक् पंक्तिः । ६ आर्षी स्वराङ् बृहती । षडृचं सूक्तम् ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसन्नानि यद्वदो रोचने दिवः ।

यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥

भा०—(यत्) यदि तुम दोनों (दीर्घ-प्र-सन्नानि) बड़े भवनों वाले

नगर में (स्थः) होवो, (यद्वा) या चाहे आप दोनों (अदः) इस दूरस्थ (दिवः रोचने) पृथिवी के क्रीड़ा, विनोदयुक्त किसी रुचिकर स्थान में होवो (यद्वा) अथवा चाहे (समुद्रे) जल या समुद्र के द्वीपादि में (अधि स्थः) हो, तो भी हे (अश्विना) वेग से चलने वाले साधनों से सम्पन्न जनों ! आव (अतः आ आतन्) वहां से आया जाया करो ।

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्कृणवस्य बोधतम् ।

बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णूँ अश्विनांवाशुहेषसा २

भा०—(यद्-वा) और जब आप दोनों (मनवे) मनुष्य-मात्र के हितार्थ (यज्ञं सं मिमिक्षथुः) यज्ञ को मिलकर एक साथ करो, (एव इत् काण्वस्य बोधतम्) तब भी विद्वानों को उसका ज्ञान करा दिया करो । (बृहस्पतिम्) बड़े राष्ट्र और वेद के पालक और ( विश्वान् देवान् ) समस्त मनुष्यों, विद्यार्थियों और ( इन्द्राविष्णूँ ) ऐश्वर्यवान् राजा, सामर्थ्य के सेनापति दोनों को और (आशुहेषसा) शीघ्र ध्वनि करने वाले (अश्विना) अश्वारोही, जितेन्द्रिय जनों को (अहं हुवे) मैं बुलाऊँ कि वे यज्ञ में आवें ।

त्या न्वश्विनां हुवे सुदंससा गृमे कृता ।

ययोरस्ति प्र णः सुख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥३॥

भा०—( त्वा अश्विना नु हुवे ) मैं उन दोनों जितेन्द्रिय, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को निमन्त्रित करूँ जो (सु-दंससा) उत्तम कर्मों का आचरण वाले और (गृमे कृता) गृह में एकत्र पति पत्नी बने हों, (ययोः) जिन में ( नः सुख्यं प्र अस्ति ) हमारा सौहार्द हो और (ययोः) जिनका (आप्यं) बन्धुभाव (देवेषु) विद्वानों में (प्र अस्ति) उत्तम हो ।

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूर्यः ।

ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचतसा स्वधामिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥४॥



भा०—(यथोः अधि) जिन दोनों स्त्री पुरुषों पर (यज्ञाः) यज्ञ, उत्तम कर्म और (असूरे) सूर्यरहित, अन्धकार युक्त काल या देश में भी (यथोः अधि) जिन के अधीन या जिन पर (सूरयः) विद्वान् जन आश्रित हैं, (या) जो दोनों (स्वधाभिः) अन्नों सहित (सोम्यं मधु पिबतः) ओषधि-रस युक्त मधुर जल, मधु आदि पदार्थ पान करते हैं (ता) वे दोनों (प्र-चेतसा) उत्तम विद्वान्, शुभ-चित्तवान् होकर (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसा रहित वा अक्षय यज्ञ के (स्वधाभिः) अन्नों से करने वाले हों।

यद्वाश्विनावपान्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।

यद्द्रुह्यन्तवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यद् अद्य) जो तुम दोनों (अपाग्) पश्चिम में या (यत्) जो (प्राक्-स्थः) पूर्व में भी होवो, हे (वाजिनीवसू) विद्या और बल युक्त क्रिया से सम्पन्न विद्वानो ! (यद्) यदि तुम दोनों (द्रुह्यन्ति) परस्पर द्रोही जनों में, (तुर्वशे) हिंसक जनों में और (अनवि) छोटे या अप्रसिद्ध जनों में या (यदौ) यत्नशील, श्रमी जनों में भी होवो तो मैं (अद्य) आज ही, (हुवे) सादर निमन्त्रित करूँ। (अथ) और तुम दोनों (मा गतम्) मुझे प्राप्त हो।

यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।

यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमाश्विना ॥६॥ ३४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अन्नों और यन्त्रों के जानने और बनाने वाले शिल्पकार जनो ! (यत्) जो आप दोनों (पुरु-भुजा) बहुतों को पालने में समर्थ होकर (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करते हो, (यद् वा) और जो आप दोनों (द्वेमे रोदसी अनु पतथः) इन आकाश और पृथिवी दोनों में विचर सकते हो (यद् वा) और जो आप दोनों (स्व-धाभिः) स्वयं अपने आप धारण करने में समर्थ

शक्तियों से ( रथम् ) वेग से चलने वाले यन्त्र पर (अधि तिष्ठथः) विराजित हो वे आप दोनों ( अतः आयातम् ) हमारे पास आया करो । इति चतुर्त्रिंशो वर्गः ॥

[ ११ ]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ अग्निदेवताः ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिगायत्री । २ वर्धमाना गायत्री । ३, ५—७, ९ निचृद् गायत्री । ४ विराड् गायत्री । ८ गायत्री । १० आर्ची भुरिक त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वमग्निं व्रतपा अंसि देव आ मर्त्येष्वाम् । त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! व्यापक ! तेजःस्वरूप सत्यार्थ प्रकाशक ! राजन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (व्रत-पाः अंसि) व्रतों, सत्कर्मों, अज्ञों का पालक है । (मर्त्येषु आ) मनुष्यों में भी तू (देवः) सुखों का दाता, दीप्तिमान् है । (त्वं) तू (यज्ञेषु) यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति योग्य, पूज्य, चाहने योग्य है ।

त्वमंसि प्रशस्यो विदथेभुं सहन्त्य । अग्ने रथिरध्वराणाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (सहन्त्य) शत्रु-पराजयकारिन् ! ( त्वम् ) तू (विदथेभु) यज्ञों, संग्रामों, ज्ञान लाभ के अवसरों में (प्रशस्यः अंसि) प्रशस्तनीय और उपदेश करने योग्य है । तू ही ( अध्वराणाम् ) यज्ञों और सन्मार्ग, मोक्ष मार्ग में जाने वालों में (रथीः) रथवान् के समान मार्ग पार करा देने और लक्ष्य तक पहुँचाने द्वारा है ।

सं त्वमस्मदप द्विषा युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! तेजस्विन् ! हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता ! व्यापक प्रभो ! विद्वन् ! (त्वं) तू (सः) वह (द्विषः) द्वेष करने वालों और द्वेष-योग्य क्रोधादि अन्तः-शत्रुओं, और (अरातीः अदेवीः) शुभ गुणों से रहित दान या उचित अधिकारों को



न देने वाले प्रभावों, वृत्तियों और वाणियों को भी (अस्मत् अप युयोधि) हम से दूर कर ।

अन्ति चित्सन्तमहं यज्ञं मर्त्तस्य रिपोः । नोप वेषि ज्ञातवेदः ॥४॥

भा०—हे (ज्ञात-वेदः) समस्त पदार्थों को जानने हारे प्रभो ! हे विद्वन् ! (रिपोः मर्त्तस्य) पापी पुरुष के (अन्ति चित् सन्तं यज्ञं) अति समीप विद्यमान यज्ञ को (नोप वेषि) प्राप्त नहीं होता, नहीं स्वीकार करता । तू शत्रु भावना वाले मनुष्य के यज्ञ, पूजा, दान स्वीकार नहीं करता ।

मर्त्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे । विप्रांसो ज्ञातवेदसः ५।३५

भा०—हे प्रभो ! (ज्ञात-वेदसः) उत्पन्न पदार्थों में व्यापक, सर्वज्ञ (ते) तुझ (ममर्त्यस्य) अविनाशी के (भूरि नाम) बहुत नामों से हम (मर्त्ताः) मनुष्य, (मनामहे) तेरी स्तुति करते हैं ।

विप्रं विप्रांसोऽवसे देवं मर्त्तास ऊतये । अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

भा०—हम (विप्रासः मर्त्तासः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (अवसे) रक्षा, ज्ञान, आत्मसंतोष, प्रीति सुखादि और (ऊतये) तुझे प्राप्त होने के लिये (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों के पूरक (देवं) प्रकाशमान (अग्निं) ज्ञान-स्वरूप की हम (गीर्भिः) नाना वेदवाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं ।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।

अग्ने त्वाङ्गामया गिरा ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप ! (वत्सः) तेरी स्तुति करने हारा पुत्रवत् प्रिय ( परमात् चित् सधस्थात् ) परम उत्कृष्ट तेरे साथ एकत्र रहने की स्थिति से (ते) तुझे प्राप्त करने के लिये (त्वां-कामया गिरा) तुझे चाहने वाली, वाणी से (मनः) मन को ( आ यत्तम् ) सब ओर से रोके ।

पुरुत्रा हि सृष्ट्वङ्मसि विशो विश्वा अनु प्रभुः ।

समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! तू (पुरुत्रा) बहुत से स्थानों में भी सूर्यवत् (सदृह अस्ति) एक समान सबको देखने और दीखने हारा, सर्वत्र एक रस है। तू (विश्वाः विशाः अनु) समस्त प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह करने हारा, (प्रभुः) सर्वोत्तम शासक है। (त्वा) तुझसे ही (समत्सु) हर्ष के अवसरों और युद्धों में भी (हवामहे) प्रार्थना करते हैं। समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम् ॥६॥

भा०—हम (समत्सु) संग्राम में और एक साथ मिलकर आनन्द के अवसरों में और (वाजेषु) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, अश्वों के निमित्त (चित्र-राधसम्) अद्भुत धन के धनी, (अग्निम्) सर्वव्यापक, अग्रणी, ज्ञान-स्वरूप प्रभु की (अवसे) पालन, ज्ञान आदि के लिये ही (वाजयन्तः) ऐश्वर्य ज्ञानादि की कामना करते हुए हम लोग (हवामहे) स्तुति करते हैं। प्रत्नो हि कृमांड्यो अध्वरेषु सनाच्छ होता नव्यश्च सत्सि।

स्वां चाग्ने तन्वां प्रिग्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व १०।३६।८।५

भा०—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ! सबसे पूर्व विद्यमान ! (हि) जिससे तू (प्रत्नः) पुराना, अनादि काल से विद्यमान (ईद्व्यः कम्) स्तुति योग्य अध्वरेषु) अविनाशी पदार्थों और यज्ञों में स्तुत्य है, तू (नव्यः च) सदा नवीन और (सनात् च) सनातन काल से (होता) सर्व सुखदाता होकर (सत्सि) विराजता है। तू (स्वां च तन्वं) अपनी ही विस्तृत सृष्टि को (पि ग्रयस्व) पालन और वृत्त कर और (अस्मभ्यं च) हमें भी (सौभगम् आ यजस्व) उत्तम ऐश्वर्य दे। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः



## अथ षष्ठोऽष्टकः

## प्रथमोऽध्यायः

[ १२ ]

पर्वतः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, ९, १५, १६,  
२०, २१, २५, ३१, ३२ निचृदुष्णिक् । ३—६, १०—१२, १४, १७,  
१८, २२—२४; २६—३० उष्णिक् । ७, १३, १९ आर्षीविराडुष्णिक् ।

३३ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।

येना हंसि न्यत्रिंशं तमीमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! शत्रुनाशक ! हे (शविष्ठ) वल-  
शालिन् ! ज्ञानवान् ! (यः) जो तू (सोम-पातमः) ऐश्वर्य, जगत् वा  
राष्ट्र-प्रजा की पुत्रवत्, ओपधि, वनस्पति आदि को मेघ वा सूर्यवत्  
उत्तम रीति से पालन करने वाला, (मदः) सबको प्रसन्न करने वाला  
होकर (चेतति) सबको ज्ञान देता है और (येन) जिस कारण से तू  
(अत्रिणं) प्रजा के नाशक का (नि हंसि) नाश करता है, अतः (तम्)  
उस तुझको हम लोग (इमहे) प्राप्त होते ।

येना दशग्वमधिगुं वेपथ्यन्तं स्वर्णरम् ।

येना समुद्रमाविष्टा तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिससे हे प्रभो ! राजन् ! तू (दशग्वम्) 'दशगु'  
दस भूमि, या दस ग्रामों के स्वामी को और (अधिगु- अधिगुं) इससे  
भी अधिक भूमियों के स्वामी को और (स्वः-नरं) सबके नेता, सुखों  
वा ज्ञानोपदेश देने वाले विद्वान् को और (वेपथ्यन्तं) शत्रुओं को कंपाने  
वाले को और (येन) जिस कारण से तू (समुद्रम्) समुद्रवत् अपार

प्रजाजन और सैन्य बल को (आविथ) रक्षा करता, प्राप्त करता है इससे हम सब (तम्) उस तुझको (ईमहे) प्राप्त होते, तुझसे प्रार्थना करते हैं।

येन सिन्धुं महीरुपो रथौ इव प्रचोदयः ।

पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस कारण तू हे भगवन् ! (रथान् इव) रथों रथारोही वीरों, (सिन्धुम्) अश्व-सैन्यों, (महीः) भूमिवासिनी प्रजाओं और (अपः) आस जनों को राजावत् उत्तम मार्ग में चलाता है और तू (सिन्धुं) महान् समुद्र, (महीः अपः) भूमियों और जलों को (प्रचोदयः) उत्तम उद्देश्य के लिये प्रेरित कर रहा है, अतः (ऋतस्य पन्थाम् यातवे) सत्य के मार्ग पर चलने के लिये (तं) उसी तुझ को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं ।

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।

येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो ! (येन) जिस (ओजसा) भारी पराक्रम से तू (सद्यः) सब दिनों महान् राजा के तुल्य (ववक्षिथ) जगत् को धारण कर रहा है, उससे तू सबसे महान् है, हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति-शालिन् ! अतः हम (अभिष्टये) स्व आभेक्षित फल प्राप्त करने के लिये (घृतं न पूतं) पवित्र जल के तुल्य स्वच्छ, तृप्ति, सुख, आरोग्यकारक और पवित्र तेज के समान पावन, अन्तःकरण के प्रकाशक (इमं स्तोमं) इस वेदमय ज्ञान को (ईमहे) तेरे से पाते हैं ।

इमं जुषस्व गर्विणः समुद्र इव पिन्वते ।

इन्द्र विश्वामिच्छतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शक्तिशालिन् ! तू (विश्वामिः) समस्त (ऋतिभिः) रक्षा और शक्तियों से (ववक्षिथ) संसार को धारण कर रहा है । हे (गर्विणः) वाणियों द्वारा श्रवण-भजन-योग्य ! तू (समुद्रः इव) सागर



के समान, समान रूप से सबका आनन्द-दाता होकर (पिन्वते) बढ़ता है, तू (इमं) इस स्तुति को (क्षुपस्व) स्वीकार कर । इति प्रथमो वर्गः॥

यो नो देवः परावतः सखित्वनायं मामहे ।

दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (देवः) सुखों का दाता, जगत् का प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (परावतः) दूर, परम स्थान से (दिवः वृष्टिं प्रथयन्) आकाश से वृष्टि करता हुआ जगत् को (ववक्षिथ) ज्ञान उपदेश करता है, उसको हम (सखित्वनाय) मित्र बनने की (मामहे) प्रार्थना करते हैं ।

ववक्षुरस्य केतव उत वज्रो गभस्त्योः ।

यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥

भा०—(रोदसी सूर्यः न) आकाश और भूमि दोनों लोकों को सूर्य जैसे बढ़ाता है वैसे ही (सूर्यः) जगत् का सञ्चालक, और उत्पादक प्रभु (रोदसी) समस्त संसार को (अवर्धयत्) शिल्पीवत् बनाता, राजा-वत् पोषण करता है । (अस्य) उस प्रभु के (केतवः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान, विज्ञान और शक्तियाँ (उत) और (गभस्त्योः वज्रः न) हाथों में पकड़े शस्त्र के समान (वज्रः) ज्ञानमय उपदेश, ये सब (ववक्षुः) जगत् को धारण और उसकी रक्षा करते हैं ।

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः ।

आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रवृद्ध) महान् ! हे (सत्पते) व्यक्तजगत्, सत्पदार्थों, सत्य ज्ञान के पालक ! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, बड़े २ शक्तिशाली सूर्य, मेघ, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, (आत् इत्) इससे ही (ते) तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य बल, (प्र वावृधे) बहुत बढ़ा है ।

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति ।

अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (अर्शसानम्) नाशकारी रोग और अन्धकार को (नि-ओषति) ऐसे भस्म कर देता है जैसे (अग्निः वना इव) आग वनों और काष्ठों को जलाती है। वह (सासहिः) सबको पराजित करने में समर्थ होकर (प्र वावृधे) सबसे बढ़ जाता है, सबसे महान् है।

इयं तं ऋत्विद्यावती धीतिरैति नवीयसी ।

सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (इयं) यह (ते) तेरी (ऋत्विद्या-वतीः) ऋतु ऋतु में करने योग्य यज्ञादि वाली, (नवीयसी अति स्तुत्य (धीतिः) स्तुति, (पुरु-प्रिया) बहुतां को प्रसन्न करने वाली (सप-र्यन्ती) अर्चना करती हुई, वेदवाणी (मिमीते इत्) उपदेश करती है। जैसे ही हे प्रभो ! (ते धीतिः) तेरी जगत् धारक शक्ति, (ऋत्विद्यावतीः) सूर्य से उत्पन्न ऋतुवत् भिन्न २ सामर्थ्यों से विश्व को चलाने वाली, (मिमीते) जगत् को बनाती है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् ।

स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥ ११ ॥

भा०—(देवयुः) दाता प्रभु को चाहने वाला मनुष्य (यज्ञस्य गर्भः) उपासनीय, सर्वदाता प्रभु की स्तुति करने और आश्रय करने वाला, माता के पेट में बालक के तुल्य, प्रभु की रक्षा में पालित-पोषित होकर (आनुषक्) निरन्तर (क्रतुं) ज्ञान और कर्म को (पुनीते) शुद्ध करता है। वह (इन्द्रस्य स्तोमैः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपदेशों, स्तुति-वचनों से (वावृधे) बढ़ता और (मिमीते इत्) प्रभु को जान भी लेता है।

सुनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये ।

प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥



भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सोमस्य पीतये) जीवगण को पालन और कर्मफलोपभोग कराने के लिये (मित्रस्य) अपने स्नेही जीव, भक्त को (सनिः) सुखदाता होकर (पप्रथे) जगत् को विस्तृत करता है, जीवों के भोग और मोक्ष के लिये जगत् को रचता है। (सुन्वते वाशी इव) शिल्पी का बसूला जैसे काष्ठ की वस्तुएं बनाता है वैसे ही (वाशी) सब जगत् को वश करने वाली और जगत्सर्ग करुं ऐसी 'कामना' वाली (सुन्वते = सुन्वतः) जगत्सर्ग करने वाले विधाता की शक्ति (प्राची) सबसे उत्कृष्ट होकर ही (मिमीते इत्) संसार की रचना करती है।

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः ।

घृतं न पिप्य आसन्यतस्य यत् ॥ १३ ॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर को (उक्थ-वाहसः) वेद मन्त्रों के धारक (विप्राः) विद्वान् (आयवः) पुरुष (अभि प्रमन्दुः) साक्षात् कर प्रसन्न होते हैं, (यत्) जो (ऋतस्य) सत्य स्वरूप, परम कारण परमेश्वर सत्य ज्ञान वेद के (घृतं) प्रकाशवत् दीप्ति युक्त है उसे (आसनि) मुख में (घृतम् इव) पुष्टिदायक घृत के समान (पिप्ये) पान करुं, अर्थात् मुख से सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास आदि अन्न घृतादि आहार के चर्वण आदि के तुल्य शनैः २ करे और उसे मनन द्वारा पचाये।

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।

पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥ १४ ॥

भा०—(उत) और (स्वराजे) स्वयंप्रकाश, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (स्तोमम्) उपदेश-रूप ज्ञान को (अदितिः) अविनाशी वेद ही (जीजनत्) प्रकट करता है और (यत्) जो (ऋतस्य) कारणमय प्रभु का (पुरु प्रशस्तं) बहुत विद्वानों से उपदेश योग्य ज्ञान है उसको (ऋतये) जगत् की रक्षार्थ (अदितिः) अखण्ड तपस्वी पुरुष (जीजनत्) प्रकाशित करे।

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये ।

न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(वह्नयः) ज्ञान धारक विद्वान् शुश्रूषु जन (ऊतये) ज्ञान प्राप्त करने और (प्र-शस्तये) जनों को अच्छी प्रकार शासन या उप-देश के लिये (ऋतस्य यत्) जो सत्य ज्ञानमय वेद है उसका (अनूषत) उपदेश करते हैं । हे (देव) सुखों के दाता, प्रभो ! (विव्रता) सत्कर्मों से रहित आचरण वाले (हरी) स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान के उस तत्त्व को (न) नहीं पाते । इति तृतीयो वर्गः ॥

यत्सोममिन्द्र विष्णावि यद्वा घ त्रित आप्तये ।

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत्) जो तू (विष्णवि) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य के आधार पर, (यद्वा घ आप्तये) और जो तू जलों से पूर्ण (त्रिते) तीनों लोकों के आश्रय और (यद्वा मरुत्सु) वा प्राणों के आश्रय पर, (इन्दुभिः) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों द्वारा (सोमस्) उत्पन्न होने वाले जगत् को (सम् मन्दसे) आनन्दित कर देता है, अतः तू सर्वोपास्य है ।

यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।

अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥ १७ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिमन् ! (यद् वा) जो तू (परावति) अज्ञानियों से दूर, (समुद्रे) समान रूप से एक रस, आनन्दमय (अधि मन्दसे) अति आनन्द में रमता है । (सुते) इस जगत् में (इन्दुभिः) दीप्तियुक्त और रसवत् द्रुतगति से जाने वाले पदार्थों से (अस्माकम् इव रण) हमें अवश्य सुख दे ।

यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।

उक्थे वा यस्य रायसि समिन्दुभिः ॥ १८ ॥



भा०—हे (सत्-पते) सत् पुरुष-पालक ! (यद् वा) जो तू (यस्य सुन्वतः) जिस किसी भी साधक (यजमानस्य) यज्ञ-कर्त्ता उपासक को (वृधः) बढ़ाता है, उसकी (उक्थे) स्तुति पर (रण्यसि) प्रसन्न होता है वह तू उसको (इन्दुभिः सं रण) ऐश्वर्यों से आनन्दित कर ।

देवदेवं वोऽवंस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।

अथा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥ १६ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (देवं-देवं) सर्वत्र प्रकाशमान और (इन्द्रम्-इन्द्रम्) सर्वत्र ऐश्वर्यवान् प्रभु को (अवसे) प्राप्त करने का (गृणीषणि) उपदेश करता हूँ (अध) और (तुर्वणे) दुष्टों के नाशक, (यज्ञाय) सर्वोपास्य परमेश्वर के ये ऐश्वर्य जगत् में (वि-आनशुः) विविध प्रकार से व्याप्त हैं और (तुर्वणे यज्ञाय) विघ्ननाशक, सर्वदाता प्रभु को ही समस्त भक्त विविध उपाय से प्राप्त होते हैं ।

यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमैभिः सोमपातमम् ।

होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—उस (यज्ञवाहसं) देवपूजा को स्वीकार करने वाले प्रभु को विद्वान् (यज्ञेभिः) उपासनाओं से (वावृधुः) बढ़ाते, उसकी महिमा को फैलाते और (वि-आनशुः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हैं । उस (सोम-पातमम्) उत्पन्न नाना सर्गों के पालक प्रभु को भक्त (सोमैः-ववृधुः) ऐश्वर्यों के वर्णनों से बढ़ाते हैं और उन द्वारा उस तक (वि-आनशुः) पहुँचते हैं । इसी प्रकार वे (होत्राभिः) नाना वाणियों से इन्द्रं वावृधुः) ऐश्वर्यवान् प्रभु की महिमा बढ़ाते और उन (होत्राभिः) गुह्य-शिष्यों द्वारा देने-लेने योग्य वेद-वाणियों से उसको (व्यानशुः) विविध प्रकार से प्राप्त करते । इति चतुर्थो वर्गः ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वोरुत प्रशस्तयः ।

विश्व्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥ २१ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (महीः) बड़ी २ (प्र-णीतयः) व्यवस्थाएं और (पूर्वीः) पूर्व भी विद्यमान, (प्रशस्तयः) स्तुतियां, ज्ञानानुशासक वेद-वाणियां (विश्व्वा वसूनि दाशुषे) ऐश्वर्यों के दाता उसी प्रभु के वर्णन के लिये (वि आनशुः) विशेष प्रकार से उसी तक पहुँचती हैं ।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।

इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥ २२ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् (वृत्राय) बढते या अन्तःकरण को आवरण करने वाले अज्ञान के (हन्तवे) नाश के लिये (इन्द्रं) सूर्यवत् अन्धकार विदारक, प्रभु-रूप सूर्य को (पुरः दधिरे) सदा समक्ष रखते हैं, उसका ध्यान करते हैं और (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं) उसी तेजस्वी प्रभु की (वाणीः) वाणियों द्वारा (सम् अनूषत अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं ।

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् ।

अकैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥ २३ ॥

भा०—(महिना महान्तं) अपने महान् सामर्थ्य से बड़े (हवन-श्रुतम्) आह्वानों, उपासक की पुकारों को श्रवण करने वाले, वा 'हवन' दानों से सर्वत्र प्रसिद्ध उस प्रभु की हम (स्तोमेभिः) स्तुतियों और (अकैः) अर्चना करने योग्य वेदमन्त्रों और यज्ञों से (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (अभि सं प्र नोनुमः) साक्षात् खूब स्तुति करें ।

न यं विवृक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।

अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (रोदसी) भूमि और आकाश (न विवृक्तः) विवेचन नहीं कर सकते और (यं) जिस (वज्रिणम्) बलशाली, प्रभु



को (अन्तरिक्षाणि न विविक्तः) नाना अन्तरिक्ष भी विवेचन नहीं कर सकते अर्थात् आकाश, भूमि और अन्तरिक्ष के नाना सर्ग, सूर्य, सप्त-द्रादि भी जिसके शक्तिशालीरूप का विवेचन नहीं करा सकते, उसी (अस्य ओजसः) बलस्वरूप प्रभु के (अमात् इत्) बल से ही यह समस्त जगत् (तित्विधे) प्रकाशित होता है ।

यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः ।

आदिक्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २५ ॥ ॥ ५ ॥

भा०—(पृतनाज्ये) सेनाओं से विजय योग्य संग्राम में जैसे (देवाः) विजिगीषु लोग (इन्द्रं पुरो दधिरे) राजा या सेनापति को आगे रखते हैं (हर्यता हरी ववक्षतुः) वेगवान् सुन्दर दो घोड़े उसको आगे ले जाते हैं, वैसे ही (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! प्रभो ! (यत् त्वा) जिस तुझको (देवाः) विद्वान् एवं नाना कामनावान् मनुष्य (पृतनाज्ये) मनुष्यों से प्राप्य ऐश्वर्य के लिये (पुरः दधिरे) अपने समक्ष साक्षी एवं उपास्यवत् स्थापित करते हैं (आत् इत्) अनन्तर उसी (ते) तुझे (हर्यता हरी) तेरी कामना वाले ज्ञानी-अज्ञानी, स्त्री-पुरुष, वा कर्मी मनुष्य, (ववक्षतुः) हृदय में धारण करते हैं । इति पञ्चमो वर्गः ॥

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः ।

आदिक्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २६ ॥

भा०—जैसे सूर्य वा विद्युत् (नदीवृतं-वृत्रं) गरजती मेघ मालाओं में विद्यमान जल को (शवसा अवधीत्) बलपूर्वक आघात करता और उस विद्युत् को हरणशील कान्तिगुक्त धन ऋण दोनों प्रकार की धाराएं धारण करती हैं वैसे ही (यदा) जब (नदीवृतं) नदी-जलवत् गतिशील आत्मा की धारा में विद्यमान (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को, हे (वज्रिन्) ज्ञानवज्र के स्वामिन् ! तू (शवसा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (अवधीः) नष्ट करता है (आत् इत्) अनन्तर ही (हर्यता) तुझे चाहने

वाले (हरी) स्त्री-पुरुष वा मन और आत्मा (ते) तेरे विषयक ज्ञान को (वचक्षतुः) धारण करते हैं ।

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे ।

आदिस्ते हर्यता हरी वचक्षतुः ॥ २७ ॥

भा०—हे प्रभो ! (यदा) जब (ते) तेरे (ओजसा) दिये सामर्थ्य से (विष्णुः) देह में प्रविष्ट आत्मा (त्रीणि) तीनों (पदा) प्राप्त्य लोकों को (विचक्रमे) पार कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर (हर्यता हरी) हरणशील आत्मा, मन दोनों (ते) तुझ तक (वचक्षतुः) पहुँचाते हैं ।

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे ।

आदिस्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २८ ॥

भा०—(यदा) जब (हर्यता हरी) कान्तियुक्त सूर्य और भूमि (ते) तेरे बल से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (वावृधाते) बढ़ते हैं (आत् इत्) अनन्तर ही (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियम में बंधते हैं ।

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।

आदिस्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् ! (यदा) जब (ते) तेरे अधीन (मारुतीः) 'मरुत्' अर्थात् प्राणों से प्राणित (विशः) प्रजापुं, (तुभ्यम्) तेरे ही (नियेमिरे) नियम में दबे हैं, (आत् इत्) अनन्तर और (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक भी (ते येमिरे) नियम में व्यवस्थित हैं ।

यदा सूर्यमसुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।

आदिस्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यदा) जब तू (असुं सूर्यम्) उस सूर्य को और (दिवि) सूर्य में (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध-तेज और अन्तरिक्ष में विद्युत् को (अधारयः) स्थापित करता है, (आत् इत्) फलतः (ते) तेरे ही अधीन, (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियन्त्रित हैं ।



इमां तं इन्द्र सुष्टुतिं विप्रं इयर्ति धीतिभिः ।

जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥

भा०—(अध्वरे पिप्रतीं जामिं पदा इव) यज्ञ में प्रसन्न होती हुई बन्धुभूत पत्नी को घर वा विद्वान् पुरोहित जैसे ससपदी के पैर चलने को (प्र इयर्ति) प्रेरणा करता है, वैसे ही हे (इन्द्र) प्रभो ! (विप्रः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरी (इमां सु-स्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति योग्य नीति को (धीतिभिः) वाणियों और कर्मों से (प्र-इयर्ति) अच्छी प्रकार वर्णन करता है ।

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् ।

नामां यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥

भा०—(यद) जब (अस्य) इस परमेश्वर के (प्रिये) प्रिय, (धामनि) सर्वाश्रय तेज या ब्रह्मपद में (समीचीनासः) सुसंगत विद्वान् लोग (अस्वरन्) स्तुति करते हैं, तब (यज्ञस्य) परमेश्वर के (अध्वरे) हिंसारहित, अखण्ड, (नामा) सबको बांधने वाले, (दोहना) सुखों के दाता (धामनि) तेजोमय रूप में ही वे आनन्द लाभ करते हैं ।

सुवीर्यं स्वश्र्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः ।

होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! जैसे (अध्वरे पूर्वचित्तये होता इव) यज्ञ में पूर्ण ज्ञानवान् पुरुष के उपकारार्थ दानशील यजमान, उत्तम गौ आदि धन देता है वैसे ही प्रभो ! तू (नः) हमें (पूर्व-चित्तये) पूर्व विद्यमान पदार्थों के ज्ञान के लिये, (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त, (सु-अश्र्यं) उत्तम आशुगामी मन से युक्त, (सुगव्यम्) उत्तम इन्द्रियगण (दद्धि) प्रदान करता है । इति षष्ठो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[ १३ ]

नारदः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ११, १४, १९, २१,

२२, २६, २७, ३१, त्रिचूडुष्णिक् । २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३,  
१५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक् । ३०, आर्षी  
विराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् ।

विदे वृधस्य दक्षसो महाहि षः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी प्रभु (सुतेषु सोमेषु) क्षिप्यों में गुरु के  
समान निष्काम उपासकों में (क्रतुम्) कर्म, ज्ञान और (उक्थ्यम्)  
वचन को भी (पुनीते) रसवत् स्वच्छ करता है । वैसे ही वह उपासक  
(वृधस्य) वर्धक और (दक्षसः) बल की (विदे) प्राप्ति के लिये यत्न  
करता है, क्योंकि (सः) वह प्रभु (महान् हि) बहुत बड़ा पूज्य है ।

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।

सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (प्रथमे) सर्वोत्तम (व्योमनि) विशेष रक्षा और  
ज्ञानमय (देवानां) विद्वानों को (सदने) उनके स्थान में (वृधः) बढ़ाने  
वाला, (सुपारः) दुःखों से तारने वाला, (सुश्रवः-तमः) उत्तम ऐश्वर्य,  
ख्याति आदि से सम्पन्न और (अप्सु-जित्) अन्तरिक्ष में सूर्यवत् वर्त्त-  
मान और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं, जीवों पर भी वश करता है ।

तमहे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।

भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (तम् इन्द्रं) अपार ऐश्वर्यवान् उस प्रभु को (वाज-सा-  
तये) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने और सबमें निष्पक्ष होकर  
विभक्त करने और (भराय) भरण पोषण के लिये (शुष्मिणम्) उस  
बलवान् प्रभु को (अह्) बुलाता हूँ । हे प्रभो ! तू (नः सुम्ने) हमारे  
सुख और (वृधे) वृद्धि के लिये (अन्तमः सखा भव) अति समीपतम,  
मित्र हो ।



इयं तं इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों के देने और सेवन करने हारे ! (सुन्वतः) जगत् पर आधिपत्य करने वाले (ते) तेरा ही (रातिः) दान, (क्षरति) मेव से वृष्टिवत् वरसता है । और (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय और (अस्य बर्हिषः) इस महान् विश्व को (मन्दानः) नृप करता हुआ (वि-राजसि) विशेष रूप से चमकता है ।

नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वत ईमहे ।

रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम लोग (सुन्वन्तः) यज्ञादि करते हुए, (यत्) जिस (स्वर्विदम्) सुख प्रापक, (चित्रम्) आश्चर्यजनक (रयिं) ऐश्वर्य को (त्वा ईमहे) तुझसे मांगते हैं (नः) हमें (नूनं) अवश्य (तत् दद्धि) उस को प्रदान कर । वह धन हमें (आ भर) ला, दे । इति सप्तमो वर्गः ॥

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः ।

वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (विचर्षणिः स्तोता) विशेष २ गुणों का प्रबल उपासक पुरुष (गिरः) वेदवाणियों को (अति-प्रशर्धयत्) बहुत अधिक रूप से कहता है, वे (यत् जुषन्त) जब प्रेम से सेवन करते हैं (वयाः इव) शाखाओं के समान (अनु रोहते) तेरे गुणों के अनुरूप ही बढ़ते हैं ।

प्रत्नवज्जनया गिरः शृणूधी जरितुर्हवम् ।

मदेमदे ववाक्षिथा सुकृत्वने ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (जरितः) स्तुति कर्ता की (गिरः) वाणियों को (प्रत्नवत्) वृद्ध गुरु के समान (जनय) प्रकट कर और (हवम्) उसके आह्वान को (शृणुधि) श्रवण कर । (मदे-मदे) प्रत्येक हर्ष के अव-

सर पर (सुकृत्वने) शुभ कर्म करने वाले जन के हितार्थ (ववक्षित्य) तू उत्तम उपदेश देता है ।

क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।

अया धियाय उच्यते पतिर्दिवः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (अया धिया) इस धारणावती बुद्धि या वाणी से (दिवः पतिः उच्यते) ज्ञान-प्रकाश और जगत्-व्यवहार का पालक कहा जाता है (अस्य) उस की (सूनृता) उत्तम सत्य वाणियां, रस-धारण, (प्रवता) निम्न मार्ग से (यतीः) बहते (आपः न) जलों के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से ही (क्रीडन्ति) खेलती हुई सी विचरती हैं ।

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इदृशी ।

नमोवृधैर्यस्युभिः सुते रण ॥ ९ ॥

भा०—(उतो) और (यः) जो (नमो-वृधैः) आदर वचनों से बढ़ने वाले विनीत, वृद्ध और (अवस्युभिः) रक्षा, ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों द्वारा (एकः) अद्वितीय (इत्) ही (कृष्टीनाम्) आकर्षण कर्ता सूर्यादि लोकों, मनुष्यों का (पतिः) स्वामी और (वशी) सबको वश करने हारा (उच्यते) कहा जाता है, हे मनुष्य ! तू (सुते रण) इस उत्पन्न जगत् में उसी की स्तुति कर ।

स्तुहि श्रुत विप्रश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।

गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्य ! (यस्य) जिस परमेश्वर के (हरी) सेनापति के बलवान् दो अश्वोंवत् (हरी) मनोहर और संहारक दोनों रूप (प्रसक्षिणा) सज्जन, दुर्जन, दोनों को जीत लेते हैं तू उसी (श्रुतं) वेदों द्वारा गुह्यमुखों से श्रवण किये, (विप्रश्चितं) विद्वानों और वेद-वाणी से ज्ञातव्य प्रभु की (स्तुहि) स्तुति कर और (नमस्विनः) विनयादि से



पूर्ण (दाशुषः) दानी पुरुष के (गृहं गन्तारा) गृह में प्राप्त होने वाले पुरुषों की (स्तुति) स्तुति कर । इत्यष्टमो वर्गः ॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।

आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥ ११ ॥

भा०—जैसे (तू तुजानः) शत्रुनाशक सेनापति (प्रुषित-प्सुभिः) परिपक्व रूप वाले, सुदृढ़-शरीर (आशुभिः अश्वेभिः यज्ञम् आयाति) अश्वारोहियों से संगति करता है, वैसे ही हे (महेमते) बड़ी भारी मति, ज्ञान संकल्प वाले ! तू (तूतुजानः) विश्व का पालन करता हुआ (प्रुषित-प्सुभिः) अग्नि, सूर्यादि से प्रुषित, परिपक्व वा घृतादि से सेचित अन्न का भोजन करने वाले अथवा तपस्वी देह वाले (आशुभिः) तीव्रबुद्धि, कर्म-कुशल (अश्वेभिः) विद्वान् पुरुषों और अंगों द्वारा (यज्ञम्) उपास्य प्रभु और यज्ञ आदि को प्राप्त हो । हे विद्वान् पुरुष ! (ते) तुझे इस प्रकार (शम् इत् हि) अवश्य शान्ति प्राप्त होगी ।

इन्द्रं शविष्ठ सत्पते रथिं गृणत्सु धारय ।

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (सत्-पते) सत्पदार्यों, सत्य ज्ञान, सत्पुरुषों के पालक ! तू (गृणत्सु) विद्वान् उपदेशकों, स्तुतिकर्ता भक्त जनों में, उनके निमित्त (रथिं धारय) ऐश्वर्य धारण करा । (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (श्रवः) ज्ञान और (अमृतं) मोक्ष और (वसुत्वनम्) ऐश्वर्य (धारय) धारण करा ।

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः ।

जुषाण इन्द्र ससिभिर्न आ गहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (ससिभिः) सर्पणशील, वेगवान् सूर्यादि के प्रकाशादि सुखों से (नः जुषाणः) हमें प्रेम करता हुआ (आगहि) प्राप्त हो । हे प्रभो ! हमें (उदिते) उदय हुए और (मध्यन्दिने)

दोपहर में विद्यमान (दिवः सूर्ये) ज्ञान प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी, प्रखर पाप के नाशक स्वरूप (त्वा हवे) तुझ से प्रार्थना करता हूँ और (त्वा हवे) तुझे ही स्वीकार करता हूँ ।

आ तू गंहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।

तन्तुं तनुष्व पृथ्व्यं यथा विदे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (आ गंहि तु) आ, प्राप्त हो, (प्र द्रव तु) खूब दयापूर्ण होकर मेघवत् आनन्द-रस वरसा, (गोमतः सुतस्य) इन्द्रियों से युक्त उत्पन्न जीव को (मत्स्व) आनन्दित कर । (पृथ्व्यं) पृथ्वी से विद्यमान (तन्तुं) सूत्रवत् अविच्छिन्न सृष्टि को (तनुष्व) विस्तृत कर (यथा) जिससे मैं जीव भी (विदे) ज्ञान प्राप्त करूँ ।

यच्छुक्रासिं परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।

यद्वा ससुद्रे अन्धसोऽत्रितदसि ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) अन्धकारादि नाशक ! (यत् परावति) जो तू दूर देश में (यत् अर्वावति) जो तू पास में और (यद् वा ससुद्रे) जो तू आकाश में है, तू (अन्धसः) प्राणधारी का (अविता इत् असि) रक्षक ही है । इति नवमो वर्गः ॥

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतासु इन्दवः ।

इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥

भा०—(नः) हमारी वाणिधां (इन्द्रं वर्धन्तु) ऐश्वर्यदाता प्रभु को बढ़ावें, उसका गुण-गान करें । ऐसे ही (सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ वा जीव (इन्द्रं वर्धन्तु) इन्द्र को बढ़ावें, उसकी महिमा बतलावें । (हविष्मतीः विशः) अन्नादि से समृद्ध प्रजाएं (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् प्रभु में (अराणिषुः) रमण करें ।

तमिद्विप्रा अयस्यवः प्रवत्वंतीभिरूतिभिः ।

इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥ १७ ॥



भा०—(अवस्थवः) रक्षण और ज्ञान की कामना वाले (क्षोणीः) जन (प्रवत्स्वतीभिः कतिभिः) उत्तम साधनों से युक्त बलवती सेनाओं से (इन्द्रं) सेनापति के समान प्रबल रक्षाओं से सद्बुद्ध (तम् इत् इन्द्रं) उस ही परमेश्वर को (क्षोणीः) मनुष्य और भूमियां (वयाः इवः) शाखाओं के समान (अवर्धन्) उसकी ही महिमा को बढ़ाती हैं।

त्रिकन्दकेषु चेतनं देवासो यज्जगत्ततः ।

तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥ १८ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् गण और सूर्य आदि लोक भी (त्रि-कन्द-केषु) तीनों लोकों में (तम् इत् चेतनं) उस ही, चेतन (यज्ञं) सर्वोपास्य प्रभु को (अन्नत) फैला रहे हैं, उसी के गुणों का विस्तार कर रहे हैं। उस (सदावृध) सदा वृद्धिशील, महान् प्रभु को (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां भी बढ़ावें, उसी की जयकार करें।

स्तोता यस्ते अनुव्रत उक्थान्तुथा दधे ।

शुचिः पावक उच्यते सो अजुतः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जैसे (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता (ते अनु-व्रतः) तेरे अनुकूल व्रत-आचरण करता हुआ, (ऋतुथा) भिन्न २ कालों में (उक्थानि) वेन-वचनों को (दधे) धारण करता है। हे भगवन् ! (सः) वह तू (शुचिः) शुद्ध, (पावकः) पावन, (अजुतः) आश्चर्यकारक और अजन्मा (उच्यते) कहा जाता है।

तदिन्द्रस्य चेतति यद्दं प्रत्नेषु धामसु ।

मनो यत्रा वि तद्दुर्ध्विचेतसः ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(इन्द्रस्य) दुखों के दूर करने वाले प्रभु का (तत् इत्) वही (यद्दं) महान्, सामर्थ्य (प्रत्नेषु धामसु) पुरातन सूर्यादि लोकों में (चेतति) जाना जाता है (यत्र) जिसमें (वि-चेतसः) विज्ञान (मनः विदधुः) मन लगाते और (तत् दधुः) उसको जानते हैं। इति दशमो वर्गः ॥

यदि मे सुखमावरं इमस्य पाह्यन्धसः ।

येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वन् ! प्रभो ! (यदि) यदि तू (मे) सुखम् आ-वरः) मेरे मित्र भाव को स्वीकार करता है तो (इमस्य अन्धसः) इस प्राणधारी सृष्टि का (पाहि) पालन कर । (येन) जिससे (विश्वाः द्विषः) समस्त द्वेष भावों और शत्रुओं को हम (अति अतारिम) पार करें ।

कदा तं इन्द्रं गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।

कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) 'गिरा' अर्थात् वेद वाणी से स्तवन योग्य, हे वेदवाणी के दातः ! हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (ते स्तोता) तेरी स्तुति करने वाला (शन्तमः कदा भवाति) शान्तिशुक्त कब होता है ? और (नः) हमें (गव्ये) गौ आदि पशु, इन्द्रियों और वाणी से समृद्ध (अश्व्ये वसौ) अश्वों, विद्वानों और मन आदि साधनों से युक्त भूमि, देह, ज्ञान एवं निवास योग्य गृह, राष्ट्र तथा प्रभु-शरण में (कदा दधः) कब रखेगा ?

उत ते सुष्टुतं हरी वृषणा वहतो रथम् ।

अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यस्) जिस सुख की हम (ईमहे) याचना करते हैं । (अजुर्यस्य) अविनाशी, जरादि रहित (ते) तेरे (रथम्) रमण-योग्य, सुखप्रद (मदिन्तमम्) अति हर्षदायक, ऐश्वर्यमय उस तेरे स्वरूप या ज्ञानोपदेश को रथ के घोड़ों के समान (सु-स्तुता) उत्तम प्रशंसित और शिक्षित (वृषणा) बलवान् (हरी) स्त्री-पुरुष ही (वहतः) धारण करते हैं ।

तमीमहे पुरुष्टुतं यंहं प्रत्नामिरुतिभिः ।

नि बहिषि प्रिये सददधं द्विता ॥ २४ ॥



भा०—हम लोग (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुति-योग्य (यद्गं) महान् (तम्) उस प्रभु को (प्रज्ञाभिः) सनातन से विद्यमान (ऊतिभिः) ज्ञान-वाणियों से (ईमहे) प्रार्थना करते हैं, (अध) और वह (प्रिय) अतिप्रिय (बर्हिषि) वृद्धिशील संसार में, राष्ट्र में राजा के समान (द्विता) दोनों ही प्रकार से (नि सद्य) विराजता है, प्रभु के दो रूप, सज्जनों का पालक और दुष्टों का दण्डदाता ।

वर्धस्वा सु पुरुषुत ऋषिष्ठुताभिरूतिभिः ।

धुक्षस्व पिप्युषीमिषमदा च नः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति-योग्य प्रभो ! बहुतों द्वारा राजपद के लिये प्रस्तुत राजन् ! तू (ऋषि-स्तुताभिः) विद्वान् तत्त्व-ज्ञानी पुरुषों से स्तुति की गई वा उपदिष्ट (ऊतिभिः) ज्ञानवाणियों वा रक्षा के उपायों से (वर्धस्वः) बढ़ ! तू (पिप्युषीम्) तृप्तिकारक (इषम्) अन्नसम्पदा को (धुक्षस्व) पृथ्वी से प्राप्त कर, दे और (निः अव च) हमारी रक्षा कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः ।

ऋतादियमि ते धियं मनोयुजम् ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! स्वामिन् ! हे (अद्रिवः) अविदीर्ण, अखण्ड शक्ति के मालिक ! तू (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार स्तुति करने वाले का (अविता इत् असि) रक्षक ही है । (ऋतात्) सत्य ज्ञानमय वेद से मैं (ते) तेरे उपदिष्ट (मनोयुजं) मन के साथ योग करने वाले, वा ज्ञान की सहयोगिनी, (धियं) वाणी और कर्म को (इयमि) प्राप्त करूँ ।

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपातय ।

हरी इन्द्र प्रतद्वसू अमि स्वर ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (सोमपातये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (सधमाद्या) एक साथ आनन्द लेने वाले (त्या)

उन दोनों (प्रतद्व-वस्) उत्तम विस्तृत ऐश्वर्यों के स्वामी (हरी) की-  
पुरुषों को (इह) इस जगत् में (युजानः) रथ में अश्वों के समान सन्मार्ग  
में नियुक्त करता हुआ (अभि स्वर) उपदेश कर ।

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।

उतो मरुत्वन्तीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! (ये) जो (रुद्रासः) दुःख दूर करनेवाले,  
दुःखी को देख कर आंसू बहाने वाले, एवं दुष्टों को खलाने वाले पुरुष  
(तव अभि) तेरे गुणों का साक्षात् कर (स्वरन्तु) स्तुति करते, उपदेश  
करते हैं वे (श्रियं सक्षत) लक्ष्मी आदि प्राप्त करते हैं । (उतो) और  
(मरुत्वन्तोः विशः) वे प्राणों, विद्वानों, वीरों और वैश्य जनों से युक्त  
प्रजाओं को भी (प्रयः अभि) अन्न आदि सुखकारक पदार्थ प्राप्त करावें ।

इमा अस्थ प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यदिवि ।

नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९ ॥

भा०—(इमाः) ये (अस्थ) इस राजा की (प्र-तूर्तयः) उत्तम रीति  
से शत्रु की नाशक सेनाएं और उत्तम, कार्य-कुशल प्रजाएं (यत्) जो  
(दिवि) भूमि में (पदं) स्थान (जुषन्त) प्राप्त करती हैं वे (यथा दिवे)  
यथावत् श्रम-अनुसार द्रव्य लाभ के लिये (नाभा) नाभिवत् राष्ट्र के  
उत्तम प्रबन्धक पुरुष के अधीन, (यज्ञस्य सं दधुः) परस्पर दान-प्रति-  
दान, संगति, मान-सत्कार आदि व्यवहार करती हैं ।

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे ।

मिमीते यज्ञमानुषाग्विचक्ष्य ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—(अयम्) यह विद्वान् (प्राचि) उत्तम रीतिसे पूज्य (अध्वरे)  
हिंसादि रहित, (प्रयति) यत्न से प्राप्तव्य यज्ञमय प्रभु के आश्रय ही  
(दीर्घाय) बड़े विस्तृत (चक्षसे) तत्त्वज्ञान के लाभ के लिये (वि-चक्ष्य)  
विशेष रूप से देख कर (आनुषक्) निरन्तर (यज्ञम् मिमीते) देव-



पूजा, दान करता है । इति द्वादशो वर्गः ॥

वृषायमिन्द्र ते रथं उतो ते वृषणा हरी ।

वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! प्रभो ! (अयम्) यह (ते) तेरा (रथः) रमणीय रूप (वृषा) सुदृढ़ है । (ते हरी) तेरे अश्ववत् भक्त स्त्री पुरुष वर्ग वा सर्जन और संहार बल (वृषणा) बलवान् हैं । हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञा और कर्म वाले ! (त्वं वृषा) तू बलवान् है । तेरा (हवः) आह्वान, दान, नाम-स्मरणादि (वृषा) सुखों का दाता है ।

वृषा प्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।

वृषा यज्ञो यमिन्वासि वृषा हवः ॥ ३२ ॥

भा०—(प्रावा वृषा) मेघवत् उपदेष्टा, विद्वान् और प्रस्तरवत् शत्रुनाशक क्षात्रबल बलवान् हो । हे राजन् ! (मदः वृषा) तेरा यह हर्ष, प्रसन्नता भी (वृषा) सुखप्रद हो । (अयं सुतः) यह उत्पन्न (सोमः) राष्ट्र वा अभिषिक्त शासक पुरुष (वृषा) बलवान् हो । (यज्ञः) परस्पर का मेल, दान-प्रतिदान, व्यवहार (यम् इन्वासि) जिसको तू करता है, वह (वृषा) दृढ़, सुखप्रद हो । (हवः वृषा) शत्रु के साथ प्रतिस्पर्द्धा और ललकार भी (वृषा) सुखप्रद और दृढ़ हो ।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिन्चित्रामिच्छतिभिः ।

वावन्थ हि प्रतिष्ठुति वृषा हवः ॥ ३३ ॥ १३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् (चित्राभिः) आश्चर्यजनक नाना (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं वा रक्षाओं से युक्त (वृषणं) बलवान् पुत्र को (वृषा) मैं प्रजाजन (हुवे) स्वीकार करता हूँ । तू (वृषा) सब सुखों का दाता और (हवः) शत्रुओं के साथ प्रतिस्पर्द्धाशील होकर ही (प्रतिष्ठुति वावन्थ हि) सर्वत्र स्तुति को प्राप्त कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ १४ ]

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषीः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११  
विराड् गायत्री । २, ४, ५, ७, १५ निचृद्गायत्री । ३, ६, ८—१०,  
१२—१४ गायत्री ॥ पंचदशं सूक्तम् ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (त्वम् एकः इत्) तू  
एक अद्वितीय ही (वस्वः ईशीय) ऐश्वर्य और बसे जीवगण का स्वामी  
है, (यद् अहं) वैसा ही जो मैं होऊं, फिर जैसे तेरा (स्तोता गो-सखा)  
स्तुतिकर्त्ता उत्तम वाणियों और इन्द्रियों का मित्र होता है वैसे ही इस  
लोक में तुझ जैसे ऐश्वर्यसम्पन्न (मे) मेरा (स्तोता) उपदेष्टा विद्वान् भी  
(गो-सखा) भूमि, वाणी गोसम्पदा और धनुष और डोरी का मित्र,  
अर्थात् भूमि, वाणि, पशु, शस्त्रादिसम्पन्न (स्यात्) हो ।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भा०—हे (शचीपते) वाणियों के स्वामिन् ! (यद् अहं गोपतिः  
स्याम्) जो मैं 'गो, भूमि, वाणियों का स्वामी, विद्वान्, धनुर्धर होऊं  
तो (अस्मै मनीषिणे शिक्षेयं) मन पर वश करने वाले इस मनस्वी दिग्य  
को ज्ञान की शिक्षा दूं अथवा ज्ञानदाता इस विद्वान् को (दित्सेयं)  
धनादि देने की इच्छा करूं और (शिक्षेयं) दूं भी ।

ध्रेनुष्टं इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।

गामश्वं प्रियुषं दुहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) प्रभो ! गुरो ! विद्वन् ! (सुन्वते) शुभकर्म  
करने, ज्ञान-स्नान करने वाले (यजमानाय) देवपूजा, सत्संग, शील के-



लिये (सृजता) उत्तम सत्य, न्याययुक्त (ते धेनुः) तेरी वाणी (पिप्पुषी) उसे बढ़ाती हुई (गाम् अश्वं हुहे) गौ अश्वदि सम्पदा देती है ।

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः ।

यादित्संसि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (यत्) जब (मघं दित्संसि) उत्तम ऐश्वर्य देना चाहता है तो (ते राधसः) तेरे दिये धन का (वर्त्ता) वरण करने वाला (न देवः न मर्त्यः) न कोई देव, न विद्वान् और न साधारण मनुष्य है ।

यज्ञ इन्द्रमवर्धय्ययज्ञमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि । ५।१४।

भा०—(दिवि) आकाश में (ओपशं) मेघ को (चक्राणः) उत्पन्न करता हुआ (यत् यज्ञः) जो यज्ञ (भूमिं वि-अवर्तयत्) भूमि को विविध सस्यादि से सम्पन्न करता है, वह ही (इन्द्रम् अवर्धयत्) सूर्य-यत् प्रभु की महिमा को बढ़ाता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।

ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—(विश्वा धनानि) समस्त धनों को (जिग्युषः) जीतने और (वावृधानस्य) निरन्तर बढ़ने वाले (ते) तेरी (ऊति) रक्षा को हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं वृणीमहे) हम वरण करते हैं ।

व्यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभि नद्वलम् ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा (यत्) जब (बलम्) घेरने वाले शत्रु को (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है तब वह (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य-प्राप्ति वा राष्ट्र-लाभ-रूप हर्ष में (रोचना) रचियुक्त होकर (अन्त-रिक्षम् वि-अतिरित्) अन्तःकरण को आकाशवत् बढ़ा कर लेता है; उदार हो जाता है ।

उद्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः ।

अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ॥ ८ ॥

भा०—वह परमेश्वर (अंगिरोभ्यः) विद्वानों वा प्राणधारी जीवों के उपकार के लिये (गुहा सतीः) अन्तःकरण में प्राप्त (गाः) वेद-वाणियों को शिष्यों के प्रति गुरु के मुख्य (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (उत आजत्) उदित करता है, और (अर्वाञ्चं) आगे आये (वलम्) आत्मा को घेरने वाले अज्ञान को (नुनुदे) भगा देता है ।

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळाहानि दंहितानि च ।

स्थिराणि न पराणुदे ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रेण) परमेश्वर ने (दिवः) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश के (रोचना) रक्षिकारक पदार्थ (दृढानि) दृढ़ किये और (दंहितानि) बढ़ाये, (स्थिराणि) स्थिर रहने वाले बनाये, (न पराणुदे) जो चिरकाल तक नष्ट न हों ।

अपामूर्ध्निर्मदञ्जिवं स्तोमं इन्द्राजिरायते ।

वि ते मदा अराजिषुः ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (स्तोमः) स्तुतिप्रवाह (मदन्) उछलते (अपाम् ऊर्ध्निः इव) समुद्रों के तरंग वा प्राणों के तरंगवत् (अजिरायते) वेग से उठता है, (ते मदाः) तेरे आनन्द प्रवाह (वि अराजिषु) विविध प्रकार से विराजते हैं । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतणामुत भद्रकृत् ११

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (स्तोतणाम्) स्तुतिकर्ता जनों के (हि) अवश्य (स्तोम-वर्धनः) स्तुति समूह को बढ़ाने और (उक्थ-वर्धनः) उत्तम वचन को बढ़ाने (उत) और (भद्रकृत्) कल्याण करने वाला है ।

इन्द्रमित्केशिना हरीं सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुरार्धसम् १२



भा०—जैसे (केशिना हरी इन्द्रम् वक्षतः) केशों वाले अश्व ऐश्वर्य-वान् पुरुष को होते हैं वैसे ही (केशिना हरी) क्लेशों वाले स्त्री पुरुष (सोम-पेयाय) सुदैश्वर्य-प्राप्ति और उसके उपभोग के लिये (इन्द्रम् इत् वक्षतः) परमेश्वर को हृदय में धारण करते, स्तुति करते हैं। वे दोनों, (सु-राधसम्) उत्तम आराधना योग्य (यज्ञम् उप) प्रभु की उपासना करते हैं।

अपां फेनेन नमुच्यः शिर इन्द्रोद्वर्तयः ।

विश्वया यदजयः स्पृधः ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (यत्) जब (विश्वः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धाओं, द्वेषों, कामनाओं को (अजयः) जीत लेता है, तब तू (अपां) प्राणों के (फेनेन) बल से (नमुचेः) न छूटने वाले देह के (शिरः) शिरे भाग की ओर (उत् अवर्तयः) ऊर्ध्व गति करता है।

मायाभिस्तिसृप्सत इन्द्र द्यामारुक्षतः । अत्रदस्यूरधूनुथाः १४

भा०—हे (इन्द्र) सत्यदर्शिन ! तू (मायाभिः) नाना बुद्धियों से (उत्-सिसृप्सतः) ऊपर जाना चाहते हुए और (द्याम्) तेजोयुक्त प्रभु-पद वा शिरोभाग के सूर्धा स्थान की ओर (आरुक्षतः) आरोहण करने वाले सज्जनों की रक्षा कर और (मायाभिः) छल कपटादि से ऊंचे जाने वाले (द्याम्) भूमि राज्य पर (उत्सिसृप्सतः आरुक्षतः) आरुढ होने वाले (दस्यून् अव अधूनुथाः) दस्युओं को नीचे गिरा।

असुन्यामिन्द्रं ससदं विषूचीं व्यनाशयः ।

सोमपा उत्तरो भवन् ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! दुष्टों के नाशक ! तू (सोम-पाः) राष्ट्र, प्रजाजन आदि का रक्षक (उत्तरः) सबको पार ले जाने वाला (भवन्) होकर (असुन्वां) ऐश्वर्य न उत्पन्न करने और (विषूचीम्)

विपरीत, अराजक दिशा से जाने वाली (संसर्ग) राज सभा वा जन-सभा को (वि. अनाशयः) विशेषतः नष्ट कर । इति षोडशो वर्गः ॥

[ १५ ]

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनी ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५—७;  
११, १३ निचृदुष्णिक् । ४ उष्णिक् । ८, १२ विराडुष्णिक् । ९, १०  
पादनिचृदुष्णिक् ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

तस्मिन्नि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।

इन्द्रं गीर्भिस्तविपमा विवासत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (तम् उ) उसी (पुरु-हूतं) बहुतों से स्वीकृत, (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुत्य (तविपम्) बलशाली (इन्द्रं) परमेश्वर का (अभि प्र गायत) उत्तम गान करो । (गीर्भिः) वाणियों से उसकी (आ विवासत) आदर पूर्वक उपासना करो ।

यस्य द्विवर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसा ।

गिरिरज्ज्वा अपः स्वर्वषत्त्वना ॥ २ ॥

भा०—(द्वि-वर्हसः) आकाश, भूमि दोनों के धारक, दोनों के स्वामी (यस्य बृहत् सहः) जिसका बल बहुत बड़ा है वह (बृषत्त्वना) भारी सामर्थ्य से (रोदसी दाधार) आकाश, भूमि को धारण करता है, वह (अज्ज्वा गिरिन्) वेग से जाने वाले मेघों, (अपः) समुद्र वा आकाश के जलों और (स्वः) सूर्य वा प्रकाश को (दाधार) धारण करता है ।

स राजसि पुरुष्टुतं एको वज्राणि जिघ्रसे ।

इन्द्र जैत्रा श्रवस्या ह्यन्तवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तेजस्विन् ! (सः) वह तू (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित, (एकः) अद्वितीय रहकर (राजसि) राजा के समान है । वह तू ही (जैत्रा श्रवस्या) विजय करने और श्रवण



करने योग्य धनों, अर्घों और ज्ञानों को (यन्तवे) देने के लिये (वृत्राणि जिघ्रसे) मेघों को विद्युत्त्वत्, आवरणकारी अज्ञानों को नष्ट करता है ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।

उ लोककृत्तुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वीर्यधन् ! (ते) तेरे (तं) उस (वृषणं) शक्ति-सम्पन्न, सुखों के दाता, (पृत्सु सासहिं) संग्रामों में शत्रु को पराजय करने वाले (लोक-कृत्तुम्) लोकों को बनाने और (हरि-श्रियम्) सूर्यादि लोकों के आश्रय योग्य (मदं) परमानन्द की हम (गृणीमसि) स्तुति करते हैं ।

येन ज्योतीष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।

मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (येन) जिस के द्वारा (आयवे) संसार में पुनः २ आने वाले (मनवे) मननशील जीव-संसार को (ज्योतीषि) चमकने वाले वेदमय ज्ञान-प्रकाश को (विवेदिथ) प्राप्त कराता है वह तू (मन्दानः) आनन्दमय होकर (अस्य बर्हिषः) इस संसार में (वि राजसि) विविध प्रकार से चमकता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

तद्द्या चित्त उक्थिनोऽनुपुवन्ति पूर्वथा ।

वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(तत्) वे विद्वान् जन (अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्ववत् (उक्थिनः) मन्त्रों के ज्ञाता (ते) तेरे यश का (अनु स्तुवन्ति) नित्य स्तवन करते हैं । हे बलशालिन् ! (दिवे दिवे) प्रति दिन, (वृष-पत्नीः) बलवान् पुरुषों द्वारा पालने योग्य (अपः) प्रकृति के परमाणुओं को (जय) वश करता है ।

तत्र त्यदिन्द्रियं बृहत्तत्र शुष्ममुत क्रतुम् ।

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रमो ! राजन् ! (तव) तेरे (त्यत् इन्द्रियम्) उस इन्द्रिय अर्थात् महान् सामर्थ्य को और (तव) तेरे उस (बृहत् शुष्मम्) बड़े बल और (ऋतुम्) ज्ञान और कर्म को और तेरे (वरेण्यम् वज्रम्) वरणीय बल को (धिषणा) बुद्धि वा ज्ञान ही (धिशान्ति) तीक्ष्ण कर रहा है, प्रबलता से दिखाता है ।

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।

त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! (तव पौंस्यं) तेरे महान् पौरुष, बल वा पुरुष भाव को (द्यौः) सूर्य और (श्रवः) तेरे यश को (पृथिवी) अन्नवत् यह पृथिवी (वर्धति) बढ़ा रही है । (आपः) जल और (पर्वतासः च) मेघगण (त्वाम् हिन्विरे) तेरी बढ़ाई करते हैं ।

त्वां विष्णुर्वृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।

त्वां शर्धो मरुत्यन्तु मारुतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! (विष्णुः) प्रकाशमान सूर्य (वृहन्) महान् (क्षयः) सबको अपने में बसाने वाला, गृह के समान आश्रय (मित्रः) स्नेहवान् जन, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ जन (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करता है । और (मारुतं शर्धः) वायुओं का बल भी (त्वाम् अनु मदति) तेरे बल पर क्रीड़ा करता है ।

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।

सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! (त्वं) तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (वृषा) वीर्यसेचक के तुल्य सबका पिता, सुखों का दाता और (मंहिष्ठः) सबसे पूज्य होकर (जज्ञिषे) जगत् को उत्पन्न करता है । (सत्रा) साथ ही, वा सदा तू (विश्वा) समस्त लोकों को (सु-अपत्यानि),



उत्तम सन्तानों के तुल्य (दधिषे) धारता और पालता है । इत्यष्टा-  
दशो वर्गः ॥

सुत्रा त्वं पुरुषुत एको वृत्राणि तोशसे ।

नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रभो ! (त्वं) तू (सुत्रा) सत्य के बल से (पुरु-स्तुतः)  
बहुतों से स्तुति योग्य होता है । वह तू (एकः) अद्वितीय, शक्तिशाली  
होकर (वृत्राणि) शत्रु सैन्यों के समान घेर लेने वाले विघ्नों को विधुत-  
वत् (तोशसे) मारता, गिरा देता है । (इन्द्रात् अन्यः) उस परमै-  
श्वर्यवान् से दूसरे किसी भी (भूयः करणं) अधिक क्रियासाधक साधन  
को (न इन्वति) नहीं प्राप्त कर सकता है ।

अदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।

अस्माकैर्भिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत् त्वा) जिस तुझको (नाना)  
बहुत से जन (मन्मशः) मनन योग्य मन्त्रों से (ऊतये) रक्षा और ज्ञान  
प्राप्ति के लिये (हवन्ते) पुकारते हैं वह तू (अत्र) इस जगत् में (अस्मा-  
कैभिः) हमारे (नृभिः) मनुष्यों सहित (स्वः) समस्त सुख को (जय)  
सर्वोपरि प्राप्त हो ।

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाय विशन् ।

इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥ १३ ॥ १६ ॥

भा०—हे प्रभो ! (नः) हमारे (महे क्षयाय) बड़े ऐश्वर्य के लिये  
(विश्वा रूपाणि) सब कान्तियुक्त पदार्थ, (अरं आविशन्) खूब प्राप्त हों ।  
हे विद्वान् ! (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति के तुल्य तेजस्वी प्रभु को  
(जैत्राय) सब अन्तःशत्रुओं और प्राकृतिक ऋद्धियों पर विजय करने  
के लिये उस (शचीपतिम्) शक्तियों के पालक प्रभु को (हर्षय) प्रसन्न  
कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[ १६ ]

हरिस्मिठिः काण्व ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ९—१२ गायत्री ।

२—७ निचूद् गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र स्रज्जाजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।

नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—(चर्षणीनाम् स्रज्जाजं) ज्ञानदर्शी मनुष्यों के बीच प्रदीप्त, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (नव्यं) स्तुति योग्य (नरं) नायक, परम पुरुष (नृ-  
षाहं) मनुष्यों को वश करने वाले (मंहिष्ठम्) अतिदानशील पुरुष,  
प्रभु का (गीर्भिः स्तोत) वेद वाणियों से स्तुति करो ।

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।

अपामघो न संमुद्रे ॥ २ ॥

भा०—(समुद्रे अपाम् अवः) जैसे समुद्र में जलों के नाना प्रवाह  
वा तरंग आते और इसी में छीन हो जाते हैं वैसे ही (यस्मिन्) जिस  
प्रभु में (विश्वानि उक्थानि) समस्त स्तुति-वचन और (विश्वानि  
श्रवस्या च) सब प्रकार के श्रवण-योग्य कीर्ति वचन (रण्यन्ति) रमते  
हैं, (तम् सुस्तुत्या विवासे) उस प्रभु का मैं स्तुति द्वारा भजन, वा  
प्रकाश करूँ ।

तं सुष्ठुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरं कृत्तुम् ।

महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (ज्येष्ठः-राजं) बड़ों २ के राजा, वा सूर्यादि में  
प्रकाशमान, (भरं कृत्तुम्) भरण पोषण योग्य संसार में जगत् को बनाने  
वाले (महः वाजिनम्) बड़े बल, ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी को मैं (सनि-  
भ्यः) नाना भागों या दागों के लिये (सुस्तुत्या भाविवासे) उत्तम स्तुति  
से उसकी सेवा, अर्चा और पूजा तथा उसके गुणों का प्रकाश करूँ ।



यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तर्हन्नाः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु के (मदाः) आनन्ददायक व्यवहार और आनन्द युक्त पुरुष (अनूनाः) किसी प्रकार भी न कम, परिपूर्ण, (गभीराः) गंभीर, (उरवः) बड़े २ और (तर्हन्नाः) वृक्षों के इर्द गिर्द लगी बाड़ के समान प्राण रक्षा करने वाले, वा संसार से पार उतारने वाले हैं, जो (शूर-सातौ) शूरवीरों के प्राप्ति के अवसर, संग्रामादि में भी (हर्षु मन्तः) हर्षयुक्त हैं, वह परमेश्वर सबका पालक है ।

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥ ५ ॥

भा०—(हितेषु धनेषु) कल्याणजनक धनों को प्राप्त करने के निमित्त (अधिवाकाय) आज्ञा वा निर्णय वचन कहने वाले अध्यक्ष पद के लिये विद्वान् लोग (तम् इत् हवन्ते) उसी से प्रार्थना करते हैं कि वह न्याय करे । (येषाम् इन्द्रः) जिनके पक्ष में 'इन्द्र' सत्य, न्याय का द्रष्टा होता है (ते) वे (जयन्ति) विजय प्राप्त करते हैं ।

तमिच्छयौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः ।

एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(एषः इन्द्रः) यह ऐश्वर्य का स्वामी, तेजस्वी प्रभु (वरिव-स्कृत्) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है । (तम् इत्) उसको (च्यौत्नैः) बलों, ज्ञानों और (कृतेभिः) सत्कर्मों से (चर्षणयः) सब मनुष्य (आ-र्यन्ति) प्राप्त करते, उसको स्वामी बनाते हैं, प्रार्थना करते हैं । इति विंशो वर्गः ॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्र पुरु पुरुहूतः ।

महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥

भा०—इन्द्र का लक्षण और नाना भेद । (इन्द्रः ब्रह्मा) ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने से, चारों वेदों का ज्ञाता पुरुष 'इन्द्र' है । (ऋषिः

इन्द्रः) यथार्थ ज्ञान का तत्त्वदर्शी इन्द्र है। वह (पुरुहूतः) बहुतों से आदर प्राप्त करता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों के कारण (महान्) महान् है और (पुरु) बहुत प्रकार से विराजता है। परमेश्वर महान् होने से 'बह्म' है, सर्वद्रष्टा होने से 'ऋषि' है और बड़ी २ शक्तियों से 'महान्' है।

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्त्वा तुविकूर्मिः।

एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (स्तोम्यः) स्तुति वचनों से स्तुति-योग्य है। (सः हव्यः) वह प्रार्थनादि से सत्कार-योग्य है। वह (सत्यः) सत्य स्वरूप, (सत्त्वा) बलवान्, (तुवि-कूर्मिः) बहुत कर्म करने हारा है। वह (एकः चित्) अकेला, (सन्) होता हुआ (अभि-भूतिः) विजितों का पराजयकारी है।

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रश्चर्षण्यः।

इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥ ९ ॥

भा०—(तम् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को (चर्षण्यः क्षितयः) ज्ञान के द्रष्टा विद्वान् लोग (अर्केभिः) अर्चना योग्य मन्त्रों से और (तं सामभिः) उसी को साम गानों से और (तं गायत्रैः) उसी को गायत्री आदि नाना छन्दों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं, उसकी महिमा का विस्तार करते हैं।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।

ससह्रांसं युधामित्रान् ॥ १० ॥

भा०—और वे मनुष्य (वस्यः) उत्तम ऐश्वर्य को (अच्छ प्रणेतारम्) साक्षात् देने वाले और (समत्सु) मययुक्त मंजु के अवसरों में भी (ज्योतिः कर्तारम्) प्रकाश देने वाले, (युधा) युद्ध द्वारा (अमित्रान् ससह्रांसं) शत्रुवर्ग के पराजित करने वाले की विद्वन् लोग स्तुति करते हैं।



स नः पग्निः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।

इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ ११ ॥

भा०—(सः पुरुहूतः) वह बहुतों से पुकारे जाने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, परमैश्वर्यवान् प्रभु, (पग्निः) सबका पालक (विश्वाः द्विषः) सब अप्रीति कर शत्रुओं वा संकटों से (नावा) नौका से बढियों के समान (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक, सुख से (अति पारयति) पार करे ।

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्य च गातुया च ।

अच्छा च नः सुम्नं नेपि ॥ १२ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! बलवान् ! प्रभो ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों और बलों करके (दशस्य) सुख प्रदान कर और (गातुया च) उत्तम सुख की ओर मार्ग दिखा । (अच्छा च नः सुम्नं नेपि) हमें सुख की ओर ले चल । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[ १७ ]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द—१-३, ७, ८ गायत्री ।

४-६, ९-१२, निचृद् गायत्री । १३ विराड् गायत्री । १४ आसुरी बृहती । १५ आर्षी भुरिग् बृहती ॥ पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिवा इमम् ।

एदं बर्हिः सद्यो मम ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे विद्वन् ! तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो, (ते) तेरे लिये हम (इमं सोमं) इस ऐश्वर्य को (सु-सुम) उत्पन्न करते हैं । हे प्रभो ! तेरे लिये ही इस सोम, आत्मा को संमार्ग पर चलाते हैं, (इमं पिब) इसकी रक्षा कर । (इदं बर्हिः मम) यह वृद्धियुक्त अजाजन एवं आसनवत् है, (सदः) उस पर (आ सदः) आप विराजिये ।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।

उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—जैसे (केशिना हरी) केशों वाले दो अश्व रथ को ले जाते हैं वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (ब्रह्म-युजा) वेद-ज्ञान के सहयोगी (केशिना हरी) केशोंवत्, तेजों के धारण स्त्री पुरुष, (त्वा आ वहताम्) तुझे अपने में धारण करें । तू (नः ब्रह्माणि) हमारे वेद-मन्त्रों को (उप शृणु) सुन ।

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।

सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(वयं ब्रह्माणः) हम स्तुतिकर्ता एवं ब्रह्मचारी जन, (सोमिनः) ज्ञान, अन्न, सन्तान से युक्त और (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादिमान् होकर (युजा) योग द्वारा (सोमपां त्वाम्) शिष्यादि के पालक तुझको (हवामहे) प्रार्थना करते हैं । इसी प्रकार हे राजन् ! हम (ब्रह्माणः) धन अन्नादि सम्पन्न होकर तुझे ऐश्वर्य पालक स्वीकार करें ।

आ नो याहि सुतावन्तोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।

पिबान् शु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुकुट वा उत्तम मुख नासिका वाले, सोम्यमुख विद्वान् ! राजन् ! तू (सुतावतः नः) पुत्रवान् एवं ऐश्वर्यादि युक्त हमें (आ याहि) प्राप्त हो । (अस्माकं सुस्तुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियों को सुन वा हमें उत्तम उपदेश प्रदान कर । (अन्धसः सुपिब) अन्नों का उत्तम भोजन कीजिये । आप प्राणधारकजीव का पालन करें ।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।

गृभ्राय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—जैसे अन्न ओषधि रस (कुक्षयोः) कोखों या उदर में जाकर



अंश २ में जाता है और मनुष्य जिह्वा से (मधु) अन्न ग्रहण करता है  
 वैसे ही हे विद्वान् शिष्य ! मैं (ते) तेरे (कुक्षयोः) कोखों को (आसिञ्चामि)  
 जल से शुद्ध करता हूँ । वह जल (गान्ना अनु वि धावतु) अंगों को प्रास  
 होकर पवित्र करे । इस प्रकार शुद्ध होकर, हे शिष्य ! तू (जिह्वया)  
 वाणी से (मधु) ब्रह्मज्ञान, वेद को (गृभाय) धारण कर । इति  
 द्वाविंशो वर्गः ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वतव ।

सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (सोमः स्वादुः तन्वे मधुमान्, हृदे शम्) अन्नादि ओष-  
 धिरस स्वादु, शरीर को पोषणप्रद और हृदय को शान्तिदायक होता  
 है वैसे ही हे विद्वन् ! यह (सोमः) शिष्य (संसुदे स्वादुः) उत्तम ज्ञान  
 के दाता तुझ गुरु के ज्ञान को उत्तम रीति से ग्रहण करने हारा हो ।  
 और वह (तव तन्वे) तेरी शरीर सेवा वा विस्तृत ज्ञान के लिये (मधु-  
 मान्) वेदज्ञान से युक्त हो । वह (ते हृदे) तेरे हृदय के लिये (शम्)  
 शान्तिदायक हो ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवामि संवृतः ।

प्र सोमं इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(जनीः इव संवृतः अमि) जैसे खियें वस्त्र आभरणादि से  
 युक्त होकर, वरण किये पति के अभिमुख होती हैं वैसे ही हे (इन्द्र)  
 आचार्य ! हे (विचर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! (अयम् सोमः) यह  
 शिष्य वा, सावित्री माता के गर्भ में उत्पन्न पुत्र (संवृतः) तेरे द्वारा  
 अच्छी प्रकार वृत, स्वीकृत होकर (त्वा अमि सर्पतु) तुझे प्रास हो और  
 (प्र सर्पतु) विद्या, चरित्र के मार्ग में आगे बढ़े ।

तुविग्रीवो वपोंदरः सुबाहुरन्धसो मदं ।

इन्द्रो वृत्राणि जिघ्रते ॥ ८ ॥

भा०—वृत्रह इन्द्र का वर्णन । जैसे (सु-बाहुः) उत्तम बाहु अंगुलि आदि वाला (तुवि-ग्रीवः) विस्तृत, बहुत गर्दनो वाला, (वपोदरः) स्थूल, दृढ़ होकर (वृत्राणि जिघ्रते) बाधक विघ्नों का नाश करता है वैसे ही (इन्द्रः) शत्रुबलों का नाशक राजा, (तुविग्रीवः) बड़ी ग्रीवा वाला दृढ़ स्कन्ध, नाना सैन्य बलों से युक्त, (वपोदरः) 'वपा' छेदन भेदन की शक्ति को राष्ट्र में धारण करता हुआ (सुबाहुः) उत्तम बाहुमान्, (अंधसः मंदे) ऐश्वर्य से तृप्त होकर, (वृत्राणि) राज्य के बाधक कारणों को (जिघ्रते) नष्ट करे । राजा की सेनाएं शरीर में बाहुवत् हैं, यह श्लेष से कहा है ।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा ।

वृत्राणि वत्रहस्त्रिहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (त्वं) तू (पुरः प्र इहि) सामने आ, तू (ओजसा) बल से (विश्वस्य ईशानः) सब जगत् का स्वामी है । हे (वृत्रहन्) सूर्यवत् भेदों को लाने और दुष्टों को ताड़ने हारे ! तू (वृत्राणि जहि) दुष्टों को दण्ड दे ।

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि ।

यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! (येन) जिस बल से तू (सुन्वते यजमानाय) अग्नादि उत्पन्न करने वाली प्रजा के हितार्थ (वसु प्रयच्छसि) ऐश्वर्य देता है वह (ते अंकुशः) तेरा अंकुश, शत्रुरूप गज का वशकारी साधन, शासन बल (दीर्घः अस्तु) बहुत विस्तृत हो । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अर्घि बर्हिषि ।

एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! गुरो ! (ते) तेरा (अयं) यह (बर्हिषि) उत्तम शासन वा यज्ञ में (निपूतः) निरन्तर पवित्र (सोमः)



शिष्य है, (ईम् अस्य आ इहि) उसको तू ग्रास हो (आ द्रव, आ पिव)  
उस पर कृपा कर और उसे रक्षा में रख ।

शाचिगो शाचिपूजनाय रणाय ते सुतः ।

आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥

भा०—(शाचि-गो) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों  
वाले राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! हे (शाचि-पूजन) शक्तियों या शक्तिशाली  
सेनाओं के कारण पूजनीय, हे (आखण्डल) शत्रुओं को सब ओर छिन्न  
भिन्न करने हारे ! (अयं) यह (सुतः) ऐश्वर्य देने वाला प्रजाजन (ते  
रणाय) तेरे ही रमण के लिये है । तू (प्र हूयसे) बड़े आदर से बुलाया  
जाता है ।

यस्ते शृङ्गवधो नपात्प्रणपात्कुण्डपायः ।

न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥ १३ ॥

भा०—हे (शृङ्गवधः नपात्) हिंसाकारी बाणों के वर्षक ! प्रबल  
सैन्य को न गिरने देने वाले ! (यः) जो (ते) तेरा (प्रणपात्) पुत्रवत्  
पालनीय (कुण्ड-पायः) कुण्डों के जलादि से पालन-योग्य राष्ट्र, ऐश्वर्य  
है (अस्मिन्) उसमें ही (मनः आ दध्रे) मनोयोग रख ।

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसं स्रोम्यानाम् ।

द्रप्सो भेत्ता पुरा शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ १४ ॥

भा०—हे (वास्तोष्पते) 'वास्तु' अर्थात् नगरादि के पालक ! जैसे  
गृह का (स्थूणा ध्रुवा) मुख्य स्तम्भ सर्वाश्रय हो उसी प्रकार तेरे राष्ट्र  
में (ध्रुवा) तू पृथिवीवत् (स्थूणा) मुख्य स्तम्भवत् सबका स्थिर आश्रय  
है । (स्रोम्यानां) ऐश्वर्य पाने योग्य शासकों, वा शिष्यों के हितैषी  
ज्ञानी पुरुषों का (अंसं) कन्धों के कवचवत् रक्षक हो । (द्रप्सः) हुत-  
गति से आक्रमण करने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (शश्वतीनां)

पुरां) बहुत से शत्रु नगरों का (भेत्ता) तोड़ने वाला हो और वह (मुनीनां) मनन करने वाले ज्ञानविचारक मनुष्यों का (सखा) मित्र हो ।

पृदाकुसानुर्यजुतो गवेषण एकः सन्नमि भूर्यसः ।

भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृमेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ १५ ॥ २४ ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा (पृदाकु-सानुः) 'पृत्' अर्थात् संग्रामों के अवसरों में सन्मार्ग को बतलाने वाला, उन्नति-पद पर स्थित, (यजतः) पूज्य और (गवेषणः) राष्ट्र को चाहने वाला होकर (भूर्यसः अमि) बहुत से शत्रुओं पर (एकः सन्न) अकेला रहकर भी (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (पुरः) अपने समक्ष (तुजा गृभा) शत्रुहिंसा-कारी पकड़ या वशीकरण-सामर्थ्य से (भूर्णिम्) सबके भरण-पोषण में समर्थ (अश्वं) राष्ट्र वा सैन्य और (इन्द्रं) ऐश्वर्य को (नयत्) चलावे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ १८ ]

इरिस्विठिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१-७, १०-२२, आदित्याः । न अश्विनौ ॥ ९ अग्निः सूर्यानिताः ॥ छन्दः—१, १३, १५, १६ पादनिचूडु-णिक् ॥ २ आर्ची स्वराडुणिक् । ३, ८, १०, ११, १७, १८, २२ उणिक् । ४, ९, २१ विराडुणिक् । ५-७, १२, १४, १९, २० निचूडुणिक् ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इदं ह नूनमेषां सुखं भिक्षेत मर्त्यः ।

आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥ १ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (आदित्यानां) आदित्यवत् तेजस्वी ब्रह्म-ज्ञानी पुरुषों के (सवीमनि) शासन में रहकर (एषां) इनके (सुखं) सुखकारक (अपूर्व्यम्) अपूर्व ज्ञान की (ह नूनं) अवश्य (भिक्षेत) याचना करे ।



अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् ।

अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥

भा०—(एषां हि) इन (आदित्यानां) तेजस्वी पुरुषों के (पन्थाः) मार्ग (अनर्वाणः) निर्दोष, निष्कण्टक, (अदब्धाः) अहिंसित, अक्षय, (पायवः) पालक और (सुगे-वृधः) सुख बढ़ाने वाले (सन्ति) होते हैं ।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(सविता) उत्पादक माता पिता, (भगः) सेवा योग्य ऐश्वर्यवान्, स्वामी (वरुणः) दुःखवारक राजा, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, अध्यक्ष, ये सब (स-प्रथः) अति विस्तृत (यत्) जो (शर्म) सुख, शान्ति वा आश्रय हम (ईमहे) चाहते हैं (यच्छन्तु) प्रदान करें ।

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टमर्मन्ना गहि ।

स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अदिते) अखण्ड चरित्र वाली ! भूमिवत् वा मातावत् पालन करने वाली ! हे (पुरुप्रिये) बहुतों को प्रिय लगने वाली, (देवि) विदुषि ! हे (अरिष्टमर्मन्) सुखों को पूर्ण करने वाली, (देवेभिः) शुभ-गुणवान् (सूरिभिः) विद्वान्, (सु-शर्मभिः) उत्तम गृहस्थों सहित (स्मत् आगहि) अच्छी प्रकार, आदर से प्राप्त हो ।

ते हि पुत्रासो अदितेर्बिदुर्द्वेषांसि योतवे ।

अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(ते हि) वे (अदितेः पुत्रासः) भूमि के पुत्र वा तेजस्वी पुरुष, (उरु-चक्रयः) बड़े २ कार्य करने वाले (अनेहसः) निष्पाप लोग (अंहोः-चित्) पापी के भी (द्वेषांसि) अप्रीतिकारक द्वेषों को (योतवे विदुः) दूर करने का उपाय जानते हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः ।

अदितिः प्रात्वहंसः सदावृधा ॥ ६ ॥

भा०—(अद्वयाः) अद्वितीय वा बाहर-भीतर में दो भाव न रखती हुई, (अदितिः) विदुषी माता (नः) हमारे (पशुम्) पशुओं की रक्षा करे । वह (अदितिः) अखण्ड और अदीन राजशक्ति (नक्तम्) रात को भी (पातु) पालन करे । वह (सदावृधा) प्रजाजनों को बालकवत् पुष्ट करने वाली होकर (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे ।

उत स्या नो दिवा मतिरदितिस्त्या गमत् ।

सा शन्ताति मयस्करदण स्निधः ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (अदितिः) अदीन भाव से रहने वाली शक्ति, (मतिः) बुद्धिमती होकर (नः) हमें (दिवा) दिन के समय (उत्या) रक्षा और ज्ञानसहित (आ गमत्) आवे । (सा) वह (शन्ताति) शान्तिदायक (मयः) सुख (करत्) प्रदान करे और (स्निधः) हिंसक शत्रुओं को (अप करत्) दूर करे ।

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।

युयुयातामितो रपो अप स्निधः ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और (त्या) वे (दैव्या) 'देव' अर्थात् दिव्यगुण युक्त पदार्थों में कुशल, (भिषजा) दोनों प्रकार के रोगचिकित्सक (अश्विना) विद्या के क्षेत्र में विस्तृत ज्ञान वाले (नः शं करतः) हमें शान्ति दें । (इतः) इस देह या राष्ट्र से (रपः) दुःख वा पाप को (युयुयाताम्) अकट करें और (स्निधः अपः) बाधक विघ्नों और रोगादि को भी दूर करें ।

शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः ।

शं चातो वात्वरपा अप स्निधः ॥ ९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि तत्त्व (अग्निभिः) व्यापन और दाह आदि



गुणों से युक्त तत्वों से (नः शम् करत्) हमें शांति दें। (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें शांति, सुखदायक और रोगनाशक होकर (तपतु) तपे। (वातः) वायु (अरपाः) रोग रहित होकर (नः शं वातु) हमें शांतिदायक होकर बहे। (स्निग्धः अप) रोगादि पीड़ाएं दूर हों।

अपामीवामप स्निग्धमप सेधत दुर्मतिम्।

आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) माता पिता गुरु आदि के पुत्रों! एवं पुत्रों के पिता मातादि गुरुजनो! आप (अमीवाम् अप) रोग को दूर करो। (स्निग्धम्) नाशकारी (दुर्मतिम्) दुष्टमति को (अप सेधत) दूर करो और (नः अंहसः युयोतन) हमारे पापों को दूर करो। इति षड्विंशो वगः ॥

युयोता शस्मस्मदाँ आदित्यास उतामतिम्।

ऋध्वेधः कृणुत विश्ववेदसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के जानने वाले (आदित्यासः) आदित्यवत् तेजस्वी, एवं संसार के समस्त पदार्थों से ज्ञान और उपयोगी तत्त्व लेने वाले पुरुषो! आप लोग (अस्मत् शरुं) हमसे हिंसक और हिंसाभाव (उत्त) तथा (अमतिम्) मूर्ख और मूर्खता को (युयोत) पृथक् करो और (द्वेपः) द्वेष को भी (ऋधक् कृणुत) पृथक् करो।

तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति।

एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी, एवं अदिति अर्थात् अखण्ड परब्रह्म के उपासक वा वेदवाणी में निष्णात विद्वान् पुरुषो! हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील जनो! (यत्) जो (एनस्वन्तं चित्) पापी को (एनसः मुमोचति) पाप से मुक्त कर देता है, आप

(तत् शर्म) वह शांति सुखदायक, शरण वा दण्डव्यवस्था (नः यच्छत) हमें प्रदान करो ।

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।

स्वैः एवैरिरिषीष्ट युर्जनं ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (कश्चित्) कोई (मर्त्यः) मनुष्य (रक्षस्त्वेन) हिंसक स्वभाव से (नः) हमें (रिरिक्षति) मारना, पीड़ित करना चाहता है (सः) वह (युः) दुःखदायी (जनः) मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने आचरणों से (रिरिषीष्ट) पीड़ित होता है । हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः ॥

सामित्तम्वमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ।

यो अस्मन्ना दुर्हणावाँ उप द्रुयुः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मन्ना) हम लोगों में (दुर्हणावान्) दुःखदायी, और (द्रुयुः) हमारे प्रति दो प्रकार का भाव—बाहर और भीतर वा प्रत्यक्ष और परोक्ष में भिन्न २ भाव—रखता है, (तं) उस (दुःशंसं) दुर्गुणीत नाम वाले, बुरी बात कहने वाले (रिपुम् मर्त्यम्) पापी पुरुष को (अघम् सप्त-अश्वत्) पाप व्याप लेता और नष्ट कर देता है ।

पाकत्रा स्थान देवा ह्रत्सु जानीथ मर्त्यम् ।

उप द्रुयं चाद्रुयं च वसवः ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! हे (वसवः) माता पिता, गृहस्थादि आश्रमों में रहने वाले मनुष्यो ! आप (पाकत्रा) परिपक्व ज्ञान वाले जनों के अधीन (स्थान) रहो और (द्रुयं अद्रुयं च) दो भावों वाले, कपटी और दो भावों से न रहने वाले निष्कपट (मर्त्यं) मनुष्य को (ह्रत्सु उप जानीथ) हृदयों तक मैं खूब जानो । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे ।

आवाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥ १६ ॥



भा०—हे (द्यावाक्षाम) सूर्य और पृथिवीवत् तेजस्वी, क्षमाशील, गुरु जनो ! हम लोग (पर्वतानां) मेघों वा पर्वतों के और (श्रपां) जलों के बीच (शर्म) सुखदायक, गृह के समान (पर्वतानां अपां) पालक साधनों वाले पुरुषों और आसजनों के बीच (शर्म वृणीमहे) शान्ति प्राप्त करें। आप (रपः) पाप को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (कृतम्) करो।

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः ।

अति विश्वानि दुरिता विपत्तन ॥ १७ ॥

भा०—हे (वसवः) आश्रमों में बसे माता पितादि जनों (ते) के आप (युष्माकं) अपने (भद्रेण शर्मणा) शान्तिदायक कर्म से (विश्वानि दुरिता) सब विघ्नों से (नावा) नौका से जलों के तुल्य (अति विपत्तन) पार करो।

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।

आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) शरण में लेने वाले एवं तेजस्वी और हे (सु-महसः) उत्तम प्रकाशवान्, ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (तुचे तनाय) पुत्र पौत्र के (जीवसे) जीवन के लिये (तत्सु) वह (द्राघीयः आयुः कृणोतन) अति दीर्घ आयु करो।

यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।

युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सज्जात्ये ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य-किरणोंवत् ज्ञानों का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (हीडः) प्राप्त करने योग्य (यज्ञः) सत्संग, विद्या, दान सदा (अन्तरे अस्ति) आपके समीप ही रहता है। अतः आप लोग (मृडत) सुखी करो (युष्मे इत्) हम आप

लोगों के अधीन (अपि) भी ( वः सजात्ये स्मसि ) आपके पुत्र के समान हैं ।

बृहद्वरुथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना ।

मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥ २० ॥

भा०—हम लोग (स्वस्तये) सुख कल्याण के लिये (बृहद् वरुथं) बड़े कष्टनिवारक गृह के समान क्षरण योग्य (मरुतां) मनुष्यों वा सैन्य जनों के बीच (देवं) सूर्यवत् तेजस्वी और (अश्विना) व्यापक सामर्थ्य-वान् माता पिता, (मित्र) जोही बन्धुजन और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (ईमहे) प्राप्त करें, आप लोगों से हम गृहादि की याचना करें ।

अनेहो मित्रार्यमवृचद्वरुण शंस्यम् ।

त्रिवरुथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥ २१ ॥

भा०—हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय ! हे (वरुण) श्रेष्ठ ! हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! आप (नः) हमें (त्रिवरुथं) तीन गृहों से युक्त, शीत, आतप, वर्षा तीनों से बचाने वाला (अनेहः) विघ्न बाधा से रहित (छर्दिः) गृह, (यन्त) दें ।

ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।

प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥ २२ ॥ २८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, परमेश्वर के उपासको ! सूर्य की किरणों के तुल्य ज्ञान के प्रकाशक एवं शोकादि को अन्धकारवत् दूर करने हारे तपस्वी जनो ! (ये चित् हि) जो हम (मृत्यु-बन्धवः) मौत के दंष्ट्र होकर (मनवः स्मसि) मननशील मनुष्य हैं अतः तुम (नः आयुः) हमारी आयु को (जीवसे प्र तिरेतन) दीर्घ जीवन के लिये बढ़ाओ । ह्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[ १९ ]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१—३३ अग्निः । ३४, ३५ आदित्याः ।



३६, ३७ त्रसदस्योर्दानस्तुतिः । छन्दः—१, ३, १५, २१, २३, २८,  
 ३२ निचृदुष्णिक् । २७ भुरिगार्ची विराडुष्णिक् । ५, १६, ३० उष्णिक्  
 ककुप् । १३ पुर उष्णिक् । ७, ९, ३४ पादनिचृदुष्णिक् । ११, १७, ३६  
 विराडुष्णिक् । २५ आर्चीस्वराडुष्णिक् । २, २२, २६, ३७ विराट्  
 पंक्तिः । ४, ६, १२, १६, २०, ३१ निचृत् पंक्तिः । ८ आर्ची भुरिक् ।  
 पंक्तिः । १० सतः पंक्तिः । १४ पंक्तिः । १८, ३३ पादनिचृत् पंक्तिः ।  
 २४, २६ आर्ची स्वराट् पंक्तिः । ३५ स्वराड् वृहती ॥ सप्तत्रिंशदृचं  
 सूक्तम् ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवालो देवमरतिं दधन्विरे ।

देवत्रा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥

भा०—जिस (देव) तेजस्वी, परम पुत्र को (देवासः) सब अनुष्य  
 और सूर्यादि गण (अरति) अपना स्वामी और सबसे अधिक ज्ञानवान्  
 रूप से (दधन्विरे) धारण करते हैं और जिसको वे (देवत्रा) दानियों  
 और ज्ञानप्रकाशकों में से (हव्यम् आ ऊहिरे) सत्य मानते हैं (तं) उस  
 (स्वः-नरं) सबके नायक एवं सूर्य और प्रकाश को लाने और मोक्ष वा  
 सूर्यवत् प्रभु-पद तक पहुँचाने वाले की (गूर्धय) स्तुति करो ।

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीलित्व यन्तुरम् ।

अस्य मेधस्य सोमस्य सोमरे प्रेमन्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! हे (सोमरे) उत्तम रीति से प्रजा  
 के पोषण करने वाले ! तू (इम्) इस (अध्वराय) यज्ञ और अविनाश  
 के लिये (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान एवं विद्या, बल में पूर्ण (अस्य  
 सोमस्य) पुत्र, शिष्यादि के हितकारी ऐश्वर्य से सम्पाद्य इस (मेधस्य)  
 सत्संग, यज्ञ के (यन्तुरं) निगंता, (विभूत-रातिं) प्रचुर दानशील,  
 (चित्र-शोचिषम्) अद्भुत तेजस्वी, (अग्निम्) अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक को  
 (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार आदर कर ।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होताऽममर्त्यम् ।

अस्य यज्ञस्य सुकृतम् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य यज्ञस्य) इस यज्ञ के (सु-कृतम्) उत्तम रीति से बनाने वाले, (होतारम्) ऐश्वर्यादाता, (अमर्त्यम्) अविनाशी, (देवत्रा देवं) प्रकाशमान सूर्यादि के भी प्रकाशक, दाताओं के भी दाता, (यजिष्ठं) पूज्य, (त्वा) तुम स्वामी को हम (ववृमहे) अपनाते, स्तुति करते हैं ।

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।

स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुह्रं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥

भा०—जैसे अग्नि, विद्युत् बल को नष्ट न होने देने वाला उत्तम ऐश्वर्य, प्राण अपान देह के रक्तादि में भी सुख देता है, वैसे ही तू (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, अन्न पालक, सैन्य बल को नाव के समान पार ले जाने वाले, (सु-भगं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुख से सेवने योग्य (श्रेष्ठ-शोचिषम्) उत्तम कान्तियुक्त, को (दिवि) ज्ञान और व्यवहार के लिये (अर्द्धिष्व) अच्छी प्रकार उपासना कर । (सः) वह (नः) हमें, (मित्रस्य) स्नेही मित्र, (वरुणस्य) वरुण योग्य राजा और (सः) वह (अपां) सुखदायक आसजन का (सुह्रं) सुख (यक्षते) देता है ।

यः समिधा य आहुती यो वेदेन द्वादश मर्तो अग्नये ।

यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक, (मर्तः) पुरुष (नमसा) अन्न से, या श्रद्धा से, (यः) जो (समिधा) काष्ठ से, (यः आहुती) जो आहुति से, (यः वेदेन) जो वेद से, वेद के अध्ययन, मनन, श्रवणादि करते हुए (अग्नये) अग्नि में आहुतिवत्, उस सर्वगुरु परमेश्वर



के हाथों अपने को (ददाश) प्रदान करता है वैसे ही जो राष्ट्रजन तेजस्वी राजा के हाथ अपने को सौंप देता है, उसके ही—इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।

न तमंहो देवकृतं कृतञ्च न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥

भा०—(तस्य इत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः) वेग से जाने वाले अश्व (रंहयन्ते) वेग से जाते हैं, (तस्य) उसका ही (यशः द्युम्नि तमम्) यश अति उज्ज्वल होता है, (तस्) उस तक (देवकृतं) विद्वानों और (मर्त्यकृतं) मनुष्यों का किया (अंहः) अपराध (कृतः च न नशत्) किसी प्रकार नहीं प्राप्त होता अर्थात् यज्ञशील को पाप स्पर्श नहीं करता ॥

स्वग्रयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जा पते ।

सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक ! हे (ऊर्जा पते) सैन्यों के पालक ! हे (अग्रयः) तेजस्वी पुरुषो ! हम लोग (वः अग्निभिः) तुम्हारे अग्रणी पुरुषों द्वारा (सुअग्रयः) प्रधान नायकों से युक्त (स्याम) हो । हे अग्रणी ! (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला (सुवीरः) उत्तम वीर है ।

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।

त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रथीणाम् ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो ! विद्वन् ! तू (अतिथिः न) अतिथि के तुल्य पूज्य, (प्रशंसमानः) उत्तम रीति से उपदेश करता हुआ, (मित्रियः) मित्र होने योग्य, (अग्निः) तेजस्वी, (रथः न) रथवत् रमणीय, (वेद्यः) परम गम्य है । (त्वे) तुझ में (क्षेमासः) निवास करने वाले (साधवः) साधक लोग (अपि सन्ति) निमग्न रहते हैं । (त्वं) तू (रथीणां राजा) धनों का राजा है ।

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः ।

स धीभिरेस्तु सनिता ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सः) वह पुरुष (अद्धा) वस्तुतः (दाश्वध्वरः) दानशील, सफल यज्ञ वाला (मर्तः) मनुष्य होता है और (सः प्रशंस्यः) वही प्रशंसनीय है, (सः) वही (धीभिः) कर्मों और उत्तम बुद्धियों से (सनिता अस्तु) दान देने और ऐश्वर्य का विभाग करने वाला (अस्तु) हो ।

यस्य त्वमृध्वो अंध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।

सो अर्वाङ्गिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् १०।३०

भा०—हे (अग्ने) नायक ! (यस्य अंध्वराय) जिसको नाश न होने देने वा जिसके यज्ञ की रक्षा के लिये (क्षयद्-वीरः) शत्रुओं, वा अधीन रहने वाले वीरों का स्वामी होकर (त्वं) तू (अमृध्वः) सर्वोपरि अध्यक्ष होकर (तिष्ठसि) विराजता है, (सः) वह ही (अर्वाङ्गिः) वीर विद्वानों और (सः विपन्युभिः) वह विशेष व्यवहारयज्ञों और (सः शूरैः) वह शूरवीरों सहित (सनिता) ऐश्वर्य का भोक्ता और (सः सनिता) वही दाता होकर (कृतं साधते) कार्य सिद्ध करता है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यस्याग्निर्वर्णं हे स्तोमं चनो दधीत विश्वचार्यः ।

हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥

भा०—जैवे (अग्नि गृहे चनः दधीत हव्या वेदिषत्) घर में आग पाचन करता है, नाना अन्न प्राप्त कराता है, वैसे ही (यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर में (आग्नेः) तेजस्वी पुरुष (वपुः) संशयों को छेदन में कुशल और (विश्व-चार्यः) सबसे वरण योग्य होकर (चनः स्तोमं) प्रवचन, वा मन्त्र-समूह को (दधीत) धारण करता है और (विषः)



विविध प्रकार से उपभोग्य नाना (हव्या वा) भोज्य अन्नो और ज्ञानों को (वेविषद्) प्राप्त कराता है। वचनः—पचतेर्वा—वचेर्वा। पचनः, वचनः। वर्णलोपश्छान्दसः।

विप्रस्य वा स्तुवतः सहस्रो यो मक्षूतमस्य रातिषु।  
अवोदैवमुपरिमर्त्य कृधि वसो विविदुषो वचः ॥ १२ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने वाले विद्वन् ! हे (सहस्रः यो) बलवान् पिता के पुत्र ! शिष्य ! तू (स्तुवतः) उपदेश (विप्रस्य) बुद्धि-मान् और (विविदुषः) विशेष विद्यवान्, ज्ञानी पुरुष के (वचः) वचन को (अवोः-दैवम्) परमेश्वर से नीचे और (उपरिमर्त्य) साधारण मनुष्यों से ऊपर (कृधि) कर और (मक्षूतमस्य) अति कुशल पुरुष के (रातिषु) दानों में से (वचः) वचन, उपदेश को तू ईश्वर से न्यून और सामान्य मानवों से अधिक जान।

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमा विवासति।  
गिरा वाजिरशोचिषम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (हव्य-दातिभिः) चर आदि हव्य पदार्थों की आहुतियों से (अग्निम्) जैसे अग्नि की (आ विवासति) यजमान सेवा करता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (अग्निम्) तेजस्वी, (सुदक्षम्) कार्य-कुशल पुरुष को (हव्य-दातिभिः) उत्तम ग्राह्य पदार्थों के दानों और (नमोभिः) नमस्कार आदि सत्कार वचनों वा अन्नो से (आ विवासति) परिचर्या करता है, (वा) और जो (वाजिर-शोचिषम्) अविनाशी दीप्ति से युक्त प्रकाशस्वरूप आत्मा को (गिरा) वाणी द्वारा (अविवासति) साक्षात् करता है वही पुरुष वस्तुतः अग्निहोत्र, आत्मदर्शन वा उपासना करता है।

समिधा यो निशित्ती दाशददिति धामभिरस्य मर्त्यः।  
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनां अति शुभ्रैरुदन् इव तारिषत् ॥१४॥

भा०—(समिधा अग्निम्) काष्ठ की समिधा से-अग्नि की जैसे परि-  
चर्या करता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (निशित्ती) तीक्ष्ण बुद्धि से  
(अदितिं) अखण्ड प्रभु की (दाशत्) सेवा करता है (सः) वह (मर्त्यः)  
मनुष्य (अस्य धामभिः) उसके तेजों वा धारण-सामर्थ्यों से (धीभिः)  
कर्मों के अनुसार (द्युम्नैः) ऐश्वर्यों से (विश्वा इत् जानन्) समस्त जनों  
को (उद्गन् इव अति तारिपत्) जलों के समान पार कर जाता है और  
(सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्यवान् भी हो जाता है ।

तदग्ने द्युस्त्रभा भर यत्सासहत्सदने कं चिदत्रिणम् ।

मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! प्रभो ! नायकवर ! तू (तत् द्युस्त्रं)  
वह उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश और तेज (आ भर) धारण करा, (यत्) जो  
(सदने) घर में, देह में, (कं चित् अत्रिणं) किसी भी खाजाने वाले,  
दुःखदायी लोभ को (सासहत्) पराजित कर सके और जो (दूढ्यः  
जनस्य) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य के (मन्युं-सासहत्) क्रोध पर विजय  
पा सके ।

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।

वयं तस्ते शवसा गानुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (येन) जिस (शवसा) बल और  
ज्ञान से (वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ, छोटी और दुष्ट पुरुषों का नियन्ता  
पुरुष (चष्टे) न्यायानुकूल प्रजाजन को देखता है और (येन शवसा)  
जिस ज्ञान और बल से (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले  
स्त्री पुरुष और (भगः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (चष्टे) अधीनस्थों को देखता  
और वचन कहता है हम (इन्द्र-त्वोताः) तुझ तेजस्वी, प्रचण्ड विद्वान्  
और वीर पुरुष द्वारा सुरक्षित रहकर (ते शवसा) उसी तेरे बल से  
(गानुवित्त-तमाः) खूब भूमि और वाणी के धन को प्राप्त कर (ते) तेरे  
(तत् विधेमहि) उसी बल और ज्ञान का सम्पादन करें ।



ते घेदंश्च स्वाध्योऽये त्वा विप्र निदधिरं नृचक्षसम् ।

विप्रांसो देव सुक्रतुम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन् ! (ये) जो (त्वा) तुझको (नृ-चक्षसम्) समस्त मनुष्यों पर द्रष्टा रूप से (निदधिरं) नियत करते हैं, हे (देव) सत्यप्रकाशक ! और (ये विप्रासः) जो विद्वान् लोग (त्वा सुक्रतुं निदधिरं) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले तुझको स्थिर करते हैं (ते घ इत्) वे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (स्वाध्यः) सुख पूर्वक तेरा ध्यान करने वाले होते हैं ।

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।

त इद्वार्जेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रभो ! (ये) जो (कामम्) इच्छा वाले आत्मा वा मन को (त्वे नि-एरिरे) तेरे अधीन, तेरे ही में प्रेरित करते हैं (ते) वे (इत्) ही हे (सुभग) उत्तमैश्वर्यवान् ! (वेदिम् चक्रिरे) वेदि बनाते, (ते आहुतिं चक्रिरे) वे आहुति करते और (दिवि) इस भूमि पर (ते सोतुं चक्रिरे) वे हवन यज्ञ करते हैं । ऐसे ही वे (वेदिं) ज्ञान करते, (आहुतिं) दान-आदान करते, (सोतुं) ऐश्वर्य उत्पन्न करते । (ते इत्) वे ही (वार्जेभिः) ज्ञानों, सैन्यादि बल से (महद् धनं जिग्युः) बड़े धन को जीतते हैं ।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।

भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

भा०—(आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि और आदरपूर्वक बुलाया गया और सत्कृत विद्वान् (नः भद्रः) हमारे लिये सुखदाता हो । (रातिः भद्रा) हमारा दान सुखकारी हो । हे (सु-भग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! (नः अध्वरः) हमारा यज्ञ (भद्रः) कल्याणजनक हो । (उत) और (प्र-शस्तयः) उत्तम उपदेश हमें (भद्राः) कल्याणकारी हों ।

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येनां समत्सु सासहः ।

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमां ते अभिष्टिभिः २०।३२

भा०—हे प्रभो ! तू (वृत्रतूर्ये) दुष्ट नाशकारी संग्राम में (येन) जिस ज्ञान और बल से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) शत्रुओं को हराता है, तू उसी (मनः) मन और ज्ञान को (भद्रं) हमें सुखदायक कर और (शर्धतां) बली हिंसक शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ़ सैन्यों का भी (अव तनुहि) नाश कर । जिससे हम (अभिष्टिभिः) अभिलषित सुखों से (ते वनेम) तेरी सेवा करें ।

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे ।

यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥ २१ ॥

भा०—(यम्) जिस (यजिष्ठं) अति पूज्य (हव्य-वाहनम्) हव्य, उत्तम अन्न ग्रहण करने वाले, (दूतम्) दुष्टों के उपतापक और विद्वानों से उपासित (अरतिं) अति मतिमान् स्वामी की (देवाः) नाना अर्थों के अभिलाषी होकर (नि ऐरिरे) स्तुति करते हैं (मनुर्हितम्) मननशील पुरुषों द्वारा धारित उस पूज्य की मैं (गिरा ईडे) वाणी से स्तुति करूँ ।

तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्र्ये ।

यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्वृतेभिराहुतः ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (घृतेभिः आहुतः अग्निः) घी की धाराओं से आहुति पाकर अग्नि (सूनृताभिः) सत्य-वाणियों सहित (सुवीर्यं पिंशते) उत्तम वीर्य रूप प्रकट करता है और जैसे (घृतेभिः आहुतः) जलों द्वारा प्राप्त (अग्निः) विद्युत् (सूनृताभिः) उत्तम विज्ञान युक्त क्रियाओं द्वारा वा मेघस्थ विद्युत् उत्तम बल, अन्नादि युक्त धाराओं से (सुवीर्यं) उत्तम बलयुक्त रूप प्रकट करता है, वैसे ही (घृतेभिः आहुतः अग्निः) तेज या ओहों से आहत होकर तेजस्वी ज्ञानी पुरुष, वा प्रभु (सूनृताभिः) उत्तम



वाणियों से (सुवीर्यम्) उत्तम रीति से उपदेश योग्य ज्ञान को (पिंशते) प्रकट करता है, उस (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्णमुख, दुष्ट हनन के लिये तीक्ष्ण हिंसा साधनों से युक्त, (तरुणाय) सदा युवा, बलवान्, (राजते) राजा के समान आचरण वाले (अग्नये) ज्ञानी पुरुष के लिये (प्रयः) प्रीतिकारक स्तुति का (गायसि) गान कर ।

यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च ।

असुर इव निर्णिजम् ॥ २३ ॥

भा०—(यदि) जैसे (घृतेभिः आहुतः) घृत-धाराओं से आहुति प्राप्त (अग्निः) अग्नि (उत् च अव च) ऊपर और नीचे (वाशीम् भरते) कान्ति प्रदान करता है तब वह (असुरः इव) प्राणों के दाता वायु या सूर्य के तुल्य (निर्णिजम्) रूप को (भरते) धारण करता है, अर्थात् सुसुर-प्राणप्रद पवन भी जलों से युक्त होकर (वाशीं भरते) कान्तिमयी विद्युत्, उसकी माध्यमिक वाणी-गर्जना को धारण करती है, सूर्य (घृतैः) तेजों से युक्त होकर (वाशीं भरते) दीप्ति को धारता है, वैसे ही वह प्रभु और विद्वान् नायक भी (यदि) जब (घृतेभिः आहुतः) स्नेहों से उपासित होकर (वाशीम्) उत्तम वाणी को (उत् च अव च) ऊपर और नीचे स्वरों के आरोहावरोह-क्रम-सहित (भरते) धारण करता है, तब वह (असुरः इव) 'असुर' अर्थात् बलवान् पुरुष का (निर्णिजं भरते) रूप धरता है, वीर पुरुष भी (वाशीं) वशकारिणी शक्ति, खड्ग आदि को ऊपर नीचे चलाता है ।

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।

वि वासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥ २४ ॥

भा०—जैसे (देवः) दीप्त अग्नि, (हव्यानि) हव्य चरुओं को सुगन्धिना आसा) उत्तम गन्धयुक्त ज्वाला रूप मुख से (ऐरयत) दूर २ तक भेजता है (वार्याणि वि वासते) ग्राह्य उत्तम २ प्रकाशों को प्रकट

करता है, वैसे ही (यः) जो (मनुः-हितः) स्वयं मननशील, विद्वान् (देवः) मनुष्य होकर (सुगन्धिना) पुण्य गन्ध, उत्तम शिक्षा युक्त (आसा) मुख से (हव्यानि) ग्राह्य-वचनों को (ऐरयत) उच्चारण करता है वह (सु-अध्वरः) उत्तम यज्ञशील (देवः) दानी (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न होकर (वार्याणि वि वासते) वरणीय गुणों, ज्ञानों को प्रकट करता है ।

यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः ।

सहसः सूनवाहुत ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जैसे अग्नि में जो कुछ पड़ता है वह अग्नि ही हो जाता है वैसे ही हे (आहुत) उपासनीय ! हे (सहसः सूनो) बल के उत्पन्न करने । (अग्ने) हे ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! हे (मित्र-महः) मित्रों से पूजनीय ! (यत्) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं इस प्रकार उपासना करता है वह भी (अमर्त्यः) अन्य मरणधर्मा प्राणियों से भिन्न, तेरे समान हो जाता है ।

न त्वां रासीयामिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।

न मे स्तोतामतीवा न दुहितः स्यादग्ने न पापया ॥ २६ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने हारे स्वामिन् ! मैं जैसे (अमिशस्तये) निन्दा, अपवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) धन को नहीं दूँ, वैसे ही (त्वा) तुझे भी (अमिशस्तये) निन्दा, परापवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) त्याग न करूँ । हे (सन्त्य) भजनीय ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! (मे स्तोता) मेरी स्तुति करने वाला (अमतिवा) मतिहीन (न) न हो और (दुहितः) दुष्टाशय (न) न हो और (न पापः स्यात्) वह पापाचारी भी न हो ।

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ पंतु प्र णो हविः ॥ २७ ॥

भा०—(सु-भृतः) उत्तम रीति से भरण-पोषण-प्राप्त, (पुत्रः) पुत्र



जैसे (दुरोणे) गृह में (पितुः) पिना का भी पालक होता है, वैसे ही (अग्निः) तेजस्वी, परमेश्वर, राजा, गृहपति भी (पितुः न) अन्न के समान (पुत्रः) बहुतों की रक्षा में समर्थ, (सु-भृतः) उत्तम रीति से प्रजा-पोषक होकर (दुरोणे) अन्धों से कठिनता से ग्रास करने योग्य, राष्ट्र-पति वा मोक्ष पद पर है। वह (देवान् आ एतु) विद्वानों और दिव्य पदार्थों को ग्रास हो और वह (नः हविः प्र एतु) हमारे स्तुतिवचन, वा कर आदि को ग्रास करे।

तद्वाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्टाभिः सचेय जोषमा वंसो ।

सदा देवस्य मर्त्यः ॥ २८ ॥

भा०—हे (वसो) प्राणियों, लोकों को बसाने और उनमें बसाने वाले ! (अग्ने) तेजस्विन् ! अंग २ में व्यापक ! (सदा) सर्वदा, सब कालों में (मर्त्यः) मैं, मरणधर्मा जीव (देवस्य तव) सर्व सुखदाता, सर्व-प्रकाशक तेरी (नेदिष्टाभिः मतिभिः) अति समीपतम रक्षाओं, मतियों से रक्षित होकर (तव जोषम् आ सचेय) तेरे प्रेम और सेवा का लाभ करें।

तच्च क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्रे तच्च प्रशस्तिभिः ।

त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातये ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् सर्व प्रकाशक ! (क्रत्वा) उत्तम कर्म, यज्ञ से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। (रातिभिः) दानों और (प्रशस्तिभिः) स्तुतियों से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। हे (वसो) प्राणवत् सबमें बसने वाले ! विद्वान् (त्वाम् इत् प्रमतिम्) तुझको सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला (आहुः) कहते हैं। हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! तू (मम दातवे) मुझे देने के लिये (हर्षस्व) प्रसन्न हो, वा मुझे दान देने के लिये प्रेरित कर।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः ।

यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक ! स्वामिन् ! (वाजमर्मभिः) बल, अन्नादि की पोषक (सुवीराभिः) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, (तव कृतिभिः) तेरी रक्षाओं और दीप्तियों से (सः प्र तिरत्ते) वह बढ़ा करता है (यस्य सख्यं) जिसके मित्र भाव को (तू आवरः) स्वीकार कर लेता है ।

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विज इन्धानः सिष्णावा ददे ।

त्वं महीनामुषसांसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥ ३१ ॥

भा०—जैसे अग्नि (इन्धानः) चमकने वाला, (द्रप्सः) द्रुतगति से काष्ठों को खाने वाला, (नीलवान्) नील धुपुं वाला, (वाशः) कान्ति-युक्त, (ऋत्विजः) ऋतु २ में यज्ञ करने योग्य और (सिष्णुः) प्रति-आहुति दत्त सेचने योग्य होता है । वैसे ही (महीनाम् उषसां प्रियः) वह बहुत सी कामना युक्त प्रजाओं या दाहक शक्तियों का प्रिय होता और (क्षपः वस्तुषु राजति) रात को बसे घरों में गार्हपत्याग्नि, अन्वा-हार्यपचन और दीपक रूप में चमकता है वैसे ही हे (सिष्णो) प्रेम से सबको सेचन करने वा प्रकृति में जगत् बीज को आसेचन करने वाले, मेघवत् सुखवर्षक प्रभो ! (तव द्रप्सः) तेरा आनन्दप्रद रूप, (नील-वान्) सबको आश्रयदाता, विश्व को अपने में छीन करने वाला, (वाशः) स्तुत्य और जगत् का वश करने वाला, (ऋत्विजः) प्राणों द्वारा वा वायु, जलादि शक्तियों से जानने योग्य, (इन्धानः) सूर्यादिवत् देदीप्य-मान रूप से (आ ददे) जाना जाता है । (त्वं) तू (महीनाम्) भूमियों और (उषसाम्) दाहक सूर्यादि को भी (प्रियः) पूर्ण और तृप्त करने वाला, (असि) है और (क्षपः) संसार का संहारक और सब (वस्तुषु) पदार्थों और लोकों में (राजसि) प्रकाशमान है ।

तमागन्म सोमरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे ।

सम्राजं त्रासदस्यवम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सोमरयः) उत्तम रीति से पोषण करने वालो ! हम



लोग (अवसे) रक्षा के लिये (तम्) उस (सु-अभिष्टिम्) उत्तम अभि-  
लाषा वाले, (त्रासदस्यवस्) दुष्ट पुरुषों को भयकारी, (सहस्रमुःकं)  
हजारों के पोषक, सूर्यवत् दुःखहारी, नाना तेजः-सामर्थ्यों से सम्पन्न,  
(सम्राजं आ अगन्म) सम्राटवत् सर्वत्र दीप्तियुक्त प्रभु को प्राप्त हों ।

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वया इव ।

विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ॥ ३३ ॥

भा०—जैसे एक ही अग्नि से अन्य अग्नियें प्रज्वलित होकर उसकी  
नाना शाखा के समान होती हैं वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् (यस्ते)  
जिस तेरे (अन्ये अग्नयः) दूसरे तेजस्वी पुरुष (उपक्षितः) समीप रहने  
वाले (वयाः इव) शाखा समान विराजते हैं उस (तव) तेरे (जनानां)  
मनुष्यों के (क्षत्राणि) वीथों और धनों को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ मैं  
(विपः न) वाणियों के समान (द्युम्ना) बहुत से धनों वा यशों को  
(नि युवे) प्राप्त करूँ ।

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम् ।

मघोनां विश्वेषां सुदानवः ॥ ३४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) सूर्यकिरणोंवत् ऐश्वर्यादि का संचय  
करने वाले, हे (सु-दानवः) उत्तम रीति से जलवत् सज्जित को उप-  
कारार्थ देने वाले, हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो ! आप लोग (यम्  
मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (पारं नयथ) ज्ञानसागर के पार कर देते हो  
वह (विश्वेषां मघोनां) समस्त ऐश्वर्यवानों में पूज्य हो जाता है ।

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषां अनु ।

वयं ते वो वरुणा मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ॥ ३५ ॥

भा०—हे (चर्षणीसहः) शत्रुकर्षक सेनाओं, वा शत्रु जनों को  
दबाकर वश में रखने में समर्थ (राजानः) राजा लोगो ! (यूयं) आप

लोग (कं चित्) किसी (मानुषान् क्षयन्तं) मनुष्यों के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले पुरुष के (अनु) पीछे रहो। हे (मित्र अयंमन् वरुण) खेही, न्याय-कारी और सर्वश्रेष्ठ जनो ! (ते वयं) वे हम लोग (वः) आप लोगों के (ऋतस्य) सत्य, न्याय, सत्यमार्ग के (रथ्यः) रथारोही के समान (स्याम् इत्) अग्रेसर हों ।

अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् ।

मंहिष्ठो अयः सत्पतिः ॥ ३६ ॥

भा०—(पौरुकुत्स्यः) बहुत से वज्र अर्थात् हथियारबन्द वीर पुरुषों का स्वामी (त्रसदस्युः) दुष्टों को भयभीत करने वाला राजा (मंहिष्ठः) अति दानशील, पूज्य, (अयः) स्वामी (सत्पतिः) सज्जनों का पालक है। वह (मे) मुझ प्रजाजन को धारण करने वाली (पञ्चाशतं) ५०, वा, १०५, वा ५०० वा पचासों सेनाएं (अदात्) प्रदान करे ।

उत मे प्रथियोर्वथियोः सुवास्त्वा अग्नि तुग्वनि ।

तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥ ३७ ॥ ३५ ॥

भा०—(सुवास्त्वाः) उत्तम भवनों वाली नगरी के (तुग्वनि अग्नि) शत्रुहिंसक बल या सैन्य के ऊपर (उत) और (प्रथियोः) प्रयाण करने वाले सैन्य और (वथियोः) तन्तु अर्थात् सन्तान-विस्तार करने वाले, बसे (मे) मुझ प्रजाजन के (तुग्वनि) पालनकारी पद पर विराजमान (श्यावः) ज्ञानी और वीर पुरुष (तिसृणां सप्ततीनां) ७०/७० की तीन पंक्तियों का (प्रणेता) मुख्य नायक होकर (दियानां पतिः) करप्रद प्रजाओं का पालक और (वसुः भुवत्) 'वसु' हो जाता है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[ २० ]

सोमरिः काण्व ऋषिः । मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७, १९, २३ उष्णिक् ककुप् । ६, १३, २१, २५ त्रिचूडुष्णिक् । ३, १५; १७ विरा-



दुष्णिक् । २, १०, १६, २२ सतः पंक्तिः । ८, २०, २४, २६ निचूद्  
पंक्तिः । ४, १८, विराट् पंक्तिः । ६, १२ पादनिचूत् पंक्तिः । १४ आर्ची  
भुरिक् पंक्तिः ॥ षड्विंशर्चं सूक्तम् ॥

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो मापं स्थाता समन्यवः ।  
स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (आ गन्त) आप लोग आवो !  
(मा रिषण्यत) पीड़ित मत करो । हे (प्रस्थावानः) प्रधान पद पर  
स्थित पुरुषों ! हे (समन्यवः) समान क्रोध वा ज्ञान वाले वीरो ! आप  
लोग (मा अप स्थात) दूर २ मत रहो । आप लोग (स्थिरः चित्) स्थिर,  
बहुत देर के जमे हुए शत्रुओं को भी (नमयिष्णवः) झुकाने  
में समर्थ होवो ।

वीडुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।

इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले ! हे (ऋभुक्षणः) महान् बल वाले ! हे (रुद्रासः) दुष्टों को खलाने वाले ! हे (पुरु-स्पृहः) बहुत प्रजावर्गों के प्रेमी ! हे (सोभरीयव) उत्तम पालक नायकों को चाहने वाले ! आप लोग (वीडुपविभिः) दृढ़ शस्त्रों, चक्रधाराओं और (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से युक्त होकर (अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इषा आ गत) सुभिक्ष और सुवृष्टिसहित पवनों के समान (आ गत) प्राप्त होवो ।

त्रिधा हि रुद्रियाणां शुष्मं मृगं मरुतां शिमीवताम् ।

विष्णारिषस्य मीलूहुषाम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे (रुद्रियाणां) जनता में फैले रोगों को वेग से उड़ा लेने वाले प्रचण्ड (मरुतां शिमीवताम्) वातों और कर्मकारी यन्त्रादिः

सञ्चालक वेगों का (उग्रं शुष्मम्) बड़ा बल होता है, वैसा ही (पृथ्व्यः) अमिलवणीय (विष्णो) सब ओर विशेष बरसने वाले जल को (मीढुषां) वृष्टि रूप से भूमि पर सेचने वाले वायुओं के तुल्य (रुद्रियाणां क्षिमी-वताम् मरुताम्) भव-पीड़ाओं के नाशक गुरुओं के क्षिप्यों और (क्षमीवताम्) कर्मनिष्ठ विद्वानों के उग्र बल को और (विष्णोः पृथ्व्यः) सूर्य के प्रेरक तत्त्व को (विद्महि) जाने ।

वि द्वीपानि पापतन्ति दुच्छुनो मे युजन्त रोदसी ।

प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेज्यं स्वभानवः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे वायुगण, (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों में घूमते, (उमे रोदसी) आकाश और पृथ्वी को (दुच्छुना) दुःख क्षोभ से युक्त करते हैं और (तिष्ठत्) भूमिस्थ वृक्षों को (दुच्छुना) दुःखदायी पतनादि से युक्त करते हैं । वे (स्वभानवः) कान्ति से युक्त (शुभ्र खादयः) शुभ्र दीप्ति वाले होकर (धन्वानि ऐरत) जलों को नीचे गिराते हैं ऐसे ही हे विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों को विजयादि के लिये जाओ (उमे रोदसी) स्वपक्ष परपक्ष दोनों को (दुच्छुना युजन्त) दुःख, शोक, क्षोभ से युक्त करते रहो । आप (स्व-भानवः) स्वयं की दीप्ति से युक्त, (शुभ्र-खादयः) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्गादि वाले (यत् एज्यः) जब जाते हो तो (धन्वानि प्रा ऐरत) धनुषों को आगे बढ़ाओ और जलधाराओं को चलाओ ।

अच्युता चिद्धो अज्मन्ना नानंदति पर्वतासो वनस्पतिः ।

भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जैसे पवनों के चलने पर (पर्वतासः अच्युतासः वनस्पतिः भूमिः रेजते) दृढ़ पर्वतवत्, मेघ गर्जते, वनस्पति और भूमि कांपती है, वैसा ही हे वीरो ! (वः अज्मन् यामेषु) आपके संग्राम में प्रयाणः



होने पर (अच्युता चित् पर्वतासः) दृढ़ पर्वत भी (आ नानदति) प्रतिध्वनि करते हैं। (वनस्पतिः) वन के स्वामी वृक्षोंवत् ऐश्वर्यपालक शत्रु और (भूमिः) भूमि भी (रेजते) कांपती है। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीति उत्तरा वृहत् ।

यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे वायुओं के (अमाय यातवे) बलपूर्वक जाने के लिये (द्यौः उत्तरा वृहत् जिहीते) ऊपर का आकाश बीच के बड़े अन्तरिक्ष को देता है, वैसे ही हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने में निपुण वीर पुरुषो ! (वः अमाय) आप लोगों के बल प्रयोग के लिये और (यातवे) युद्धार्थ प्रयाण करने के लिये (उत्तरा द्यौः) सर्वोपरि शासक शक्ति, (वृहत्) बड़ा स्थान वा पद (जिहीते) दे, (यत्र) जिस पर स्थित होकर (बाह्वोजसः) बाहुओं में बल पराक्रम धारने (नराः) नायक लोग (तनूषु) अपने शरीरों पर (त्वक्षांसि) जरावत्कर वा दीसियुक्त पदक आदि (आ देदिशते) धारण करते हैं।

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।

वहन्ते अहुतप्सवः ॥ ७ ॥

भा०—वे (नरः) नायक वीर (त्वेषाः) तीक्ष्ण कान्तियुक्त (अमवन्तः) बलवान्, (वृषप्सवः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर के, और (अहुतप्सवः) सरल प्रकृति वाले, निष्कपट होकर (स्वधाम अनु) अपने सामर्थ्य अनुसार (महि श्रियम् वहन्ते) बड़ी राजलक्ष्मी धारण करते हैं।

गोभिर्वाणो अज्यन्ते सोमरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।

गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्पर्से नु ॥ ८ ॥

भा०—(सोमरीणां) प्रजा के उत्तम रीति से पालक क्षत्रियों और

राजाओं के (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि से पूर्ण खजाने में (गोभिः) भूमियों द्वारा (वाणः) देने और लेवने योग्य ऐश्वर्य (अज्यते) प्राप्त किया जाता है और (हिरण्यये) तेजोमय आत्मा के (कोशे रथे) आनन्द-मय, विज्ञानमय, प्राणमय, मनोमय, अक्षमय रथवत् बने कोश अर्थात् देह में (गोभिः) इन्द्रियों सहित (वाणः) भोक्ता आत्मा (अज्यते) प्रकट होता है। (गोभिः वाणः अज्यते) वाणियों से शब्द ज्ञानमय रस प्रकट होता है।

प्रति वो वृषदक्षयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।

हव्या वृषप्रयावणे ॥ ६ ॥

भा०—(वृषद्-अज्ययः) बरसते मेघों से प्रकट होने वा उन सहित आने वाले पवन जैसे वर्षा करने वाले मेघ के वायु लिये जलराशि धारण करते हैं। वैसे ही हे (वृषद्-अज्ययः) प्रजा पर सुखों के वर्षक, प्रबन्धकारक, विशेष स्वरूप वाले वीर पुरुषो ! (वः) आप में से वा अपने बीच में विद्यमान (वृष्णे) बलवान्, (शर्धाय) शत्रुहंसक शस्त्रास्त्र बल के धारण में समर्थ क्षत्रपति (मारुताय) मनुष्यों के हितैषी, (वृष प्रयावणे) बलवान् पुरुषों के साथ प्रयाण करने वाले सेनापति की वृद्धि के लिये (हव्यः) उत्तम स्तुत्य वचन और आवश्यक अन्न, धनादि नाना पदार्थ (प्र भरध्वम्) लाओ।

वृषणाश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।

आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो व्रतिये गत ॥ १०।३७

भा०—हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (श्येनासः पक्षिणः न) बाज नाम के पक्षी जैसे वेग से जाते हैं वैसे ही आप लोग (वृषणाश्वेन) बलवान् अश्व वाले (वृषप्सुना) सुदृढ़ रूप वाले, (वृषनाभिना) सुदृढ़ चक्रनाभि वाले (रथेन) रथ से (वृथा) अनायास ही (नः व्रतिये) हमारी



रक्षा के लिये (हव्या आ गत) यज्ञों, युद्धों में आया जाया करो ।  
इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु ।  
द्विद्युतत्यृष्टयः ॥ ११ ॥

भा०—(एषां) इन वीर पुरुषों के (अञ्जि) रूप, पोशाक और चिह्नदि सब (समानम्) समान हों । (बाहुषु अधि) बाहुओं पर (रुक्मासः) सुवर्णीय, बैज (वि भ्राजन्ते) विशेष चमकें और (बाहुषु) बाहुओं में ही (ऋष्टयः) शत्रुनाशक शस्त्र भी (द्विद्युतति) चमकें ।

त उग्रासो वृषण उग्रवाहवो नकिंष्टनूषु येतिरे ।

स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥ १२ ॥

भा०—(ते) वे (उग्रासः) भयानक, (वृषणः) बलवान्, (उग्र-वाहवः) प्रचण्ड बाहुबल वाले, वीर पुरुष (तनूषु) शरीरों के निमित्त (नकिः येतिरे) कोई श्रम न करें । इनको आजीविका के लिये अन्य यत्न आवश्यक नहीं । (रथेषु) उनके रथों पर (धन्वानि आयुधा) धनुष आदि हथियार (स्थिरा) स्थिर हों । हे वीर पुरुषो ! (नः अनीकेषु अधि) आप की सेनाओं के आधार पर ही (श्रियः) राष्ट्र की लक्ष्मियां स्थिर हैं ।

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतमेकमिन्द्रजे ।

वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥

भा०—(पित्र्यं वयः न) जैसे पिता पितामह का सञ्चित अन्न वा (अर्णः न सप्रथः) जल के समान विस्तृत धन (एकम् इत् मुजे) एक भी प्रजा के भोग के लिये पर्याप्त होता है वैसे ही (येषाम्) जिन वीरों के (अर्णः न) सागर के जल के समान धन, (सप्रथः नाम) विख्यात, शत्रुओं को छुकाने वाला अपार बल, (त्वेषं) तेज और (पित्र्यं वयः) पिता, वा राष्ट्रपालक होने योग्य पिता तुल्य वयस्, उमर और रक्षा

बल तथा (सहः) पराक्रम है, उनको—

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।

अराणां न चरमस्तदेषां दाना म्हा तदेषाम् ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रजाजन ! (तान् मरुतः) उन बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को (वन्दस्व) आदर सत्कार कर (तान् उप स्तुहि) उनकी स्तुति कर । (तेषां हि) उन शत्रुओं के (धुनीनाम्) कंपा देने वाले वा शास्त्र के उपदेष्टाओं और (अराणां) चक्र में लगे अरों, दण्डों के तुल्य व्यूह में बद्ध, अर्थात् स्वयं गमन करने और औरों को आगे ले जाने वालों में से (चरमः न) कोई भी व्यक्ति चरम या अधम नहीं । (एषां दाना तत्) उनके दिये ज्ञान, दान, ऐश्वर्यादि और वे शत्रुनाश आदि नाना कार्य सब (एषाम् म्हा) इनके ही महान् सामर्थ्यों से होते हैं ।

सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वसु मरुतो व्युष्टिषु ।

यो वा नूनमृतासति ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(उत) और (यः वा) जो मनुष्य है (मरुतः) वीरो, विद्वानो ! (नूनम्) अवश्य (पूर्वसु व्युष्टिषु) पूर्व अर्थात् प्रारम्भ के दिनों, वा ब्रह्मचर्य पालन के वयस् में (वः ऊतिषु) आप लोगों की रक्षाओं में (आस) पहुँच जाता है, (उत असति) वा निरन्तर रहता है (सः सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्य युक्त, सुखी, होता है । इत्यष्टान्निशो वगः ॥

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ ।

अभि ष ह्यैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥ १६ ॥

भा०—हे (नरः) वीर नायक जनो ! (वा) और (यस्य वाजिनः) जिस बलवान्, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की (वीतये) रक्षा के लिये (यूयं) आप लोग (वाजिनः) बलशाली होकर (हव्या प्रति आ गथ) अन्नों, युद्धोप-योगी पदों और हथियारों को प्राप्त करते हो, हे (धूतयः) शत्रु-कंपक



वीरो ! और हे रागादि त्यागने वाले विद्वानो ! (सः) वह (द्युम्नैः) नाना ऐश्वर्यों और (वाज-सातिभिः) ज्ञान, बलादि की वाणियों सहित (वः सुम्नानि अभिनशत्) आप लोगों के सुखों को प्राप्त करता है ।

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः ।

युवानस्तथेदसत् ॥ १७ ॥

भा०—(रुद्रस्य सूनवः) गर्जना वाले मेघ के प्रेरक वायुगण जैसे (असुरस्य वेधसः) जलप्रद मेघ को उत्पन्न करते और (दिवः वशन्ति) अन्तरिक्ष पर वश, वा भूमि को कान्तियुक्त करते हैं वैसे ही (रुद्रस्य) दुष्टों को हलाने वाले राजा के (सूनवः) सञ्चालक और (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले और प्रजाओं को जीवनवृत्ति देने वाले राजा को (वेधसः) बनाने वाले विद्वान् और (युवानः) बलवान् पुरुष (दिवः यथा वशन्ति) भूमि या राजसभा की जैसा नियन्त्रण करते या जैसी कामनाएं चाहते हैं (तथा इत् असत्) उसी प्रकार हो ।

ये चाहन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मील्लुहुषश्चरन्ति ये ।

अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान् आ ववृध्वम् ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (सु-दानवः) दानशील (मरुतः) मनुष्य (मील्लुपः) धनदाता, वीर्यादि के सेक्ता माता पिता, स्वामी आदि की (अहन्ति) पूजा करते हैं और (ये च स्मत्) जो अच्छी प्रकार (चरन्ति) आचरण करते हैं वे (युवानः) युवा पुरुष (अतः चित्) इसी प्रकार (वस्यसा हृदा) उत्तम हृदय से (नः उप आ ववृध्वम्) हमें आप लोग प्राप्त होओ ।

यून ऊं धु नविष्ठया वृष्णाः पावकां समि सोभरे गिरा ।

गाय गा इव चर्कषत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सोभरे) उत्तम रीति से पालन करने वाले ! हे उत्तम

ज्ञान देने हारे गुरो ! विद्वन् ! जैसे (चर्कृपत्) खेती करने द्वारा (गा-  
इव) बैलों वा भूमियों को, वा (वृष्णः अभि) बरसते बादलों को देख-  
कर, (गिरा) वाणी से उनकी (गायति) स्तुति करता है वैसे ही तू भी  
(गाः इव चर्कृपत्) शिष्यों को भूमियों के तुल्य ज्ञान ग्रहण कराता  
हुआ (वृष्णः) बलवान् (पावकान्) पवित्र आचार वाले तेजस्वी (यूनः)  
युवा पुरुषों के (अभि) प्रति (नविष्टया गिरा) अति स्तुत्य वाणी से  
उन्हें (अभि गाय) उपदेश कर ।

साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।

वृष्णाश्चन्द्रान् सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अहं ॥२०॥३६॥

भा०—(विश्वासु पृत्सु) जैसे समस्त युद्धों में या समस्त (हीतृषु  
पृत्सु) ललकारने वाले मनुष्यों में (मुष्टिहा इव हव्यः) मुक्के से वा  
मुट्टी के समान पाँचों जनों को मिलाकर संघ शक्ति से शत्रु को मारने  
वाला उत्तम युद्धकुशल होता है वैसे ही (ये) जो (विश्वासु पृत्सु) सब  
संग्रामों या सब मनुष्यों में, (हीतृषु) गुरुजनों के अधीन (सहाः सन्ति)  
शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं उन (वृष्णः) बलवान् (चन्द्रान्)  
प्रजाओं को प्रसन्न रखने वाले, (सुश्रवस्तमान्) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी  
(मरुतः) वीरों, विद्वान् पुरुषों को (अहं) भी (वन्दस्व) स्तुति, आदर  
प्रदान कर । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

गावांश्चिद्धा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।

रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥

भा०—जैसे (गायः चित् सजात्येन मिथः रिहते) गौवं एक जाति  
की होने से प्रेम से एक दूसरे को चाटती है, और जैसे (मरुतः ककुभः  
रिहते) सजल वायुगण दिशाओं का स्पर्श करते हैं वैसे ही हे (मरुतः)  
वायुवत् बलवान्, शत्रुनाशक, राष्ट्र के प्राणवत् पुरुषो ! आप लोग



(गावः चित्) गौओं के तुल्य परस्पर प्रेमी और किरणों के तुल्य तेजस्वी होकर (स-मन्यवः) ज्ञानयुक्त एवं (सः-जात्येन) एक देश में, एक ही समान उत्पन्न होने से (स-बन्धवः) बन्धु वर्ग सहित होकर (मित्रः) परस्पर मिलकर (ककुभः) दिशाओं के समान गुणों में विशाल होकर (रिहते) एक दूसरे के साथ स्नेह का वर्त्ताव करें।

मर्ताश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उपा भ्रातृत्वमायति ।

अधि नो गात मरुतः सदा हि च आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥ २२ ॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वा वायुवत् प्रबल होकर शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ वीर पुरुषो ! हे (नृतवः) उत्तम मार्ग में ले जाने वाले नायक जनो ! हे (रुक्म-वक्षसः) वक्षः-स्थल पर सुवर्ण-हार आदि आभूषण धारण करने वाले वीर पुरुषो ! (मर्तः चित्) साधारण मनुष्य भी (वः भ्रातृत्वम् उप आयति) आप लोगों का भ्रातृत्व प्राप्त करता है और (हि) क्योंकि (वः) आप लोगों का (आपित्वम्) परस्पर-बन्धुत्व (निध्रुवि) नित्य ध्रुव राजा के अधीन, राष्ट्र में (अस्ति) है अतः आप लोग (नः) हम लोगों पर (अधि गात) अध्यक्ष होकर शासन करो ।

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।

यूयं संखायः सप्तयः ॥ २३ ॥

भा०—वायुएं जैसे हमें प्राण-सम्बन्धी, रोगनाशक सामर्थ्य देते हैं वैसे ही हे (मरुतः) वीर और विद्वान् पुरुषो ! (संखायः) परस्पर मित्र, (सप्तयः) वेग से जाने आने वाले, अश्ववत् तीव्रगामी, (सु-दानवः) उत्तम दानशील होकर (मारुतस्य भेषजस्य) मरुत् अर्थात् वायुओं से प्राप्त होने योग्य, नाशक उपाय के समान वीर पुरुषों से प्राप्त होने योग्य शत्रुनाशक उपाय को (नः आवहत) हमें प्राप्त कराओ ।

याभिः सिन्धुमवन्थ याभिस्तर्वन्थ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।

मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिर्सचद्विषः ॥ २४ ॥

भा०—जैसे वायुगण वा प्राण (सिन्धुम् अवन्ति) अन्तरिक्ष, वा देह में रक्तप्रवाह की रक्षा करते, (तर्वन्ति) रोग नाश करते, (क्रिवि दशस्यन्ति) कर्त्ता आत्मा को बल देते, (शिवाभिः ऊतिभिः मयोभुवः) गतियों से नाना सुख देते हैं, वैसे ही हे वीरो ! विद्वान् पुरुषों ! आप लोग (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा-साधनों से (सिन्धुम्) समुद्र के तुल्य गंभीर सेनापति वा सैन्य-समूह को (अवन्थ) रक्षा करते हो और (याभिः तर्वन्थ) जिन उपायों से शत्रुओं का नाश करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (क्रिवि दशस्यन्थ) जलाशय आदि प्रदान करते हो, उन (शिवाभिः ऊतिभिः) कल्याणकारी क्रियाओं से (मयोभुवः) सुखोत्पादक आप लोग (असचद्विषः) समवाय-रहित शत्रुओं वाले होकर (नः मयः भूत) हमारे लिये सुखकारी होवो ।

यत्सिन्धौ यदसिक्न्थां यत्समुद्रेषु मरुतः सुवर्हिषः ।

यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (सु-वर्हिषः) उत्तम यज्ञ और ओषधियों वाले (मरुतः) पुरुषों ! (यत्) जो (भेषजम्) रोगनाशक पदार्थ (सिन्धौ) नदी प्रवाह में और यत् (असिक्न्थां) रात्रि काल में, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रों में और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों में हैं उनको (भावहत) प्राप्त कराओ ।

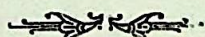
विश्वं पश्यन्तो विभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।

क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्त्ता विहृतं पुनः ॥ २६।४०।१।३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषों ! हे (मरुतः) प्राणवत् सुखकारी जनो ! आप लोग (तनूषु) शरीरों में (विश्वं पश्यन्तः) विश्व को ज्ञानपूर्वक देखते हुए (विभृथ) समस्त प्राणी वर्ग वा देह में आत्मा को धारण



कराओ । (तेन पश्यन्तः) उसे ज्ञान पूर्वक देखें, विवेक से (न अधि-  
 वोचत) हमें उपदेश करो । (नः) हममें से (आतुरस्य) व्याधिपीडित  
 मनुष्य के (रपः) दुःखदायी कारण की (क्षमा) क्षान्ति हो और (नः)  
 हमारे शरीरों में (वि-हृतम्) विपरीत भाव से प्राप्त अङ्गों में कुटिल  
 भाव हो तो उसे (पुनः इष्कर्त्ता) फिर से ठीक कर दो । इति चत्वारिंशो  
 वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले तृतीयोऽनुवाकः ॥ इति पष्ठेऽष्टके प्रथमोऽ-  
 ध्यायः समाप्तः ॥



## द्वितीयोऽध्यायः । चतुर्थोऽनुवाकः

[ २१ ]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ १—१६ इन्द्रः । १७, १८ चित्रस्य दानस्तुति-  
 देवता ॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक् । १३, १७ निचृदुष्णिक् ।  
 ५, ७, ९, ११ उष्णिक् ककुप् । २, १२, १४ पादनिचृत् पंक्तिः । १०  
 विराट् पंक्तिः । ६, ८, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ४ भुरिक् पंक्तिः ॥

वयमु त्वामपूर्य स्थूरं न कच्छिद्भरन्तोऽवस्यवः ।

वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे (अपूर्य) अपूर्ण ! सबसे अधिक पूर्ण ! (वयम् उ) हम  
 लोग (अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान, प्रेम और आनन्द को चाहते हुए  
 और (स्थूरं क्त् चित्) किसी बड़े आश्रय को (न भरन्तः) न धारण  
 करते हुए (वाजे) संग्राम और ऐश्वर्य के लिये (चित्रं) आश्रयकारक  
 (त्वा) तुझ प्रभु को (हवामहे) पुकारते हैं ।

उप त्वा कर्मभूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।

त्वामिद्वयवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (धृपत्) दुष्टों को परा-  
जित करने वाला, (युवा) बलवान् और (उग्रः) भयंकर होकर (नः  
चक्राम) हमें प्राप्त होता है, उस (त्वा) तुझको हम (ऊतये) रक्षा के  
लिये (कर्मन्) प्रत्येक कार्य में (उप ववृमहे) स्वीकार करते हैं और हे  
(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम (सखायः) मित्रजन (सानसिस्) सेवा योग्य,  
उपास्य (त्वाम् इत्) तुझको ही (अवितारं) रक्षक रूप से (ववृमहे)  
वरण करते हैं ।

आ याहीम इन्द्रोऽश्वपते गापत् उर्वरापते ।

सोम सोमपते पिव ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्व-पते) इन्द्रियों और लोकों के पालक ! स्वामिन् !  
हे (गो-पते) गौवों, वाणियों और भूमियों के पालक ! हे (उर्वरा-पते)  
उत्पादक भूमि के स्वामिन् ! हे (सोम-पते) उत्पन्न अन्न ओषधिवत्  
शिष्यपुत्रादि एवं जगत् के पालक ! आत्मन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (आ-  
याहि) आ, प्राप्त हो, (इमे इन्द्रवः) ये ऐश्वर्य वा, स्नेहयुक्त प्रजाजन  
हैं तू उनका (पिव) पालन कर ।

वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।

या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (वयं विप्रासः) हम  
विद्वान् लोग (अबन्धवः) बिना बन्धु के, निःस्सहाय वा बन्धनरहित,  
(बन्धुमन्तं त्वा) बन्धु वाले तुझको ही (येमिम) अपने साथ बांधते हैं ।  
हे (वृषभ) बलशालिन् ! (या ते धामानि) जो तेरे नाना धारण सामर्थ्य,  
तेज हैं तू (तेभिः विश्वेभिः) उन सबों से (सोमपीतये) ऐश्वर्य वा जगत्  
के पालन के लिये राजा के तुल्य, ओषधि रसवत् आत्मानन्दरस पान  
कराने के लिये (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।



सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।

अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यथा वयः) जैसे पक्षीगण (गो-श्रीते = गोश्रिते) भूमि पर आश्रित वा सूर्य द्वारा परिपक्व, फलवान्, (विवक्षणे) विविध स्कन्धों वाले, वृक्ष पर, (मदिरे मधौ) आनन्दमय वसन्त में (सीदन्तः अभिनोनुवन्ति) बैठे हुए सब तरफ कलरव करते हैं वैसे ही हम भी (ते) तेरे (गो-श्रीते) वाणियों द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य, (मदिरे) हर्षजनक, (विवक्षणे) विविध प्रकार से कथनोपकथन करने योग्य (मधौ) मधुर ज्ञानमय वेद, एवं तेरे रूप में (सीदन्तः) आश्रय लेते हुए (त्वाम् अभि नोनुमः) तेरी साक्षात् स्तुति करें ।

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः ।

सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥ ६ ॥

भा०—हे (हरिवः) लोकों के स्वामिन् ! हम (त्वा एना नमसा अच्छ वदामसि) तुझे लक्ष्य कर इस विनय से प्रार्थना करते हैं । (मुहुः) बार २ तू भी (किं वि दीधयः चित्) क्या विचारता है कि भला हम क्यों तेरी स्तुति करते हैं । (कामासः सन्ति) हमारी बहुत अभिलाषाएं हैं और (त्वं ददिः) तू ही उनका दाता है । (त्वा अच्छ वयं स्मः) हम भी तेरे सन्मुख याचक हैं । (नः धियः सन्ति) हमारे उत्तम कर्म उत्तम बुद्धियाँ हैं ।

नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः ।

विद्या पुरा परीणसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन् ! (वयम्) हम लोग (ते उती) तेरी रक्षा में (नूत्ना इत्) नये ही,

सदा (अमूम) बने रहें । हे (अद्रिचः) अखण्डशक्ते ! (परीणसः) सर्व-  
व्यापक, महान् (ते) तेरे विषय में (पुरा) पहले के समान अब भी हम  
(नहि नु विद्य) कल नहीं जान पाये । तू अगम्य, महान्, असीम है ।

विज्ञा सखित्वमुत शूर भोज्यमा ते ता वज्रिनीमहे ।

उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! हम लोग (ते) तेरे (सखित्वम्)  
मित्र भाव को (विद्य) जानें (उत) और हे (वज्रिन्) वीर्यवान् ! हम  
लोग (ते) तेरे (ता) वे नाना ऐश्वर्य तथा (भोज्यं) भोग, सुख, ऐश्वर्य  
तथा बल को (ते ईमहे) तुझसे मांगते हैं । हे (वसो) सबमें बसे !  
(उतो) और हे (सु-शिप्र) उत्तम सुखप्रद तेज देने हारे, सुखमय ! तू  
(गोमति वाजे) इन्द्रियों से युक्त आत्मिक ऐश्वर्य, भूमि से युक्त ऐहिक  
ऐश्वर्य और वेदवाणी से युक्त (अस्मिन्) इस ज्ञान में (नः) हमें (शम्  
आ शिशीहि) अच्छी प्रकार अनुशासन कर ।

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (यः) जो प्रभु (पुरा) पहले भी  
(नः) हमें (इदम् इदम्) ये ये, नाना गौ, हिरण्य आदि (वस्यः) ऐश्वर्य  
(आनिनाय) देता रहा है, उसी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (ऊतये)  
उपासना करने के लिये मैं (वः स्तुषे) आप लोगों को उपदेश करता हूँ ।

ह्यैश्वं सत्पतिं चर्षणीत्सहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।

आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवां शतम् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—(सः हि स्म मघवा) वह ही निश्चय से परमैश्वर्यवान् है  
(यः अमन्दत) जो स्वयं आनन्दमय होकर संसार को आनन्दित करता  
है । (सः तु) वही, (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हममें से (स्तोतृभ्यः)



स्तुतिकर्ता उपासकों के उपकारार्थ (शतम्) अनेक (गव्यम्) गौ और (अगव्यम्) अश्वदि-सम्पन्न धन (आ वयति) निरन्तर देता रहता है । मैं उपासक भी (तं) उस (हर्यश्वं) सब मनुष्यों और लोकों में व्यापक, (सत्-पतिम्) सज्जनों और सत्-कारण, प्रकृति के पालक और (चर्षणी-सहं) मनुष्यों को सहने वाले प्रभु की (स्तुवे) स्तुति करता हूँ । इति द्वितीयो वर्गः ॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।  
संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ११ ॥

भा०—(गो-मतः) कान, आँख आदि इन्द्रियों और वाणी से युक्त, (जनस्य) मनुष्य के (संस्थे) समीप (श्वसन्तं) और श्वास लेने वाले प्रत्येक प्राणी के (प्रति) प्रति, हे (वृषभ) सुखों के वर्षक ! (त्वया ह स्विद्युजा) तुझ सहायक के साथ हम (प्रति ब्रुवीमहि) बातचीत करें । जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽमि तिष्ठेम दूढयः ।

नृमिवृत्रं हन्याम शूश्र्याम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से स्तुत ! प्रभो ! राजन् ! हम (कारिणः) संग्राम में कुशल, एवं कार्यकुशल होकर (कारे) करने योग्य कार्य के अवसर में, वा संग्राम में (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले पुरुषों को (जयेम) पराजित करें और (अमि तिष्ठेम) उनका मुकाबला करें । (वृत्रं) विघ्नकारी शत्रु को (नृभिः हन्याम) उत्तम नेताजनों से दण्डित करें और (शूश्र्याम च) हम बँदें । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों की (प्र अवेः) अच्छी प्रकार रक्षा कर ।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषां सनादांसि ।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना)

नेता रहित और (सनात) अनादि काल से (जनुषा) स्वभावतः (अनापिः असि) बन्धुरहित है । तू (युधा इत्) युद्ध द्वारा ही (आपित्वम् इच्छसे) बन्धुता चाहता है ।

नकीं रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादिपितेव ह्वयसे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (रेवन्तं) धनसम्पन्न पुरुष को (सख्याय) मित्रभाव के योग्य (नकिः विन्दसे) कभी नहीं पाता । धन सम्पन्न जन (सुराश्वः) 'सुरा', मद्य पी कर घमण्ड में फूले मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्तों को पीड़ित करते हैं और जब तू उनको (नदनुं) स्तुति करने वाला (कृणोषि) कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर ही तू उन्हें (सम् कहसि) अच्छी प्रकार अपने साथ लेता है, और (पिता इव ह्वयसे) पिता के समान पुकारा जाता है ।

मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः ।

नि सदान् सचां सुते ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(मूरासः यथा अमा-जुरः) मूढ़, मरणोन्मुख मनुष्य जैसे रोग पीड़ाओं वा जड़, गृह वा पुत्र पौत्रादि, 'अ-मा' अर्थात् अज्ञान से जीवन भर अज्ञानी रहकर बड़े हो जाते हैं, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! वैसे ही (त्वावतः ते सख्ये) तेरे जैसे, तुझ, प्रभु के मित्रभाव में रहकर हम लोग वैसे (मा) कभी न हों । प्रत्युत (सुते) ऐश्वर्य होने पर भी हम (सचा) तेरे साथ (नि सदान्) स्थिर होकर रहें । इति तृतीयो वर्गः ॥

मा ते गोदधु निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।

दृढहा चिद्वर्यः प्र सृष्टाभ्या भर न ते दामान् आदभे ॥ १६ ॥

भा०—हे (गोदधु) भूमियों, वाणियों, इन्द्रियों के दाता प्रभो ! हम (ते राधसः) तेरे दिये धन से (मा नि रराम) वञ्चित न हों । हे



(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हम (ते) तेरे होकर (मा गृहामहि) दूसरे का ग्रहण न करें । तू (अर्यः) स्वामी होकर (इदा) स्थिर धनों का (प्र मृश) प्रदान कर । (अभि आ भर) हमें उत्तम रीति से पालन कर, (ते दामानः) तेरे दान और बन्धन (न आ-दमे) कभी विनष्ट नहीं होते ।

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा दृदिर्वसु ।

त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥

भा०—हे (चित्र) आश्चर्यजनक शक्ति वाले प्रभो ! तू (दाशुषे) दानशील उपासक को (इन्द्रः वा) ऐश्वर्यवान् के समान (घ) ही (इयत् मघं ददिः) इतना धन देता और तू (सरस्वती वा सुभगा) सौभाग्य-वती सरस्वती, उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री वा उत्तम जल वाली नदी के समान (इयत् वसु ददिः) जलवत् अपरिमित ऐश्वर्य देता है कि पारावार नहीं ।

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।

पर्जन्यैव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥ ४ ॥

भा०—(यके) जो (सरस्वतीम्) नदीवत् प्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न प्रभु के (अनु) ऊपर निर्भर हैं वे (अन्यके राजकाः इत्) और छोटे २ राजाओं के तुल्य स्वप्रकाश आत्मा है और (चित्र इत्) सबको चेतना देने वाला प्रभु (राजा) राजा तुल्य प्रकाशमान है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[ २२ ]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराट् बृहती । ३, ५ निचृट् बृहती । ७ बृहती पथ्या । २ विराट् पंक्तिः । ६, १६, १८ निचृट् पंक्तिः । ४, १० सतः पंक्तिः । २४ भूरिक् पंक्तिः । ८ अनुष्टुप् । ९, ११, १७ उष्णिक् । १३ निचृदुष्णिक् । १५ पादनिचृदुष्णिक् । १२ निचृट् त्रिष्टुप् । अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ओ त्यमंह आ रथमद्या दंसिष्ठमृतये ।

यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्याये तस्थुः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वों के स्वामीवत् जनो ! हे (सुहवा) उत्तम नाम और वचन वाले, (रुद्र-वर्तनी) दुष्टों को रक्षाने वाले सेनापतिवत् स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (यं) जिस (दंसिष्ठं) दुष्ट-नाशक और कर्म में समर्थ, (रथम्) सुखजनक रथवत् गृहस्थ पर (सूर्याये) सूर्य की कान्ति के तुल्य दीप्तिमती कन्या, वधू वा माता की (ऊतये) रक्षा के लिये (आ तस्थुः) स्थित होते हैं (ओ) हे स्त्री पुरुषो ! मैं (त्यं रथम्) उस रमण योग्य गृहस्थ रथ का (अह्ने) वर्णन करता हूँ ।

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्यम् ।

सचनावन्तं सुमतिभिः सोमरे विद्वेषसमनेहसम् ॥ २ ॥

भा०—गृहस्थ रथ का वर्णन । हे (सोमरे) प्रजा के उत्तम रीति से पोषण में समर्थ पुरुष ! मैं तुझे ऐसे उस रथ का उपदेश करता हूँ जो (पूर्व-आ-पुषम्) अपने पूर्वज जन को पुष्ट करता, उनकी वंश-वृद्धि करता है, (सु-हवं) शुण नाम वाला, (पुरु-स्पृहं) बहुतों के साथ स्नेह करने वाला, (वाजेषु पूर्यम्) ऐश्वर्यों और ज्ञानों से पूर्ण, (सचनावन्तं) आसक्ति और प्रेम से युक्त, (भुज्युं) भोगों की कामना वाला, (वि-द्वेषसम्) परस्पर के द्वेष से रहित, (अनेहसम्) पापों, अपराधों से रहित हैं, उस गृहस्थ रथ का मैं (अह्ने) उपदेश करूँ ।

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।

अर्वाचीना स्वर्वसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ३ ॥

भा०—(इह) यहां (दाशुषः) अतिथ्यादि देने वाले के (गृहं गन्तारा) गृह पर जाने वाले, (पुरु-भूतमा) बहुतों के प्रति सद्भावना वाले, (देवा) उत्तम गुणों से अलंकृत (त्या) उन दोनों (अश्विना) जिते-



इन्द्रिय स्त्री-पुरुषों को (अवसे) उत्तम रूप से प्रसन्न करने के लिये,  
(नमोभिः) अर्घ्यों, और आदर वचनों से (सु करामहे) सत्कार करें ।

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईमान्यद्वामिषयति ।

अस्मँ अच्छा सुमतिर्वा शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥

भा०—गृहस्थ रथ के दो चक्र । हे (ईर्मा) शरीर में लगे दो बाहुओं के समान (शुभः-पती) उत्तम व्रतपालक, शोभायुक्त पति-पत्नी ! (युवोः रथस्य चक्रम्) तुम दोनों के रथ अर्थात् रमणीय रथवत् गृहस्थ का एक चक्र-पुरुष, (परि ईयते) सर्वत्र बाहर जाता है और (वाम् अन्यत्) तुम दोनों में दूसरा चक्र स्त्री, केवल (इषयति) चाहना करती है । (वां सु-मतिः) तुम दोनों की उत्तम बुद्धि (धेनुः इव) गौ के समान (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हमें भली प्रकार प्राप्त हो ।

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।

परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥५॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) गृहस्थ रूप रथ है (त्रि-बन्धुरः) तीन ऋण-रूप बन्धनों के समान कायिक, मानसिक और वाचिक तीनों बन्धनों से युक्त है, इसमें (हिरण्याभीशुः) हित, रमणीय वचन ही लगाम के समान है । वह (श्रुतः) गुरुपदेशादि श्रवण की विद्या से सम्पन्न होकर (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि के सदृश (परि भूषति) सुशोभित होता है । हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले आप दोनों (तेन) उसी रथ से (आ गतम्) आओ, जाओ, संसार यात्रा करो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

दशस्यन्ता मनवे पूर्वं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।

ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तु वीमहि ॥६॥

भा०—आप दोनों (दशस्यन्ता) दानशील होकर (मनवे) मनुष्यों

के हिताथं, (पूर्वं यवं) पूर्वो से उपदिष्ट यव आदि धान्य की (दिवि) भूमि पर (वृकेण कर्षथः) हल द्वारा कृषि करो । हे (शुभः-पती) शोभा-युक्त ! हे (अश्विना) रथी-सारथिवत् पति पत्नी ! (ता) उन (वाम्) तुम दोनों को हम (सु-मतिभिः) उत्तम बुद्धियों से (प्र स्तुवीमहि) उत्तम उपदेश करें ।

उपं नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।

येभिस्तृक्षि वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञानवाली, बलवती और भजवती, बुद्धि, सेना और कृषि रूप धन के धनी स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (येभिः) जिन (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, ज्ञान और न्याय के उपायों से (त्रास-दस्यवं) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने और दुष्टों को भयदाता सैन्य बल के (तृक्षि) विजिगीषु नायक को (महे क्षत्राय) बड़े बल की प्राप्ति के लिये (जिन्वथः) बढ़ा सकते हो, आप दोनों (वृषणा) बलवान् हो-कर उन ही (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, न्यायादि मार्गों से (नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो ।

अयं वामद्विभिः सुतः सोमो नरा वृषणवसू ।

आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषणवसू) सुख की वर्षा करने वाले जनो ! हे (नरा) नायक-नायिका जनो ! (वाम्) आप दोनों का (अयम्) यह (सुतः) उत्पादित ऐश्वर्य (अद्विभिः) मेघों से उत्पादित, वा पाषाणादि से पीस कर तैयार किये अन्न के समान (अद्विभिः) अखण्ड बलों से उत्पन्न किया जाता है । आप दोनों (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (दाशुषः गृहम्) दानशील यज्ञकर्त्ता पुरुष के गृह पर (आ यातम्) आवो और (पिबतम्) उसका उपभोग करो ।



आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।

युजाथां पीवरीरिषः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् साधनों के स्वामी जनो ! हे (वृष-  
 ण्वसू) वलशाली पुरुषों के बीच बसने वाले ! आप दोनों (रथे) रथ-  
 समान सुखजनक (हिरण्यये) सुवर्ण से (कोशे) खजाने पर (आरुहतम्)  
 स्थिर होवो और (पीवरीः इपः) सम्पन्न अन्नों का (युजाथाम्)  
 प्रयोग करो ।

याभिः पक्थमवथो याभिरग्निं याभिर्वभ्रुं विजोषसम् ।

ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व-रथादि के स्वामी जनो ! आप दोनों  
 (याभिः) जिन उपायों से (पक्थम् अवथः) पके अन्न की रक्षा करते  
 हो और (याभिः) जिन उपायों से (अग्निं अवथः) अस्थिर गति वाले,  
 दीन जन की रक्षा करते हो और (याभिः) जिन उपायों से (वि-जोष-  
 सम्) विशेष प्रीति-युक्त (वभ्रुं) भरण-पोषणकारी माता पितावत्  
 पालक, एवं सेवक-जन की रक्षा करते हो, (ताभिः) इन सब साधनों  
 सहित (नः) हमें (मक्षू तूयम्) शीघ्रातिशीघ्र (आ गतम्) आओ और  
 (यत् आतुरम्) जो पीड़ित जन हो उसके (भिषज्यतम्) दुखों को दूर  
 करो । इति पद्यो वर्गः ॥

यदग्निगावो अग्निगू इदा चिदहो अश्विना हवामहे ।

वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्नि-गू) इन्द्रियों पर अधिकार करने वाले ! हे  
 (अश्विना) अश्ववत् वेगवान् मन पर वश करने वाले जनो ! (यत्) जब  
 हम (अग्नि-गावः) वाणियों पर वशी (विपन्यवः) स्तुतिकर्ता हों ।  
 (अहः चित् इदा) दिन के उसी समय में आप दोनों की (गीर्भिः हवा-  
 महे) वाणियों से स्तुति करें, आपको आदर से बुलावें, उपदेश करें ।

तामिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वसुं विश्ववार्यम् । इषा  
मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्तामिरा गतम् ॥ १२

भा०—हे (वृषणा) बलवान्, मेघ-पवनवत् स्त्री पुरुषो ! आप  
(विश्व-सुं) नाना रूप के (विश्ववार्यं) सब साधनों से युक्त कष्टवारक,  
(मे हवं) मेरे यज्ञ को (ताभिः) उन शक्तियों-सहित (आयातम्) आओ  
(याभिः) जिनसे आप दोनों (इषा) इच्छावान्, (मंहिष्ठा) दानशील  
(पुरुभूतमा) अधिक सामर्थ्यवान् (नरा) नायक होकर (क्रिविं वावृधुः)  
शत्रुनाशक स्वामी की वृद्धि करते हों, (ताभिः) उन सहित ही (आ  
गतम्) आओ ।

ताविदा विदहानां तावशिवना वन्दमान उप ब्रुवे ।

ता ऊ नमोभिरीमहे ॥ १३ ॥

भा०—(अहानां इदा चित्) दिनों के वर्तमान काल में, सदा, (तौ)  
उन दिनों की मैं स्तुति करूँ और (तौ अश्विनौ) उन दोनों जितेन्द्रिय  
स्त्री-पुरुषों को (वन्दमानः) नमस्कार करता हुआ (उप ब्रुवे) उनके पास  
वचन कहूँ । (नमोभिः) हम आदर वचनों से (ता उ ईमहे) उनसे  
प्रार्थना करें ।

ताविद्वोषा ता उपसि शुभस्पती ता यामनुद्रवर्तनी ।

मा नो मर्तीय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥ १४ ॥

भा०—(तौ इत् दोषा) वे दोनों रात्रि में, (ता उपसि) वे दोनों,  
प्रभात में, (शुभः-पती) शुभ गुणों, कर्मों, शोभा और अन्न जलादि के  
पालक पति-पत्नी हों । (यामन्) मार्ग में, वा नियम-व्यवस्थाओं में  
(ता) वे दोनों (रुद्र-वर्तनी) दुष्टों को रलाने, और उपदेष्टा के समान  
उत्तम व्यवहार वाले हों । हे (वाजिनीवसू) बल, ज्ञान, अन्नादि युक्त  
प्रजा के धनी जनो ! हे (रुद्रौ) दुष्टों को रलाने वाले ! आप दोनों (नः)



हमें (रिपवे मर्त्याय) पापी मनुष्य के लाभ के लिये (मा अति व्ययतम्) मत परित्याग करें ।

आ सुगम्याय सुगम्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।

हुवे पितेव सोमरी ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सक्षणी) एक साथ रहने वाले, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप (प्रातः) प्रातःकाल, (सुगम्याय) सुख प्राप्ति के लिये (सुगम्यं) सुखपूर्वक (रथेन) रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ से (आ) जीवन व्यतीत करो । मैं (सोमरी) उत्तम रीति से पोषण करने वाला (पिता इव) पिता के समान तुम दोनों को (हुवे) उपदेश करता हूँ । इति सप्तमो वर्गः ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मनुङ्गमाभिरूतिभिः ।

आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥

भा०—हे (मनो-जवासा) मन के वेग से जाने वाले, (वृषणा) वीर्यसेचन में समर्थ, पूर्ण युवा, (मदच्युता) शत्रुओं के मद को दूर करने में समर्थ और (पुरुभोजसा) बहुतों के रक्षक आप दोनों (अस्मे अवसे) हमारी रक्षा के लिये, (पूर्वीभिः) पूर्व विद्यमान, बल से पूर्ण (मधु-गमाभिः) अति वेग से जाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं सहित (आरात्ताच्चित्) हमारे अति समीप और दूर भी (भूतम्) होवो ।

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं वधुपातमा नरा ।

गोमदस्त्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (मधु-पातमा) मधुर अन्न आदि पदार्थों के उपभोग करने वाले (नरा) स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (अश्वावत्) अश्वों, (गोमद्) गौओं और (हिरण्यवत्) सुवर्ण से समृद्ध (वर्त्तिः) गृह में (आ यासिष्टम्) आओ, आतिथ्य स्वीकार करो ।

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्टु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।

अस्मिन्ना वांसायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥१८॥८

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्य सम्पन्न, विद्या, सेना, कृषि, राज्यलक्ष्मी आदि के धनी स्त्री पुरुषो ! हम लोग (रक्षस्विना अनाधृष्टं) 'रक्षस्' अर्थात् दुष्ट जनों के सर्दार द्वारा किये बलात्कार से न पराजित, (सुष्टु) उत्तम (वार्य) धन और (सु-प्रावर्ग) शत्रुओं को वर्जने वाला (सु-वीर्य) उत्तम बल युक्त, सैन्य और (वासू सायाने) आप दोनों के आ जाने पर (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (विश्वा वामानि) समस्त उत्तम पदार्थ हम लोग (आ धीमहि) धारण करें । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[ २३ ]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ३, १०, १४—१६, १६—२२, २६, २७ निचृदुष्णिक् । २, ४, ५, ७, ११, १७, २५, २६, ३० विराडुष्णिक् । ६; ८, ९, १३, १८ उष्णिक् । १२, २३, २८ पाद-निचृदुष्णिक् । २४ आर्ची स्वराडुष्णिक् । त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम् ।

चरिष्णुधूममगृभीतशोचिपम् ॥ १ ॥

भा०—जैसे अग्नि (प्रतीव्यः) प्रत्यक्ष में कान्तियुक्त (जातवेदाः) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान, (चरिष्णु-धूमः) फैलने वाले धूम वाला, (अगृभीत-शोचिः) न स्पर्श करने योग्य ज्वाला वाला होता है वैसे ही ! हे मनुष्य ! तू (प्रतीव्यं) कान्तिमान्, तेजोमय (जातवेदसम्) पदार्थों को जानने वाले, (चरिष्णु-धूमम्) व्यापक, सञ्चालक शक्ति वाले, (अगृभीत-शोचिपम्) अपरिचित वा प्रत्यक्ष चक्षुओं से न दीखने योग्य तेज वाले, परमेश्वर की (हि) अवश्य (ईळिष्वा) उपासना कर ।



दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा ।

उत स्तुषे विष्वर्धसो रथानाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विश्व-चर्षणे) संसार में प्रविष्ट, व्यापक एक ही महान् प्रभु को देखने वाले ! हे (विश्व-मनः) सर्वव्यापक, कामना न करने वाले ! तू (गिरा) वाणी से (वि-स्पर्धतः) विविध स्पर्द्धाएं करने वाले, ऐश्वर्यों के इच्छुक जीव को (रथानां) रमण योग्य देहों के (दामानं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् तेजस्वी परमेश्वर की (उत) भी (स्तुषे) स्तुति कर ।

येषामाबाध अग्मियं इपः पृक्षश्च निग्रभे ।

उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥

भा०—(अग्मियः) वेदमन्त्रों से स्तुति योग्य, (वह्निः) जगत् को धारण करने वाला, (आ-बाधः) दुष्ट पुरुषों को सब प्रकार से पीड़ित करने वाला होकर (इपः पृक्षः च) उनकी इच्छा और अन्नादि को भी (नि-ग्रभे) रोक देता, उन पर प्रतिबन्ध लगा है । वह (उप विदा) विवेक पूर्वक (वसु विन्दते) धन प्राप्त करता है ।

उदस्य शोचिरस्थादीदियुषो व्यंजरम् ।

तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणाश्रियः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) भौतिक अग्नि की ज्वाला ऊपर उठती है, वह (वि-अजरम्) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न करके दूर दूर तक फैला देती है, (तपुः-जम्भः) अग्नि का प्रताप ही मानो उसकी दाढ़ों के समान काष्ठादि को खा जाने का साधन है । वह (सु-द्युतः) उत्तम कान्ति-युक्त (गण-श्रीः) गणनीय, दर्शनीय शोभा से युक्त होता है । वैसे ही (अस्य) इस (सु-द्युतः) उत्तम कान्तियुक्त, तेजस्वी, (गण-श्रियः) अनुयायी सैन्य गण का आश्रयणीय, (दीदियुषः) देदीप्यमान, (अस्य) इस राजा वा प्रभु का (वि-अजरम्) विशेष रूप से अविनाशी

वा विविध प्रकार से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (शोचिः) तेजः (उत् अस्थात्) सर्वोपरि विराजता है। (तपुर्जन्मस्थ) शत्रुसन्तापक शस्त्रास्त्र बल ही उसकी जन्म, वा दृष्टा के समान दृष्ट शत्रुओं को हड़प जाने का साधन होता है।

उदुं तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा।

अभिल्या आसा बृहता शुशुक्निः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे नायक ! प्रभो ! राजन् ! विद्वन् ! हे (स्वध्वर) हिंसा-रहित ! प्रजापालक ! तू (देव्या कृपा) तेजोयुक्त, प्रजा को सुखद राजशक्ति से और (अभि-ख्या) स्पष्ट घोषणा करने वाली, वा प्रसिद्ध वाणी, (आसा) कान्ति, (बृहता) बड़े ज्ञान और बल से युक्त होकर (शुशुक्निः) निरन्तर अभिवत् शुद्ध, तेजस्वी और (स्तवानः) स्तुति किया जाकर वा अन्यो को आज्ञावचन कहता हुआ (उत् तिष्ठ उ) उत्तम आसन पर विराज। इति नवमो वर्गः ॥

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्देव्या जुह्वान आनुषक्।

यथा दूतो बभूथ हव्यवाहनः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे अग्नि (सुशस्तिभिः देव्या आनुषक् जुह्वानः) उत्तम स्तुतियों-सहित हव्यों का ग्रहण करता, (दूतः) तापकारी होकर (हव्य-वाहनः भवति) चरु आदि को दूर २ तक पहुँचाता है वैसे ही हे (अग्ने) राजन् ! तू भी (सु-शस्तिभिः) उत्तम शासनों द्वारा (आनुषक्) निरन्तर (देव्या जुह्वानः) राजा के ग्रहण-योग्य करो और अन्नादि पदार्थों को लेता हुआ (दूतः यथा) दूत के समान (हव्यवाहनः बभूथ) वचन और ज्ञान को पहुँचाने वाला होता है। वह तू (याहि) हमें प्राप्त हो।

अग्नि वः पूर्य्य हुवे होतारं चर्षणीनाम्।

तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुषे ॥ ७ ॥



भा०—हे मनुष्यो ! मैं (वः) आप लोगों को (चर्पणीनां) ज्ञान-द्रष्टा इन्द्रियों के (होतारं) बलदाता आत्मा के समान (चर्पणीनां) ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के (पूर्वं) पूर्व विद्यमान, ज्ञान और शक्ति से परिपूर्ण (अग्निम्) प्रभु का (वः हुवे) तुमको उपदेश करता हूँ और (तम्) उस प्रभु की मैं (अथा वाचा) इस व्यक्त वेदवाणी में (गृणे) स्तुति करता हूँ और (तम् उ वः स्तुवे) उसका ही मैं आप लोगों को उपदेश करता हूँ ।

यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् ।

मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥ ८ ॥

भा०—(क्रतावनि जने) वेदज्ञान एवं न्यायमार्ग का सेवन करने वाले मनुष्य के बीच (सुधितम्) उत्तम रीति से धारित एवं (मित्रं न) स्नेही जन के समान, प्राणरक्षक रूप से (कृपा) दया एवं जगद्-रचनादि सामर्थ्य से (अद्भुत-क्रतं) अद्भुत ज्ञान, कर्म वाले (यं) जिसकी ओर सब उपासकजन (यज्ञेभिः) उपासनाओं से (सूदयन्त इत्) प्रेमार्द्र होकर जलोंवत् क्षरित हो जाते हैं, मैं उसी का उपदेश करता हूँ ।

ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा ।

उपो एनं जुजुपुर्नमसस्पदे ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (क्रतायवः) अन्नार्थी (नमसः पदे) अन्न के पाने के लिये (क्रतावानं जुजुपुः) अन्न के स्वामी की सेवा करते हैं वैसे ही (क्रतायवः) सत्य ज्ञान के इच्छुक, पुरुष (यज्ञस्य साधनम्) यज्ञ को साधने वाले, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान के दाता, (एनं) उसकी ही (नमसः पदे) नमस्कार योग्य पद पर स्थापित करके (गिरा) वेदवाणी से (उपो जुजुपुः) उपासना करें ।

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः ।

होता यो अस्ति विद्वा यशस्तमः ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो (विष्णु) प्रजाओं में (होता) सुखों का दाता और (यज्ञः-तमः) कीर्ति में सर्वाधिक (अस्ति) है । उसी (अंगिरस्तमः) ज्ञानी, तपस्वितम पुरुष को (अच्छा) प्राप्त कर (यज्ञासः) यज्ञ और संगठित दल भी (सं-यतः सन्तु) सुसम्बद्ध हों । इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने तव त्वे अंजुरेन्धानासो बृहद्भाः ।

अभ्या इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) नायक ! स्वामिन् ! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ ! (तव) तेरे (त्वे) वे (इन्धानासः) देवीप्यमान (तविषीयवः) बलवान्, (वृषणः) मेघवत् सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करने वाले (बृहद्-भाः) बड़े २ प्रकाशों वाले, (अभ्या इव) अश्वों वा सूर्यों के समान सुदृढ़ हैं ।

स त्वं न ऊर्जा पते रुयि रास्व सुवीर्यम् ।

प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऊर्जा पते) अश्वों और बलों के स्वामिन् ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सुवीर्य) उत्तम वीर्ययुक्त (रुयि) ऐश्वर्य (रास्व) प्रदान कर । (समत्सु) संग्रामों में (नः तोके तनये) हमारे पुत्र पौत्रों के निमित्त हमारे धन की (प्र-अव) अच्छी प्रकार रक्षा कर ।

यद्वा उ विष्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि ।

विश्वेदग्निं प्रति रक्षांसि सधति ॥ १३ ॥

भा०—(यत् वै उ विष्पतिः) जब भी प्रजाओं का पालक (शितः) तीक्ष्ण, बलवान्, (सुप्रीतः) प्रसन्न होकर (मनुषः विशि) मनुष्यों के प्रजाजन के बीच विराजता है वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (विश्वा इत् रक्षांसि प्रति सेधति) समस्त राक्षसों को दूर करता है ।

श्रुद्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विशपते ।

नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥



भा०—हे (वीर विरपते) शूरवीर प्रजा के पालक ! (अग्ने) तेज-  
स्विन् ! तू (मे स्तोमस्य) मेरे स्तुत्य वचन को (श्रुष्टी) श्रवण करके  
शीघ्र (मायिनः रक्षसः) मायावी, राक्षस, दुष्ट पुरुषों को (नि दह)  
भस्म कर ।

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः ।

यो अग्नये द्वादश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (अग्नये) अग्नि में (हव्य-दातिभिः) चरु की  
आहुतियों द्वारा (द्वादश) प्रदान करता है, वैसे ही जो प्रजाजन (अग्नये)  
तेजस्वी राजा को (हव्य-दातिभिः) ग्राह्य कर आदि अंशों से (द्वादश)  
उसको प्रदान करता है (तस्य) उस पर (रिपुः मर्त्यः) शत्रु मनुष्य  
(मायया चन) माया, कुटिल बुद्धि से (न चन ईशीत) अधिकार नहीं  
कर सकता । इत्येकादशो वर्गः ॥

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षगयुरग्रीणाद्विः ।

महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥

भा०—(उक्षग्युः) जैसे जलसेचन मेघ की इच्छा करने वाला,  
(ऋषिः) तत्त्वदर्शी पुरुष (यि-अश्वः) विशेष विद्वान् होकर (वसु-विदम्)  
जीवन प्राप्त कराने वाले सूर्य या अग्नि को (अग्रीणात्) हव्यों से तृप्त  
करता है, वैसे ही (उक्षग्युः) समस्त संसार के धारक और सुखों के  
वर्षक प्रभु का इच्छुक (यि-अश्वः) विशेष आनन्द प्राप्त करने वाला  
(ऋषिः) तत्त्वदर्शी पुरुष (वसु-विदम्) समस्त ऐश्वर्यों के दाता प्रभु को  
(अग्रीणात्) प्रसन्न करे । हम (महः राये) बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त करने के  
लिये (तस् उ त्वा) उस तुझको (सम् इधीमहि) हृदय में अग्नि के  
समान प्रज्वलित करें ।

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।

आयर्जि त्वा मनवे जातवेदसम् ॥ १७ ॥

भा०—(काव्यः) क्रान्तदर्शी पुरुषों का पुत्र वा शिष्य वा स्वयं कवि, प्रभु का उपासक (उशनाः) कामनावान् जीव (मनुवे) मनुष्य-मात्र के कल्याणार्थ (होतारं) सुखदाता, (आर्याजिं) सब प्रकार से पूज्य (जात-वेदसं) सर्वज्ञानी (त्वा) तुझे ही (वि-असादयत्) विशेष रूप से प्राप्त करे ।

विश्वे हि त्वां सृजोषसो दूतमकृत ।

श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानेश्वर्य के दाता ! (सः-जोपसः) समान प्रीति से युक्त (विश्वे हि देवासः) सब विद्वान् जन (त्वा) तुझको (दूतम् अकृत) अपना संदेशहर, ज्ञानदाता स्वीकार करते हैं । हे (देव) देव ! तू ही (श्रुष्टि) शीघ्र (प्रथमाः) सबसे प्रथम (यज्ञियः भुवः) सर्वोत्पासक है ।

इमं घां वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः ।

पावकं कृष्णवतर्नि विहायस्म ॥ १९ ॥

भा०—(वीरः मर्त्यः) विशेष विद्वान् मनुष्य (पावकं) पवित्र करने वाले (कृष्ण-वर्त्तनिम्) पापों के नाशक वा चित्ताकर्षक मार्ग वाले, वा आकर्षणशील सूर्यादि लोकों को स्व-स्व मार्गों से संचालन करने वाले, (विहायसं) महान् आकाशवत्, व्यापक (इमं घ) इस प्रभु को ही (दूतं) उपास्य (कृण्वीत) बनावे ।

तं हुवेम यत्तुचः सुभासं शुक्रशोचिपम् ।

विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(सु-भासं) उत्तम कान्तिमान्, (शुक्र-शोचिपम्) शुद्ध प्रकाशवान्, (तस्म) उसी (विशाम् अग्निम्) प्रजाओं या देह में प्रविष्ट जीवों को नायकवत् कर्म व्यवस्था में संचालक, (अजरं) अविनाशी, (प्रत्नम्)



सदातन, (इदं) स्तुत्य प्रभु को हम (यत्-स्तु चः) स्तु च् आदि यज्ञ-साधनों के समान अपने प्राणों को संयम करके (हुवेम) उसकी उपासना करें । इति द्वादशो वर्गः ॥

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत् ।

भूरि पोषं स धत्ते वीरवचशः ॥ २१ ॥

भा०—(यः) जो (मर्तः) मनुष्य (अस्मै) इस अग्नि की (हव्य-दातिभिः) चरु की आहुतियों द्वारा (आहुतिं) आहुति, यज्ञ, (अविधत्) करता है, ऐसे ही जो (अस्मै) उस प्रभु का (हव्य-दातिभिः) स्तुत्य वचनों द्वारा (आहुतिं) प्रार्थनोपासना (अधिवत्) करता है, (सः) वह (भूरि-पोषं धत्ते) बहुत पुष्टिकारक अन्न, धन धारण करता है और (वीर-वद् यशः धत्ते) वीर पुत्रादि से युक्त यश भी प्राप्त करता है ।

प्रथमं ज्ञातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।

प्रति क्षुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (यज्ञेषु अग्निं प्रति हविष्मती क्षुग् नमसा प्रति एति) यज्ञों में अग्नि को लक्ष्य कर हविष्य युक्त क्षुक्, चमसा नमस्कारयुक्त मन्त्र से आता है वैसे ही (यज्ञेषु) उपास्य एवं सत्संग-योग्य जनों में (पूर्व्यम्) पूर्व एवं ज्ञानशक्ति आदि में पूर्ण (प्रथमं) सबसे प्रथम विद्यमान (ज्ञातवेदसम्) सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर (हविष्मती) ज्ञान से युक्त (क्षुक्) बुद्धि, वाणी (नमसा) आदरपूर्वक (प्रति एति) प्राप्त होती और उसका ज्ञान करती है ।

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्चत् ।

मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥

भा०—हम (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेज वाले, प्रकाशस्वरूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (व्यश्चत्) विशेष संयतेन्द्रिय वा ज्ञानवान्

होकर (ज्येष्ठाभिः) सर्वश्रेष्ठ (महिष्ठाभिः) अतिपूज्य, ज्ञानप्रद (आभिः) इन (मतिभिः) वाणियों, बुद्धियों से (विधेम) उपासना करें ।

नूनमर्चं विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् ।

ऋषे वैयश्व दम्यायाम्नये ॥ २४ ॥

भा०—हे (वैयश्च ऋषे) जितेन्द्रिय ! ज्ञानदर्शिन ! तू (दम्याय अग्नये) गृह में स्थापना योग्य गार्हपत्याग्नि के समान (दम्याय अग्नये) सब संसार को दमन करने में समर्थ, ज्ञानवान् (विहायसे) महान् प्रभु की (स्थूर-यूपवत्) बड़े २ यूपों से युक्त यज्ञ के समान (नूनम्) अवदय (स्तोमेभिः) वेदमन्त्रों से (अर्चं) उपासना कर ।

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।

विप्रां अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥ २५ ॥ १३ ॥

भा०—(मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों में (अतिथिम्) अतिथि-वंत् पूज्य (वनस्पतीनाम्) सूर्यों और वनस्पतियों के (सूनुं) सञ्चालक, उत्पादक (प्रत्नम् अग्निम्) सनातन ज्ञानवान् प्रभु की (विप्राः) विद्वान् पुरुष (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

महो विश्वाँ अभिषतोऽभिहृद्व्यानि मानुषा ।

अग्ने नि सत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्नये) अग्नि के समान तेजस्विन् ! तू (महतः विश्वान् सतः) बड़े २ विश्वाँ और पदार्थों को (अभि सत्सि) व्यापता है । तू (मानुषा हव्या अभि सत्सि) मनुष्यों के वचनों को स्वीकार करता है । हे प्रभो ! तू (अधि बर्हिषि) इस महान् संसार में (नमसा) बड़े बल के साथ (नि सत्सि) यज्ञ में अन्नसहित अग्नि के समान विराजता है ।

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः ।

सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥ २७ ॥



भा०—हे स्वामिन् ! तू (नः) हमें (पुरु-वार्या) बहुत से उत्तमोत्तम धनादि (वंस्व) प्रदान कर और तू हमें (प्रजावतः) प्रजा का उत्पादक (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्य और (यशस्वतः) उत्तम यज्ञ, कीर्ति, बल और अन्न से सम्पन्न (नाना रायः वंस्व) अनेक ऐश्वर्य दे ।

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय ।

सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥ २८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! हे (वरो) वरणीय ! हे (वसो) सब जगत् में वसने वाले ! हे (यविष्ठ) अतिशय बलशालिन् ! (त्वं) तू सदा सब कालों (शश्वते) बहुत से (सु-साम्ने) उत्तम साम गान द्वारा स्तुतिकर्ता उपासक (जनाय) मनुष्यों के हितार्थ (रातिं) दान राशि और उत्तम ज्ञान को (चोदय) प्रेरित कर दे ।

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः ।

महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक ! उन्नति मार्ग में ले जाने हारे ! (त्वं हि) तू निश्चय से (सु-प्रतूः असि) उत्तम रीति से धनदाता है । (त्वं) तू (नः) हमें (गोमतीः इषः) इन्द्रियों या वाणी से युक्त इच्छाओं और गवादि पशु समेत अन्न, (महः रायः सातिम्) बड़े ऐश्वर्य के भाग को (अप वृधि) खोल दे ।

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।

ऋतावाना सभ्राजा पूतदक्षसा ॥ ३० ॥ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने त्वं यशाः असि) ! ज्ञानवन् ! हे तेजस्विन् ! तू यशःस्वरूप, कीर्तिमान् है । तू (ऋतवाना) सत्यनिष्ठ, (सभ्राजा) समान भाव से तेजोयुक्त, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल और ज्ञान वाले, (मित्रा-वरुणा) सर्वस्वही ब्राह्मण और 'वरुण' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष क्षत्रिय दोनों

को (महो रायः सातिम्) बड़े धन का विभाग (वह) प्राप्त करा ।  
प्रभु विद्वानों को ज्ञान का और क्षत्रियों को बल का धन देता है ।  
इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[ २४ ]

विश्वमना दैयश्च ऋषिः ॥ १—२७ इन्द्रः । २८—३० वरोः सौषाम्ण-  
स्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ११, १३, २०, २३, २४ निचृदु-  
ष्णिक् । २—५, ७, ८, १०, १६, २५—२७ उष्णिक् । ९, १२, १८,  
२२, २८, २९ विराडुष्णिक् । १४, १५, १७, २१ पादनिचृदुष्णिक् ।  
१९ आर्ची स्वराडुष्णिक् । ३० निचृदनुष्टुप् ॥ त्रिशदृचं सूक्तम् ॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुष ऊं पु वो नृत्तमाय धृष्णवे ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् (इन्द्राय)  
सर्वप्रकाशक प्रभु के (आशिषामहि) गुणों का सादर वर्णन करें । मैं  
(धृष्णवे) दुष्टों को नाश करने, जगत् को धारण करने वाले (नृत्तमाय)  
पुरुषोत्तम, सर्वश्रेष्ठ नेता की ही (वः) आप लोगों के प्रति (ऊं सु स्तुपे)  
अच्छी प्रकार स्तुति करता हूँ ।

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहृत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टनाशक ! प्रभो ! तू (वृत्रहृत्येन) प्रकृति के  
'सरिर' मय स्वरूप में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले, मेघ के  
आघातकारी विद्युत् के समान (शवसा) बल से (वृत्र-हा) 'वृत्र-हा',  
दुष्टहन्ता (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है । तू (मघैः) उत्तम २ ऐश्वर्यों से  
(मघोनः अति) बड़े २ धनवानों से भी अधिक (दाशसि) दान देता है ।

स नः स्तवान् आ भर रयि चित्रश्रवस्तमम् ।

निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥ ३ ॥



भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों व जीवों के स्वामिन् ! (सः) वह तू (स्तवानः) ज्ञान उपदेश करता हुआ, (चित्र-श्रवस्तमम्) ज्ञानप्रद एवं गुरुपरम्परा से श्रवण योग्य ज्ञान रूप (रयिं) धन (नः आ भर) हमें प्रदान कर । (यः) जो तू (निरेके) सर्वातिशायी पद पर विराजमान (वसुः चित्) सम्पूज्य, सबको बसाने हारा और (ददिः) सबका दाता है ।

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् ।

धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रियम्) प्रीतिकारी (निरेकम्) सबसे उत्तम धन (आ दर्षि) देता है । हे (धृष्णो) दुष्टों के धर्पक ! तू (धृषता) अज्ञान नाशक बल से (स्तवमानः) उपदेश देता हुआ, वा अन्यो से स्तुति किया जाता हुआ (नः आ भर) हमें धन दे ।

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः ।

न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! हे सूर्यादि लोकों के स्वामिन् ! (गविष्टिषु) वाणी द्वारा तेरी उपासना करने के अवसर में (आमुरः) अभिमुख आकर मरने वाले शत्रु भी (ते) तुझ बलवान् पुरुष के (न दक्षिणं न सव्यं हस्तं) न दायें, न बायें हाथ को (वरन्त) रोक सकते हैं । वे (गविष्टिषु न परिबाधः) वाणियों द्वारा करने योग्य यज्ञों में भी बाधा नहीं कर सकते । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ त्वा गोमिरिव व्रजं गोभिर्ऋणोभ्यद्रिवः ।

आ स्म कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार और पर्णतवत् दृढ़ पुरुषों के स्वामिन् ! (गोभिः व्रजम् इव) बैलों या अश्वों से जैसे कोई गन्तव्य

आगं को प्राप्त करता है वैसे ही मैं (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (व्रजं) प्राप्य परम शरणरूप (त्वा) तुझको ही (आ ऋणोमि) प्राप्त होता हूँ । तू (जरितुः) प्रार्थी की (कामं आ पुण स्म) अभिलाषा को पूर्ण कर और (मनः आ पुण) उसके मन को पूर्ण कर वा उसे ज्ञान से भर ।

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम् ।

उग्रं प्रणेतॄरधि पू वंसो गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्तम्) प्रकृति तत्व के सञ्चालक वा दुष्टों के नाशक, हे (उग्र) बलवान् ! हे (प्रणेतः) श्रेष्ठ नायक ! हे (वसो) जगत् को बसाने वाले ! तू (विश्व-मनसः नः) सबमें प्रविष्ट विश्वात्मा प्रभु के प्रति चित्त दिये हम लोगों की (धिया) बुद्धि कर्मानुसार (अधि गहि) हमें प्राप्त हो ।

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः ।

वसोः स्पर्हस्यं पुरुहूत राधसः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! प्रकृति तत्व के सञ्चालक ! अवर्तक ! हे (शूर) शक्तिशालिन् ! हे (पुरु-हूत) सब जनों से स्तुति-योग्य, (वयं) हम लोग (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) अति नवीन वा स्तुतियोग्य (वसोः) सबको अपने भीतर बसाने वाले (स्पृहंस्थ) अनोहर, अभिलषणीय (राधसः) धनैश्वर्य का (विद्याम) ज्ञान और लाभ करें ।

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः ।

अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृतो) सबको अपनी इच्छा पर संचालित करने वाले ! हे (पुरुहूत) बहुधा स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यथा) जैसा (ते) तेरा (शवः) बल (अपरीतं अस्ति) तुझसे कभी पृथक् नहीं होता वैसे ही



(दाशुषे) दानशील उपासक के लिये भी तेरा (रातिः) दान (अमृता) कभी नष्ट नहीं होता ।

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे ।

दृढहश्चिद् दृढ मघवन्मघत्तये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(महामह) बड़ों से बड़े ! महतो महीयान् ! सर्वपूज्य ! हे (नृ-तम) सर्वश्रेष्ठ नायक ! हे पुरुषोत्तम ! तू (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (आ वृषस्व) स्वयं बलवान् बन । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! तू (मघत्तये) ऐश्वर्य दान करने के लिये (दृढः चित्) दृढ़ से दृढ़ को (दृढ) विदीर्ण कर । उसको दयार्द्र कर । इति षोडशो वर्गः ॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः ।

मघवञ्छुग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन् ! (नः आशसः) हमारी आशाएं (त्वत् अन्यत्र चित् जग्मुः) तुझसे अन्य में भला क्योंकर जावें । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकारिणी शक्तियों से तू (नः तत् शग्धि) हमें वही आशाएं या कामनाएं प्रदान कर ।

नह्यंङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।

राये युन्नाय शर्वसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥

भा०—हे (नृतो) सर्व-नायक ! (अंग) हे (गिर्वणः) वाणी-द्वारा पूज्य ! मैं (राधसे) आराधना, (राये) ऐश्वर्य, (युन्नाय) तेज, और (शर्वसे) बल-प्राप्ति के लिये (त्वत् अन्यं) तुझसे दूसरे को (न विन्दामि) नहीं पाता हूँ ।

पन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिवाति सोम्यं मधु ।

प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥ १३ ॥

भा०—जो परमेश्वर (राधसा) अपनी आराधना और (महित्वना)

महान् सामर्थ्य से (प्र चोदयाति) जगत् और जीव संसार को अच्छी प्रकार प्रेरित करता है और जो (सोम्यं मधु) उत्पन्न होने वाले जगत्, अन्न वा जल को जीव के सदृश (पिवाति) पी लेता वा खा लेता, अपने भीतर लीन कर लेता है, उस (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (इन्दुम्) इस प्रेमाद्रं आत्मा को उसकी ओर (आ सिञ्चत) प्रवाहित कर ।

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् ।

नूनं श्रुधिं स्तुवतो अश्वस्य ॥ १४ ॥

भा०—मैं (हरीणां पतिम्) सूर्यादि लोकों और मननशील पुरुषों के पालक, (दक्षम्) पापों को भस्म करने वाले (पृञ्चन्तम्) सबके खेही, प्रभु को लक्ष्य करके (उप ब्रवम् उ) प्रार्थना करता हूँ । (नूनं) निश्चय करके (अश्वस्य) इन्द्रियों के द्वारा सुख-दुखों के भोक्ता, वा इन्द्रियादि के स्वामी (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता जीव की तू (श्रुधिं) प्रार्थना को सुन ।

नह्यंग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

नकीं राया नैवथा न भन्दना ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—(अंग) हे प्रभो ! (पुरा चन) पहले भी और अब भी (त्वत्) तुझसे अधिक (वीरतरः) बड़ा वीर, जगत् संचालक, (नहि जज्ञे) नहीं पैदा हुआ और (नकिः राया) न कोई ऐश्वर्य से (न एवथा) न ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से और (न भन्दना) न जगत् के कल्याण और सुखदायक सामर्थ्य से तुझसे कोई बड़ा है, न होगा । इति सप्त-दशो वर्गः ॥

एदु मध्वो मदित्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।

एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥ १६ ॥

भा०—(वीरः एव हि) वीर, विद्वान् (सदा-वृधः) सदा सबको बढ़ाने वाला ही (स्तवते) स्तुति योग्य है । हे (अध्वर्यो) अधिनाशिन् !



तू (अन्धसः) अन्न के समान प्राणपोषक (मध्वः) जलवत् शान्तिदायक आनन्द रस से (मदिन्तरं) अतिशय आनन्ददायक आत्मा को (आसिञ्च इत्) आ, सेचन कर, उसकी वृद्धि कर ।

इन्द्रं स्थातर्हरीणां नर्किष्टे पूर्यस्तुतिम् ।

उदानंशु शर्वसा न भन्दना ॥ १७ ॥

भा०—हे (हरीणां स्थातः) मनुष्यों वा अश्व सेनाओं के बीच सेनापति के समान सर्वोपरि स्थित ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते पूर्यस्तु-तम्) तेरी पूर्व विद्यमान और पूर्ण स्तुति को (शर्वसा) बल या ज्ञान से (नर्किः उत् आनंश) कोई प्राप्त नहीं कर सकता और (न भन्दना उत् आनंश) सुख, कल्याण और ऐश्वर्य से भी कोई नहीं बढ़ सकता ।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।

अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥

भा०—(अप्रायुभिः) मृत्यु रहित, दीर्घायु पुरुषों और (यज्ञेभिः) उपासनादि सत्कर्मों से (वावृधेन्यम्) वृद्धिशील, (वाजानां पतिम्) सबके ज्ञान, ऐश्वर्यादि के पालक उसको (नः) हम (श्रवस्यवः) कीर्ति और अन्नादि के इच्छुक होकर (अहूमहि) पुकारते हैं ।

एतोन्यिन्द्रं स्तवाम् सखायः स्तोम्यं नरम् ।

कृष्टीर्योविश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (एत उ नु) आप लोग आओ न भला, (स्तोम्यं नरं) स्तुति करने योग्य सर्वप्रणेता पुरुष की (स्तवाम्) स्तुति करें, (यः विश्वाः कृष्टीः) जो सभस्त मनुष्यों के प्रति (एक इत् अग्नि अस्ति) एक, अद्वितीय, सबके प्रति समान रूप से उपास्य है ।

अगौरुधाय गविषे दृक्षाय दस्म्यं वचः ।

घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो (अगो-रुधाय) जो पुरुष आप लोगों की वाणी पर रोक न करे और (गविषे) जो आपकी वेद-वाणी को चाहे, उस (द्युक्षाय) तेजस्वी पुरुष के लिये (घृतात् स्वादीयः) घी से भी अधिक स्वाद, शान्तिप्रद और (मधुनः च) मधु वा अन्न से भी अधिक मधुर, पुष्टिप्रद, बलप्रद, (दस्थं वचः) दर्शनीय वा ज्ञान के नाशक वचन का (वोचत) उच्चारण करो । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यस्यामितानि वीर्यानि राधः पर्येतवे ।

ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ २१ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (वीर्या अमितानि) वीर्य अपरिमित हैं और (राधः) जिनके धनैश्वर्य (पर्येतवे न) पूर्णतया जाने नहीं जा सकते और (यस्य दक्षिणा) जिनका बल और दान भी (ज्योतिः न) सूर्य प्रकाश के समान (विश्वम् अभि अस्ति) सबके प्रति समान रूप से है ।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।

अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ २२ ॥

भा०—उस (अनूर्मिम्) तरङ्गों से रहित, अगाध, (वाजिनम्) ऐश्वर्य के स्वामी, (यमम्) नियन्ता, (इन्द्रं) प्रभु को (वि-अश्ववत्) विविध इन्द्रियों से युक्त वा रहित आत्मा के समान ही (स्तुहि) स्तुति कर और (दाशुषे) भक्त को (गयं मंहमानं) प्राण, देह, गृहादि देने वाले उस स्वामी की स्तुति कर जो (अर्यः) स्वामी (वि) विविध प्रकार से ऐश्वर्य देता है ।

पुवा नूयमुपं स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।

सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (वैयश्व) विविध अश्वों, अश्वसैन्यों वा भोक्ता शासकों से युक्त सेनापति के समान, विविध अश्वों, प्राणों के स्वामिन् ! आत्मन् !



तू (नूनम्) अवश्य (दशमं) नव प्राणों के बीच दशवें और (चरणीनाम्) आचरण करने वालों में (सुविद्वांसं) उत्तम विद्वान् और (चर्कृत्यं) कार्य करने वाले कर्मवान् आत्मा की (उप स्तुहि) स्तुति व उपदेश कर ।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।

अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ २४ ॥

भा०—(शुन्ध्युः) सर्वशोधक सूर्य जैसे (परिपदाम् निऋतीनां) चारों ओर चलने वाली भूमियों के (परिवृजं वेत्ति) परिक्रमा-मार्ग को जानता है वैसे ही हे (वज्र-हस्त) शक्तिशालिन् प्रभो ! तू (अहरहः) प्रतिदिन (परिपदाम्) निरन्तर चलने वाले (निऋतीनां) लोकों के (परिवृजं) मार्ग को (वेत्थ) जानने और (शुन्ध्युः) सब दुःखों और पापों का अश्वित् शोधन करने वाला है ।

तद्विन्द्राव आ भर येना दंसिष्ट कृत्वने ।

द्विता कुत्साय शिश्रथो नि चोदय ॥ २५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (दंसिष्ट) दुष्टों और दुःखों के नाशक ! तू (येन) जिस सामर्थ्य से (कृत्वने कुत्साय) कर्म करने में तत्पर स्तुतिकर्ता भक्तजन के (द्विता शिश्रथः) इस और उस दोनों लोकों के दुःखों को शिथिल कर देता है तू (तत्) वह (अवः) रक्षा और ज्ञान हमें (आ भर) दे । (नि चोदय) हमें नित्य सन्मार्ग में प्रेरित कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तमु त्वा नूनमीमहे नव्य दंसिष्ट सन्यसे ।

स त्वं नो विश्वा अभिमांतीः स्रक्षणिः ॥ २६ ॥

भा०—हे (दंसिष्ट) दुःखों के नाशक ! (नूनं) निश्चय (त्वा तम् उ) उस पूज्य तुझ (नव्यं) स्तुति योग्य को ही (सन्यसे) सर्व वासना और बन्धनों के त्यागने के लिये, (ईमहे) हम याचना करते हैं । (सः त्वं) वह तू (स्रक्षणिः) सब दुःखों का नाशक, सबका पराजयकारी होकर

《विश्वाः अभिमातीः) समस्त अभिमानी जीवों को पराजित करता है ।

य ऋक्षादहंसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु ।

वर्धर्त्तासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (ऋक्षात्) मनुष्यों के नाशक रीछ के समान भयंकर, दुष्ट, दुःखदायी (अहंसः) पाप से (मुच्य) मुक्त करता है (यः वा) और जो (सप्त-सिन्धुषु) वेग से जाने वाले जलों में विद्युत्-जल वा जल को (अर्यात्) प्रेरित करता है, हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! तू (दासस्य) सूर्य या पवनवत् जलप्रद मेघ में, दुष्ट पुरुष के नाशार्थ (वधः नीनमः) हिंसाकारक अस्त्र का प्रहार कर ।

यथा वरो सुपाग्णे सनिभ्य आवहो रयिम् ।

व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ २८ ॥

भा०—हे (वरो) श्रेष्ठ पुरुष ! (यथा) जैसे तू (सुपाग्णे) उत्तम साम द्वारा स्तुतिकर्त्ता, निष्पक्षपात और (सनिभ्यः) उत्तम दान पात्रों को (रयिम् आवहः) ऐश्वर्य देता है वैसे ही हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्य-जालिनि ! हे (वाजिनी-वति) ऐश्वर्य की स्वामिनि ! वधू ! तू भी (व्यश्वेभ्यः) विजितेन्द्रिय पुरुषों को (रयिम्) ऐश्वर्य (आ वहः) प्राप्त करा ।

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वा एतु सोमिनः ।

स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥ २९ ॥

भा०—(नार्यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ (सोमिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (दक्षिणा) दान का द्रव्य (वि-अश्वान्) विविध विद्याओं में पारंगत पुरुषों को वा (सोमिनः) पुत्र क्षियादि के गुरुजनों को (आ एतु) प्राप्त हो और उसका (स्थूरं) स्थायी (शतवत् सहस्रवत्) सौ, हजार संख्या वाला (राधः) धन ऐसे ही पुरुषों को प्राप्त हो ।



यत्त्वा पृच्छादीज्ञानः कुहया कुहयाकृते ।

एषो अपश्रितो वृत्तो गोमतीमिव तिष्ठति ॥ ३० ॥ २० ॥

भा०—(कुहया-कृते) आत्मा वा प्रभु उपास्य कहां है ? ऐसी जिज्ञासा करने वाली हे बुद्धे ! (ईज्ञानः) देवोपासना करने वाला (यः) जो पुरुष (त्वा पृच्छात्) तुझसे पूछता है कि (एषः अपश्रितः) वह संसारबन्धन से दूर देहादि में अनाश्रित (बलः = वरः) वरणीय, सर्व व्यापक प्रभु (कुहया) कहां है, तो सुनो । (एषः) वह (बलः) व्यापक प्रभु (गोमतीम्) इन्द्रिय और वाणी से युक्त चित्त भूमि को (अव) नीचे छोड़कर, (तिष्ठति) उसके ऊपर, अवर्णनीय रूप में विद्यमान है । इति विंशो वर्गः ॥

[ २५ ]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—६, १३—२४ मित्रावरुणौ । १०—१२ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५—९, १६ निचृदुष्णिक् । ३, १०, १३—१६, २०—२२ विराडुष्णिक् । ४, ११, १२, २४ उष्णिक् । २३ आर्ची उष्णिक् । १७, १० पादनचिदुष्णिक् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया ।

ऋतवाना यजसे पूतदक्षसा ॥ १ ॥

भा०—(ता वां) वे आप दोनों (विश्वस्य) समस्त विश्व के (गोपा) पालक (देवेषु) विद्वान् मनुष्यों में (यज्ञिया देवा) पूजा सत्कार योग्य और तेजस्वी हों । आप दोनों (ऋतवाना) न्यायवान्, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल वा ज्ञान वाले जनों की, हे मनुष्य ! तू (यजसे) पूजा कर ।

मित्रा तना रथ्यावरुणो यश्च सुक्रतुः ।

सुनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥ २ ॥

भा०—स्त्री पुरुष कैसे हों ? वे दोनों (मित्रा) स्नेहवान् ! (रथ्या

न तना) रथ में लगे दो भर्षों वा रथी-सारथी के समान शरीर में सुशोभित और (वरुणः) वरणीय पुरुष भी ऐसा हो (यः च सुक्रतुः) जो स्वयं उत्तम क्रियावान् हो। वे दोनों (सनात्) सदा (सुजाता) उत्तम वंश और गुणों में शिक्षित और (तनया) माता पिता के उत्तम पुत्र और (धृत-व्रता) व्रत धारक हों।

ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा।

मही जज्ञानादितिर्भृतावरी ॥ ३ ॥

भा०—(प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी (विश्व-वेदसा) समस्त ज्ञानों, धर्मों के स्वामी (ता) उन दोनों को (भृतावरी) सत्य व्रत का वरण करने वाली, (अदितिः) अखण्ड व्रतपालनी (मही) पूज्या (माता) जननी ही (असुर्याय) बल पराक्रम के लिये (जज्ञान) पैदा करती है।

महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा।

भृतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥ ४ ॥

भा०—वे दोनों (महान्ता) गुणों में महान्, (सम्राजा) अच्छी प्रकार दीप्तिमान्, तेजस्वी, (देवा) दानशील (असुरा) बलवान्, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, (भृतावानौ) सत्य ज्ञान से युक्त, दोनों (बृहत्-क्रतस् आ घोषतः) बड़े भारी सत्य ज्ञान, वेद और न्याय की घोषणा करें, उसका पठन, पाठन और उपदेश किया करें।

नपाता शर्वसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू।

सृप्रदानू इषो वास्त्वाधि क्षितः ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—दोनों (महः शर्वसः नपाता) बड़े भारी बल के पालक और (महः दक्षस्य सूनू) बड़े भारी बल और धर्म के उत्पादक और परिचालक (इषः) भक्ष के (सृप्रदानू) विस्तृत रूप से देने वाले होकर (वास्तु-अधि) बड़े २ गृहों में (क्षितः) निवास करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥



सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः

नमस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः ॥ ६ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (दानूनि) दान योग्य वीर्यों, धनों का (सं येमथुः) संयमपूर्वक रक्षा करते हैं उन (वां) आप दोनों को (नमस्वतीः) आकाश की, (दिव्या) अन्तरिक्ष की (वृष्टयः) वृष्टियाँ और (पार्थिवीः इवः) पृथिवी पर उत्पन्न अन्न (आचरन्तु) प्राप्त हों ।

अधि या वृहतो दिवोऽभि यूथेव पश्यतः ।

ऋतावाना सम्राज्ञा नमसे हिता ॥ ७ ॥

भा०—(अभि यूथा इव) जिस प्रकार गौओं के समूहों को उनके पालक देखते हैं उसी प्रकार (या) जो (वृहतः दिवः अधि पश्यतः) बड़ी कामनाओं व अभिलाषाओं को देखते हैं वे दोनों (ऋतावाना) सत्य और धन वाले, (सम्राज्ञा) उत्तम दीप्तिमान् होकर (नमसे) अन्न, बल प्राप्त करने के लिये (हिता) परस्पर हिताचरण करें, स्थिर रहें ।

ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।

धतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावाना) सत्य न्याय के स्वामी होकर (धत-व्रता) व्रत, नियम के धारण करने वाले (क्षत्रिया) बल और धन के स्वामी (साम्राज्याय) साम्राज्य पालनार्थ (सु-क्रतू) उत्तम कर्म वाले होकर (क्षत्रम् आशतुः) बल, ऐश्वर्य प्राप्त करें ।

अक्ष्णश्चिद्रातुवित्तरानुल्वणेन चक्षसा ।

नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्वयतुः ॥ ९ ॥

भा०—वे (अक्ष्णः चित् गातुवित्-तरा) आंख से भी अधिक मार्ग जानने वाले, वा आंखों, वा इन्द्रियों के इशारों को खूब समझने वाले हों । वे दोनों (अनुल्वणेन चक्षसा) सोम्य दृष्टि वा कोमल, दुःख न देने

वाले वचन से (निमिषन्ता) व्यवहार करने वाले (नि-चिरा) खूब चिरायु होकर (नि चिक्वतुः) सत्कार योग्य हों ।

उत नो देव्यदितिरुष्यतां नासत्या ।

उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—(उत) और (देवी अदितिः) उत्तम सुख देने वाली विदुषी स्त्री, माता और (नासत्या) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें और (वृद्ध-शवसः) बड़े बली और ज्ञानी पुरुष (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायुवत् जीवनप्रद, दूरगामी क्षत्रिय और वैश्य जन (उरुष्यन्तु) हमारी रक्षा करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

ते नो नावमुष्यत दिवा नक्तं सुदानवे ।

अरिष्यन्तो नि प्रायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (दिवा नक्तं) दिन और रात (नः नावम्) हमारी नौका वा प्रेरणा योग्य धान की (उरुष्यत) रक्षा करो और हम (अरिष्यन्तः) बिना पीड़ित हुए (प्रायुभिः) पालनकर्ताओं के साथ (सचेमहि) संघ बना कर रहें ।

अग्नते विष्णावे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।

श्रुधि स्वयावन्तिसन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए, (अग्नते) अहिंसक (सु-दानवे) उत्तम दानशील, (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञानी और सबसे पूर्व कर्मकर्ता परमेश्वर की स्तुति करें । हे (स्व-यावन्) अपने सामर्थ्य से संसार को चलाने वाले ! हे (सिन्धो) समुद्रवत् गम्भीर ! तू (श्रुधि) हमारी प्रार्थना श्रवण कर ।



तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।

मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जिस धन और बल की (मित्रः) खेहवान्, (यत् वरुणः) जिसकी सब दुःखों का वारक और (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता पुरुष (पान्ति) रक्षा करते हैं हम (तत्) उस (वीर्यं) वरणीय, दुःखों को दूर करने वाले (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (गोपयत्यम्) सबके पालक धन वा बल की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।

इन्द्रो विष्णुर्मिदवांसः सजोषसः ॥ १४ ॥

भा०—(अपां सिन्धुः) जलों का बहने वाला प्रवाह, (मरुतः) शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष और वैद्यगण (अश्विना) अश्वारोही योद्धा और रथी, सारथी, (इन्द्रः) सेनापति, राजा, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् वा विविध विद्याओं में निष्णात ये सब (मिदवांसः) प्रजा पद सुखों की वर्षा करने वाले और (स-जोषसः) एक समान सबसे प्रीति रखने वाले होकर (नः तत् तत्) हमारे उन २ धनों की रक्षा करें और दें ।

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् ।

तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(ते हि) वे (भूर्णयः) जगत् पोषक (नरः) नायक, (वनुषः) शत्रुनाशक और सेवा योग्य जन (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी प्रतिद्वन्द्वी के अभिमान को (तिग्मं क्षोदः न) तीव्र वेग वाले जल के समान (प्रति घ्नन्ति) विनाश कर सकते हैं । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयमेकं इत्था पुरुरु चष्टे वि विशपतिः ।

तस्य व्रतान्यनु वश्वरामसि ॥ १६ ॥

भा०—(अयम् एकः) यह एक (पुरुः) सबकी इच्छाओं का पूरक, (विश्वपतिः) प्रजाओं का पालक (इत्या) इस प्रकार सत्य न्याय को (वः वि चष्टे उ) विशेष प्रकार से तुम सबके व्यवहारों की सूर्यवत् देखता है। (तस्य व्रतानि) इस प्रजापति के कृत कर्मों का हम (अनु चरामसि) अनुकरण करते हैं।

अनु पूर्वाण्योक्त्या साम्राज्यस्य सश्रिम।

मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

भा०—(साम्राज्यस्य) साम्राज्य के स्वामी प्रभु के (पूर्वाणि) पूर्व विद्यमान वा पूर्ण (ओक्त्या) भुवनों के व्यवस्थापक नियमों को (अनु सश्रिम) पालन करें। (मित्रस्य) सर्वस्नेही, (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ (दीर्घ-श्रुतः) दीर्घदर्शी, पुरुष के (व्रता) कर्मों का हम अनुकरण करें।

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः।

उभे आ पश्चा रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (रश्मिना) तेजोवत् व्यापक सामर्थ्य से (दिवः पृथिव्याः अन्तान्) आकाश और भूमि इनकी परछी सीमाओं को (परि ममे) मापता है वही (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) आकाश और भूमि दोनों लोकों को (आ पश्चा) पूर्ण करता है।

उदुष्य शरणे दिवो ज्योतिरयस्तु सूर्यः।

अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥

भा०—(स्यः) वह (दिवः शरणे) प्रकाश को बखेर कर दूर २ अक्षक फैलाने में (सूर्यः) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वयं प्रकाश प्रभु (शरणे) महान् विश्व में (उत् अयस्तु) सब पर वश करता है वह (अग्निः न शुक्रः) अग्नि के समान वेदीप्यमान, (समिधा आहुतः न) काष्ठ से आहुति युक्त अग्नि के तुल्य ही (आहुतः) स्तुति किया जाता है।



वचो दीर्घप्रसन्नानीशे वाजस्य गोमतः ।

ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—जो (गोमतः वाजस्य) गौ, भूमि, वाणी और इन्द्रियों से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और विभूति का (ईशे) स्वामी है जो (अविषस्य) विषरहित (पित्वः) अन्न के (दावने) देने में (ईशे हि) निश्चय से समर्थ है उस (दीर्घ-प्रसन्नानि) महा-भवनवत् का शरणदाता, विश्व के स्वामी के विषय में (वचः) स्तुति वाणी का प्रयोग किया करो ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे ।

भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥

भा०—(दोषा वस्तोः) दिन और रात (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी समस्त जगत् के (सूर्यम्) प्रकाशक, सूर्यवत् (तत्) उस प्रभु की मैं (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूँ। हे प्रभो ! तू (सदा) सब काल, (अस्मान्) हमें (भोजेषु) ऐश्वर्यदाता लोकों में (अभि उत् चर) उन्नति की ओर ले जा ।

ऋजुमुक्षण्यायने रजतं हरयाणे ।

रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (उक्षण्यायने) बलवान् बैल या अश्व से जाने योग्य, (हरयाणे) हरणशील, वेगवान् अश्वों से जाने योग्य (सु-सामनि) उत्तम समभूमियुक्त मार्ग में (ऋजुम्) वेग से जाने वाले, (रजतं) सुन्दर, (युक्तं) अश्वों से जुते (रथं) रथ को (असनाम) उपयोग करते हैं वैसे ही (सु-सामनि) सबके प्रति सम भाव से रहने वाले, (उक्षण्यायने) सुखसेचक पुरुषों के भी आश्रय स्थान, (हरयाणे) दुःखों के हरने वाले, प्रभु के अधीन हम (युक्तं) इन्द्रियादि अश्वों से युक्त, रथवत् (ऋजुम्) धर्म मार्ग से चलने वाले देह को (असनाम) प्राप्त करें और उसका सुख लें ।

ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना ।

उतो नु कृत्वाणां नृवाहसा ॥ २३ ॥

भा०—(ता) वे दोनों प्रधान स्त्री पुरुष (मे) मुक्ष राजा के अधीन (अश्व्यानां हरीणां) अश्वारोही जनों के बीच (नि-तोशना) शत्रुओं को नाश करने वाले, (उत नु) और (कृत्वाणां) कर्मकुशल पुरुषों के बीच में (नृवाहसा) मनुष्यों को सन्मार्ग में ले जाने वाले हों ।

स्मदभीशू कशावन्ता विप्रा नविष्टया मती ।

महो वाजिनावर्चन्ता सचासनम् ॥ २४ ॥ २५ ॥

भा०—(स्मत्-अभीशू) धर्म-मर्यादाओं, व्यवस्थाओं से युक्त, (कशावन्ता) अर्थप्रकाशक, शुभ वाणी वाले (विप्रा) मेधावी, (नविष्टया) अतिस्तुत्य (मती) बुद्धि से युक्त, (महः वाजिनी) बड़े ज्ञानी (अवन्ता) दुःखों का नाशक, सन्मार्गगामी, स्त्री पुरुषों को मैं दो अश्वों वा प्राणों के सदृश (सचा असनम्) सदा एक साथ प्राप्त करूं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[ २६ ]

विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषिः ॥ १—१९ अश्विनौ । २०—२५ वायु देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ उष्णिक् । २, ८, २३ विराडुष्णिक् । ५, ९—१५, २२ निचृदुष्णिक् । २४ पादनिचृदुष्णिक् । १६, १६ विराड् गायत्री । १७, १८, २१ निचृद् गायत्री । २५ गायत्री । २० विराड्-  
 नुष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्युचं सूक्तम् ॥

युवोरु धू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।

अतूर्तदक्षा वृषणा वृषणवसू ॥ १ ॥

भा०—हे (वृषणवसू) धन और बलवान् पुरुष रूप धन से धनी नायक पुरुषो ! वा पति-पत्नी जनो ! आप दोनों (वृषणा) उत्तम सुखों और वीर्यादि के सेक्का और (अतूर्तदक्षा) न नष्ट होने वाले सामर्थ्य से



युक्त होवो । (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (सध-स्तुत्याय) एक साथ मिलकर स्तुति प्राप्त करने के लिये (युवोः) तुम दोनों को (रथं) उत्तम उपदेश, उत्तम रथादि साधन (सु हव उ) उत्तम रीति से प्रदान करूं ।

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या ।

अवोभिर्याथो वृषणा वृषणवसू ॥ २ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, प्रमुख पुरुषो ! हे (वृषणा) बलवान् ! (वृषणवसू) बल, धन, जन स्वामियो ! हे (वरो) वरणीय जनो ! (युवं) आप दोनों (सुषाम्णे) सुखप्रदाता, सर्वोपरि विराजमान प्रभु के (महे तने) बड़े, विस्तृत राज्य में (अवोभिः) ज्ञानों और रथादि से (याथः) गमनागमन करो ।

ता वामद्य हवामहे हव्योभिर्वाजिनीवसू ।

पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ऐश्वर्ययुक्त भूमि, ज्ञानयुक्त विद्या और बलयुक्त सेना को बसाने वाले राजा-प्रजा जनो ! (पूर्वीः) पूर्ण, राज्यादि के पालक (इषः) सेना, नाना अभिलाषाओं और अन्नादि समृद्धियों को (इषयन्तौ) चाहते हुए (ता वाम्) उन आप दोनों का (अति क्षपः) रात्रि व्यतीत कर प्रातः, वा नाशकारिणी, शत्रु सेनाओं को पार करने के बाद (हव्येभिः) उत्तम अन्नों, वचनों से (हवामहे) सत्कार करें ।

आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु क्षुतो नरा ।

उप स्तोमान्तरस्य दर्शयः श्रिये ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के स्वामी, रथी-सारथीवत् राजा-सचिव वा स्त्री-पुरुषो ! हे (नरा) सन्मार्ग से ले जाने वाले ! (वां) तुम दोनों का (वाहिष्ठः) ज्ञान प्राप्त कराने वाला (रथः) रमणीय (श्रुतः)

अवणीय उपदेश हमें (रथः) रथवत् (आ यातु) प्राप्त हो । आप दोनों (तुरस्य) दुःखनाशक प्रभु के (स्तोमान्) उपदेश किये वेद-मन्त्रों का (श्रिये) शोभा और धनादि समृद्धि के लिये (उप दर्शयः) गुरु देवादि की उपासना द्वारा ज्ञान किया करो ।

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृष्णवसू ।

युवं हि रुद्रा पर्पथो अति द्विषः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (वृष्णवसू) बलवान् प्राणों वाले बलवान् पुरुषो ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! हे 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र एवं बलवान् अश्व सैन्यादि के स्वामिओ ! आप दोनों (जुहुराणा चित्) कुटिलता करने वालों को भी अच्छी प्रकार (मन्येथाम्) जानों, उनको दुष्टता से रोको । हे (रुद्रा) दुःखों को दूर भगाने वाले जनो ! (युवं हि) तुम दोनों ही (द्विषः) द्वेष करने वाले, शत्रुओं, रोगादि काम-क्रोधादि को (अति पर्पथः) पराजित करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

दक्षा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।

धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥

भा०—हे (दक्षा) दर्शनीय, दुष्टों के नाशक, (धियं-जिन्वा) उत्तम कर्मों से सबको प्रसन्न करने वाले, (मधु-वर्णा) मधुर वर्ण, कान्तिमान्, (शुभस्पती) उत्तम शोभाजनक अलंकार-युक्त पति-पत्नी एवं स्वामी जनो ! आप दोनों (आनुषक्) सदा साथ रहते हुए (मक्षूभिः) शीघ्रगामी रथों से (विश्वम् परि-दीयथः) समस्त संसार का परिभ्रमण करो ।

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।

मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वदि सैन्यों, वा राष्ट्र के स्वामी जनो ! आप दोनों (विश्वपुषा राया सह) सबके पोषक ऐश्वर्य के साथ (नः उप



यातम्) हमें प्राप्त होवो। आप (मघवाना) उत्तम धन से युक्त, (सु-  
वीरौ) उत्तम वीर, विद्यावान् और (अनपच्युतौ) कुमार्ग में न जाने  
वाले होवो।

आ मे अस्व्य प्रतीव्यमिन्द्रनासत्या गतम् ।

देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र-नासत्या) ऐश्वर्ययुक्त एवं कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (देवा) शुभ-गुणयुक्त, विद्वान् (सच-नस्तमा) परस्पर दृढ़ सम्बन्ध से बद्ध होकर (मे) मुक्त (अस्य) इस प्रियजन के (प्रतीव्यम्) रक्षक गृह को (देवेभिः) विद्वान् जनों और शुभ-गुणों-सहित, सूर्य, वायुवत् (अद्य आ गतम्) आज आवो।

वयं हि वां हवामह उक्षयन्तो व्यश्नवत् ।

सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (वि-अश्नवत्) विशेष अश्वसैन्य का स्वामी बलवान् स्त्री-पुरुषों को राष्ट्र के शासनादि कार्य के लिये चाहता है वैसे ही (वयं हि) हम भी (उक्षयन्तः) उत्तम सन्तानोत्पादक, हृष्टपुष्ट बलवान् पुरुषों को चाहते हुए, (वां हि) आप दोनों ऐश्वर्यवान्, स्त्री पुरुषों वा प्रजा-राजवर्गों को (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि आप (विप्रौ) बुद्धिमान्, धनादि से विशेष पूर्ण होकर (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों-सहित (उप आगतम्) हमें प्राप्त होवो।

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुविन्ने श्रवतो हवम् ।

नेदीयसः कूळयातः पणीकृत ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—हे (अश्वे) विद्वन् ! तू (अश्विनौ) राष्ट्र, सेना के स्वामी वा जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुष वर्गों को (स्तुहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनकी अच्छी प्रशंसा कर। (ते) तेरे (हवम्) वचन को वे दोनों (कुविन्ने)

अवतः) बहुत बार श्रवण करते हैं। (उत) और दोनों (नेदीयसः पणीन्) समीपस्थ उपदेश एवं व्यवहारवान् पुरुषों को (कूल्यातः) तट के समान आश्रय और नदीवत् मर्यादा में स्थापित करते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः ।

सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ११ ॥

भा०—हे (नरा) उत्तम स्त्री-पुरुषो ! आप लोग (वैयश्वस्य) विविध इन्द्रियों के साधक, विद्वान् के आज्ञा वा उपदेश वचन (श्रुतं) श्रवण करो। (उतो) और (मे अस्य) मुझ इस मित्र प्रजाजन को भी (वेदथः) जाना करो। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ स्नेही और (अर्यमा) उत्तम जनों का स्वामी, दुष्टों का नियन्ता पुरुष (सजोषसा) समान प्रीति से युक्त हों। वे प्रजा के व्यवहार जानें।

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।

अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, बुद्धियुक्त, हे (वृषणा) उत्तम धनैश्वर्य, बल-वीर्यादि के वर्पक माता-पितावत् पालक जनो ! आप लोग (युवादत्तस्य) आप दोनों से देने योग्य और (युवा-नीतस्य) आप दोनों से प्राप्त कराने योग्य, ज्ञान और ऐश्वर्य (सूरिभिः) विद्वानों द्वारा (मह्यं) मुझ प्रजाजन को पुत्रवत् (अहरहः) प्रति दिन (शिक्षतम्) दो।

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव ।

सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) व्यापक किरणों वाले सूर्य चन्द्रवत्, वा दिन रात्रिवत् पति-पत्नी जनो ! (यः) जो पुरुष (अधिवस्त्रा वधूः इव) उत्तम वस्त्र धारण करने वाली नव-वधू के समान स्वयं (अधिवस्त्रः) उत्तरीय



वस्त्र धारण कर (वां) आप दोनों के योग्य (यज्ञेभिः) दान, सत्संग, सत्कारादि से (आवृतः) अपने को ढक लेता है उस विद्वान् की (सपर्यन्ता) शुश्रूषा करने वाले आप दोनों (शुभे) शुभ कर्म या फल के लिये (चक्राते) यत्न करो ।

यो वामुक्थ्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।

वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य-चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! (यः) जो (वाम्) आप दोनों के (नृ-पाय्यम्) मनुष्यों के पालक (उक्थ्यचस्तम्) अधिक व्यापक (वर्तिः) व्यवहार को (चिकेतति) जानता है (अस्मयू) हमें चाहने वाले आप दोनों उसको (परि यातम्) प्राप्त होवो ।

अस्मभ्यं सु वृषणवसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।

विषुद्रहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वृषणवसू) बलवान् पुरुषों के स्वामी जनो ! हे प्रजाजनों में बलवान् प्रबन्धक जनो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ ही (नृ-पाय्यं) मनुष्यों के पालक (वर्तिः) व्यवहार को (सु-यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त करो । जैसे (वि-सु-द्रुहा, विषुद्रुहा गिरा यज्ञम् इव) विविध अर्थदात्री या विविध वादप्रतिवाद वाली वाणी से (यज्ञम्) प्रभु की तर्क द्वारा विवेचना की जाती है वैसे ही (वि-सु-द्रुहा इव) विविध प्रकार से परस्पर काटने वाली, एक दूसरे का प्रतिवाद करने वाली (गिरा) वाणी से (यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य, निर्णय-रूप से देने योग्य सत्य-तत्त्व को (ऊहथुः) तर्कवितर्क द्वारा प्राप्त करो ।

इत्यष्टविंशो वर्गः ॥

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा ।

युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! हे (नरा)

नायक जनो ! (हवानां) ग्राह्य उपदेशों को (वाहिष्ठः) उत्तम रीति से अन्यों तक पहुँचाने वाला (स्तोमः) वेदमन्त्रों का समूह (वां) तुम दोनों को (दूतः हुवत्) उत्तम संदेशहर के समान ज्ञानप्रद हो और वह सदा (युवाभ्यां) तुम दोनों के लिये हितकारी (भूतु) होवे ।

यद्वदो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे ।

श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से भिन्न पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (अदः) उस (दिवः) परम ज्ञानमय प्रभु के (अर्णवे) सागरवत् आनन्द में वा (इषः) अन्न और कामना आदि के (गृहे) इस गृह या देह में (मदथः) आनन्दवान् होवो तो भी (मे) मुझ आत्मा के विषय में, वा विद्वान् का वचन अवश्य (श्रुतम् इत्) श्रवण किया करो ।

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् ।

सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥

भा०—(श्वेतयावरी नदीनां वाहिष्ठा) नदियों में से जैसे हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी अति वेग से जाने वाली होती है, वैसे ही (नदीनां) उपदेश देने वाली वाणियों में से (उत) भी (स्या) वह, सब दुःखों को काटने वाली और (श्वेत-यावरी) श्वेत, विशुद्ध प्रभु से आने वा उस तक पहुँचा देने वाली वेदवाणी ही (वां वाहिष्ठा) तुमको अतिशय सुख देने और उद्देश्य तक पहुँचा देने में श्रेष्ठ है । (हिरण्य-वर्तनिः सिन्धुः) जैसे हिरण्य अर्थात् लोह के बने मार्ग पर चलने वाला रथ वेग से जाने वाला तुम्हें उद्देश्य तक अच्छी प्रकार पहुँचाने का उत्तम सवारी होता है वैसे ही (हिरण्य-वर्तनिः) हित रमणीय, व्यवहारवान् (सिन्धुः) समुद्रवत् गम्भीर पुरुष ही (वां वाहिष्ठः) तुम दोनों को उद्देश्य तक पहुँचाने में समर्थ होता है ।



स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया ।

वहेथे शुभ्रयावाना ॥ १६ ॥

भा०—‘श्वेतयावरी’ को और स्पष्ट करते हैं । हे (शुभ्रयावाना) शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्मत मार्ग से जाने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (एतया) इस (श्वेतया) निर्दोष, कलंक-रहित (सु-कीर्त्या) उत्तम कीर्ति युक्त, (धिया) धी, चाणी, ज्ञानोपदेश, सन्मति, सत् कर्म से (स्मत्) उत्तम २ फलों को (वहेथे) प्राप्त करो ।

युद्धा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।

आक्षौ वायो मधुं पिवास्माकं सवना गहि ॥ २० ॥ २६ ॥

भा०—हे (वसो) ब्रह्मचारिन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (हि) अवश्य (रथ-सहा) रथ को उठाने में समर्थ, अश्वों के समान अपने इन्द्रिय और मन दोनों को (युक्स्व) सन्मार्ग में लगा और (पोष्या) पोषण-योग्य, दृढ़ अंगों को (युवस्व) कार्यों में योजित कर । हे (वायो) वायुवत् बलशालिन् ! ज्ञान देने वाले ! (आत्) अनन्तर तू (नः) हमारे (मधु) मधुर अन्न आदि का उपभोग कर और (अस्माकम्) हमारे (सवना) यज्ञों और ऐश्वर्यों को (आ गहि) प्राप्त कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत ।

अवांस्या वृणीमहे ॥ २१ ॥

भा०—हे (ऋतः-पते वायो) जलपालक आकाश-गत वायु के समान सत्य, ज्ञान, धन, यज्ञ और तेज के पालक वायुवत् प्राणप्रद ! हे (अद्भुत) आश्चर्यजनक ! (जामातः) प्रजादि के उत्पन्न करने हारे ! हम (त्वष्टुः तव) देदीप्यमान, जगत् के कर्त्ता तेरे (अवांसि) ज्ञानों, रक्षाओं, वृत्ति, आनन्द-दायक सुखों की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे ।

सुतावन्तो वायुं युष्मा जनांसः ॥ २२ ॥

भा०—(वयं) हम (द्युम्नाः) धन, यश से सम्पन्न (सुतवन्तः, सुता-  
वन्तः) पुत्र पुत्री वाले मनुष्य, (त्वष्टुः) कार्यसाधक, तेजोयुक्त (रायः  
ईशानं) धन के स्वामी, (जामातरं) नाती के उत्पादक जामाता, जंवाई  
को (ईमहे) प्राप्त करें ।

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् ।

वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! हे (शिव) कल्याणकारिन् !  
तू (दिवः) सूर्यादि लोकों को (याहि) सञ्चालित कर और (सु-भक्ष्यम्)  
उत्तम सूर्यादि युक्त जगत् को (वहस्व) धारण कर और (रथे) रथ में  
(पृथु-पक्षसा = पृथु-वक्षसा) विस्तृत पार्श्वों वाले दो अश्वों को जैसे  
बीर हांकता है वैसे तू भी (पृथु-पक्षसा) महान् जगत् के वक्षकारक  
बल से (महः वहस्व) महान् संसार को धारण कर ।

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु ह्रूमहे ।

प्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥

भा०—हे प्रभो ! हम लोग (सुप्सरस्तमं) उत्तम कान्ति वाले,  
तेजस्वियों में श्रेष्ठ (त्वा हि) तुझको ही (नृ-सदनेषु) मनुष्यों के सञ्चा-  
लन कार्यों या गृहों में (ह्रूमहे) तेरी स्तुति करते हैं और तुझको (अश्व-  
पृष्ठं) सूर्य के द्वारा सेवन समर्थ (मंहना) महान् सामर्थ्य से युक्त मेघ  
के सदृश, (अश्व-पृष्ठं) बड़े २ विद्वानों के ऊपर विद्यमान (प्रावाणं न)  
सर्वोपदेष्टा गुरुवत् (ह्रूमहे) स्वीकार करते हैं ।

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः ।

कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देव) प्रभो ! सर्व सुखों के दाता ! हे (वायो) सर्व-  
प्राण ! सर्वसंचालक ! (सः त्वं) वह तू (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, (न मनसा



मन्दानः) हमें ज्ञान से तृप्त, आनन्दित करता हुआ, (वाजान् अप-  
धियः कृधि) सत्, ऐश्वर्य, ज्ञान और कर्म प्रदान कर । इति त्रिंशो वर्गः ॥

[ २७ ]

मनुर्वेवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद्  
बृहती । ३ शङ्कुमती बृहती । ५, ११, १३ विराड् बृहती । १५ आर्ची  
बृहती ॥ १८, १९, २१ बृहती । २, ८, १४, २० पंक्तिः । ४, ६, १६;  
२२ निचृत् पंक्तिः । १० पादनिचृत् पंक्तिः । १२ आर्ची स्वराट् पंक्तिः ।  
१७ विराट् पंक्तिः ॥ द्वाविंशत्युचं सूक्तम् ॥

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिर्ध्वरे ।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(अध्वरे) अविनाशी (उक्थे) उत्तम वेदवचन और ज्ञानो-  
पदेश-प्राप्ति के लिये (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (पुरोहितः) अग्रासन पर  
स्थापित हो और (ग्रावाणः) उपदेष्टाजन और (बर्हिः) सूर्यवत् तेजस्वी-  
जन भी अग्रासन पर स्थापित हों । मैं (ऋचा) वेदवचन, सत्कार  
सहित, (मरुतः) विद्वान् पुरुषों, (ब्रह्मणः पतिम्) वेद और ब्रह्मज्ञान  
के पालक विद्वान् और (देवान्) ज्ञानप्रकाशक पुरुषों से (वरेण्यम्)  
वरणीय श्रेष्ठ (अवः) ज्ञान की (यामि) याचना करूँ ।

आ पशुं गांसि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।

विश्वे च नो वसवो विश्वदेवसो धीनां भूत प्रावितारः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पशुम्) पशु, (पृथिवीम्) भूमि, (वनस्प-  
तीन्) वृक्षों और (ओषधीः) लतादि को (उपासानक्तम्) दिन-रात,  
प्रातः सायं (आ गांसि) प्राप्त कर । हे (विश्वदेवसः) सब ज्ञानों को  
जानने वाले (वसवः) राष्ट्रवासी जनो ! आप (विश्वे) सब (नः धीनां)  
हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों के (प्र-अवितारः भूत) उत्तम रीति से  
रक्षक रहो ।

प्र सू न एत्वध्वरोऽग्रा देवेषु पूर्यः ।

आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

भा०—(अध्वरः) जो हिंसारहित, यज्ञ (अग्रा) ज्ञानवान् पुरुष, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) अग्नि जलादि तत्त्वों, सूर्यादि लोकों और विद्वान् जनों में (पूर्यः) पूर्व भी विद्यमान रहा, वह (नः प्र एतु) हमें अच्छी प्रकार प्राप्त हो । इसी प्रकार (आदित्येषु) १२हों महीनों में या पूर्ण ब्रह्मचारियों में (धृत-व्रते) सत्-कर्मों के व्यवस्थित करने वाले पुरुष के अधीन और (विश्व-भानुषु) सब तेजों के धारक (मरुत्सु) विद्वान् और बलवान् पुरुषों में है वह भी (नः प्र एतु) हमें प्राप्त हो ।

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।

अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वे) सब (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामी (रिशादसः) दुष्टों के नाशक लोग (मनवे वृधे हि भुवन्) मनुष्य की वृद्धि के लिये ही हों । हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के ज्ञाता जनो ! आप (अरिष्टेभिः) हिंसादि से रहित, (पायुभिः) पालक उपायों से युक्त (नः) हमें (अवृकं छर्दिः) चोरादि कष्ट से रहित गृह (यन्त) दो ।

आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।

ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! आप (विश्वे) सब (स-जोषसः) समान प्रीतियुक्त, (स-मनसः) समान चित्त होकर (नः अद्य आ गन्त) आज हमें प्राप्त होवो । हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) मातः ! तू (ऋचा गिरा) अर्चना योग्य वेदवाणी से युक्त होकर (सदने) सभा भवन और (महि पस्त्ये) बड़े भवन में आओ । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥



अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।

आ वहिर्हिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (मित्र) खेही जनो ! (वः या प्रिया) आप लोगों को जो प्रिय, (अश्व्या) अश्व आदि साधन और (हव्या) ग्रहण, दान और खाने योग्य, अन्न धनादि पदार्थ हैं उनको (अभि प्रयाथन) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और कराओ । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ राजादि और (तुराः नराः) क्षीघ्रगामी और नायक जन एवं (आदित्यासः) लेन-देन करने में कुशल, विद्वान् लोग, (वहिः आ सदन्तु) उत्तम आसन और राष्ट्र पर विराजें ।

वयं वो वृक्तवर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।

सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्यादिद्वाग्नयः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! (वयम्) हम लोग (वृक्तवर्हिषः) दुर्भ प्राप्त करके, (हित-प्रयसः) अन्न धारण करके (सुत-सोमासः) सोम का सेवन करके (इद्वाग्नयः) अग्नियें प्रज्वलित करके (वः) आप श्रेष्ठ जनों को (मनुष्यवत्) उत्तम मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (आनुषक्) निरन्तर (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें ।

आ प्र यातु मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनिया धिया ।

इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! हे (विष्णो) व्यापक ! हे (अश्विना) रथीसारथिवत् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (माकीनया धिया) मेरे कर्म, बुद्धि आदि से (आ यात प्र यात) आया जाया करो । (सनिष्युभिः) दान, वेतन, ऐश्वर्यादि के इच्छुक लोग (यः) जिसे (वृषा वृत्रहा) बलवान्, सुखवर्षक मेघ के छेदक भेदक विद्युत्पवत् दुष्टों का नाशक (गृणे) बतलाते हैं वह (इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष (प्रथमः आ यातु) सबसे प्रथम आवे ।

वि नो देवासो अद्भुहोऽच्छिद्रं शर्मं यच्छत ।

न यद्दूराद्वस्यो नू चिदन्तितो वरूथमादृधर्षति ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवासः) शुभ गुणों से युक्त, विजयेच्छुक, व्यवहार-  
धान् पुरुषो ! आप लोग (अद्भुहः) द्रोहरहित होकर (नः) हमें (अच्छिद्रं)  
क्षोपादि से रहित, निर्भय (शर्म) गृह वा शरण (वि यच्छत) विशेष  
रूप से प्रदान करो । हे (वसवः) प्रजा के बसने बसाने वाले ! मातृ-  
पितृवत् शासक जनो ! (यत्) जिससे (न दूरात्) न दूर से और (नु  
चिद् अन्तितः) न पास से ही कोई उस दुःखवारक गृह, नगर आदि  
को (आ-दधर्षति) हमसे छीन सके ।

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।

प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१०॥३२॥

भा०—हे (रिशादसः) हिंसकों के नाशक जनो ! (वः) आप लोगों  
की (सजात्यं अस्ति हि) जाति, उद्भव स्थान समान हो ! हे (देवासः)  
विद्वान् मनुष्यो ! (वः आप्यम् अस्ति हि) तुम लोगों की परस्पर  
बन्धुता हो । आप लोग (मक्षू) क्षीघ्र ही (पूर्वस्मै) पूर्व विद्यमान  
(सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त करने, उत्तम मार्ग में चलने, सदाचार पालन  
करने और (नव्यसे) नये, सुख प्राप्त करने के लिये (नः प्रवोचत) हमें  
उपदेश दें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।

उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) विश्व के धन के स्वामियो ! ज्ञानों और  
धनों के धारक विद्वान्, वीर पुरुषो ! मैं राजा (नमस्युः) 'नमस्'  
अर्थात् शत्रुओं को विनय की शिक्षा देने वाले दण्ड को अपने वश करना  
चाहता हुआ (वः) आप लोगों को (वामस्य भक्तये) ऐश्वर्य सेवन के  
लिये (इदा हि वः) अब आप लोगों को (अन्याम् उप स्तुतिम् इव)  
जई से नई शिक्षा (आ उप असृक्षि) प्रदान करूं ।



उदुष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।

नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (सु-प्र-णीतयः) उत्तम नीति वाले पुरुषो ! (स्यः सविता) वह उत्पादक परमेश्वर (वरेण्यः) वरण करने योग्य (वः ऊर्ध्वः उत् अस्थात्) आप सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप में स्थित है और (पत-यिष्णवः वेग से जाने और ऐश्वर्यों के स्वामी बनना चाहने वाले (द्विपादः चतुष्पादः) दो पाये और चौपाये भी (अर्थिनः) याचकवत् (नि अविश्रन्) उसके अधीन विराजते हैं ।

देवन्देवं वाऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।

देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (देव्या धिया) ज्ञानमय प्रकाश के देने वाली (धिया) वाणी से (वः गृणन्तः) आप लोगों के प्रति उपदेश करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (देवं-देवम्) सुखदाता, प्रकाशक प्रभु को और (अभिष्टये) अभीष्ट सुखादि को प्राप्त करने के लिये भी (देवं-देवं) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, प्रभु की और (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, अन्न और ज्ञान प्राप्ति के लिये (देवं-देवं) सुखादि के दाता, ज्ञान-प्रकाशक प्रभु की (हुवेम) प्रार्थना करें ।

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ॥ १४ ॥

भा०—(समन्यवः देवासः) ज्ञानवान् और दानशील और तेजस्वी और (विश्वे) समस्त (स-रातयः) धनादि सम्पन्न पुरुष (मनवे) मननशील व्यक्ति के उपकार के लिये ही (वरिवः-विदः भवन्तु) उत्तम धन को प्राप्त कराने वाले हों और (ते) वे (अद्य) आज (नः) हमें भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनदाता हों । (अपरं तु) बाद में भी (नः तुचे) हमारे पुत्रादि के लिये भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनादि के दाता हों ।

प्र वः शंसाभ्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।

न तं धूर्तिर्विरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥ १५ ॥

भा०—हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो ! (संस्थे) एकत्र मिलकर बैठने योग्य सभा आदि में (उप-स्तुतीनां) स्तुति योग्य (वः) आप लोगों की (प्र शंसामि) प्रशंसा करता हूँ । (कः मर्त्यः) जो मनुष्य हे (विरुण) श्रेष्ठ, हे (मित्र) स्नेहवान् ! (धामभ्यः) उत्तम जन्म, स्थान और तेज को प्राप्त करने के लिये (वः अविधत्) आपकी सेवा करता है (तं) उसको (धूर्तिः न) किसी प्रकार की हिंसा या बाधा नहीं करता ।

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।

प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥ ३३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो मनुष्य (वः) आप लोगों को (वराय) श्रेष्ठ कार्य के लिये (दाशति) दान करता है (सः) वह (क्षयं) गृहादि औह ऐश्वर्य को (प्र तिरते) बढ़ा लेता है, वह (महीः इषः प्र तिरते) उत्तम अन्नों वा बढ़ी अमिलावाओं को पूर्ण कर लेता है, वह (सर्वः) सब प्रकार से ही (अरिष्टः) अबाधित, दुःखरहित होकर (धर्मणः परि) धर्म के द्वारा (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओं से प्रजावान् होता और (परि एधते) खूब बढ़ता है । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

ऋते स विन्दते युधः सुगेमिर्यात्यध्वनः ।

अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥ १७ ॥

भा०—(अर्यमा) दुष्ट पुरुषों का नियन्ता, (मित्रः) स्नेहवान् और (वरुणः) श्रेष्ठजन (स-रातयः) दानशील, और (स-जोषसः) प्रीतियुक्त होकर (यं त्रायन्ते) जिसकी रक्षा करते हैं (सः) वह राष्ट्रवासी जन (युधः ऋते) बिना युद्ध के ही (विन्दते) ऐश्वर्य प्राप्त करता और (सु-



गेभिः) उत्तम सुखप्रद यानों से (अध्वनः याति) मार्गों को जाता आता है ।

अज्जै चिदस्मै कृणुथा न्यञ्जनं दुर्गे त्रिदा सुसरणम् ।

एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्त्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

भा०—आप लोग (अस्मै) इस राष्ट्र के हितार्थ, हे विद्वानो ! वीर जनो ! (अज्जै चित्) न पराजित होने योग्य, शत्रु सैन्य में भी (नि-अञ्जनं कृणुथ) नित्य आया-जाया करो और (अस्मात्) इस रक्षा-योग्य जन से (अशनिः) घातक शस्त्र अस्त्रादि वा महामारी आदि फैलाने वाली (सास्त्रेधन्ती) विनाशकारिणी हुई बला भी (परः विनश्यतु) दूर चली जाय ।

यद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।

यन्निष्पुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जैसे (दिवः निष्पुचि) सूर्य के अस्त काल में, (प्रबुधि) उदयकाल में (यद्वा) अथवा (मध्यन्दिने) मध्याह्न में भी सूर्य की किरणें (ऋतं दधे) तेज धारण किये ही रहती हैं वैसे ही हे (विश्व-वेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामियो ! विद्वानों, वीर पुरुषो ! आप भी (प्रियक्षत्राः) 'क्षत्र' अर्थात् बल धीर्य, अस्त्रादि के प्रिय, तदभिलाषी जनो ! (अद्य) आज (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन वा ज्ञान के प्रकाशक आचार्य के (यद्-यां) उदय होने वा उत्तम यत्नवान् होने पर आप लोग (नि-ष्पुचि) निष्प गति, विनय-शील होने पर, सूर्यास्त होने के काल में, (प्रबुधि) प्रबोध काल में, वा सूर्योदय काल में, (यद्वा) अथवा (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल में, (ऋतं दधे) सत्य, न्याय, तेज और अन्न को धारण करो ।

यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते त्रिदियेम वि दाशुषे ।

वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥ २० ॥

भा०—हे (असुराः) दुष्टों को उखाड़ने में समर्थ वीर पुरुषो ! प्राणों के अश्यास में लगे विद्वानो ! (अपिपित्वे) प्राप्त होकर (यत् वा ऋतं वियेम) जो भी सत्य ज्ञान है उसे हम प्रदान करें और (यत्ते दाक्षुषे) यत्नशील, दानशील जन को भी (छर्दिः) आश्रय और ज्ञान दीसि (वियेम) प्रदान करें । हे (वसवः) विद्वान् जनो ! हे (विश्व वेदसः) समस्त धनों, ज्ञानों के स्वामि-जनो ! हम लोग भी (वः) आप लोगों के (मध्ये) बीच (तत् छर्दिः) उस गृह वा शरण में (उप स्थेयाम) सदा रहें ।

यद्यच्च सूर उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि ।

वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुहानाय प्रचेतसे ॥ २१ ॥

भा०—(यत्) जैसे (उद् इते) उदय होते हुए और (मध्वन्दिने) मध्य दिन में (आ-तुचि) सब ओर संतापित करने वाले (सूरे) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन (यत् यत् वामं धत्थ) जिस २ उत्तम ज्ञान और धन को धारण करो उसे आप लोग (विश्ववेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी होकर, (जुहानाय) दान देने वाले और (प्र-चेतसे) उत्तम ज्ञानी पुरुष को (धत्थ) दिया करो ।

वयं तद्वः सम्राज आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।

अश्याम तदादित्या जुहंतो हविर्येन वस्योऽनशामहे ॥ २२ ॥ ३४।

भा०—हे (सम्-राजः) सम्मिलित होकर दीसि से चमकने वाले वीर पुरुषो ! (पुत्रः न) पुत्र के समान (वयं) हम लोग भी (वः) आप लोगों के (तत्) उस (बहु-पाय्यं) बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य की (आ-वृणीमहे) याचना करते हैं ! हे (आदित्याः) सूर्य की किरणोंवत् 'अदिति' भूमिमाता के सत्पुत्रो ! हम लोग (जुहंतः) आहुति देने वाले यज्ञकर्त्ता के पवित्र (हविः) अन्न का (अन्नमया) भोग करें (येन) जिससे हम (वस्यः) धन को (अनशामहे) प्राप्त करें । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥



[ २८ ]

अनुर्व्ववस्वत ऋषिः विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३, ५,  
विराड् गायत्री । ४ विराड्वृष्णिक् ॥ पञ्चचं सूक्तम् ॥

ये त्रिंशति त्रयस्परौ देवासौ बहिरासन्दन् ।

विदन्नहं द्वितासन्नन् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (देवासः) तेजस्वी, विजयेच्छुक, (त्रिंशति त्रयः)  
तीस ऊपर तीन अर्थात् संख्या में ३३ विद्वान् वीर जन, (बहिः आस-  
न्दन्) राष्ट्र के उत्तम पद को प्राप्त करते हैं, वे (द्विता विदन्) सत् और  
असत् दोनों का ज्ञान करें और (असन्नन्) निग्रह, अनुग्रह दोनों के  
देने वाले हों ।

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्रयः ।

पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) दुष्टों को वारण और सज्जनों से वरण करने योग्य,  
(मित्रः) सर्वज्ञेही, (अर्यमा) दुष्टों को दमन करने वाला न्यायकारी  
जन ये तीनों (अग्रयः) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष (स्मम्-राति-वाचः)  
उत्तम कर, वेतनादि धन का सेवन करने वाले और (पत्नीवन्तः) प्रजा-  
पालक शक्ति और नीति से युक्त होकर (वषट्-कृताः) उत्तम सत्कार  
से युक्त हों ।

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदृक्त इत्था न्यक् ।

पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे उक्त अधिकारी जन (सर्वया विशा) समस्त प्रजा  
से युक्त होकर (नः) हमारे (अपाच्याः) पश्चिम से, (ते उदृक्) वे उत्तर  
से (इत्था) और इसी प्रकार (ते) वे (न्यक् पुरस्तात्) नीचे से और  
आगे से भी (गोपाः) रक्षक हों ।

यथा वशन्ति देवास्तथेदं सत्तर्क्षं न किरा मिनत् ।

अरावा च न मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः यथा वशन्ति) विद्वान्, तेजस्वी, उत्तम जन जैसा चाहते हैं (तेषां) उनकी वह इच्छा (तथा इत् असत्) वैसी ही सफल होती है, (मर्त्यः अरावा च न) भदानशील, मूर्ख मनुष्य (तेषां न किः आमिनत्) उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता ।

सप्तानां सप्त ऋषयः सप्त युञ्जान्येषाम् ।

सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(सप्तानां) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों और विद्वानों के (ऋषयः सप्त) दृष्टियार और दृष्टिये भी सर्पणशील, दूर २ तक जाने वाली हों । (एषाम् युञ्जानि सप्त) इनके धन और यश फैलाने वाले हों । वे (सप्त उ श्रियः अधि धिरे) व्यापक सम्पदाओं को धारण करें । अथवा, विद्वानों और वीरों के सात विभाग, उसके सात प्रकार के आयुध, सात प्रकार के दर्शन, सात प्रकार के धन और सात प्रकार की शोभाएं । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[ २९ ]

मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीच ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ।, छन्दः—  
१, २ आर्ची गायत्री । ३, ४, १० आर्ची स्वराड् गायत्री । ५ विराड् गायत्री । ६—९ आर्ची भुरिगायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(अभ्रुः) सबका भरण-पोषण करने में समर्थ, (वि-पुणः) सब ओर जाने में समर्थ, (सु-नरः) उत्तम नेता, (युवा) बलवान् (हिरण्यम्) सुवर्ण के समान दीप्तियुक्त, सुन्दर (अङ्गि) रूप को (अङ्के) प्रकट करता है, वह विश्व में प्रभु और देह में आत्मा है ।

२४ प.



योनिमेक आ संसाद् द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥ २ ॥

भा०—वह (एकः) एक, अद्वितीय, (मेधिरः) शत्रुओं को हनन करने में समर्थ, बुद्धिमान्, (द्योतनः) सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, (देवेषु अन्तः) इन्द्रियों के बीच, आत्मा के तुल्य, पृथिव्यादि पदार्थों के बीच, (योनिम्) सब संसार के मूल कारण प्रकृति को, गृह को गृहपति के समान (आससाद्) अव्यक्ष रूप से वश करता है।

वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥ ३ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (देवेषु अन्तः) विद्वानों, विजयेच्छुकों के बीच सेनापतिवत्, तेजोमय, पृथिव्यादि तत्त्वों के बीच (हस्ते) अपने हाथ में (आयसीम् वाशीम्) सुवर्णमयी वंशी को गायक के समान, एवं लोह की बनी बसौली को शिल्पियों के समान, सबको संचालन करने में समर्थ ज्ञान-वाणी वेद वा वशकारिणी प्रभुशक्ति को (निध्रुविः) सबका धारक होकर (विभर्ति) धारण करता है।

वज्रमेको विभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्रते ॥ ४ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (हस्ते आहितं वज्रम्) हाथ में पकड़े शस्त्र के तुल्य (वज्रम्) बल को (आहितं) सर्वत्र व्यापक रूप से (विभर्ति) धारण करता है। (तेन) उससे वह (वृत्राणि) मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य, प्रकृति के सत् परमाणुओं को (जिघ्रते) संचालित करता है।

तिग्ममेको विभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलापभेषजः ॥ ५ ॥

भा०—वह (एकः) अकेला, अद्वितीय प्रभु (शुचिः) दीप्तिमान्, (उग्रः) सबसे बलवान्, (जलाप-भेषजः) जलवत् शान्तिदायक, बाधाओं को दूर करने में समर्थ, वैद्य के समान, ही (तिग्मम्) तीक्ष्ण (आयुधम्) शस्त्र को (हस्ते विभर्ति) हाथ में, शस्त्रचिकित्सकवत् वश में रखता है। उसका उपयोग करता है।

एथ एकः पीपाय तस्करो यथा एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥

भा०—(यथा तस्करः निधीनां वेद) जैसे चोर खजानों का पता लगा लेता है वह (पथः पीपाय) मार्ग रोक रखता है वैसे ही (एषः) वह (एकः) अद्वितीय प्रभु (पथः पीपाय) जीवों से प्राप्त करने योग्य मार्गों की रखवारी करता है। वह (यथा) यथावत् (तस्करः = तत्करः) उन, नाना सृष्टि की रचना, पालन, संहारादि अद्भुत कर्मों के करने हारा, प्रभु (निधीनाम्) समस्त ऐश्वर्यों को (वेद) जानता, प्राप्त करता और अन्यों को प्राप्त कराता है।

त्रीत्येकं उरुगाथो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—(यत्र) जिनमें (देवासः) सुखों के इच्छुक जीव, सूर्यादि लोक और विद्वान् जन (मदन्ति) आनन्द-लाभ करते हैं। उन (त्रीणि) तीन लोकों को (एकः) अद्वितीय (उरु-गाथः) महान् लोकों में व्यापक, कीर्त्तिमान् प्रभु (वि-चक्रमे) विशेष रूप से बनाता, उनमें व्यापता है।

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥

भा०—(प्रवासा इव एकया) जैसे दो प्रवासी एक स्त्री के साथ (प्रवसतः) प्रवास करें वैसे ही (द्वा) दो जीवात्मा और परमात्मा (त्रिभिः) अपनी विषयभोग साधन इन्द्रियों, प्राणों और ईश्वर के व्यापक सामर्थ्यों से (एकया सह) एक प्रकृति के साथ, एक काल में ही (चरतः) अच्छी प्रकार विचरते हैं और (प्र वसतः) रहते हैं। जीव प्रकृति का भोक्ता है और ईश्वर उसमें व्यापक होकर भी प्रवासी पथिकवत्, उससे निःसंग रहता है।

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सन्नाजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

भा०—(द्वा) वे दोनों (उपमा) एक दूसरे के तुल्य होकर ही (दिवि) धौ अर्थात् जीव कामना में और प्रभु मोक्ष में (सदः चक्राते)



अपना स्थान बनाये रखते हैं। वे दोनों (सम्राजा) दीप्तिमान्, (सर्पि-  
आसुती) घृत-आसेचन-योग्य दो अग्नियों के तुल्य हैं। प्रभु (सर्पि-  
आसुतिः) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का और जीव प्राणों का संचालक है।  
अर्चन्त एके महि सामं मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥ १० ॥ ३६ ॥

भा०—(एके) एक, विद्वान् जन (अर्चन्तः) उस प्रभु की अर्चना  
करते हुए (महि साम) बड़े भारी व्यापक बल को (मन्वतः) जान  
लेते हैं और (तेन) उसी से वे (सूर्यम्) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक प्रभु को  
(अरोचयन्) सबसे अधिक चाहते हैं। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

[ ३० ]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २  
पुर उष्णिक् । ३ विराड् बृहती । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः ।

विश्वे स्रुतोमहान्त इत् ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् वीर पुरुषो ! हे जीवो ! (वः) आप  
लोगों में से कोई भी (अर्भकः नहि अस्ति) छोटा बच्चा नहीं, (न कुमा-  
रक अस्ति) न बालक है, वा 'कुमार' कुत्सित उपायों से दूसरे को वा  
अपने आपको मारने वाला भी नहीं हो। आप (विश्वे) सब लोग  
(सतः महान्तः इत्) सत् प्रकृति से महान्, गुणों से अधिक शक्ति-  
शाली हों ।

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।

मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो आप लोग (मनोः) मननशील और राष्ट्र को वश  
करने वाले (यज्ञियासः) यज्ञ, पूजा, सत्संगादि के योग्य (देवाः)  
ज्ञानी, (रिशादसः) दुष्टों के नाशक (त्रयः च त्रिंशत् च स्थ) तैंतीस

(३३) हो वे सब (इति) इस प्रकार (स्तुताः असथ) प्रशंसित होवो ।

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।

मा नः पथः पित्र्यान्मानवा दधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे आप लोग (नः ब्राध्वम्) हमारी रक्षा करो । (ते अवतः) वे आप लोग हमें बचाओ । (ते उ नः) वे ही आप लोग हम पर (अधि वोचत) अध्यक्ष होकर शासन करो और आप लोग (नः) हमें (परावतः) दूर, परम प्रभु से चले आए, (पित्र्यात्) पालक पिता के (मानवात्) मननशील विद्वान् के बनाये (पथः) मार्ग से (दूरं मा नैष्ट) दूर मत करो ।

ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।

अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥ ४ ॥ ३७ ॥ ४ ॥

भा०—(इह) इस लोक में (ये देवासः स्थन) जो विद्वान् विजया-मिलापी वा ज्ञानादि के दाता हैं (उत) और जो (विश्वे) सब (वैश्वानराः) सबके संचालक वा सब मनुष्यों के हितैषी हैं, वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये और हमारे (गवे अश्वाय) गौ, घोड़े आदि के लिये भी (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख (यच्छत) दें । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[ ३१ ]

मनुर्वेस्वत ऋषिः ॥ १—४ ईज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च । ५—६ दम्पती । १०—१८ दम्पत्योराशिषः देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, १२ गायत्री । २, ४, ६, ८ निचृद् गायत्री । ११, १३ विराड् गायत्री । १० पादनिचृद् गायत्री । ६ अनुष्टुप् । १४ विराड् अनुष्टुप् । १५—१७

विराट् पंक्तिः । १८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥

यो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च ।

ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥ १ ॥



भा०—(यः) जो (यजाति) यज्ञ, ईश्वरोपासना करता है (यजाते इत्) दान देता और पूजा ही करता जाता है, (सुनवत्) सोमरस सम्पादन कर, ऐश्वर्य लाभ करता और (पचाति च) पाक यज्ञ करता, वा अपने को तप आदि में परिपक्व करता है वह (इन्द्रस्य ब्रह्म) ऐश्वर्यवान् प्रभु के महान् गुण को (चाकनत्) सदा चाहता है ।

पुरोळाशं यो अस्मे सोमं ररंत आशिरम् ।

पादित्तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्मै) इस संसार को (आशिरं) खाने योग्य (पुरोळाशं) पूर्व ही देने योग्य, अन्न (सोमं) ओषधि छतादि रूप में (ररते) देता है वही (शक्रः) शक्तिशाली परमेश्वर (तं) उस संसार को (अंहसः) पाप और नाश होने से भी (पात्) बचाता है ।

तस्य धुमाँ असुद्रथो देवजूतः स शूशुवत् ।

विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह शक्तिशाली स्वामी (विश्वा) सब प्रकार के (अमित्रिया) शत्रुओं के लिये छल-कपटादि कार्यों को (वन्वन्) नाश करता हुआ (देव-जूतः) विद्वानों से सेवित होकर (शूशुवत्) वृद्धि को प्राप्त होता है । (तस्य) उसका (रथः) रथ (धुमान्) कान्तियुक्त और (देव-जूतः) अग्नि, विंध्युत् आदि पदार्थों से चलने वाला (असत्) होता है ।

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती द्विवेदिवे ।

इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य इडा) उसकी भूमि (प्रजावती) प्रजा से युक्त होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (गृहे असश्चन्ती) गृह में स्थिर रहने वाली पत्नी वा गौ के समान (धेनुमती) गवादि पशु युक्त, और वाणी, आज्ञा युक्त होकर (दुहे) नाना सुख प्रदान करती है ।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।

देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! (या) जो (दम्पति) पति पत्नी, (स-मनसा) समान चित्त होकर (सुनुत) पुत्र उत्पन्न करते हैं और (नित्यया) नित्य (आशिरा) उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्य से (आ धावतः च) उसे शुद्ध संस्कृत करते हैं वे—

प्रति प्राश्व्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिःराशाते ।

न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥

भा०—(प्राश्व्यान्) उत्तम खाने योग्य पदार्थों को (प्रति इतौं) प्रतिदिन प्रास करें । वे (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार जीवन निर्वाह करते हुए (बर्हिः राशाते) उत्तम धान्य का उपभोग करें और (ता) वे दोनों (वाजेषु) अश्वों, बलों और ऐश्वर्यों से (नः वायतः) वञ्चित नहीं रहते ।

न देवानामपि हृतः सुमतिं न जुगुक्षतः ।

श्रवो बृहद्विवासतः ॥ ७ ॥

भा०—हे दोनों पति पत्नी (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों के बीच रहते हुए (अपि) भी, कभी भी (न हृत) कुटिल व्यवहार न करें और वे दोनों (सुमतिम्) अपनी उत्तम सम्मति, शुभ ज्ञान को (न जुगुक्षतः) कभी न छिपावें, प्रत्युत परस्पर उत्तम २ ज्ञान दें । वे दोनों नित्य (बृहत् श्रवः) बड़े वेदज्ञान का (विवासतः) प्रकाश करें, उसका अभ्यास करें और श्रवण करने योग्य महान् प्रभु की सेवा करें ।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।

उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों पति पत्नी (पुत्रिणा) पुत्रों वाले और (कुमारिणा) अथम वयस में वर्त्तमान, कुमारों, सन्तानों, के माता पिता होकर



(विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु का (वि अश्नुतः) भोग करें और (भा) दोनों (हिरण्यपेशसा) सुवर्ण के उत्तम अलंकार धारण करने वाले हों ।

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।

समूधौ रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥

भा०—वे दोनों (वीति-होत्रा) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी बोलने वाले (कृतद्वसू = कृत-वसू) उत्तम धन, वीर्यादि प्राप्त करके (दशस्यन्ताम्) दान दिया करें । वे (अमृताय कम्) न मरने वाली सन्तान को प्राप्त करने के लिये (ऊधः रोमशं) उत्तम सन्तान आधान और धारण करने वाले, रोम युक्त अर्थात् यौवनयुक्त अंगों को (सं-हतः) संयोजित करें, उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और (देवेषु) विद्वानों की (दुवः) सेवा (कृणुतः) किया करें ।

ये पांचों ऋचाएं गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों का उपदेश करती हैं । पञ्चभिर्दम्पती अस्तूयेताम् । सायणः ।

आ शर्म पर्वतानां वृणमिहे नदीनाम् ।

आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥ ३६ ॥

भा०—हम लोग (पर्वतानां) पर्वतों, मेघों और पालन शक्ति से युक्त पुरुषों और (नदीनाम्) नदियों, वाणियों और समृद्ध प्रजाओं के (शर्म) सुख को (आवृणीमहे) प्राप्त करें और हम (सचाभुवः) सम-वाय बनाकर रहने वाले (विष्णोः) व्यापक शक्ति वाले प्रभु वा स्वामी के (शर्म) सुख को भी प्राप्त करें । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः ।

उरुध्वा स्वस्तये ॥ ११ ॥

भा०—(स्वस्तये) सुख के लिये, (पूषा) सर्वपोषक स्वामी, वा भूमि हमें (आ-एतु) प्राप्त हो (सर्व-धातमः) सबको उत्तम रीति से पालन पोषण में समर्थ (रयिः) ऐश्वर्य, (भगः) सम्पदा और (उरुध्वा

अध्वा) बड़ा मार्ग प्राप्त हो ।

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा ।

आदित्यानामनेह इत् ॥ १२ ॥

भा०—(अनर्वणः) अहिंसक (देवस्य) सर्वदाता प्रभु के (मनसा) मनन और ज्ञान से (विश्वः) समस्त मनुष्य (अरमतिः) बड़े ज्ञानवान् हो जाते हैं और (आदित्यानाम्) आदित्य ब्रह्मचारी, तेजस्वी पुरुषों के (मनसा) ज्ञानोपदेश से सब कोई (अनेहः इत्) पाप रहित हो जाते हैं ।

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः ।

सुगा ऋतस्य पन्थाः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा) जैसे (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ (नः) हमारे (गोपाः सन्ति) रक्षक हैं वैसे ही (ऋतस्य) सत्य, न्याय और वेद का (पन्थाः) मार्ग (सु-गाः) सुख से गमन योग्य है ।

अग्निं वः पूर्य गिरा देवमीळे वसूनाम् ।

सपर्यन्तः पुरुग्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! मैं (वः) आप लोगों के बीच (वसूनां देवम्) मनुष्यों में सुखदाता, वा ब्रह्मचारियों में ज्ञानप्रकाशक की (पूर्य अग्निं) पूर्ण तेजस्वी 'अग्नि' नाम से (ईषे) स्तुति करता हूँ और हम सब उसी (पुरु-ग्रियं) सबको प्रिय, (क्षेत्र-साधसम्) निवास-योग्य गृह वा देह के वशीकर्त्ता, (मित्रं न) मित्र के समान स्नेही प्रभु का (सपर्यन्तः) भजन करते हुए उसकी स्तुति करें ।

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभिदियज्वनो भुवत् ॥ १५ ॥

भा०—जैसे (कासु चित् पृत्सु शूरः वा) किन्ह भी शत्रु, सेनाओं



में शूरवीर पुरुष निर्भय होकर प्रवेश करता है जैसे ही (देववतः रथः) सर्वप्रकाशक प्रभु के भक्त का रथ के समान आनन्दप्रद उपदेश (मन्त्र) शीघ्र ही (पुत्रसु) मनुष्यों के बीच प्रवेश कर जाता है। (यः) जो (यजमानः) दानशील पुरुष (देवानां मनः चित्) वीरों और विद्वानों के चित्त को (इयक्षति) सन्तुष्ट कर देता है वह (अयज्वनः) अदाता वा अनीश्वरोपासकों को (अभि) परास्त कर, (भुवत्) उनसे बढ़ जाता है। न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥

भा०—हे (यजमान) यज्ञकर्त्ता ! हे ईश्वरोपासक ! हे (सुन्वाय) ऐश्वर्योत्पादक ! हे सन्तानादि के उत्पादक ! हे (देवयो) विद्वानों के इच्छुक ! (न रिष्यसि) तू कभी नाश को प्राप्त न हो, पीड़ित न हो। क्योंकि (यः इत् देवानां मनः इयक्षति) जो उत्तम पुरुषों के मन को प्रसन्न रखता है वह (अयज्वनः अभि भुवत्) अनीश्वरोपासकों को पराजित करता है।

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।

देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥

भा०—(यः इत्) जो मनुष्य निश्चयपूर्वक (यजमानः देवानां मनः इयक्षति) विद्वान् पुरुषों के ज्ञान की उपासना करता है वह (अयज्वनः) उपासना न करने वालों को (अभि भुवत् इत्) परास्त करता है। (तं कर्मणा नकिः नशत्) उस तक कर्म के सामर्थ्य से भी कोई नहीं पहुँचता है और (न प्र योषत्) उसे कोई स्थान से डिगा नहीं सकता। वह स्वयं (न प्र योषति) पुत्र धनादि से वियुक्त नहीं होता।

असदन्न सुवीर्यमुत त्याश्वश्व्यम्। देवानां य इन्मनो।

यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥ ४० ॥ २ ॥

भा०—(यत् इत् देवानां मनः) जो तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान का (इयत्सति) सत्संग करता है, वह (अयज्वनः) सत्संग न करने वाले पुरुषों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य परास्त करता है, क्योंकि उसका (अत्र) इस लोक में (सुवीर्यम् असत्) उत्तम बल और विद्या सामर्थ्य हो जाता है और उसको (त्यत्) वह अलौकिक (आशु अवश्यम्) शीघ्र-गामी अश्वों से युक्त सैन्यादि और इन्द्रिय-सामर्थ्य प्राप्त होता है। इति अश्वारिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठेऽष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

### तृतीयोऽध्यायः

[ ३२ ]

ऋण्वो मेधातिथिः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवताः ॥ छन्दः—१, ७, १५, २७, २८ निचृद् गायत्री । २, ४, ६, ८—१२, १४, १६, १७, २१, २२, २४—२६ गायत्री । ३, ५, १९, २०, २३, २९ विराड् गायत्री । १८, ३० भुरिग् गायत्री ॥

अ कृतान्यजीषिणाः कण्वा इन्द्रस्य गाथया ।

मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

भा०—हे (कण्वाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (ऋजीषिणः) सत्य, न्याय मार्ग पर प्रेरणा करने वाले, (सोमस्य मदे) अन्न, ऐश्वर्यादि से नृस होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (कृतानि) किये कार्यों और राजा के कर्त्तव्यों का (गाथया) गान करने योग्य वेदवाणी से (अ वोचत) अच्छी प्रकार उपदेश करो ।



यः सृबिन्दमनर्शनिं पित्रं दासमहेशुवम् ।

वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो तेजस्वी (सृबिन्दम्) आक्रमण करके प्रजा का धन हरने वाले, (अनर्शनिं) अहिंसित बल के नेता (पित्रं) अपने ही पेट भरने वाले (दासम्) प्रजानाशक (अहेशुवम्) मेघवत् बढ़ने वाले दुष्टजन को (उग्रः) भयंकर होकर (वधीत्) दण्डित करे वह ही (अपः) आस प्रजाओं को (रिणन्) मार्ग में चलाने में समर्थ होता है ।

न्यवुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—जैसे बिजली (अवुदस्य बृहतः वि-स्तपं वर्ष्माणं कृषे नि-तिरिति) मेघ के तापरहित, वृष्टिकारक रूप को छिन्न-भिन्न करके कृषि के लिये दे देती है, वैसे ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (अवुदस्य) प्रजा को सुख देने वाले वा सहस्रों की संख्या में (बृहतः) बड़े शत्रु-सैन्य के (विस्तपं) विशेष तापकारी, (वर्ष्माणं) अस्त्रवर्षी प्रबल भाग को (नि-तिर) विनाश कर और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (तत् पौंस्यं) ऐसा ही पराक्रम (कृषे) किया कर ।

प्रति श्रुताय वो धृषन्तूर्णांशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (गिरे तूर्णांशं अधि धृषत्) विद्युत् मेघ से जल को बलपूर्वक गिरा देता है वैसे ही वह शत्रुहन्ता राजा (श्रुताय) प्रसिद्ध होने के लिये (वः) आप प्रजाजनों का (तूर्णांशं) हिंसा द्वारा नाश करने वाले दुष्ट दल को (गिरेः अधि) स्वयं पर्वतवत् उच्च पद से (प्रति अधि धृषत्) उसका मुकाबला करके धर्पण करे, उसे अधिकार-पूर्वक दण्डित करे जिससे वह सिर न उठा सके । उसी (सुशिप्रम्) सुन्दर सुख-नासिका, मुकुट से सजे वा वीर्यवान् राजा को मैं प्रजागण (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवे) पुकारूं ।

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।

पुरं न शूर दर्पसि ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष ! तू (मन्दानः) प्रसन्न होकर अन्यो को भी प्रसन्न करता हुआ (सोम्येभ्यः) ऐश्वर्य के पालन करने में योग्य कुशल पुरुषों के लिये, (गोः व्रजं) गौओं, वाणियों, भूमियों के समूह तथा (अश्वस्य) आशुगामी, अश्व सैन्य के (व्रजं) प्रयाणकारी बल को (पुरं न वि दर्पसि) और प्राकार या नगरी को विविध प्रकार से विदीर्ण कर ।

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दधसे चनः ।

आरादुप स्वधा गहि ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (यदि) यदि तू (मे सुते) मेरे उत्पन्न किये ऐश्वर्य में (रारणः) रमण करे और यदि (मे उक्थे) मेरे उत्तम वचन में ही (रारणः) प्रसन्न होकर और (चनः दधसे) बहुत अन्न को धारण करे, तो तू (आरात्) दूर या समीप से भी (स्वधा) धारक पोषक पदार्थों को (उप गहि) क्रय विक्रय या व्यापार द्वारा प्राप्त कर ।

वयं घां ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।

त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! (वयं घां) हम अवश्य (ते स्तोतारः) तेरे स्तुति करने वाले (अपि स्मसि) हों । हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! (त्वं नः जिन्व) तू हमें प्रसन्न और तृप्त कर, हमारी वृद्धि कर ।

उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ८

भा०—तू (सं-रराणः) समान भाव से प्रजासहित राष्ट्र में सुख आग करता हुआ (नः) हमारे (अवि-क्षितम्) अविनष्ट (पितुम्) अन्न



को (आ भर) प्राप्त करा और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें  
(ते) अपने (भूरि वसु आ भर) बहुत सा धन ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

उत नो गोमंतस्कृष्टि हिरण्यवतो अश्विनः ।

इडाभिः सं रमेमहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उत) और तू (नः) हमें (गोमतः) गौ आदि पशु और भूमि से सम्पन्न (कृधि) कर । तू हमें (हिरण्यवतः) अश्विनः) उत्तम सुवर्ण और अश्वों का स्वामी (कृधि) कर । हम (इडाभिः) उत्तम वाणियों, अन्नों, भूमियों से (संरमेमहि) अच्छी प्रकार जीवन का सुख प्राप्त करें ।

वृषदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये ।

साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (वृषदुक्थम्) वेदवाणी के उत्तम वचन जानने हारे, (उतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्नम्) आगे बढ़े बाहु वाले, दोनों को हाथ बढ़ा कर बचाने वाले और (साधु कृण्वन्तम्) उत्तम काम करने वाले पुत्र को (अवसे) रक्षा के निमित्त (हवामहे) प्रार्थना करें ।

य संस्थे चिच्छ्रुतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा ।

जरितृभ्यः पुरुवसुः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (संस्थे चित्) संग्राम में भी (शतक्रतुः) नाना कर्म करने हारा, नाना प्रज्ञावान् (वृत्रहा) शत्रुहन्ता होकर (आत्मे) अनन्तर (इं कृणोति) नाना शत्रुओं का नाश करता है वह (जरितृभ्यः) विद्वानों के लिये (पुरु-वसुः) बहुत से ऐश्वर्यों का स्वामी हो । (२) अध्यात्म में पुरु, इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा, इन्द्र 'पुरुवसु' है ।

स नः शक्रश्चिदा शक्रदानंवा अन्तराभरः ।

इन्द्रो विश्वाभिः कृतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वह (शक्रः) शक्तिशाली (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (दानवान्) नाना दान योग्य धनैश्वर्यवान् होकर (नः आ शक्त) हमें सब ओर से शक्तिमान् करे और वह (विश्वामिः कृतिभिः) सब प्रकार की रक्षाओं से (नः अन्तः आ भरः) हमें अपने राष्ट्र के भीतर, गर्भ में माता के समान पोषण एवं पालन करने वाला हो ।

यो रायोऽवनिर्महान्सुपारः सुन्वतः सखा ।

तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो प्रभु (रायः वनिः) ऐश्वर्य का देने हारा, (महान्) गुण और शक्ति में महान् (सु-पारः) उत्तम रीति से पालन पोषण करने और संकटों से पार उतारने हारा और (सखा) मित्र के समान ऊँही है, (तस् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी की (अभि गायत) खूब स्तुति वा गुणों का गान करो ।

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् ।

भूरेरीशान्मोजसा ॥ १४ ॥

भा०—(आ-यन्तारं) सब ओर से वश करने वाले, (महि स्थिरं) महान्, स्थिर, (पृतनासु) संग्रामों वा सेनाओं के बीच (श्रवः-जितम्) यश को विजय करने वाले और (मोजसा) पराक्रम से (भूरेः) बड़े ऐश्वर्य, वा जगत् के (ईशानसु) स्वामी की (अभि गायत) स्तुति करो ।

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् ।

नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (शचीनाम्) शक्तियों और (सूनृतानां) उत्तम सत्ययुक्त वाणियों का (नियन्ता) रोकने वाला (नकिः) कोई नहीं है । (न दात् इति वक्ता नकिः) वह नहीं देता ऐसा कहने वाला भी कोई नहीं । वह सबको श्रम और कर्मानुरूप फल देता है ।



न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् ।

न सोमो अग्रता पपे ॥ १६ ॥

भा०—(सुन्वताम्) अन्नादि उत्पन्न करने वाले (प्राशूनां) उत्तम मार्ग से जाने वाले, (ब्रह्मणां) विद्वान् ब्रह्मवेत्ताओं का (नूनं) निश्चय से कोई (ऋणं न अस्ति) ऋण शेष नहीं रहता । (सोमः) परम ऐश्वर्य वा यज्ञ में सोमरस, उत्तम अन्नादि का भोग भी (अग्रता) कोश न भरने वाले पुरुष को (न पपे) प्राप्त नहीं होता ।

पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत ।

ब्रह्मा कृणोत यन्य इत् ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पन्ये इत्) स्तुति योग्य परमेश्वर के निमित्त (उप गायत) उपासना-पूर्वक स्तुति करो । (पन्ये उक्थानि शंसत) स्तुत्य ग्रन्थ के निमित्त ही वेद-वचनों को बोलो । (पन्ये इत् ब्रह्मा कृणोत) स्तोतव्य ग्रन्थ के निमित्त ही यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करो ।

पन्य आ दर्दिरक्कृता सहस्रा वाज्यवृतः ।

इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ! ग्रन्थ (यज्वनः) दानी, सत्संगी, यज्ञोपासक का (वृधः) बढ़ाने हारा है, (पन्यः) स्तुति योग्य है, वही (वाजी) ऐश्वर्यवान्, (अवृतः) मोहादि से अनावृत, नित्य मुक्त (शता सहस्रा) सैकड़ों हजारों बन्धन (आ दर्दिरत्) काटता है ।

वि पू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः ।

इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (सुतानां) जगत् में उत्पन्न जीवों का (पिब) पालन कर । तू (कृष्टीनाम्) मनुष्यों को (आ-हुवः) सबले

आर्यना करने योग्य, सब सुख देने वाला है तू (स्वधा अनु) अपनी शक्ति से जगत् का धारक होकर (वि सु चर) अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप, (अनु चर) कर्मों के अनुसार उनको फल प्रदान कर ।

पिव स्वधैनवानामुत यस्तुग्रये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव ॥ २०।४

भा०—जैसे मनुष्य (स्व-धैनवानां पिवति) अपनी गौवों का दूध पीता है वैसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (स्व धैनवानाम्) अपनी वाणियों, इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सत्-असत् फलों का भोग कर और (यः) जो पदार्थ (तुग्रये) पालन योग्य पुत्रादि में (सचा) विद्यमान है, (उत अयम्) और (यः तव) जो तेरा है तू उसे (पिव) पालन या उप-भोग कर ।

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिव ॥ २१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मन्यु-साविनम्) क्रोध से आधि-पत्य करने वाले को और (उप-अरणे) अरमणीय स्थान में (सुसु-वांसम्) स्वामित्व करने वाले भी (अति इहि) अतिक्रमण कर । तू (इमं) इस (रातम्) अपने हाथ सौंपे (सुतं) प्रजागण को (पिव) पालन कर ।

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जना अति ।

धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥

भा०—तू (परावतः) दूर के (तिस्रः) तीनों प्रकार के उत्तम, मध्यम, निम्न प्रजाओं को (अति इहि) अपने वश कर और (पञ्च-जनान् अति इहि) चार वर्ण और पांचवें निषाद को भी अपने वश कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (धेना) नाना वाणियों को (अव चाकशत्) देख ।

सूर्यो रश्मि यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः ।

निम्नमापो न सध्याक् ॥ २३ ॥

२५ प.



भा०—(यथा सूर्यः रश्मि सृजति) जैसे सूर्य तेज देता है वैसे ही तू भी (रश्मि सृज) तेज और राष्ट्र को व्यापने वाला शासन कर। (आपः न सभ्रयक् निभ्रम्) जैसे जलधाराएं एक ही साथ नीचे प्रदेश में आकर उसे घेर लेती हैं वैसे ही (मे गिरः) मेरी वाणियां भी (त्वा) तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (आयच्छन्तु) प्राप्त हों।

अध्वर्यवा तु हि सिञ्च सोमं वीरायं शिप्रिणे ।

भरा सुतस्य पतिये ॥ २४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञ करने हारे, यज्ञ के स्वामिन् ! तू (शिप्रिणे) मुकुट धारण करने वाले (वीराय) वीर पुरुष के लिये (सोमं आ सिञ्च) ओषधि रसवत् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का आसेचन कर, ऐश्वर्य की वृद्धि कर। (पीतये) पालन करने के लिये (सुतस्य) उत्पन्न राष्ट्रजन को पुत्रवत् (भर) पुष्ट कर।

य उद्नः फलिगं भिनन्य सिन्धू रवा सृजत् ।

यो गोषु पक्कं धारयत् ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—जैसे तीव्र विद्युत् (फलिगं भिनत्) मेघ का भेदन करता और (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की धाराओं को नीचे फेंकता है और (गोषु पक्कं धारयत्) भूमियों में परिपक्व अन्न को पुष्ट करता है, वैसे ही जो राजा (फलिगं भिनत्) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य वाले शत्रु को छिन्न-भिन्न करता और राष्ट्र में (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की नहरों को नीची भूमियों में प्रवाहित करता है और जो (गोषु) भूमियों में (पक्कम्) पके अन्न को लेता है वही भूमि का स्वामी (इन्द्रः) 'इन्द्र' है।

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमंही शुर्वम् । हिमेनाविध्यद्वुदम् ॥ २६ ॥

भा०—(ऋचीषमः) तेज से सर्वत्र प्रदीप्त सूर्य जैसे (और्णवाभम्)

ऊन के कम्बल के तुल्य आच्छादक, (अहीशुवम्) मेघ से बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघस्थ जल को (अहन्) आघात करता है और (हिमेन) शीत से (अबुद्म्) जलप्रद मेघ को (अविध्यत्) वेध देता है, वैसे ही (ऋची-पमः) प्रतिष्ठा वा शासन से सर्वत्र समान निष्पक्ष राजा (और्णवामम्) ऊन दाता भेद के समान टकर लेने वाले, (अहीशुवम्) सूर्य के समान क्रोध से बढ़ने वाले (वृत्रम्) शत्रु का (अहन्) नाश करता है, वह (अबुद्म्) शस्त्र-बल से नाश करने वाले शत्रु को (हिमेन) हनन-साधन शस्त्र-बल से (अविध्यत्) वेधता, ताड़ित करता है, वही 'इन्द्र' है ।

प्र व उग्राय निष्ठुरेऽपांलाहय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (वः) अपने में से (उग्राय) शत्रु के प्रति उग्रस्वभाव वाले, (निः-स्तुरे) शत्रु के सर्वथा नाश में समर्थ, (अपाढाय) स्वयं पराजित न होने और (प्र-सक्षिणे) शत्रु को अच्छी प्रकार पराजित करने वाले पुरुष को अधिक बली करने के लिये (देवत्तं ब्रह्म) विद्वानों के द्वारा गुह्य-परम्परा से प्रदत्त वा प्रभु से दिये वेद-ज्ञान का (गायत) उपदेश करो ।

यो विश्वान्यमि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः ।

इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (देवेषु) इन्द्रियों के बीच में (अन्धसः मदे) अन्न से तृप्ति लाभ करके जैसे (विश्वानि व्रता अमि चेतति) सब कार्यों को जानता है वैसे ही (यः) जो पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होने पर वा राष्ट्र के शासन-कार्य में (विश्वानि व्रता अमि) सब कर्त्तव्यों को (चेतति) ठीक जानता है, वह (इन्द्रः) 'इन्द्र' है ।

इह त्या संघ्रमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।

बोलाहममि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥



भा०—(इह) यहां (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द वा तृप्ति लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान केशों के तुल्य दीप्तियों को धारण करने वाले तेजस्वी, (हरी) राजा, प्रजा, वा स्त्री-पुरुष (हितम् प्रयः) हितकारी अन्न, ज्ञान (अभि धोढाम्) प्राप्त करावें ।

अर्वाञ्च त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी ।

सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति-योग्य ! (अर्वाञ्च त्वा) साक्षात् प्राप्त तुल्यको (प्रियमेध-स्तुता) यज्ञ के प्रिय विद्वान् पुरुषों द्वारा उपदिष्ट, उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुष (सोम-पेयाय) ऐश्वर्य-पालन के लिये (वक्षतः) सन्मार्ग से ले जावें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[ ३३ ]

मेघातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५ बृहती । ४, ७, ८, १०, १२ विराड् बृहती । ६, ९, ११, १४, १५ निचृद् बृहती । १३ आर्ची भूरिग् बृहती । १६, १८ गायत्री । १७ निचृद् गायत्री । १९ अनुष्टुप् ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तवर्हिषः ।

पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १ ॥

भा०—जैसे (आपः न) जलधाराएं (वृक्त-वर्हिषः) कुश काशादि की वृद्धि करने वाली होकर (प्र-स्रवणेषु) निक्षरों में नीचे की ओर बहा करती हैं वैसे ही हे (वृत्र-हन्) शत्रुनाशक स्वामिन् ! (वयं घ) हम भी (सुत वन्तः) उत्तम प्रजावान् और ऐश्वर्यादिमान्, (वृक्त-वर्हिषः) यज्ञ में आसनादिवत् विस्तीर्ण एवं प्रजाओं की वृद्धि करके (त्वा परि) तुझे प्राप्त हों, (पवित्रस्य) शुद्ध जल एवं ज्ञान के (प्रस्रवणेषु) प्रवाहों

के तदों पर (स्तोतारः) स्तुतिकर्ता लोग (परि आसते) विराजते हैं ।

स्वरान्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।

कद्रा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसंगः ॥ २ ॥

भा०—हे (वसो) जगत् को वसाने, सबकी रक्षा करने हारे, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (उक्थिनः नरः) वेद-वचन धारण करने वाले जन, (सुते) इस उत्पन्न जगत् में, (निरेके) एकान्त में भी (त्वा स्वरान्ति) तुझे पुकारते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, उत्तम गति से चलने हारा (सु-अब्दीव) गर्जते मेघवत् (तृषाणः) प्यासे के समान उत्कण्ठित होकर (सुतं कद्रा आगमः) इस उत्पन्न जीव संसार को कब प्राप्त हो ?

कण्वेभिर्मृषाणां धृषद्वाजं दधि सहस्रिणम् ।

पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) धनसम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के ऊपर द्रष्टः ! हे (घृणो) दुष्टों के दलनकर्ता ! हम (पिशङ्गरूपं) पीत-रूप वाले स्वर्ण आदि और (गोमन्तं) भूमि से युक्त (वाजं) ऐश्वर्य की तुलसे (मक्षू) शीघ्र ही (ईमहे) याचना करते हैं । तू (कण्वेभिः) विद्वानों और वीरों द्वारा (सहस्रिणं वाजं दधि) सहस्रों सुख वाले ऐश्वर्य हमें दे ।

पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।

यः संमिश्रतो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥ ४ ॥

भा०—हे (मेध्यातिथे) 'मेध' अर्थात् सत्संग और अद्यादि से सत्कार-योग्य अतिथे ! तू (अन्धसः मदे) अन्न द्वारा आनन्द लाभ करने पर (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के सम्बन्ध में (गाय) उपदेश दे और (पाहि) उसका ज्ञान-रस पान कर । (यः) जो (हर्योः संमिश्रः) स्त्री पुरुष दोनों में व्यापक है, (यः सुते सचा) जो पुत्रवत् उत्पन्न जगत् में सदा विद्यमान है जो (वज्री) बलवान् (रथः) रमणीय, (हिरण्यः)



सुवर्णवत् तेजोमय है ।

यः सुषट्वयः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।

य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्वमिदारितः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—पुरुषोत्तम कैसा है ? (यः) जो (सु-सव्यः, सु दक्षिणः) बायें और दायें दोनों हाथों से कुशल, कर्म करने में समर्थ, वा (सु-सव्यः) उत्तम रीति से पूजा योग्य, वा जगत् के उत्पादन, शासन और संचालन में समर्थ और (सु-दक्षिणः) उत्तम धन, दान, बुद्धि से सम्पन्न, (इनः) सबका स्वामी, (यः) जो (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म व प्रज्ञावान् (गृणे) स्तुति किया जाता है । (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रों कर्मों का करने वाला, वा सहस्रों ऐश्वर्यों को धारण करने वाला है, (यः शत-मघः) जो सैकड़ों ऐश्वर्यों का स्वामी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (यः पूर्वमिद-रितः) शत्रु-नगरों का भेदक वा योगिजनों के देह-बन्धन का विच्छेदक, मुक्ति-दाता और (भारितः) स्तुति द्वारा प्राप्त होता है । इति सप्तमो वर्गः ॥

यो धृष्टितो योऽवृत्तो यो अस्ति श्यश्रुषु श्रितः ।

विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुषुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (धृष्टितः) सबका वश कर्त्ता, (यः अवृत्तः) जो न घिरा, असंग, (यः) जो (इमश्रुषु श्रितः) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य, वा (इमश्रुषु = इमसु शरीरेषु श्रूयन्ते इति इमश्रवो जीवाः) शरीरों में विद्यमान जीवों या इमश्रु अर्थात् सूखों वाले, वीर पुरुषों के बीच (श्रितः) आश्रय योग्य, उन द्वारा सेवित, (विभूतद्युम्नः) अति ऐश्वर्यवान्, (च्यवनः) शत्रुओं को विचलित करने वाला, (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित और (क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य से (शाकिनः) शक्ति प्राप्त करने वाले जीव के लिये (गौः इव) भूमि के समान सुख-उत्पादक है । क ई वेद सुते सच्चा पिवन्तं कद्वर्यो दधे ।

अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिष्यन्धंसः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) पराक्रम से (पुरः) शत्रु के पुरों, दुर्गों को (वि-भिनत्ति) तोड़ डालता है (अयं) वह (अन्धसः) अन्ध वा जीवनधारक पदार्थ से (मन्दानः) आनन्द लाभ करता है। (सुते) ऐश्वर्य के बल पर (पिबन्तं) राष्ट्र का पालन करते हुए (ईं) इसको (कः वेद) कौन जानता है, कि वह (क्त् वयः दधे) कितना बल धारण करता है।

दाना मृगो न चारुणः पुरुत्रा चरथं दधे ।

नकिंष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महान् चरस्योजसा ॥ ८ ॥

भा०—(मृगः न चारुणः) जैसे पशु हस्ती (पुरुत्रा दाना दधे) बहुत से मदजल धारण करता है और (पुरुत्र चरथं दधे) बहुत से स्थानों पर विचरण करता है वैसे ही वह प्रभु, स्वामी (चारुणः) सब दुःखों का चारक, (मृगः) शुद्धस्वरूप वा योगी मुमुक्षुओं से खोजने योग्य (पुरुत्रा) पालनीय जीवों के निमित्त (दाना) दान योग्य नाना ऐश्वर्य दान करता है और (पुरुत्रा चरथं दधे) बहुत से भोग्य कर्मफल देता है। हे प्रभो ! (सुते) इस जगत् में (त्वा नकिः नियमत्) तुझे कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है। तू (ओजसा) महान् सामर्थ्य से (गमः) सर्वत्र-व्यापक है और (महान्) सबसे महान् होकर (चरसि) सबमें व्याप रहा है।

य उग्रः सन्ननिष्ठृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(यः) जो (उग्रः सन्) दुष्टों के प्रति उग्र होकर (अनि-स्तृतः) अहिंसित, अमर, (स्थिरः) कूटस्थ (रणाय) युद्ध वा 'रण' अर्थात् परम आनन्द देने के लिये (संस्कृतः) सुसज्ज, उपासित है। (यदि) यदि (मघवा) वह ऐश्वर्यवान्, (स्तोतुः हवं शृणवत्) स्तुतिकर्ता की प्रार्थना सुन ले तो वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वीर (न योषति) कभी



स्वीवत् भय नहीं करता, (आंगमत्) आ ही जाता है ।

सत्यमित्था वृषेदसि वृषज्जूतिर्नोऽवृतः ।

वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावतिः श्रुतः ॥१०॥८॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (सत्यम्) सचमुच, (वृषा इत् असि) समस्त सुखों का वर्षाने वाला ही है । तू (नः) हमारे बीच (अवृतः) किसी से न घिरा, असंग, (वृषज्जुतिः) सुखवर्षक सूर्यादि को सञ्चालन में समर्थ, नेता है । तू (परावति) दूर, परमार्थ में भी, हे (उग्र) बलवान् ! (वृषा हि शृण्विषे) बलवान् ही सुना जाता है और (अर्वावति) पास, इस लोक में भी (वृषः श्रुतः) बलवान्, सुखों का वर्षक प्रसिद्ध है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशां हिरण्ययी ।

वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

भा०—जैसे वीर पुरुष की (अभीशवः कशा रथः हरी) रासें, चाबुक, रथ और घोड़े बलवान् हों तो वह युद्ध करने में समर्थ होता है वैसे ही हे (शतक्रतो) सैकड़ों बलों, ज्ञानों वाले ! स्वामिन् ! तेरी (ते अभीशवः) शासनकारिणी शक्तियां (वृषणः) बलवती हैं । (ते कशा) तेरी वाणी वेदमयी (हिरण्ययी) हितकारिणी है और (वृषा) ज्ञान के देने वाली है । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! (ते रथः वृषा) तेरा रमणीय रूप और उपदेश भी सुखप्रद है । (ते हरी) तेरे उपासक स्त्री पुरुष (वृषणा) बलवान् हैं । (त्वं वृषा) तू स्वयं बलवान् है ।

वृषा सोतां सुनोतु ते वपञ्जजीपिन्ना भर ।

वृषा दधन्वे वर्षणं नदीष्व तृभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवान् ! हे (ऋजीपिन्) सरल, धर्ममार्ग में मनुष्यों के प्रेरक ! (सोता) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला (वृषा) बलवान्

होकर (ते सुनोतु) तेरा अभिवेक करे । तू उसको (आ भर) सब ओर से पुष्ट कर । हे (हरीणां स्यातः) विद्वानों, वीर पुरुषों के बीच स्थिर ! (तुभ्यं) तेरी ही वृद्धि के लिये (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में (वृषा) बलवान् वीरसमूह (वृषणं) उत्तम प्रबन्धक, प्रमुख तुझ पुरुष को ही (दधन्वे) धारण करे ।

एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।

नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! वा आत्मन् तू (मधु) सुखप्रदः (सोम्यं) बलकारक ओषधि आदि रसवत् शिष्योचित विद्वानों के उपदेश को (पीतये) पान करने, श्रवण करने के लिये (आयाहि) आ । हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! (अयम्) यह (सु-क्रतुः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (मघवा) धनवान् पुरुष भी (ब्रह्म उक्था च) वेदज्ञान और 'उक्थ' उत्तम वचन और (गिरः) वाणियों को (न अच्छ शृणवद्) साक्षात् श्रवण नहीं कर सकता । वह भी गुरु के समीप जाकर ही ज्ञान का श्रवण कर सकता है ।

वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।

तिरश्चिद्वर्य सर्वानानि वज्रहन्त्येषां या शतक्रतो ॥ १४ ॥

भा०—हे (वज्रहन्) विघ्नों के नाशक ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने वाले ! (रथ-युजः) रथ में नियुक्त, (हरयः) अश्वों के समान, राष्ट्र में नियुक्त विद्वान् जन (रथेष्ठाम् त्वा) रथ पर अधिष्ठाता के समान विराजमान तुझको (या) जो (अन्येषां सवनानि) अन्यो के यज्ञ वा ऐश्वर्य हैं उनको भी (तिरः चित् आवहन्तु) उत्तम रीति से प्राप्त करावें ।

अस्माकमद्यान्तमं स्ताम धिष्व महामह ।

अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः १५।१६



भा०—हे (महामह) बड़ों के पूज्य ! तू (अद्य) आज (अस्माकं) हमारे (अन्तमं) समीपतम (स्तोमं) स्तुति-वचन को (धिष्ण्व) धारण कर । हे (द्युक्ष) तेजस्विन् ! हे (सोम-पाः) ऐश्वर्यादि के पालक ! (अस्माकं सवना) हमारे पूजा वा ऐश्वर्य (ते मदाथ) तेरे आनन्द वृद्धि के लिये और (ते शान्तमा) तुझे अति शान्तिप्रद (सन्तु) हों । इति नवमो वर्गः ॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।

यो अस्मान्वीर आनयत् ॥ १६ ॥

भा०—(यः वीरः) जो वीर, विशेष विद्वान् (अस्मान्) हम सबको (आ अनयत्) आगे ले जाता है (सः) वह, हे मित्र ! (नहि तव, नो मम, अन्यस्य) न तेरे, न मेरे, या किसी और सामान्य पुरुष के (शास्त्रे रण्यति) शासन में प्रसन्न होता है । वह हमसे सर्वोपरि है ।

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः ।

उतो अहं क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः चित् घ) ज्ञानद्रष्टा विद्वान् भी (स्त्रियाः) 'स्त्री' अर्थात् संघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना के (तत् मनः) उस स्तम्भन बल को (अशास्यं अब्रवीत्) शासन न होने योग्य, अति प्रबल बतलाता है, (उतो) और उसके (रघुं) वेगयुक्त (क्रतुं) सामर्थ्य को भी (अशास्यं अहं) अशास्य, अदम्य ही बतलाता है । पक्षान्तर में — उपदेश और गुण ग्रहण करने वाली शिक्षिता स्त्री का चित्त विशेष शासन की अपेक्षा नहीं करता, उसका कर्म सामर्थ्य भी, 'रघु' अर्थात् कुशल होता है ।

सतीं चिद् घा मदच्युतां मिथुना वहतो रथम् ।

एवेदूर्वृणा उत्तरा ॥ १८ ॥

भा०—स्त्री और पुरुष (मिथुना) दोनों मिलकर (मदच्युता) आनन्द को प्राप्त करते हुए (ससी चित्) दो अश्वों के समान ही (रथम् वहतः) गृहस्थ रूप रथ वा गृहस्थ सुख को वहन करते और रथ में जैसे (धूः वृष्णः उत्तरा) धुरा बलवान् अश्व से अधिक जंची होती है वैसे ही (धूः) गृहस्थ या प्रजा को धारण करने में समर्थ स्त्री, (वृष्णः) वीर्यसेचक पुरुष की अपेक्षा (उत्तरा एव इत्) उत्कृष्ट गुणों से युक्त ही होती है। माता पिता से बड़ी है।

अथः पश्यस्व सोपरि सन्तरां पादकौ हर ।

मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथः ॥१६॥१०॥

भा०—स्त्री को उपदेश ! हे स्त्री ! तू (अथः पश्यस्व) नीचे देख, विनयशील हो। (मा उपरि) ऊपर मत देख, उद्धत मत हो। (पादकौ) दोनों पैरों को (संहरतराम्) अच्छी प्रकार एकत्र कर रख, असभ्यता से पैर मत फैला। (ते) तेरे (कशप्लकौ मा दृशन्) टखनों को कोई भी न देखे। ऐसे विनयाचार से तू (स्त्री हि) स्त्री होकर भी अवश्य (ब्रह्मा बभूविथ) वेदवेत्ता वा पूज्य हो सकती है। इति दशमो वर्गः ॥

[ ३४ ]

नीपातिथिः काण्वः । १६—१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरसः ऋषयः ॥ इन्द्रो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ८, १०, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ६, ७, ९ अनुष्टुप् । ५, ११, १४ विराडनुष्टुप् । १६, १८ निचृद्गायत्री । १७ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्रं याहि हरिर्मिरुप कण्वस्य सुष्ठुतिम् ।

दिवो अमुष्य शास्तो दिवं यय दिवावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (दिवा-वसो) दिन में रहने वाले सूर्य तुम्हें ज्ञानप्रकाश से अपने शिष्यों को बसाकर, उनको ज्ञानमय वस्त्र से आच्छादित करने



हारे विद्वन् ! तू (अमुष्य) उस (शासतः) शासन करने वाले (दिवः) सूर्य समान तेजस्वी प्रभु के (दिवं) ज्ञान-प्रकाश को (यय) प्राप्त कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (हरिभिः) विद्वानों द्वारा, या हरणशील इन्द्रियादि अंगों सहित (कण्वस्य सुस्तुतिम् उप आ याहि) विद्योपदेश के उत्तम उपदेश को प्राप्त कर, उसके पास जाकर शिष्यवत् ग्रहण कर ।

आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ २ ॥

भा०—हे विद्याभिलाषिन् ! (इह) इस आश्रम में (सोमी) ज्ञानी शिष्यों का स्वामी (ग्रावा) विद्वान् (त्वा) तेरे प्रति (वदन्) उपदेश देता हुआ (घोषेण) वेद द्वारा (दिवः) तेजोमय (शासतः) शासक (अमुष्य) उस प्रभु के (दिवं यच्छतु) प्रकाशमय तेज को प्रदान करे । हे (दिवावसो) विद्या कामना से गुह्य के पास बसे विद्यार्थिन् ! तू भी उसके (दिवं यय) ज्ञान को प्राप्त कर ।

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥

भा०—(वृकः उरां न) भेड़िया जिस प्रकार भेड़ को बल से (धूनुते) कंपा देता है । उसी प्रकार (एषां) इन विद्वानों का (वृकः) विशेष ज्योति को प्रकाशित करने वाला (नेमिः) अनुशासन (अत्र) इस लोक में (उराम्) अति विस्तृत वाणी को (विधूनुते) विशेष रूप से प्रदान करता है । (दिवः अमुष्य शासतः) अनुशासन करने वाले उस तेजस्वी ज्ञानी पुरुष के (दिवं) ज्ञानप्रकाश को हे विद्यार्थिन् ! तू (यय) प्राप्त कर ।

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! गुरो ! (कण्वाः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (इह) इस आश्रम में (वाज-सातये) ज्ञान प्राप्त करने और (अवसे) रक्षा के लिये (त्वा आ हवन्ते) तुझे प्रार्थना करते हैं । (दिवः अमुष्य०) पूर्ववत् ।

दधामि ते सुतानां वृष्णो न पूर्वपाय्यम् ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(वृष्णे पूर्व-पाय्यम्) बलवान् पुरुष को जैसे पूर्व ही पालन करने का उचित आदर-भेंट दिया जाता है वैसे ही हे विद्वन् ! (ते वृष्णे) बरसते मेघवत् निष्पक्षपात होकर ज्ञान देने वाले तुझे मैं (सुतानां) अपने पुत्रों के (पूर्व-पाय्यं) पूर्ण पालन वा पूर्व आयु के पालन का भार (दधामि) प्रदान करता हूँ । पूर्ववत् । इत्येकादशो वर्गः ॥

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोर्धनि ऊतये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे वीर ! तू (स्मत्-पुरन्धिः) सर्वोत्तम बहुत से ज्ञानों को धारण करने और बहुतों के भरण पोषण में समर्थ उत्तम आसक, गृहणीवत् उत्तम प्रबन्धक और (विश्वतः-धीः) सब तरफ जाने वाली बुद्धि, वा कर्म सामर्थ्य से सम्पन्न होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा और ज्ञान प्रदान के लिये (नः आगहि) हमें प्राप्त हो । पूर्ववत् ।

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (महे-मते) महामते ! पूजनीय ज्ञानवन् ! हे (सहस्रोते) बलवान् वा सहस्रों रक्षा सामर्थ्यों से युक्त ! हे (शतामघ) सैकड़ों धनों के स्वामिन् ! तू (नः आ याहि) हमें प्राप्त हो । पूर्ववत् ।

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीज्यः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥



भा०—(दिवावसो) ज्ञान की कामना करने हारे ब्रह्मचारिन् ! (देवत्रा ईड्यः) विद्वानों के बीच स्तुति करने योग्य पूज्य, (मनुः) ज्ञानवान् (हितः) हितकारी (होता) ज्ञानादि देने में समर्थ, कुशल पुरुष (त्वा आवसत्) तुझे धारण करे और उत्तम उपदेश कहे और तू भी (अमुष्य दिवं शासतः) आकाश और भूमि के शासक, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (यय) प्राप्त कर ।

आ त्वा मदच्युता हरीं श्येनं पक्षेव वक्षतः ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

भा०—(श्येनं पक्षा इव) जैसे बाज नामक पक्षी को दोनों पांख बल पूर्वक वहन करते हैं और जैसे (श्येनं) श्येन व्यूह से गमन करने वाले धीर योद्धा को (पक्षा इव) आजू-बाजू के दोनों सेना दल (आ वक्षतः) सब तरफ से धारण करते हैं वैसे ही (त्वा श्येनं) तुझ उत्तम चरित्र से सम्पन्न पुरुष को (मद-च्युता) आनन्ददाता (हरी) स्त्री और पुरुष (पक्षा इव) ग्रहण करने, वा अपनाने वाले बन्धु जनों के तुल्य (आवक्षतः) आगे बढ़ावें और वचनोपदेश किया करें । (दिवोः अमुष्य० पूर्ववत्) ॥

आ याह्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे (अर्थ) स्वामिन् ! तू (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के पालन के लिये (आयाहि) आ और (स्वाहा) उत्तम वाणी और उत्तम दान से (सोमस्य परि आयाहि) सोम, ऐश्वर्य, शासन, राष्ट्र, अन्न और जीव गण के रक्षार्थ आ । पूर्ववत् । इति द्वादशो वर्गः ॥

आ नो यान्नुपश्रुत्युक्थेभुं रणया इह ।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

भा०—हे (दिवावसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु ब्रह्मचर्य वास करने हारे ! तू (नः) हम विद्वानों के (उप-श्रुति) समीप आकर ज्ञान श्रवण के निमित्त (आ याहि) प्राप्त हो और (उक्थेषु) वेद वचनों और उप-देशों के निमित्त (इह) इस आश्रम में (नः रणय) हमें उपदेश कर । पूर्ववत् ।

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् । तू (सम्भृताश्वः) अश्वोंवत् विषयों को भोगने वाड़े इन्द्रियों को वश करके (संभृतैः) उत्तम रूप से पुष्ट और (सरूपैः) समान रूप, कान्ति से युक्त अंगों वा सहयोगियों सहित (नः सु गहि) हमें सुख से प्राप्त कर । (दिवः अमुष्य०) पूर्ववत् ।

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पर्वतेभ्यः) पर्वतों या मेघों से जलों के समान और (समुद्रस्य) समुद्र के (वि-स्तपः) ताप रहित शीतल स्थान से मेघमाला या पवन के समान (आ याहि) हमें प्राप्त हो । (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्)

आ नो गव्यान्यश्व्यां सहस्रां शूर दर्दहि ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

भा०—हे (शूर) वीर ! तू (सहस्रा) बलवान् वा सहस्रों (गव्यानि अश्व्या) गौओं और अश्वों की (नः अदर्दहि) हमारे लिये वृद्धि कर । वा हमारे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राणों के (सहस्रा) अनेक ज्ञानों, बलों को बढ़ा (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

आ नः सहस्रशो भंरायुतानि शतानि च ।

दिवो अमुष्य शासंतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥



भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! शूर ! तू (नः) हमें (सहस्रशः अयु-  
तानि शतानि च) सैकड़ों, हजारों और लाखों की संख्या में (आ भर)  
पुष्ट कर, वा हमें अनेक ऐश्वर्य दे । (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्)  
इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः ।

ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—हम लोग और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् राजा, नेता, (वसु-  
रोचिषः) धन, प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न होकर (ओजिष्ठं) अति  
पराक्रमशील, बलयुक्त, (अश्व्यं) अश्व बल से युक्त (पशुम्) पशु सम्पदा  
को (सहस्रं) सहस्र संख्या में (आ दद्वहे) प्राप्त करें ।

य ऋज्जा वातरंहसोऽरुपासो रघुष्वदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥ १७ ॥

भा०—(ये) जो (ऋजाः) ऋजु, धर्म मार्ग से जाने वाले, (वात  
रंहसः) वायु के वेग से गमन करने वाले (अरुपासः) अति कान्तियुक्त  
वा रोषरहित, अति शान्त, (रघुष्वदः) वेगवान् रथ से जाने वाले,  
वीर पुरुष (सूर्याः इव) सूर्यों के समान (भ्राजन्ते) चमकते हैं ।

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु ।

तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥ १३ ॥

भा०—परम स्थान पर विराजमान, परम पालक प्रभु से (रातिषु)  
दिये ऐश्वर्यों के बीच में और (द्रवत्-चक्रेषु) अति शीघ्रता से चलने वाले,  
चक्रों से युक्त, (आशुषु) शीघ्रगामी अश्वों, सैन्यों से बीच में सुरक्षित  
रहकर (वनस्य मध्ये) जल के बीच कमलवत्, तेजों के बीच सूर्यवत्  
और ऐश्वर्यों के बीच में (आ तिष्ठम्) विराजूं । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ३५ ]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ अश्विनी देवते ॥ छन्दः—१, ५, १६, १८ विराट्  
त्रिष्टुप् ॥ ७—९, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ६, १०—१२, १४, १५; १७

शूरिक् पंक्तिः । २०, २१, २४ पंक्तिः । १९, २२ निचृत् पंक्तिः । २३  
 पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे रथी  
 सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (अग्निना) अग्नि (इन्द्रेण)  
 विद्युत्, (वरुणेन) जल, (विष्णुना) व्यापक, एवं विविध पदार्थों के  
 शोधक, सूर्य (आदित्यैः) सूर्य की किरणों और (रुद्रैः वसुभिः) रोग-  
 नाशक और जीव के वसाने योग्य साधनों से और (उषसा सूर्येण)  
 प्रभात की दीप्ति और सूर्य के समान (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त  
 होकर (सचाभुवा) साथ-साथ, सहयोगी बनकर (सोमं पिबतम्)  
 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य, उत्पन्न जगत् और पुत्र राष्ट्रादि का पालन करो  
 तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि का उपभोग करो ।

विश्वामिध्रींभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(उषसा सूर्येण च) सूर्य की प्रातःकालीन उषा और 'सूर्य'  
 के समान (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर हे (अश्विनौ) रथी  
 सारथिवत् उत्तम सहयोगी स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (वाजिना सचाभुवा)  
 बल, दान, ऐश्वर्यादि के स्वामी और एक साथ संगत रहते हुए (विश्वामिः  
 धीभिः) समस्त वाणियों, कर्मों, ज्ञानों से और (भुवनेन) उत्पन्न संसार  
 और (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी और (अद्रिभिः) मेघों से  
 उत्पन्न (सोमं) ऐश्वर्य, अन्नादि का (पिबतम्) उपभोग करो ।

विश्वैर्वैस्त्रिभिरेकादशैरिन्द्राग्निर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।

सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥



भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सचा-  
भुवा) एक साथ (स-जोषसा) प्रेमपूर्वक (उपसा सूर्येण च) उपा, सूर्य  
के सदृश सुशोभित रहकर (त्रीभिः एकादशैः) तीन ग्यारह, अर्थात् ३३  
(विश्वैः देवैः) समस्त विद्वानों (अग्निः) जलवत् शान्तिदायक आस-  
जनों, (मरुद्भिः) वातों के समान बलवान्, (भृगुभिः) दुष्टों के नाश-  
कारी, तेजस्वी पुरुषों द्वारा (सोमं पिबतम्) ऐश्वर्य का पालन और  
उपभोग करो ।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।  
सजोषसा उपसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (यज्ञं)  
यज्ञ, परस्पर सत्संग और दान का (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक सेवन करो  
और (मे हवस्य) मेरे उत्तम स्तुतियुक्त आह्वान वा उपदेश का (बोध-  
तम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो । आप दोनों (देवौ) कामनायुक्त होकर  
(इह) इस जगत् में (विश्वा सवना अव गच्छतम्) समस्त ऐश्वर्यों को  
प्राप्त करो । आप दोनों (उपसा सूर्येण च सजोषसा) उपा और सूर्य के  
समान प्रीति युक्त होकर (नः) हमारे लिये (इषं आ वोढम्) उत्तम  
अन्न प्राप्त करो ।

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।  
सजोषसा उपसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—(युवशा इव) जैसे उत्तम युवा-युवति दोनों (सजोषसा)  
समान प्रीतियुक्त होकर (कन्यनां स्तोमं जुषतः) कन्याओं वा गृह  
में विद्यमान मित्रों के स्तुति वचनों के पात्र होते हैं वैसे ही हे (अश्विना)  
दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (उपसा सूर्येण च) कामना युक्त  
स्त्री पुरुष और सूर्यवत् तेजस्वी प्रजोत्पादन-समर्थ पुरुष से स्त्री (स-

जोपसा) समान प्रीतियुक्त होकर (देवौ) उत्तम व्यवहार, एवं दानशील होकर (इह) इस संसार से (विश्वा सवना) यज्ञ, प्रजाएं तथा ऐश्वर्यों को (अव गच्छतम्) प्राप्त करें। (च) और (नः) हमें (इषं वोढम्) हमारी इच्छाएं प्राप्त करावें।

गिरौ जुपेथामध्वरं जुपेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।

सजोषसा उपसा सूर्येण चेषं नो वोढहमश्विना ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) बलवान् स्त्री-पुरुषो ! आप लोग (गिरः जुपेथाम्) उपदेष्टा पुरुषों और वेद वाणियों का सेवन करो। (देवौ) कामना-युक्त होकर (अध्वरं जुपेथाम्) अहिंसाव्रत का सेवन करो (इह विश्वा सवना अव गच्छतम्) यहां जगत् में समस्त ऐश्वर्यों, ज्ञानादि को प्राप्त करो। (स-जोपसा उपसा) कान्तिमती प्रभात वेला वा दाहक शक्ति और (स-जोपसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त, सूर्यवत् तेजस्वी के साथ प्रीतियुक्त होकर (इषं वोढम्) वृष्टि आदि के तुल्य उत्तम कामना धारण करो। इति चतुर्दशो वर्गः ।

हारिद्रवेव पतथो वनेदुष सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सजोषसा उपसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (हारिद्रवा इव वना) दो हरिद्रव नामक जल-पक्षी जलों में (पतथः) सुखपूर्वक गति करते हैं वैसे ही हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों सेवने योग्य ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर आगे बढ़ो। (महिषा इव सोमं) जैसे दो महिष, अरणा भैंसा वा भैंसी, (वना इव उपपतथः) वनों में विचरते, भोग्य सुखों को समीप रहकर प्राप्त करते हैं वैसे ही तुम दोनों भी (महिषा) दानशील होकर (उप पतथः) नाना भोग्य पदार्थों को प्राप्त करो, (सुतं सोमं अव गच्छथः) उत्पन्न सोम्य, पुत्र वा शिष्य को प्राप्त करो। (सजोपसा, उपसा, सजोपसा सूर्येण च)



प्रीतियुक्त, प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त स्त्री से पुरुष और प्रीतियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से स्त्री समान प्रीतियुक्त होकर दोनों (त्रिः वर्तिः यातम्) तीन परिक्रमा अथवा, तीन प्रकार के मार्ग का गमन अर्थात् तीन आश्रमों का पालन करें।

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सृजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिवर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हंसौ इव) दो राजहंसों के समान और (अध्वगौ इव) दो पथिकों के समान (पतथः) गमन करो । (शेष पूर्ववत्—)

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।

सृजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिवर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हव्य-दातये) ग्राह्य पदार्थ वा उत्तम खाद्य पदार्थ के देने वा यज्ञ के लिये (श्येनौ इव) दो श्येनों के समान वेग से उत्तम विमान रथादि से जाते हुए वा उत्तम आचारवान् होकर (सुतं सोमं अब गच्छथः) यज्ञ में उत्पादित सोम ओषधि, रस, तद्वत् आनन्द को प्राप्त करो । शेष पूर्ववत् ।

पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।

सृजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जा नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे अश्वदि के स्वामी नायक वा सैन्य जनो ! आप दोनों (पिबतं च तृष्णुतं च) पान करो, ऐश्वर्य का भोग करो और तृप्त भी होवो, (आ गच्छतं च) आओ और (प्रजां च आ धत्तम्) उत्तम सन्तान धारण करो और (द्रविणं च आ धत्तम्) धन भी प्राप्त करो और (नः ऊर्जं च धत्तम्) परस्पर प्रीतियुक्त होकर हमारे बीच बल और अन्न धारण करो । (शेष पूर्ववत्)

जयते च प्र स्तुते च प्र चावते प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जे नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

भा०—(जयते च) दोनों आप जय प्राप्त करो, (प्र स्तुते च) उत्तम रीति से स्तुति करो और (प्र चावते च) अच्छी प्रकार रक्षा भी करो (प्रजां च धत्तं, द्रविणं च धत्तम्) प्रजा और धन को धारण करो । (शेष पूर्ववत्—)

हतं च शत्रून्यतेतं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जे नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—(शत्रून् हतं च) और शत्रुओं को मारो । (मित्रिणः यत्तं च) स्नेहयुक्त जनों को बलपूर्वक प्राप्त करो, (शेष पूर्ववत्—) इति पञ्चदशो वर्गः ॥

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मित्रावरुणवन्ता) स्नेहवान्, श्रेष्ठ पुरुषों, ब्राह्मण, क्षत्रिय राजाओं से युक्त, (धर्मवन्ता) धर्मवान् और (मरुत्वन्ता) उत्तम प्राणों, मनुष्यों और बलवान् पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) उपदेश के उपदेश को प्राप्त करो । (उपसा सूर्येण सजोषसा) उषा सूर्यवत् समान प्रीतियुक्त हो (आदित्यैः यातम्) किरणोंवत् तेजस्वी पुरुषों के साथ, वा बारहों महीने (यातम्) जीवन-मार्ग पर गमन करो ।

अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।

सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—आप दोनों (अङ्गिरस्वन्ता) उत्तम विद्वानों और देह में बलवान् प्राणों से युक्त (उत) और (विष्णुवन्ता) व्यापक सामर्थ्य से



युक्त (मरुत्वन्ता) उत्तम पुरुषों वा प्राणों से युक्त होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् उपदेश के यज्ञ, वा उपदेश को रणवत् प्राप्त करो ।  
(शेष पूर्ववत्—)

ऋभुमन्ता वृषणा वाजयन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् ।  
सृजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥

भा०—आप दोनों (ऋभु-मन्ता) सत्य ज्ञान से चमकने वाले पुरुषों से युक्त, (वृषणा) सुखों के दाता, (वाजयन्ता) ज्ञानवान्, (मरु-त्वन्ता) प्राणों और पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् के आह्वान वा उपदेश प्राप्त करो । (शेष पूर्ववत्—)

ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हृतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।  
सृजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १६ ॥

भा०—आप दोनों (ब्रह्म जिन्वतम्) ज्ञान, वेद और धन की वृद्धि करो, (धियः धिन्वतम्) बुद्धियों और सत्कर्मों की वृद्धि करो, (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों, विघ्न करने वालों को (हृतम्) मारो और (अमीवाः) रोगों को (सेधतम्) दूर करो । (सुन्वतः सोमम्) यज्ञ करने, सोम सवन करने वाले का सोम पान करें वा ऐश्वर्य उत्पादक प्रजा के (सोम) ऐश्वर्य का उपभोग और रक्षण करें । (शेष पूर्ववत्—)

क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नृहृतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।  
सृजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—(क्षत्रं जिन्वतम्) आप दोनों धन और बल-वीर्य की वृद्धि करो । (नृन् जिन्वतम्) नायक पुरुषों को बढ़ावो । (शेष पूर्ववत्—)

धेनूजिन्वतमुत जिन्वतं विशो हृतं रक्षांसि सेधतममीवाः ।  
सृजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥ १८ ॥ १६ ॥

भा०—(धेनूः जिन्वतम्) गौओं की वृद्धि करो, उनको भज, घास

जलादि से खूब तृप्त, प्रसन्न कर रखो और (विशः जिन्वतम्) प्रजाओं को बढ़ाओ, उनको तृप्त रखो । शेष पूर्णवत् । इति षोडशो वर्गः ॥

अत्रैरिव शृणुतं पूर्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।  
सजोषसा उपसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्वयम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अत्रेः इव) तीनों दुःखों, बन्धनों, आश्रमों से रहित सन्यासी पुरुष के समान (सुन्वतः) शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) रक्त दयाम अश्वों के स्वामी, राजा वा जितेन्द्रिय, विद्वान् की (पूर्य-स्तुतिं) श्रेष्ठ स्तुति या उपदेश को (मद-च्युता) हर्षित होकर (शृणुतं) श्रवण करो । (सूर्येण उपसा स-जोषसा) सूर्य और उपावत् परस्पर प्रीतियुक्त होकर (तिरो-अह्वयम्) दिनावसान और दिन प्राप्ति के प्रातः-सायं कृत्यों का पालन करो ।

सर्गां इव सृजतं सुष्टुतीरुपं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।  
सजोषसा उपसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्वयम् ॥ २० ॥

भा०—आप दोनों शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) उत्तम अश्वों के स्वामी राजा वा जितेन्द्रिय विद्वान् की (सु-स्तुतिः) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों को (सर्गां इव उप सृजतम्) आभूषणों के समान धारण करो, वा जलों के समान पान वा उत्तम पदार्थों के समान उपभोग करो । (शेष पूर्णवत्—)

रश्मीरिव यच्छतमध्वरां उपं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।  
सजोषसा उपसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्वयम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (मद-च्युता) हर्षप्रद होकर (सुन्वतः) सवन, ऐश्वर्य वा शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान् उत्तम अश्वों वाले पुरुषों के (अध्वरान्) यज्ञों, न विनष्ट होने वाले, प्रबल जनों को



(रक्ष्मीन् इव) रक्षिभ्यो के समान (उप यच्छतम्) नियन्त्रित करो ।  
(शेष पूर्णवत्—)

अर्वाग्रथ नि यच्छतं पिवतं सोम्यं मधु ।

आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप लोग (रथं) रथ के तुल्य रमण या सुख के साधन देह और आत्मा को ( अर्वाक् ) अपने समक्ष (नियच्छतं) नियम में रक्खो और (सोम्यं मधु) ओषधिरस से मिश्रित अन्न, या मधु के समान आत्मा या परमेश्वर के मधुर सुख को (पिवतम्) पान करो । (अहं अवस्युः वां हुवे) मैं रक्षार्थी आप को बुलाता हूँ । आप दोनों (आयातम्) आवें (गतम्) जावें, (दाशुषे) दानशील पुरुष को नाना (रत्नानि) रत्नादि, सुखप्रद पदार्थ (धत्तम्) दें ।

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।

आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (नरा) हे नायकनेय जनो ! (अध्वरे) यज्ञ में (नमो-वाके प्रस्थिते) नमःयुक्त वचन प्रारम्भ होने पर (विवक्षणस्य) विशेष वहन तथा वचन योग्य पद या ज्ञान के (पीतये) रक्षा और पान के लिये आप-(आयातम्) आवें और (गतम्) जावें । मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान-तृप्ति चाहता हुआ (वां हुवे) आप दोनों को बुलाता हूँ, आप (दाशुषे रत्नानि धत्तम्) आत्म-समर्पक पुरुष को उत्तम २ पदार्थ दें ।

स्वाहाकृतस्य तृप्पतं सुतस्य देवाचन्धसः ।

आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे २४।१७

भा०—हे (देवा) विद्वान्, दानशील पुरुषो ! आप दोनों, (स्वाहा-

कृतस्य) आहुति किये वा उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसित (सुतस्य) कूट, पीस, छान कर तैयार किये (अन्धसः) अन्न और जीवनप्रद ओषधि-पदार्थ से (तृम्पतम्) क्षुधा की तृप्ति करो । (शेष पूर्णवत्—) इति सप्त-दशो वर्गः ॥

[ ३६ ]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ६ शक्वरी । २, ४ निचृच्छक्वरी । ३ विराट् शक्वरी । ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥ अवितासि सुन्वतो वृक्तवर्हिषः पिब सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन्विश्वः सेहानः पूतना उरु जयः समप्सुजि-न्मरुत्वौ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञानों और कर्म करने वाले ! राजन् ! हे (इन्द्र) विद्वन् ! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले, (वृक्त-वर्हिषः) आसनार्थ कुशादि बिछाकर बैठे विद्वान् का (अविता असि) रक्षक है । तू (मदाय) आनन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) सोम, उत्पन्न जगत्, पुत्रवत् प्रजा शिष्यादि का पालन कर । हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाशक ! तू (मरुत्वान्) बलवान् पुरुषों का स्वामी होकर (अप्सु-जित्) प्राप्त प्रजाओं में सर्वातिशायी होकर (उरु जयः) बड़े भारी वेग और बल को तथा (विश्वः पूतनाः) समस्त सेनाओं को (संसेहानः) पराजित करता हुआ (सोमं पिब) उस ऐश्वर्य का भोग कर (यं भागं) जिस अंश को (ते) तेरे लिये (अधारयन्) निर्धारित किया है ।

प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिब सोमं मदाय कं शतक्रतो । यं ते भागमधारयन् विश्वः सेहानः पूतना उरु जयः समप्सु-जिन्मरुत्वौ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्तोतारं प्र अव) तू स्तुति-



कर्त्ता, विद्वान् उपदेश की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (त्वां प्र अव) तू तृप्त हो । (पिब सोमं पूर्ववत्) त्वां । त्वं । छान्दसो दीर्घः विभक्ति-व्यत्ययः सोरम वा ।

ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिब सोमं मदाय कं शतक्रतो ।  
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्ञयः समप्सुजि-  
न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

भा०—(त्वां = त्वं) तू (देवान्) सुख, ऐश्वर्यादि चाहने वाले विजिगीषु, विद्वान् जनों को (ऊर्जा ओजसा) अन्न, बल और पराक्रम से (अवसि) रक्षा करने में समर्थ है, अतः तू (हे शतक्रतो मदाय सोमं पिब०) पूर्ववत् ।

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिब सोमं मदाय कं शतक्रतो ।  
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्ञयः समप्सुजि-  
न्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने और सैकड़ों ज्ञानों के जानने हारे ! प्रभो ! तू (दिवः जनिता) सूर्य व आकाश का (जनिता) उत्पादक और (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का उत्पादक है । हे (सत्पते इन्द्र) सजनों के पालक तू (मरुत्वान्) समस्त जीवों का स्वामी और (अप्सु-जित्) प्राणों, प्रकृति के परमाणुओं और समस्त लोकों में व्यापक रहकर सबको वश करने वाला, (उरुज्ञयः) महान् बलस्वरूप होकर (यं) जिस (ते) तेरे दिये (भागम्) सेवनीय अन्न को वे (अधारयन्) धारण करते हैं उसी से तू उन (विश्वाः पृतनाः संसेहानः) समस्त जीव प्रजाओं को अच्छी प्रकार तृप्त करता हुआ (मदाय) परमानन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) समस्त जगत् का पालन करता है ।

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिब सोमं मदाय कं शतक्रतो ।

यं तै भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना ऊरु जयः समप्सुजि-  
न्मरुत्वौ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र, सत्पते, शतक्रतो) ऐश्वर्यवान् ! सज्जनों के पालक,  
सैकड़ों यज्ञों, कर्मों के स्वामिन् ! तू (अश्वानां जनिता, गवां जनिता  
असि) अश्वों और गौओं, सूर्यों और भूमियों का भोक्ता आत्मा और  
इन्द्रियों का भी उत्पादक है । (शेष पूर्ववत्—)

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।  
यं तै भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना ऊरु जयः समप्सुजि-  
न्मरुत्वौ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामिन्, तेजस्विन् ! वा अखण्ड  
शक्तियों के स्वामिन् ! तू (अत्रीणां) तीनों दुःखों से रहित, जनों के  
(स्तोमं) स्तुति वचन को (महः कृधि) पूजित, पूर्ण कर । हे राजन् ! तू  
(अत्रीणां) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजाओं की प्रार्थना का आदर कर ।  
(शेष पूर्ववत्—)

इयावाश्वस्य सुन्वतस्तथा अश्रुणु यथाश्रुणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।  
प्र व्रसदस्युमाविशु त्वमेक इन्द्राह इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥७॥१८

भा०—(कर्माणि कृण्वतः) कर्म करने वाले (अत्रेः) 'अत्रि' अर्थात्  
त्रिविध दुःखों वा बन्धनों से रहित शुद्धात्मा जन की स्तुति को (यथा  
अश्रुणोः) जैसे श्रवण करता है वैसे ही (सुन्वतः) पूजा करने वाले  
(इयावाश्वस्य) बलवान्, जितेन्द्रिय पुरुष के भी (स्तोमम् अश्रुणोः) स्तुति  
वचन को श्रवण करता है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (त्वम्) तू (ब्रह्माणि  
वर्धयन्) जानों और धनों की वृद्धि करता हुआ (नृसाहो) मनुष्यों  
और नायकों को वश करने में (एकः इव) अकेला ही (व्रसदस्युम्  
व्रसद-अस्युम्) दस्युओं को भय देने वाले सैन्य बल को वा दस्यु से



भयभीत प्रजाजन को (प्र आविथ) उत्तम रीति से रक्षा कर । इत्यष्टा-  
दशो वर्गः ॥

[ ३७ ]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवताः ॥ छन्दः—१ विराड्तिजगती । २—६  
निचृज्जगती । ७ विराड् जगती । सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभि-  
रुतिभिः । माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्नेद्य पिब सोमस्य  
वज्रिवः ॥ १ ॥

भा०—सूर्य जैसे (वृत्र-तूर्येषु ब्रह्म प्र अवति) मेघ के आघातों या  
जलों के वेगवत् प्रवाहों पर अन्नों की रक्षा करता है और (सुन्वतः)  
उत्पन्न जीवों की रक्षा करता है वह (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य  
पिबति) मध्याह्न में तीव्र ताप से जल का पान करता वा जगत् की  
रक्षा करता है वैसे ही हे (इन्द्र) शत्रुओं का नाश करने हारे ! तू (वृत्रतूर्येषु)  
शत्रुओं और विघ्नों को नाशक कार्यों के निमित्त (इदं ब्रह्म प्र आविथ)  
इस महान् ऐश्वर्य की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (सुन्वतः प्र आविथ)  
सवन अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करने वा तेरा अभिषेक करने वाले प्रजागण  
की भी (विश्वाभिः रुतिभिः आविथ) समस्त रक्षाकारिणी शक्तियों,  
सेनाओं द्वारा रक्षा किया कर । हे (अनेद्य) अनिन्दनीय ! हे स्तुति योग्य !  
हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक !  
तू (मध्यन्दिनस्य) दिन के मध्य में विद्यमान सूर्य-तेज के समान (सव-  
नस्य) बलशुक्त शासन के (सोमस्य) ऐश्वर्य राष्ट्र आदि का, हे (वृत्रहन्)  
दुष्टों के नाशक ! (पिब) उपभोग और पालन कर ।

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।  
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्नेद्य पिब सोमस्य वज्रिव ॥२॥

भा०—हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिशालिन् ! मतिमन् ! ऐश्वर्य-  
शालिन् ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त शक्तियों से (द्रुहः पृतनाः)  
द्रोह करने वाले मनुष्यों को (अभि सेहानः) पराजित करके अथवा  
(द्रुहः अभि सेहानः) द्रोहियों को पराजित और (पृतनाः अभि सेहानः)  
मनुष्यों प्रजाओं को अन्नादि से तृप्त करता हुआ, हे (उग्र) बलवन् ! हे  
(अनेद्य) अनिन्द्य ! प्रशंसनीय ! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्र-  
हन्) दुष्ट, विघ्नकर्त्ताओं के नाशक ! तू (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोम-  
स्य पिब) मध्य दिन के सूर्यवत् शासन और ऐश्वर्य का उपभोग और  
पालन कर ।

एकरात्रस्य भुवनस्य राजसि शचीपित इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।  
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्नेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥३॥

भा०—हे (शचीपते) सर्गशक्तिमन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो !  
तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवन, जगत् ब्रह्माण्ड के बीच (विश्वाभिः  
ऊतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों द्वारा (एकराट्) अद्वितीय प्रकाशमान  
होकर, एक छत्र सम्राट् के समान (राजसि) विराजता है, विश्व के  
राजा के समान शासन करता है । (माध्यन्दिनस्य०) इत्यादि पूर्ववत् ।  
सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छीपित इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।  
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्नेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥४॥

भा०—हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक ! जिस प्रकार  
(सस्थावाना) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो बलवान् राष्ट्रों को मध्यम  
राजा जुदा २ कर थामे रहता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् !  
शत्रुहन्तः ! तू भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब शक्तियों से सम्पन्न होकर  
(सस्थावाना) समान बल से स्थिर सूर्य पृथिवी आदि लोकों को परस्पर  
के तुलित बल से (एकः त्वम्) अकेला ही तू (यवयसि) पृथक् २ थामे  
रहता है । (शेष पूर्ववत्—)



क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

मार्ध्यन्दिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेनद्य पित्रा सोमस्य वज्रिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तिशालिन् ! (त्वम्) तू (क्षेमस्य च ईशिषे) प्रजाओं की रक्षा और (प्रयुजः च ईशिषे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने और प्राप्त हुए नाना ऐश्वर्यों का भी स्वामी है । (शेष पूर्ववत्—)

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरुतिभिः ।

मार्ध्यन्दिनस्य सर्वनस्य वृत्रहन्नेनद्य पित्रा सोमस्य वज्रिवः ॥ ६ ॥

भा०—हे (शचीपते) तू (विश्वाभिः रुतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों से धनैश्वर्य और बल वृद्धि के लिये (अवसि) रक्षा करता है । (शेष पूर्ववत्—)

श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।

प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इच्छाहा इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ७॥१६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा कर्माणि कृण्वतः तथा) नाना कर्म करने वाले (अत्रेः) विविध बन्धनों से रहित या, इस संसार या राष्ट्र में विद्यमान मनुष्यों के समान ही (रेभतः श्यावाश्वस्य शृणु) स्तुति और उपदेशकर्ता जितेन्द्रिय पुरुष के वचनों को भी सुन । और (नृ-सह्ये) नायक पुरुषों द्वारा विजय-योग्य संग्राम में (क्षत्राणि वर्धयन्) बलों की वृद्धि करता हुआ (त्वम् एकः इत्) तू अद्वितीय ही सर्वोपरि, (त्रसदस्युम् प्र आविथ) दुष्टों को उखाड़ देने वाले बल की खूब रक्षा कर । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[ ३८ ]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नि देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ९ गायत्री ।

३, ५, ७, १० निचृद्गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ दशार्च सूक्तम् ॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्त्री वाजेषु कर्मसु ।  
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे ज्ञानवन् ! तुम दोनों विद्युत् और अग्नि के समान (यज्ञस्य ऋत्विजा) यज्ञ को ऋतु २ में अनुष्ठान करने वाले (वाजेषु) धनों और ज्ञानों में (सस्त्री) निष्णात, अन्यों को भी निष्णात करने वाले और (कर्मसु) कर्मों में भी (सस्त्री) शुद्ध, दक्ष (हि स्थः) होवो । आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ का ज्ञान करो ।

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।  
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्निवत् शत्रुनाशक राजन् ! और ज्ञानवन् विद्वन् ! आप दोनों (तोशासा) अज्ञानों और दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (रथ-यवाना) स्वयं वेगवान् रमण योग्य, वा उत्तम यान से जाने वाले, (वृत्र-हणा) बढ़ते शत्रु को दण्ड देने वाले, (अपराजिता) अजेय होवो । आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस प्रजाजन को जानो ।

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षत्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ३

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! नेतः ! (वां) आप दोनों के लिये (नरः) उत्तम नायक जन (इदं मदिरं) इस हर्षदायक (मधु) अन्न, ज्ञानों और बल को (अद्रिभिः) पर्वत और शस्त्रास्त्र बलों वा पाषाणादि से (अधुक्षन्) दोहें, प्राप्त करें । (तस्य बोधतम्) आप दोनों उस ज्ञान को भी भली प्रकार जानें ।

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ४

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि के तुल्य (नरा) उत्तम



नायक, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्ति के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, सत्संग, दान का (जुपेथाम्) सेवन करो, आप दोनों (सध-स्तुती) एक साथ स्तुति प्राप्त कर (सुतं सोमं) उत्पन्न पुत्र को, ऐश्वर्य को और ओषध्यादि रस को भी (जुपेथां) प्राप्त करो । (आ गतम्) और आदरपूर्वक आओ ।

इमा जुपेथां सवना येमिह्व्यान्ग्रहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५  
भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी वा वायु, अग्निवत् परस्पर के सहायक ! एक दूसरे से चमकने, बढ़ने वाले, (नरा) नायको, वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आओ ! (इमा सवना) ये नाना धन, ऐश्वर्य (जुपेथां) प्रेम से प्राप्त करो, (येभिः ह्व्यानि) जिनों से नाना उत्तम खाद्य पदार्थ भी (ऊहथुः) प्राप्त करो ।

इमां गायत्रवर्तनिं जुपेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५।२०  
भा०—हे (इन्द्राग्नी नरा) अग्निवत् नायक जनो ! आप दोनों (आ गतं) आओ । (इमां) इस (गायत्र-वर्तनिं) गायत्री छन्द में इस पृथिवी पर विद्यमान (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति, उपदेश वा तप को (जुपेथाम्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो । इति विंशो वर्गः ॥

प्रातर्यावाभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (जेन्यावसू) विजय करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! आप दोनों (प्रातः-यावभिः) प्रातःकाल वा जीवन के पूर्ण भाग में ही प्राप्त होने वाले (देवेभिः) विद्वान् जनों से (सोम-पीतये) उत्तम ज्ञान ग्रहण करने और बलवीर्य की रक्षा करने के लिये आप (आ गतम्) आओ ।

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ८

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों

(सोम पीतये) उत्तम ज्ञान-दान करने और उत्तम वीर्य की रक्षा के लिये (सुन्वतः इयावाश्वस्य) शासन करने वाले, जितेन्द्रिय विद्वान् और (अत्रीणां) त्रिविध दुःखों से रहित, संन्यासियों के (हवम्) उत्तम उप-देश को (शृणुतम्) श्रवण करो ।

एवा वामह ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ६

भा०—(यथा) जैसे (मेधिरा) विद्वान्, मेधावी पुरुष (वाम्) आप दोनों को अपने पास (सोम-पीतये) ज्ञान-ग्रहण और वीर्य-पालन के लिये (आहुवन्त) बुलाते रहे हैं । हे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! (एवा) वैसे ही मैं भी (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और पुत्र-प्रजादि के उपभोग और पालन के लिये बुलाता हूँ ।

आहं सरस्वतीवितेरिन्द्राग्न्यारवा वृणे ।

याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(अहं) मैं (सरस्वतीवतोः) उत्तम वेदवाणी वाले (इन्द्रा-ग्नयोः) ऐश्वर्य और तेज को धारण करने वाले ज्ञानी स्त्री-पुरुषों के (अवः) ज्ञान और रक्षा की (वृणे) याचना करता हूँ, (याभ्याम्) जिनके आदरार्थ (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र वा गायत्र साम द्वारा (ऋच्यते) स्तुति की जाती है । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[ ३९ ]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ अग्निदेवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५ गुरिक् त्रिष्टुप् ॥ २ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६—८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् ।

९ निचृज्जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥ ।

अग्निमस्तोष्यग्मियमग्निमीळा यजध्वै । अग्निर्देवाँ अनक्तु न उमे हि विदधै कविरन्तश्चरति दूत्यं नमन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

भा०—मैं (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (अग्निम्) तेजस्वी प्रभु, २७ प.



विद्वान्, नेता की (अस्तोषि) स्तुति करता हूँ, (यज्ध्ये) सत्संग और पूजा के लिये उसी (अग्निम्) ज्ञानी की (ईडा) वाणी द्वारा स्तुति करूँ। वह (अग्निः) अग्निवत् प्रकाशक (नः) हमारे (देवान्) किरणोंवत् दिव्य गुणों, वा ज्ञानेच्छुक शिष्य जनों को (अनक्तु) प्रकट करे और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करे। वह (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (विद्यथे) यज्ञ में अग्नि के तुल्य ज्ञान-लाभ के कर्म में (उभे हि अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के समान तेजस्वी होकर राजा-प्रजा, मित्र वा शत्रु, दोनों वर्गों के बीच विचरता है। (समे अन्यके) अन्य समस्त शत्रु स्वयं (नभन्ताम्) नष्ट हों।

न्यग्ने नव्यन्ता वचस्तनूषु शंसमेषाम्। न्यराती ररावणां विश्वाः  
अर्यो अरातीरितो युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तेजस्विन् ! (एषां तनूषु) इनके शरीरों या आत्माओं में (नव्यसा वचः) नवीन, स्तुति वचन से (शंसं) उत्तम उपदेश (निधेहि) स्थापित कर, वे विद्वान् बनें। और (ररावणां) दान-शीलों के बीच जो (अरातीः) अदानशील हैं उन (विश्वाः) सबको (अर्यः नि) स्वामी होकर तू निकाल, दण्डित कर और (आमुरः) मूढ़ या मारामारी करने वाले हिंसक (अरातीः) शत्रु लोग भी (इतः नि युच्छन्तु) इस राष्ट्र से दूर हों और (समे अन्यके) समस्त अन्य शत्रु जन (नभन्ताम्) नष्ट हों।

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं जुह्व आसनि। स देवेषु प्र चिकिद्धि  
त्वं ह्यसि पूर्यः शिवो दृतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (घृतं न आसनि जुह्वति) जैसे अग्नि के मुख अर्थात् ज्वाला में यशकर्ता लोग घृत की आहुति देते हैं वैसे ही हे शिष्य वा विद्वान् ! मैं गुरु (तुभ्यं आसनि) तेरे हितार्थ, तेरे मुख

में (मन्त्रानि) मनन-योग्य वचनों को (ब्रह्म) प्रदान करता हूँ । (सः) वह तू (प्र चिकिद्भिः) अच्छी प्रकार जान, (हि त्वं) क्योंकि तू (पूर्वः) पूर्ण ज्ञानी, उत्तम पद योग्य वा (शिवः) कल्याणकारी, (विवस्वतः) विविध विद्यार्थी रूप वसुओं के स्वामी गुरु आचार्य के (दूतः) ज्ञान-मय संदेश को दूर तक पहुंचाने में दूत के समान ही (असि) है । इस प्रकार ज्ञान धारण करते हुए के (समे अन्यके) समस्त अन्य तुच्छ, विरोधी, विघ्नकारक जन (नभन्ताम्) नष्ट हों ।

तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपयति ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—(यथा यथा कृपयति) जिस २ प्रकार का बल वा अन्न याचक चाहता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) गृहपति, स्वामी जन वैसा २ ही बल वा अन्न उसे प्रदान करता है वैसे ही शिष्य भी (यथा यथा कृपयति) जिस २ विज्ञान की याचना करे (अग्निः तत् तत् वयः दधे) ज्ञानी, गुरु उसी २ प्रकार का विज्ञान उसे धारण करावे इसी प्रकार प्रजाजन राजा वा नायक से जैसा (वयः) बल अन्नादि चाहे उसी २ प्रकार का वह धारण करे । (वसूनां ऊर्जाहुतिः) गुरु के अधीन बसने वाले शिष्यों को बल, ज्ञान, अन्नादि का दान (विश्वस्यै देवहूत्यै) समस्त प्रकार के शुभ गुणों को प्राप्त कराने के लिये (शं च योः च) शान्ति देता, दुःख दूर करता और (मयः दधे) सुख प्रदान करता है । (वसूनां ऊर्जाहुतिः विश्वस्यै देवहूत्यै) और (अन्यके समे) और सब शत्रु गण (नभन्तां) नष्ट होते हैं ।

स चिकेत सहयिस्साग्निश्चित्रेण कर्मणा । स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिर्भूवृत इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे ५।२२

भा०—(सः) वह (अग्निः) तेजस्वी, विद्वान् (सहीयसा) अत्यधिक सहन करने और प्रतिपक्ष रूप विघ्न को पराजित करने वाले



(चित्रेण कर्मणा) ज्ञानप्रद कर्म से बलवान् होकर (चिकेत) ज्ञान प्राप्त करता वा जाना जाता है। (सः) वह (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं से यज्ञाग्नि के समान दान, शिक्षाओं से (अभि-वृतः) पुष्ट होकर (शश्व-तीनां होता) नित्य विद्याओं का ग्रहण करने वाला होकर (प्रतीव्यम् इनोति च) ज्ञेय तत्त्व को प्राप्त होता है। ऐसे ही नायक भी (सही-यसा) शत्रु-पराजयकारी (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत कर्म से (चिकेत) प्रसिद्ध हो। वह (दक्षिणाभिः) शक्तियों, सेनाओं से (अभि-वृतः) घिरा हुआ (शश्वतीनां होता) बहुत सी प्रजाओं और सेनाओं को स्वीकार करने, उनको वेतन, भोजनादि देने वाला होकर (प्रतीव्यं इनोति) आक्रमण योग्य शत्रु तक पहुँचता है और इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त छोटे-मोटे शत्रु नाश को प्राप्त होते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अग्निर्ज्ञाता देवानामग्निर्वेद मर्त्तानामपीच्यम् । अग्निः स द्रवि-  
णोदा अग्निर्द्वारा व्यूण्ते स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ॥६॥

भा०—जैसे (अग्निः) अग्नि, या विद्युत्, वा जाठराग्नि, (नवीयसा) नये से नये अज्ञादि द्वारा (सु-आहुतः) अच्छी प्रकार आहुति पा कर, (देवानां जाता वेद) देव अर्थात् प्रकाशक किरणों के स्वरूपों को प्राप्त करता वा जाठराग्नि अज्ञाहुति प्राप्त कर देव अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कराता है और (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्यों को गुप्त, अन्धकार से आवृत पदार्थ भी ज्ञात करा देता है और जाठराग्नि, मनुष्यों के गुह्य बल और सुन्दर रूप को प्रकट कर देता है, वैसे ही (अग्निः) अग्रणी नायक (देवानां) विजिगीषुजनों के (जाता वेद) सब जन्मादि को जाने, (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्य प्रजाओं के गुह्य रहस्यों को भी जाने। (सः अग्निः द्रविणोदाः) वह नायक ऐश्वर्यदाता हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष द्वारा (व्यूण्ते) प्रजाओं और सेनाओं के व्यवहार और रण के मार्गों को खोलता और प्रकाशित

करता है । इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त होते हैं ।

अग्निर्देवेषु संवसुः स विष्णु यज्ञियास्वा । स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमैव पुष्यति देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे ॥७॥

भा०—जैसे (अग्निः देवेषु सं-वसुः) अग्नि सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों में उनकी आच्छादित करता है वही अग्नि-तत्त्व (यज्ञियासु) यज्ञ-योग्य प्रजाओं के बीच यज्ञाग्नि और जाठराग्नि रूप में विद्यमान रहता है वैसे ही (अग्निः) विद्वान् और नायक भी (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सं-वसुः) अच्छी प्रकार रहने वाला और उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी हो । (सः) वह (यज्ञियासु विष्णु) यज्ञशील प्रजाओं में (सं-वसुः) सम्यक् प्रकार से रहता, उनकी रक्षा करता हुआ, (आ) विद्यमान रहे । (सः) वह (मुदा) प्रसन्नतापूर्वक (पुरु काव्या) बहुत से विद्वानों के योग्य कार्यों को (पुष्यति) पुष्ट करता, उनको वृद्धि देता और (भूम इव) भूमि के समान वा प्रभु के समान (विश्वं पुष्यति) सबका अन्नादि से पोषण करता है । वह (देवः) स्वयं तेजस्वी होकर (देवेषु यज्ञियः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी पुरुषों में भी आदर और सत्संगति के योग्य होता है । इस प्रकार भी उसके (समे अन्यके) समस्त शत्रु (नभन्ताम्) नष्ट होते हैं ।

यो अग्नि सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु । तमागन्म त्रिपत्यं मन्धातुर्देस्यहन्तमसग्निं यज्ञेषु पूर्य नभन्तामन्यके समे ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (अग्निः सप्त-मानुषः) अग्नि तत्त्व जीवन रूप से मनुष्य के सातों-प्राणों में विद्यमान और (विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) समस्त रक्त-नाडियों में भी विद्यमान है, वह (त्रि-पत्यं) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनों स्थानों में रहता है वही शरीर-नाशक रोगादि कारणों का नाशक होता है वैसे ही (यः अग्निः) जो



नायक, राजा, (सप्त-मानुषः) सात मननशील विद्वानों के बीच स्वयं आठवां होकर (विश्वेषु सिन्धुषु) समस्त प्रजाओं के बीच (श्रितः) आश्रय योग्य है और (मंधातुः) मुझको धारण या रक्षा करेगा इस प्रकार अधीन प्रजागण के (दस्युहंतमम्) दुष्ट पुरुषों के सर्वोपरि नाशक (यज्ञेषु पूर्यम्) सत्संगों और दानों में श्रेष्ठ, (त्रि-पस्त्यं) तिमंजिले गृह में रहने वाले वा उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं को गृहवत् बसाने वाले (तम् अग्निम्) इस तेजस्वी पुरुष को हम (आ गन्म) प्राप्त हों ।

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः । सः त्रीरेकादशां  
इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके संमे ६

भा०—जैसे (अग्निः त्रिधातूनि आ क्षेति) अग्नि तीनों तैजस रूपों से धातुओं के तीनों प्रकारों में रहता है और वह (त्रीन् एकादशान् यक्षत् पिप्रयच्च) ३३ पदार्थों को बल देता और तृप्त करता है वैसे ही (अग्निः) तेजस्वी पुरुष वात पित्त कफ की बनी तीनों कोटियों में (आ क्षेति) विराजता है, वह (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (विदथा) ज्ञान और प्राप्ति-योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है । (सः) वह (इह) इस राष्ट्र में (त्रीन् एकादशान् यक्षत्) तीनों ग्यारह (तैत्तीस) अधिकारियों को सुसंगत करता और (पिप्रयत् च) पूर्ण तृप्त करता, वह (दूतः) शत्रु संतापक ( परिष्कृतः ) सुसज्जित, ( विप्रः ) विद्वान् पुरुष (नः यक्षत् पिप्रयत् च) हमें भी दे और पालन करे । इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नष्ट हों ।

त्वं ना अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्य वस्व एक इरज्यसि ।

त्वामापः परिष्कृतः परियन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके संमे १०।२३

भा०—जैसे अग्नि (देवेषु पूर्यः) सब मनुष्यों में भी जाठर रूप से विद्यमान है, उसको, (परिष्कृतः स्वसेतवः आपः परि यन्ति) सब

ओर से बहने वाली, स्वयं बद्ध जल-धाराएं विद्युत् रूप अग्नि को प्राप्त होती हैं वैसे ही हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे (आयुषु) मनुष्यों और (देवेषु) विद्वानों, अर्थ-कामना-युक्त जनों में (पूर्यः) सर्वश्रेष्ठ है । तू (एकः) अद्वितीय होकर (वस्वः इरज्यसि) समस्त वसे प्रजाजन और ऐश्वर्य का स्वामी है । (स्व-सेतवः परिजुतः आपः) अपने ही बंधों से बंधी सब ओर बहती जल-धाराओं के समान (आपः) आस प्रजाएं भी (परि-सृजः) सब ओर से प्राप्त होकर (स्व-सेतवः) स्वयं अपने आपको मर्यादा में बांधे रखने वाली वा 'स्व' धन-वेतनादि में वा स्वजनों के ससंबंधों से बद्ध होकर (त्वाम् परि यन्ति) तुझे प्राप्त होती हैं, तेरी शरण आती हैं । (अन्यके समे नमन्ताम्) तेरे समस्त शत्रुगण बष्ट हों । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ ४० ]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ११, भुरिक् त्रिष्टुप् । ३, ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् । २ स्वराट् शक्वरी । ५, ७, ९ जगती । भुरिग्जगती । ८, १० निचृज्जगती । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राग्नी युवं लु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।

येन दृजहा समत्स्वा वीलु चित्साहिषमिह्यग्निर्वनेव वात इन्नमन्तामन्यके समे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् वा वायुवत् बलशालिन् ! हे तेजस्विन् ! राजन् ! सेनापते (युवं) आप दोनों (सहन्ता) शत्रुओं को पराजय करते हुए (नः रयिम् दासथः) हमें वह ऐश्वर्य और बल प्रदान करो जैसे (अग्निः वाते वना इव) वायु के बहते समय अग्नि बनों को भस्म कर देता है वैसे ही (येन) जिस ऐश्वर्य के बल से हम लोग (समत्सु) संग्रामों में (वीडुचित्) बड़े २ बलशाली और (दृदा) दृढ़, शत्रु सैन्यों को (साहिषमिहि) पराजित करते हैं और जिससे (अन्यके



समे नभन्ताम्) अन्य सब हमारे शत्रु नष्ट हों । वायु और अग्निवत् ही इन्द्र और अग्नि परस्पर सहायक हों ।

नहि वां वज्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम् ।  
स नः कदा क्षिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये  
नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) शत्रुहंतः ! हे विद्वन् ! हम (वां नहि वज्रयामहे) आप दोनों से याचना नहीं करते । (अथ) प्रत्युत (नृणां) मनुष्यों के बीच (नरम्) नायक (शविष्ठं) सबसे अधिक बलशाली, (इन्द्रम्) शत्रुहंता की (यजामहे) प्रतिष्ठा करते हैं । (सः नः कदाचित्) वह कभी हमें (अर्वता आगमत्) अश्व, या शत्रुहंता सैन्यसहित, (वाज सातये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये हो और कभी (मेधसातये आगमत्) अन्न, यज्ञ और संग्रामादि के लिये प्राप्त हो । उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नष्ट हों ।

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।  
ता उ कवित्वना कवी पृच्छयमाना सखीयते सं धीतिमश्नुतं  
नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

भा०—(ता हि इन्द्राग्नी) वे दोनों, वायु, अग्निवत् बलवान्, तेजस्वी जन (भराणां मध्यं) भरण योग्य जनों में (अधि-क्षितः) अध्यक्ष होकर रहते हैं । (ता उ) वे दोनों (कवी) क्रांतदर्शी (पृच्छयमाना) अन्यों से संदेह निवारणार्थ प्रश्न किये जाते हुए (कवित्वना) विद्वत्ता के कारण, (नरा) आप दोनों नायक (सखीयते) मित्रवदाचरण करने वाले पुरुष के लिये (धीतिं) किये कर्म को (समश्नुतम्) प्राप्त होवो ।

अभ्यर्च्य नभाक्वदिन्द्राग्नी यजसां गिरा । ययोर्विश्वमिदं जगद्विकं  
द्यौः पृथिवी मनुष्यैः पृथे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—(नभाकवत्) उत्तम प्रबंधकर्त्ता जनों से युक्त (इंद्राग्नी) उन राजा और नायक को तू हे विद्वन् ! (यजसा गिरा) उत्तम संगतिकारक वाणी से (अभि-अर्च) स्तुति कर, उनका आदर कर । (ययोः) जिनके आश्रय पर (इयं द्यौः) यह सूर्य और (इयं महीः पृथिवी) यह बड़ी भारी पृथिवी जैसे (इदं विश्वं वसु) इस समस्त बसे जगत् और ऐश्वर्य को (विभृतः) धारण करते हैं वैसे ही राजा, नायक दोनों के बल पर सूर्य पृथिवीवत् पुरुष-स्त्री वा राजा-प्रजावर्ग दोनों (इदं विश्वं वसु) इस समस्त राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को धारण करते हैं । (अन्यके समे नभं-ताम्) और विरोधी शत्रु सब नष्ट हो जाते हैं ।

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत । या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजस्ता नभन्तामन्यके समे ॥५॥

भा०—(या) जो वायु और अग्नि (सप्तबुध्नम्) सात मूलों वाले (जिह्म-वारम्) गुप्त द्वार वाले, दुष्प्राप्य (अर्णवं) सागरवत् अपार ऐश्वर्य को (अपोर्णुतः) खोल देते हैं उन (नभाकवत् इन्द्राग्निभ्याम्) नभाक अर्थात् अदृश्य रूप से विद्यमान वा बंधनकारक, आघातकारक (इन्द्राग्निभ्याम्) विद्युत् और अग्नि तत्त्वों से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को (इरज्यत) अपने यश करो और उनके बल से ही (इन्द्रः) सूर्य भी (ईशानः) सबका स्वामी है । उन से (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त शत्रु नष्ट हों ।

अपि वृश्च पुराणावद् व्रततेरिव गुप्पितमोजो दासस्य दम्भय ।  
वयं तदस्य सम्भृतं वस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥२४॥

भा०—जैसे (पुराणवत्) पुराने (व्रततेः गुप्पितम्) लता के शाखा पुञ्ज को कोई सुगमता से काट लेता है वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (दासस्य गुप्पितम् ओजः) दुष्ट पुरुष के गुप्त बल को (दम्भय) नष्ट कर । (अस्य तत् सम्भृतं वसु) उसके उस संचित धन को हम



(इन्द्रेण) तेजस्वी राजा के द्वारा ही (विभजेमहि) विभाग करके सेवन करें और (अन्यके समे नमन्ताम्) अन्य समस्त शत्रु भी नष्ट हों। इति चतुर्दिशो वर्गः ॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा । अस्माकेभिर्नृमिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नमन्तामन्यके समे ॥७॥

भा०—(इमे जनाः) ये मनुष्य (तना गिरा) धन और वचन से (यत्) जिन (इन्द्राग्नी) सूर्य-अग्निवत् तेजस्वी नायकों को (विह्वयन्ते) विशेष रूप से डुलाते हैं, (अस्माकेभिः नृभिः) अपने ही आदिमियों से सहायवान् होकर (वयं) हम (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाओं द्वारा युद्ध करने वाले शत्रुओं को हराने और (वनुष्यतः वनुयाम) हिंसाकारियों को मारें। (अन्यके समे नमन्ताम्) हमारे अन्य समस्त शत्रु नष्ट हों।

या नु श्वेताश्वो दिव उच्चरात उप द्युभिः । इन्द्राग्न्योरनु ब्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्तीं वन्धादमुञ्चतां नमन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—(या नु) जो दोनों सूर्य और अग्नि (श्वेतौ) श्वेत वर्ण के, तेजस्वी होकर (द्युभिः) किरणों से (दिवः उप उत् चरातः) आकाश और पृथिवी पर ऊर्ध्व मार्ग से गति करते हैं उन (इन्द्राग्न्योः अनु) सूर्य और अग्नि के अनुकरण में (ब्रतम् उहानाः) उत्तम ब्रतों को धार कर (सिन्धवः) नदी तुल्य वेग वाले, वीर पुरुष (अनुयन्ति) उनके पीछे २ चलते हैं (यान्) जिनको वे दोनों (सीम्) सब प्रकार से (वन्धात्) बन्धनों से (अमुञ्चताम्) मुक्त करें और (अन्यके समे नमन्ताम्) अन्य समस्त विघ्नकारी नष्ट हों।

पूर्वाष्टि इन्द्रोपमातयः पूर्वोरुत प्रशस्तयः सूनो ह्रिन्वस्य हरिवः । वस्वो वीरस्यापृच्छो या नु साधन्त नो धियो नमन्तामन्यके समे ६

भा०—हे ( हरिः इन्द्र ) किरणों से युक्त सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे ( सुनो ) सर्वैश्वर्यवान् ! सर्वभरक ! ( वस्वः ) सबको बसाने वाले, ( आपृचः ) सबसे प्रेम करने वाले ( वीरस्य ) शूरवीर ( हिन्वस्य ) सबको बढ़ाने वाले ( ते ) तेरी ( उप-मातयः ) उपमान ( उत प्रशस्तयः ) और तेरे उत्तम उपदेश ( पूर्वोः पूर्वीः ) सदा पूर्ण और उत्तम हैं । ( याः ) जो ( नः धियः साधन्त ) हमारी बुद्धियों और कर्मों को अपने वश करें और उन्नत करें । इस प्रकार ( समे अन्यके नभन्ताम् ) समस्त विघ्नकारी नष्ट हों ।

तं शिशीता सुवृक्तिमिस्त्वेषं सत्त्वानमृत्तियम् ।  
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णास्यागडानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो  
नभन्तामन्यके समे ॥१०॥

भा०—( उतो नु चित् ) और ( यः ) जो सूर्य या विद्युत्तम इन्द्र ( शुष्णस्य ) शोषणकारी ताप वाले सूर्य के ( ओजसा ) बल या तेज से ( आपण्डानि भेदति ) रोगकारी संयोगी अंशों को छिन्न-भिन्न करता है, और ( स्वर्वतीः अपः ) गर्जन करने वाले मेघस्थ जलों को ( जेषत् ) विजय करता है, ( तं ) उस ( त्वेषं ) अति तीक्ष्ण, ( सत्त्वानम् ) बलवान् ( अमृत्तियम् ) स्तुति योग्य पुरुष को ( सु-वृक्तिभिः ) उत्तम स्तुतियों से ( शिशीत ) तीक्ष्ण करो । उसके बल की बढ़ावो । ( अन्यके समे नभन्ताम् ) समस्त अन्य शत्रु नष्ट हों ।

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्त्वानमृत्तियम् ।  
उतो नु चिद्य ओहंत आगडा शुष्णास्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो  
नभन्तामन्यके समे ॥११॥

भा०—जैसे सूर्य ( शुष्णस्य ) शोषक ताप के बल से ( आपण्डा ओहते ) रोग-जन्तुओं को नाश करता है, ( भेदति ) छिन्न भिन्न करता है और ( स्वर्वतीः अपः अजैः ) सुखप्रद जलों को वश करता है वैसे ही जो पुरुष



(शुष्णस्य आण्डा) शोषकवत् यक्षमादि रोगों, शत्रु के अण्डों-मर्मस्थलों को भेदता और सुखप्रद आस जनों को अपने गुणों से वश करता है (तं) उस (सु-अध्वरं) उत्तम अहिंसनीय (सत्यं) सत्याचरण-युक्त, (सत्त्वानम्) बलवान् (ऋत्विज्यम्) ऋतुओं के स्वामी सूर्यवत्, ऋतु अर्थात् ज्ञानी सदस्यों के स्वामी पुरुष को (शिक्षीत) तीक्ष्ण करो, उसके बल को बढ़ाओ । नमन्तां०) पूर्ववत् ।

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।

त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम् १२।२५

भा०—(एव) इस प्रकार (पितृवत्) माता-पिता तुल्य, पालक (मन्धातृवत्) ज्ञानधारक, उसके समान ज्ञानप्रकाशक (अंगिरस्वत्) अग्नि वा प्राणों के तुल्य जीवनप्रद (इन्द्राग्नीभ्यां) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों ने यह (नवीयः) अति स्तुत्य, वचन (अवाचि) उपदेश किया है । वे दोनों (त्रिधातुना शर्मणा अस्मान् पातम्) तीनों धातु के बने गृह एवं वात, पित्त कफ से युक्त, इस देह से हमारी रक्षा करें । (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम ऐश्वर्यों के स्वामी हों । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[ ४१ ]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ६, १० निचृज्जगती । ९ जगती ॥

दशर्चं सूक्तम् ॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्वा विदुष्टरेभ्यः ।

यो धीता मानुषाणां पश्वो गाईव रक्षति नमन्तामन्यके संमे ॥१॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (अस्मै) इस (प्रभूतये) उत्तम भूति, और यश वाले (वरुणाय) श्रेष्ठ, (विदुष्टरेभ्यः) अपने से अधिक जानके

वाले विद्वान्, ( मरुद्भ्यः ) बलवान् मनुष्यों का ( अर्चं ) सत्कार कर, ( यः ) जो ( धीता ) सुविचारित ( पश्वः गाः ) गौ आदि पशुओं के समान ज्ञान दर्शाने वाली वाणियों की ( मनुष्याणां ) मनुष्यों के उपकारार्थं ( रक्षति ) रक्षा करता है । ( अन्यके समे नभन्ताम् ) समस्त हानिकारक जन नष्ट हों ।

तम् पु संमना गिरा पितृणां च मन्मभिः । नाभाकस्य प्रशस्ति-  
भिः सिन्धूनामुपोदये ससस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे २

भा०—( यः ) जो ( सिन्धूनाम् ) स्पन्दनशील रक्तधाराओं वा गति-  
शील प्राणों के ( उपोदये ) ऊपर उठने में ( ससस्वसा ) सात स्वयं गति-  
शील मुख्य प्राणों से युक्त होने से सात भगिनियों वाला ( सः ) वह  
( मध्यमः ) सबके मध्य मुख्य रूप से स्थित राजा के समान है, ( तम् )  
उसको ( समना गिरा ) मान वा ज्ञान सहित वाणी और ( पितृणां च  
मन्मभिः ) पालक गुरुओं के मनन-योग्य वचनों से और ( नाभाकस्य )  
साक्षात् द्रष्टा पुरुष की ( प्रशस्तिभिः ) उत्तम उपदेश वाणियों से ( अर्चं )  
अर्चना कर ।

स क्षपः परिष्वजे न्युः सो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।  
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३॥

भा०—( क्षपः परि सस्वजे ) जैसे चन्द्रमा रात्रियों को ग्रास होता  
है वैसे ही ( सः ) वह श्रेष्ठ पुरुष ( क्षपः परि सस्वजे ) शत्रु नाशक  
सेनाओं को साथ रक्खे । वह ( उन्नः ) उत्तम पद को ग्रास होकर  
( मायया ) बुद्धि और कर्म द्वारा विश्व को प्रभु के समान ही ( विश्वं नि  
दधे ) समस्त राष्ट्र को नियम में स्थापित करे ( सः ) वह ( दर्शतः ) सबका  
द्रष्टा स्वामी होकर रहे । ( तस्य व्रतम् अनु ) उसके कर्म के अनुकूल रह  
कर ( तिस्रः वेनीः ) तीनों प्रकार की प्रजाएं उसे चाहती हुई ( तम्



अर्धयन्) उसको बढ़ावे । इस प्रकार ( समे अन्यके ) उसके समस्त शत्रुगण (नमन्ताम्) नष्ट हों ।

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शितः । स माता पूर्य पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नमन्तामन्यके समे ॥४॥

भा०—(यः दर्शितः) जो सर्वद्रष्टा स्वामी (पृथिव्याम् अधि) भूमि पर (ककुभः) देह में प्राणों के समान, समस्त दिशाओं वा उनमें बसी प्रजाओं को (नि धारयः) नियम में रखता है (सः) वह (वरुणस्य) श्रेष्ठ, प्रभु के (सप्त्यं) सर्पण-योग्य, प्राप्य (पूर्य पदम्) सर्वोपरि पद को (माता) बनाने वाला, माता के समान पूज्य है । ( सः हि ) वही (गोपाः इव) रक्षक के समान (इर्यः) स्वामी है । उसके द्वारा (अन्यके समे नमन्ताम्) अन्य सब दुष्ट पुरुष नष्ट हों ।

यो धर्ता भुवनानां य उस्त्राणांमपीच्या वेद नामानि गुह्या । स कविः काव्यां पुरु रूपं धौरिव पुष्यति नमन्तामन्यके समे ५।२६

भा०—(यः) जो ( भुवनानां धर्ता ) समस्त लोकों का धारक है, ( यः ) जो ( उस्त्राणां ) उत्तम, ऊपर के मार्ग से जाने वाले सूर्यादि के ( गुह्या ) छुद्धि से गम्य, ( अपीच्या ), छुपे हुए गुप्त ( नामानि ) नाम, स्वरूपों को (वेद) जानता है । (सः) वह (कविः) क्लान्तदर्शी, मेधावी, (धौः इव) सूर्य के समान ( काव्या ) विद्वान् पुरुषों के अभ्यास योग्य ज्ञानों को ( पुरु रूपं पुष्यति ) बहुत प्रकार से पुष्ट करता है । उसके रहते हुए ( अन्यके समे नमन्ताम् ) समस्त द्वेषीजन नष्ट हो जाते हैं । इति षड्विंशो वगः ॥

यस्मिन् विश्वालि काव्यां चक्रे नाभिरिव श्रिता । त्रितं जूती संपर्यत व्रजे गावो न संयुजै युजे अभ्वा अयुक्षत नमन्तामन्यके समे ॥६॥

भा०—( चक्रे नाभिः इव ) चक्र में नाभि के समान ( यस्मिन् )

जिस प्रभु में ( विश्वानि काव्या ) मेधावी पुरुषों के समस्त ज्ञान और कर्म (श्रिता) आश्रित हैं, (त्रितं) तीनों लोकों में व्यापक उस परमेश्वर को आप लोग (जूती) शीघ्र, प्रेमपूर्वक (सपर्यंत) उपासना करो । हे विद्वान् पुरुषो ! (व्रजे गावः न) जैसे गोशाला में समस्त गौवं (सं-युजे) एकत्र रहने के लिये आती हैं वैसे ही (व्रजे) गन्तव्य उस प्रभु में (सं-युजे) अच्छी प्रकार योग करने के लिये ( गावः ) समस्त वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों को संयुक्त करो और ( युजे ) उसी योग-साधन के लिये (अश्वान् अयुक्षत) अश्वों के तुल्य कर्मेन्द्रियों और मन की वृत्तियों को भी परम पद में एकत्र करो । इस प्रकार ( अन्यके समे नमन्ताम् ) अन्य समस्त दुष्ट नष्ट हों ।

य आस्वत्कं आशये विश्वां ज्ञातान्येषाम् । परि धामानि ममृ-  
शद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नमन्तामन्यके समे ॥७॥

भा०—( वः ) जो श्रेष्ठ प्रभु ( आसु ) इन समस्त दिशाओं और प्रजाओं में (अत्कः) व्यापक (आशये) गुप्तरूप से विद्यमान है और जो (एषां विश्वा ज्ञातानि) इन लोकों के पदार्थों और (धामानि) स्थानों को (परि ममृशत्) सब प्रकार से जानता है, उसी (वरुणस्य पुरः) श्रेष्ठ स्वामी के समक्ष (गये) उसके शासन में (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् और सूर्यादि पदार्थ, प्राण के अधीन इन्द्रियों के तुल्य (व्रतम् अनु) अधीन रहकर कार्य करते हैं । (अन्यके समे) इससे विपरीत दुष्टि वाले द्वेषीजन (नमन्ताम्) नष्ट होते हैं ।

स समुद्रो अपीच्यस्तुरो घामिव रोहति नि यदासु यजुर्वधे ।

स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नमन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—( सः ) वह ( समुद्रः ) समुद्र के समान गम्भीर, अपार, सुज्ञों का दाता, (अपीच्यः) आश्रय होने योग्य, हृदयों में गुप्त, (तुरः) अति शीघ्रकारी है वह (घाम् इव) आकाश में सूर्यवत् (रोहति) सबसे



रूपर प्रकाशित होता है। (यत्) जो (आसु) इन समस्त प्रजाओं वा समस्त प्राकृतिक शक्तियों में (यजुः निदधे) परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करता है और वह (अविना पदा) अर्चना योग्य, परम स्तुत्य 'पद' अर्थात् ज्ञान से (मायाः अस्तृणात्) सब कुटिल बुद्धियों का नाश करता है वह (नाकम् अरुहत्) परम सुखमय लोक को प्राप्त होता है। उसके (अन्यके समे नमन्ताम्) अन्य सब विरोधी नष्ट हो जाते हैं।

यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीराधिक्षितः ।

त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य भ्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति  
नमन्तामन्यके समे ॥६॥

भा०—(तिस्रः भूमीः) तीनों लोकों में (अधि-क्षितः) अध्यक्षवत् निवास करने वाले (यस्य) जिसके (विचक्षणा श्वेताः) विविध पदार्थों को दर्शाने वाले तेज, सूर्य विद्युदादि, (उत्तराणि) उनसे भी उत्कृष्ट (त्रिः) तीन लोकों को पूर्ण करते हैं उस (वरुणस्य) श्रेष्ठ प्रभु का (भ्रुवं सदः) विराजना या सत्त्वरूप से विद्यमान रहना (भ्रुवम्) नित्य है। (सः) वह प्रभु (सप्तानाम् इरज्यति) सातों सर्पणशील गतिमान लोकों का भी स्वामी रहता और उनको वश करता है। (अन्यके समे नमन्ताम्) उसके शासन में समस्त दुष्ट पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं।

यः श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।

स धाम पूर्वं ममे यः स्क्रुम्भेन वि रोदसी अजो न द्यामधार-

यन्नमन्तामन्यके समे ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु, सूर्यवत् (अधिनिर्णिजः) अति शुद्ध, (श्वेतान्) श्वेत सूर्यादि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुकूल चलाता है और जो (कृष्णान्) रात्रि के समान अन्धकारमय या आकर्षणमय, पृथिवी आदि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों

के अनुसार अधीन रखता है और (यः) जो (स्कम्मेन) थामने वाले बल से (रोदसी वि ममे) सूर्य और भूमि को आकाश में थामता है, (अजः न द्याम् अधारयत्) स्वयं अजन्मा होकर, संचालक के समान ही सूर्य या आकाश को धारण करता है, (सः) वह श्रेष्ठ वरुण (एव्यं धाम) सबसे पूर्ण धारण सामर्थ्य वा तेज को (ममे) धारण करता है। (अग्यके समे नभन्ताम्) उसके द्वारा सब पापी जन नष्ट हो जाते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[ ४२ ]

नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा । अथवा १—३ नाभाकः कण्वः । ४—६ नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा ऋषयः ॥ १—३ वरुणः । ४—६ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप् । ४—६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अस्तंभ्नाद द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।  
आसीद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१॥

भा०—(असुरः) बलवान्, (विश्व वेदाः) समस्त ज्ञानों का भण्डार परमेश्वर (द्याम् अस्तंभात्) तेजोमय पिण्डों को थामे रहता है, वह ही (पृथिव्याः परिमाणं) पृथिवी के परिमाण को (अमिमीत) मापता है, (सम्राड् विश्वा भुवना) सबका प्रकाशक परमेश्वर समस्त लोकों पर (आसीदात्) शासकवत् विराजता है। (विश्वा इत् व्रतानि) ये समस्त कार्य और व्यवस्थाएं (वरुणस्य इत्) श्रेष्ठ, वरणीय परमेश्वर की ही हैं।

एवा वन्दस्व वरुणं वृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।  
स नः शर्म त्रिवरुणं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (वरुणं एव) उस श्रेष्ठ, दुःखों के वारक, सबसे वरणीय (वृहन्तं) महान् प्रभु की (वन्दस्व) वन्दना, प्रार्थना कर। उसी (धीरम्) बुद्धि और कर्मफलों के दाता (अमृतस्य गोपाम्)



अमृतमय मोक्ष के रक्षक को (नमस्य) नमस्कार कर । (सः) वह (नः) हमें (त्रि-वरुणं शर्म) तीनों प्रकार के कष्टों से रक्षक गृहवत् देह का (वि यंसत्) प्रदान करता है । (उपस्थे) समीप विद्यमान (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूमि, माता और पिता भी (नः पातम्) हमारी रक्षा करें ।

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।  
ययाति विश्वां दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (देव) सुखों के दाता ! हे (वरुण) श्रेष्ठ ! तू (इमां धियं) इस ज्ञान और कर्म का (शिक्षमाणस्य) उपदेश देने वाले की (क्रतुं दक्षं) बुद्धि और बल को (सं शिशाधि) सम्यक् प्रकार से तीक्ष्ण कर, अच्छे मार्ग में चला । (यया) जिससे हम (विश्वा दुरिता) सब दुष्कर्मों को (अति तरेम) पार करें और (सु-तर्माणं नावं) सुख से पार उतार देने वाली नौकावत् वेदवाणी पर (अधि रुहेम) चढ़ें, उसका आश्रय लें ।

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।

नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके संमे ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्य ज्ञान का उपदेश देने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (वां) आप दोनों (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (सोमपीतये) उत्तम ज्ञानरस को पीने के लिये (धीभिः) बुद्धियों और सत्कर्मों सहित (अचुच्यवुः) प्राप्त हों । (अन्यके संमे नमन्ताम्) अन्य सब दुर्बुद्धि जन नष्ट हों ।

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।

नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके संमे ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख पद पर स्थित एवं सदा सत्याचरण-शील जनो ! (यथा) जिस प्रकार (अत्रिः विप्रः) तीनों प्रकार के दुःखों

से रहित विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ओषधिरस के पान करने और वीर्य रक्षा करने का (अजोहवीत्) उपदेश करता है उस प्रकार से (अन्यके समे) समस्त अन्य दुःखदायी रोग, पापादि संकल्प (नमंताम्) नष्ट होते हैं ।

एवा वामह ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।

नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥ २८ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो ८ । ३८ । ९ ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[ ४३ ]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ६—१२, २२, २६, २८, २९, ३३, निचृद् गायत्री । १४ ककुम्मती गायत्री । ३० पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमांस ईरते ॥ १ ॥

भा०—(इमे) ये (स्तोमांसः) स्तुतियुक्त वेद मन्त्रों द्वारा स्तुतिकर्ता (विप्रस्य) मेधावी, (वेधसः) जगत् के कर्त्ता (अस्तृतयज्वनः) यज्ञ कर्त्ता का नाश न करने वाले जन (अग्नेः) प्रभु के विषय में (गिरः ईरते) वेदवाणियों का उच्चारण करते हैं ।

अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे । अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥ २ ॥

भा०—हे (जातवेदः) सर्वज्ञ ! सर्वैश्वर्य के स्वामिन् ! हे (विचर्षणे अग्ने) ज्ञानवन् ! सर्वप्रकाशक ! विशेष द्रष्टा ! (प्रतिहर्यते ते) प्रत्येक जीव को चाहने वाले तेरी मैं (सु-स्तुतिम् जनामि) उत्तम स्तुति करूँ ।

आरोकाइव घेदहं तिग्मा अग्ने तवृत्विषः । दद्भिर्वनानि वप्सति ३

भा०—(दद्भिः वनानि) जैसे पशु दांतों से जंगलों को खाते हैं और



जैसे अग्नि-ज्वालाएं काष्ठों को मानो खा जाती हैं वैसे ही हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप ! ( तव त्विषः ) तेरी कान्तियां ( तिमिमाः ) तीक्ष्ण होकर, ( आरोकाः इव ) चमकीली ज्वालाओं के समान ( वनानि ) जलों को सूर्य किरणोंवत् नाश करने योग्य दोषों को ( वत्सति ) मानो खा डालती है, सब पापों को भस्म कर देती है ।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि । यतन्ते वृथगग्रयः ॥ ४ ॥

भा०—जैसे ( अग्रयः ) अग्नियें ( हरयः ) पीतवर्ण ( धूमकेतवः ) धूम-ध्वजाओं से युक्त, ( वात-जूताः ) वायु से प्रेरित होकर, ( द्यवि ) आकाश में ( वृथक् = पृथक् उपयतन्ते ) अलग २ प्रज्वलित होती हैं वैसे ही ( अग्रयः ) अग्नि के बने सूर्यादि लोक और ( धूम-केतवः ) धूम-ध्वजा से युक्त धूमकेतुगण, ( वात-जूता ) वायु से प्रेरित होकर आकाश में अलग २ धूम रहे हैं, ऐसे ही ( अग्रयः ) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान्, ( हरयः ) जीव-गण, ( धूम-केतवः ) पाप को दूर करने में समर्थ होकर ( वात-जूताः ) प्राण वायु से प्रेरित होकर ( द्यवि ) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर उसके आश्रय, पृथक् २, मोक्ष का यत्न करते हैं ।

एते त्वे वृथगग्रय इद्वासुः समदक्षत । उषसामिव केतवः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—( एते त्वे ) ये वह ( अग्रयः ) अग्निवत् स्वयं प्रकाश जीवगण ( इद्वासुः ) प्रज्वलित अग्नियों के समान और ( उषसाम्-इव केतवः ) प्रभात कालों के ज्ञापक किरणों के समान ( उषसाम् ) नाना कामनाओं को ( केतवः ) प्रकट करने वाले ( वृथक् ) पृथक् २ ही ( सम्-अदक्षत ) विवेकपूर्वक दिखाई देते वा देखते हैं । पूर्व मन्त्र में बताया कि जीवों के अपने यत्न पृथक् २ हैं, इसमें बताया कि इनकी इच्छाएं भी भिन्न हैं । वे परमात्मा के अंश नहीं प्रत्युत पृथक् २ ही हैं । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणं ज्ञातवेदसः अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥ ६ ॥

भा०—(अग्निः यत् क्षमि रोधति) अग्नि जब भूमि पर जाता है तब उसके (प्रयाणे रजांसि कृष्णा) जल जाने पर भूमि के धूलि आदि कृष्ण-वर्ण हो जाते हैं, ऐसे ही ( यत् ) जब ( अग्निः ) ज्ञानी जीव (क्षमि) सहनशीलता में वा योग की किसी भूमि पर स्वयं का (रोधति) निरोध करता है तब (परसुतः) ज्ञान में निष्णात, ( जातवेदसः ) ज्ञानी पुरुष के लिये (प्रयाणे) आगे बढ़ते हुए मार्ग में ( रजांसि ) समस्त राजस वस्तुएं, तेजोमय लोक (कृष्णा) अति आकर्षक होते हैं, वे उसे मार्ग में अष्ट करने वाले होते हैं ।

धांसि कृण्वान ओषधीर्वृक्षदग्निर्न वायति । पुनर्यन्तरुणीरपि ॥७॥

भा०—जैसे ( अग्निः ओषधीः धांसि कृण्वानः वृक्षद् ) अग्नि ओषधियों को अपना अन्न बना २ कर खाता है, ( न वायति ) शान्त नहीं होता है और (पुनः तरुणोः अपि यत्) फिर बढ़ी लताओं को भी प्राप्त करता है वैसे ही यह (अग्निः) अग्नि-तुल्य स्वप्रकाश जीव भी इस देहभूमि में प्राप्त होकर (ओषधीः धांसि कृण्वानः) अन्नादि ओषधियों को अपने धारण पोषणकारी खाद्य पदार्थ बनाता हुआ ( वृक्षद् ) उनका भक्षण करता है और वह ( न वायति ) शान्त नहीं होता, नहीं मरता, जीवित रहता है और वह (पुनः) बार २ ( तरुणीः अपि यत् ) तरुण अर्थात् यौवनादि दशाओं को प्राप्त होता हुआ भी ( न वायति ) भोगों से तृप्त नहीं होता । उन्हीं में लिस हो जाता है ।

जिह्वाभिरह नन्नमदृचिषा जज्ञणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥८॥

भा०—जैसे ( अग्निः ) अग्नि ( जिह्वाभिः ) जिह्वाओं, ज्वालाओं से (अह) ही (नन्नमत्) लपटें मारता और ( अचिषा ) दीप्ति से (जज्ञणा-भवत्) खूब प्रज्वलित होता हुआ (वनेषु रोचते) काष्ठों में चमकता है वैसे ही यह (अग्निः) स्वयं प्रकाश जीव, ( जिह्वाभिः अह ) पदार्थों को ग्रहण करने वाली इन्द्रिय रूप जिह्वाओं से ही ( नन्नमत् ) विषयों की



और बार २ झुकता है और (अर्चिषा) अर्चि-मार्ग से ही इस लोक में (जंजनाभवत्) बार २ उत्पन्न होता (वनेषु) सेवनीय पदार्थों या लोकों में वा जलों में सूर्यवत्, (रोचते) रश्मि-अनुकूल विचरता है ।

अप्स्वग्ने सधिष्ठत् सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सजायसे पुनः ॥१॥

भा०—जैसे अग्नि ( अप्सु सधिः ) मेघस्थ जलों में विद्युत् रूप से स्थित है और (सः) वह ( ओषधीः अनु रुध्यते ) ओषधियों को प्राप्त होता है और (गर्भे सन् पुनः जायते) पुनर्वत् उनके भीतर छुपा रहकर भी वर्षणादि से पुनः उत्पन्न होता है । वैसे ही हे ( अग्ने ) जीव (तव सधिः) तेरी समान रूप से स्थिति ( अप्सु ) वीर्यों में है, (सः) वह तू ( ओषधीः अनु ) 'ओष' तेजोमय वीर्य को धारण करने में समर्थ माताओं को प्राप्त होकर वहां ( रुध्यसे ) ९ मास तक रुका रहता है, (गर्भे सन्) गर्भ में रहकर पुनः (जायसे) उत्पन्न होता है ।

उदग्नेतव तद् घृतादृचीं रोचत आहुतम् । निसानं जुहोः मुखे १०।३०

भा०—जैसे (अर्चिः) अग्नि-ज्वाला ( जुहः मुखे ) जुहू नाम चमस के मुख पर (निसानं) जुम्बन करती हुई (आहुतम्) आहुति प्राप्त कर (घृतात् उत् रोचते) घृत के कारण ऊपर को उठकर चमकती है वैसे ही हे (अग्ने) जीवात्मा (तव तद् अर्चिः) तेरा वह प्रकाशमय बीज (जुहः मुखे) आदान या शुक्र ग्रहण करने वाले मातृगर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी के मुख पर ( निसानं ) स्पर्श करता हुआ ( आहुतं सत् ) पुरुष द्वारा प्रदत्त होता है और उसी (घृतात्) तेजोमय शुक्र से (तद्वत्) तेरा वह रूप (उत् रोचते) उत्तम रीति से प्रकट होता है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥१॥

भा०—हम (उक्षान्नाय) वीर्यसेचन में समर्थ, अन्न खाने वाले और (वशान्नाय) यथेच्छ अन्न के भोगने वाले, (सोम-पृष्ठाय) वीर्य स्वरूप

( अग्ने ) अग्निवत् आत्मा का ( स्तोमैः ) वेद मन्त्रों द्वारा ( विधेम ) प्रतिपादन और ज्ञान करें ।

उत त्वा नमसा वयं होतुर्वरेण्यकतो । अग्नौ समिद्धिरीमहे ॥१२॥

भा०—(उत) और हे (होतः) सब सुखों के दातः ! हे (वरेण्य-  
कतो) श्रेष्ठ ज्ञानवत् ! हे (क्रतो) जगत्कर्त्ता ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशमय !  
(त्वा) तुझको (वयं) हम (नमसा) विनय से (समिद्धिः) समिधाओं से  
आहवनीयाग्नि के तुल्य दीप्तियुक्त ज्ञानों द्वारा (ईमहे) प्राप्त होते हैं ।

उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्ववामहे ॥१३॥

भा०—(उत) और हे (शुचे) शुद्ध ! हे (अग्ने) ज्ञानमय ! हे  
(आहुत) सर्वात्मना स्वीकृत ! हम लोग (भृगुवत्) पाप दग्ध करने में  
समर्थ तपस्वी जनों के समान और (मनुष्वत्) मननशील पुरुषों के तुल्य  
और (अङ्गिरस्वत्) देह में प्राणोंवत्, अङ्गारों के समान तेजस्वी, पुरुषों  
के समान होकर (त्वा हवामहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं ।

त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्तसृता ।

सखा सख्या समिध्यसे ॥ १४ ॥

भा०—जैसे (अग्निना अग्निः समिध्यते) एक अग्नि से दूसरा अग्नि  
मिलकर अधिक दीप्तियुक्त होता है और जैसे (विप्रः विप्रेण समिध्यते)  
विद्वान् पुरुष विद्वान् से मिलकर अधिक ज्ञान का प्रकाश करता है  
और जैसे (सन् सता) सज्जन सज्जन से मिलकर प्रसन्न होता है, (सखा  
सख्या समिध्यते) खेही मित्र खेहवान् जनों से मिलकर अधिक प्रसन्न  
होता है वैसे ही हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप प्रभो ! तू भी (अग्निना) स्वप्रकाश  
आत्मा द्वारा (समिध्यसे) प्रकाशित होता है, तू (विप्रः) विविध ज्ञानों  
से पूर्ण है, वह तू (विप्रेण) विशेष ज्ञान से पूर्ण आत्मा द्वारा ही  
(समिध्यसे) जाना जाता है । तू (सन्) सत् स्वरूप (सता) सत् नित्य



आत्मा से ही जाना जाता है । तू (सखा) आत्मा का परम खेही है, तू (सख्या) अपने मित्र आत्मा द्वारा ही जाना जाता है ।

स त्वं विप्राय द्वाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् ।

अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! (सः त्वं) वह तू (द्वाशुषे) ज्ञानादि देने वाले (विप्राय) विद्वान् को (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों की संख्या से युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीम् इषम्) वीरों और पुत्रों से युक्त अन्न, (देहि) दे । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत ।

इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (भ्रातः) खेहकारिन्, जीवों के भरण पोषण करने हारे ! हे (सहस्कृत) सर्ववशकारी बल से सम्पन्न, हे (रोहित्-अश्व) रक्तवर्ण अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाले, वेगवान् सूर्यादि पिण्डों के स्वामिन् ! हे (शुचि-व्रत) शुद्ध व्रत ! तू (मे) मेरे (इमं स्तोमं जुषस्व) इस स्तुतिवचन को स्वीकार कर ।

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते ।

गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रभो ! (वाश्राय प्रतिहर्यते) पुकारने वाले और माता को चाहने वाले बछड़े के लाभ के लिये (गोष्ठं गावः इव) गोशाला में गौओं के समान (मम स्तुतः) मेरी स्तुतियां (त्वा) तुझको (आशत) प्राप्त हों ।

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पथक् ।

अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) प्राणों में मुख्य प्राणवत् श्रेष्ठ ! हे (अग्ने)

तेजस्विन् ! (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजाएं (कामाय तुभ्यं) कामना-योग्य तेरे लिये अपने को (पृथक्) पृथक् २ दलों में (नियेमिरे) नियंत्रित करते हैं, तुझे प्राप्त करने के लिये अपने को वर्ण आश्रमादि व्यवस्था में बांधते हैं ।

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।

अद्भ्यसद्याय हिन्विरे ॥ १६ ॥

भा०—(मेधिरासः) अन्नादि के स्वामी, (मनीषिणः) मनो को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विपश्चितः) विद्वान् लोग (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, कर्मों, तथा स्तुतियों से (अद्भ्यसद्याय) कालाग्नि रूप से अद्भुत खाने योग्य, विश्व में अधिष्ठातृवत् विराजने और व्यापने के अर्थ (अग्निं हिन्वन्ति) ज्ञानी की स्तुति करते हैं ।

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।

वह्निं होतारमीळते ॥ २० ॥ ३२ ॥

भा०—लोग (तं त्वाम्) उस तुझे (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान् को, हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (अज्मेषु) संग्रामों में भी (अध्वरं) अविनाशी (वह्निं) कार्यवहन में समर्थ (होतारम्) दाता रूप से (ईडते) स्तुति करते हैं । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

पुरुत्रा हि सदृङ्सि विशो विश्वा अनु प्रभुः ।

समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥

भा०—हे विभो ! प्रभो ! तू (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओं के अनुकूल, सबका स्वामी और (पुरुत्र हि) पालने योग्य इन्द्रियों में आत्मा के समान ही (सदृङ् असि) सबको समान भाव से देखने वाला है । (समत्सु) संग्रामों और हर्षावसरों में भी (त्वा हवामहे) तेरी प्रार्थना करते हैं ।



तमीलिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः ।

इमं नः शृण्वद्धवम् ॥ २२ ॥

भा०—जैसे (आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि (घृतैः) घृतों से (वि-भ्राजते) विशेष प्रकाशित होता है वैसे ही जो वह (अग्निः) तेजः-स्वरूप, प्रभु (घृतैः) तेजोमय आत्माओं से (आ-हुतः) बुलाया, पुकारा और प्रार्थित किया जाकर (वि-भ्राजते) हृदयों में विशेष प्रकाशित होता है (तस् ईलिष्व) तू उसकी ही स्तुति कर । क्योंकि वही (नः) हमारी (हवम् शृणवत्) स्तुति को श्रवण करता है ।

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं ज्ञातवेदसम् ।

अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वान् (ज्ञात-वेदसम्) ज्ञान में निष्णात (शृण्वन्तं) श्रवण करने वाले और (द्विषः अप घ्नन्तम्) द्वेष करने वालों और द्वेष के भावों का विनाश करने वाले (तं त्वा) उस तुझको (वयं) हम लोग (हवामहे) पुकारते हैं ।

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।

अग्निमीले स उ श्रवत् ॥ २४ ॥

भा०—(विशां राजानम्) प्रजाओं के बीच राजाओं के तुल्य, देह में प्रविष्ट आत्माओं के बीच प्रकाशित, (धर्मणाम्) समस्त धर्मों के (अद्भुतम् अध्यक्षं) अद्भुत अध्यक्ष, द्रष्टा, (अग्निम्) तेजस्वी प्रभु की मैं (ईडे) स्तुति करूँ, (सः उ श्रवत्) वह ही वस्तुतः सुनने वाला है ।

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।

समिं न वाजयामसि ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जैसे हम (विश्वायु वेपसं मर्यं वाजयामसि) समस्त मनुष्यों को कंपाने वाले बलवान् पुरुष को अधिक बल से युक्त करते

हैं। वा (वाजिनं ससिं वाजयामसि) बलशाली, वेग से जाने वाले अश्व को अधिक तीव्र वेग से जाने के लिए प्रेरित करते हैं वैसे ही हम (विश्वायु-वेपसं) समस्त मनुष्यों को चलाने वाले, (वाजिनं) ज्ञानैश्वर्यवान् (हितम्) सर्वहितकारी (ससिं) प्रकृति की सातों विकृतियों के स्वामी, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक को (वाजयामसि) गुणों से अलंकृत करते, उसकी स्तुति करते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

घ्नन्मभ्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा ।

अग्ने तिमने दीदिहि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (मभ्राणि) हिंसक (द्विषः) द्वेष करने वालों को (घ्नन्) दण्डित करता और (रक्षांसि दहन्) विघ्नकारियों को दग्ध करता हुआ (तिमने) तीक्ष्ण तेज से (दीदिहि) प्रकाशित हो ।

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम ।

अग्ने स वोधि मे वचः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) अति तेजस्विन् ! (अग्ने) अग्रणी नायक-वत् मार्गप्रकाशक ! (यं त्वा) जिस तुझे (जनासः) मनुष्य (मनुष्वत्) ज्ञानी के समान होकर (त्वाम् इन्धते) तुझे ही प्रज्वलित करते हैं (सः त्वं) वह तू (मे वचः बोधि) मेरे वचन का ज्ञान कर ।

यदग्ने दिविजा अत्यप्सुजा वा सहस्कृत ।

तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥ २८ ॥

भा०—अग्नि जैसे तीन प्रकार का है (दिविजाः) आकाश में सूर्य, (अप्सुजाः) जलों वा अन्तरिक्ष में उत्पन्न विद्युत्, और (सहस्कृतः) बल या मथन से उत्पन्न यह अग्नि, ऐसे ही आत्मा भी तीन प्रकार से प्रकट होता है। (१) (दिविजाः) कामना रूप से प्रकट, (२) (अप्सुजाः)



प्राणों में प्रकट, (३) (सहस्रकृतः) प्रतिरोधी उष्ण शीतादि को सहन करने वाले बल रूप में प्रकट । ऐसे ही परमेश्वर के तीन गुण, (दिविजाः) परम आकाश में सूर्यादि का उत्पादक, (अप्सुजाः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं वा जलों में और अन्तरिक्षगत पदार्थों का उत्पादक, (सहस्रकृत) सर्वातिशायी, सर्वव्यवस्थापक बल होकर विश्व का उत्पादक, हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! हे उक्त तीनों विशेषणों वाले ! ( तं त्वा ) उस तुझको हम ( गीर्भिः ) उत्तम वाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं ।

तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।

धासिं हिन्वत्यत्तवे ॥ २९ ॥

भा०—( अत्तवे धासिं ) भोक्ता जन को जैसे अन्न देते हैं वैसे ही (इमे जनाः) ये उत्पन्न हुए प्राणी या लोक और (विश्वाः सु-क्षितयः) समस्त उत्तम मनुष्य ( पृथक् ) पृथक् २ ( तुभ्यं अत्तवे घ इत् ) सब चराचर को अपने में लेने वाले तेरी ही ( धासिं हिन्वन्ति ) धारणा-सामर्थ्य की स्तुति करते हैं ।

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः ।

तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप, ( विश्वा अहा ) सब दिनों, (नृचक्षसः) नायक प्रभु को देखने वाले और (ते घ इत्) तेरे ही (सु-आध्यः) सुख से ध्यान, उपासना करने वाले होकर हम ( दुर्ग-हा ) दुःख से पार करने योग्य संकटों को ( तरन्तः स्याम ) पार करने वाले हों ।

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् ।

हृद्भिर्मन्देभिरीमहे ॥ ३१ ॥

भा०—हम ( मन्द्रं ) स्तुत्य, आनन्दप्रद ( पुरु-प्रियं ) बहुतों के प्रिय, इन्द्रियों को आत्मा के तुल्य प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले (पावक-शोचिषम्) पवित्रकारक तेज वाले, (शीरं) व्यापक, ( अग्नि ) अग्निवत् प्रकाशक को (मन्त्रेभिः) हर्षयुक्त (हृद्भिः) हृदयों से (ईमहे) प्रार्थना करें।

स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः ।

शर्धन्तमांसि जिघ्रसे ॥ ३२ ॥

भा०—(सृजन् सूर्यः न) उगते हुए सूर्य के समान (विभा-वसुः) विशेष कान्ति से आच्छादक, दीप्तिमान् होकर हे ( अग्ने ) प्रकाशक ! (रश्मिभिः) अपने किरणों से (शर्धन्) बलवान् होकर (सः त्वं) वह तू (तमांसि जिघ्रसे)अन्धकारों को नाश करता है, दुष्टों को दण्डित करता है।

तत्ते तहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति ।

त्वदग्ने वार्य वसु ॥ ३३ ॥ ३५ ॥

भा०—हे ( सहस्व ) महान् प्रभो ! (यत्) जो (ते) तेरा (वार्य वसु) श्रेष्ठ ऐश्वर्य (न उप-दस्यति) नष्ट नहीं होता हम ( तत् ते दात्रं ) वह तेरा दातव्य दान ( त्वत् ईमहे ) तुझसे मांगते हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[ ४४ ]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, २०—२२, २५, २६ गायत्री । २, ५, ७, ८, ११, १४—१७, २४ निचृद् गायत्री । ९, १२, १३, १८, २८, ३० विराड् गायत्री । २७ यवमध्या गायत्री । २९ ककुम्मती गायत्री । १९, २३ पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रिशदृचं सूक्तम् ॥

सुमिधार्ग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।

आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १ ॥



भा०—हे मनुष्यो ! ( समिधा घृतैः अग्निं ) जैसे यज्ञाग्नि को समिधा, घृत और (हव्या जुहोतन) हव्य चरु की आहुति देते हो वैसे ही आप (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (अग्नि) ज्ञानवान् विद्वान् की (समिधा) समिदपाणि होकर (घृतैः) ज्ञानप्रकाशों के निमित्त (दुवस्यत) सेवा करो । (अस्मिन्) उसके निमित्त (हव्या आ जुहोतन) उत्तम अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो ।

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मनमना ।

प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! तू (मे स्तोमं जुषस्व) मेरी स्तुति स्वीकार कर और (अनेन मनमना) इस मनन योग्य ज्ञान से (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो । (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तों, उत्तम वचनों को तू चाह और हमें उत्तम वचनों का उपदेश कर ।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे ।

देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥

भा०—जैसे कोई (अग्निं दूतं पुरो धत्ते) तस अग्नि को आगे स्थापित करता है और अग्नि (देवान् आसादयति) प्रकाशक किरणों को प्रदान करता है, वैसे ही मैं (पुरः) अपने समक्ष (दूतं) स्तुति योग्य (हव्य-वाहम्) स्तुत्य गुणों के धारक गुरु और प्रभु को धारण करूँ और (उप ब्रुवे) उसकी स्तुति करूँ । वह (इह) इस अन्तःकरण में (देवान् आसादयत्) ज्ञानों को प्राप्त करावे ।

उत्तै बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः । अग्ने शुक्रास ईरते ४:

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (दीदिवः) कान्तियुक्त ! जैसे (समिधानस्य बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उत् ईरते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए अग्नि की बहुत बड़ी ज्वालाएं ऊपर को उठती हैं और सूर्य की

उज्ज्वल कान्तिये ऊपर को उठती हैं और जैसे ( शुक्रासः उत् ईरते ) पृथिवीस्थ जल भी ऊपर को उठते हैं वैसे ही ( समिधानस्य ) अति तेजस्वी ( ते ) तेरे ( बृहन्तः ) प्रबृद्ध ( अर्चयः ) उत्तम कान्तिपुं और ( शुक्रासः ) शुक्र अर्थात् दीर्घ ( उत् ईरते ) ऊपर मस्तक की ओर जाते हैं ।

उप त्वा जुहो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्षत ।

अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जैसे ( घृताचीः जुहः अग्निं यन्ति ) घृत वाली जुहू नाम सु चापं यज्ञ-काल में अग्नि को प्राप्त होती हैं वैसे ही हे ( अग्ने ) विद्वन् ! प्रभो ! हे ( हर्षत ) कान्तियुक्त ! ( मम ) मेरी ( घृताचीः ) स्नेहयुक्त ( जुहः ) वाणियां ( त्वा उप यन्तु ) तुझे प्राप्त हों ! हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! तू ( नः हव्या ) हमारे दिये अन्नादि पदार्थों को ( जुषस्व ) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । इति पट्विंशो वर्गः ॥

मन्द्र होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।

अग्निमील स उ श्रवत् ॥ ६ ॥

भा०—मैं ( मन्द्रं ) सुखजनक, ( होतारम् ) सुखों और ज्ञानों के देने वाले, ( मृत्विजं ) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, ( चित्र-भानुं ) अद्भुत, सौम्य कान्तियुक्त ( विभा-वसुम् ) दीप्तियुक्त धन के स्वामी, ( अग्निम् ईडं ) प्रमुख तेजस्वी पुरुष की स्तुति करता हूँ । ( सः उ श्रवत् ) वह श्रवण करे ।

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम् ।

अध्वराणामभिश्चियम् ॥ ७ ॥

भा०—मैं ( प्रत्नं ) पुराण, नित्य, सर्वश्रेष्ठ, ( होतारम् ) ज्ञानों, ऐश्वर्यों के देने वाले, ( ईड्यं ) स्तुत्य, ( जुष्टं ) सेवने योग्य, ( कविक्रतुम् ) दूरदर्शी विद्वान् के समान ज्ञान, कर्म से युक्त, ( अध्वराणां ) यज्ञों के आश्रय, देवपूजा, सत्कार आदि के सत्पात्र की स्तुति करता हूँ ।



जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक् ।

अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अंगिरःतम) प्राणों के प्राण ! हे (अग्ने) सबके नेतः ! तू (आनुषक्) निरन्तर (हव्यानि जुषाणः) उत्तम ग्राह्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, स्तुतिवचन अन्नादि सेवन करता हुआ (ऋतुथा) ऋतु अनुसार यज्ञ (नय) यज्ञ को चला ।

समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह ।

चिकित्वान् देव्यं जनम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (सन्त्य) सत्कार, सत्संगादि से सेवनीय ! हे (शुक्र-शोचे) शुद्ध, वीर्य की उज्ज्वल कान्ति से युक्त ब्रह्मचारिन् ! तू (चिकित्वान्) विद्वान् होकर (सम-इधानः) अग्निवत् देदीप्यमान् होकर (देव्यं जनं) उत्तम विद्वान् जनों को (इहा आ वह) यहां प्राप्त करा ।

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।

यज्ञानां केतुमीमहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हम (विप्रम्) विद्वान् (होतारम्) ज्ञानप्रद, उपदेष्टा, (अद्रुहं) द्रोहरहित, अहिंसक, निर्द्वेष, (धूम-केतुम्) अज्ञान के नाशक, सत् ज्ञान से युक्त, (विभा-वसुम्) विशेष कान्ति से युक्त, कान्ति से अन्यों को आच्छादित करने वाले, (यज्ञानां केतुम्) यज्ञों के जानने वाले विद्वान्, वा प्रभु से हम (ईमहे) याचना करें । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ।

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति षम देव रीषतः ।

मिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥ ११ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! विजिगीषो ! (अग्ने) अग्रणी ! (त्वं) तू (नः) हमें (रीषतः) हिंसक पुरुष से (नि पाहि) रक्षा कर, उसका (प्रति) मुकाबला कर । हे (सहस्कृत) बल से सम्पन्न ! तू (नः) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (मिन्धि) छिन्न भिन्न कर, उनमें भेद नीति का प्रयोग कर ।

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं१ स्वाम् ।

कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानी (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुष (प्रत्नेन मन्मना) अनादि ज्ञान वेद से ( स्वां तन्वं शुम्भानः ) अपने देह, मुख आदि को ओमित करता हुआ (विप्रेण) विद्वान् के संग से (वावृधे) बढ़ता है ।

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।

अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ १३ ॥

भा०—(अस्मिन् सु-अध्वरे यज्ञे) इस अविनाशी यज्ञ में, (पावक-ओचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले ( ऊर्जः नपातम् ) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, ( अग्निं ) नायक पुरुष को ( आहुवे ) आदर पूर्वक बुलाऊँ ।

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।

देवैरा सत्सि वर्हिषि ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (त्वम्) तू ( मित्रमहः ) मित्रों का आदर करने वाला, मित्रों से स्वयं पूजित होकर (शुक्रेण शोचिषा) उज्ज्वल कान्ति से युक्त होकर (नः) हमारे ( वर्हिषि ) वृद्धिशील राष्ट्र और उत्तमासन पर ( देवैः ) विद्वान् विजय के इच्छुक पुरुषों सहित (आ सत्सि) आदरपूर्वक प्रतिष्ठित हो ।

यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति ।

तस्मा इदीदयद्वसु ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः मर्तः) जो मनुष्य (दमे) गृह में अथवा (तन्वः दमे) शरीर के अंगों को दमन करने के लिये ( अग्निं देवं ) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक, (देवं) ज्ञानी, दाता, विद्वान् और प्रभु की ( सपर्यति ) सेवा-शुश्रूषा करता है (तस्मै इत्) उसी के लिये वह ( वसु दीदयत् ) ज्ञानमय धन का प्रदान करता है । इत्यष्टाग्निशो वर्गः ॥



अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।

अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १६ ॥

भा०—(अयम्) यह (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (दिवः ककुत्) ज्ञान में श्रेष्ठ, आकाश में सूर्यवत् उन्नत, (मूर्धा) शिर के समान सर्वोपरि विराजमान, (अग्निः) अग्रणी विद्वान् (अपां) आप पुरुषों के बीच रहकर (रेतांसि जिन्वति) वीर्यों का पालन करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे ।

उदग्ने शुच्यस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।

तव ज्योतीष्यर्चयः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव शुचयः) तेरे शुद्ध चरित्र, (शुक्राः) जलों या तेजों के समान (उत् ईरते) शुद्ध रूप से प्रकट होते हैं और (तव ज्योतीषि) तेरे तेज, (तव अर्चयः) तेरे सादरसत्कार अग्नि के प्रकाश में ज्वालाओं के समान (उत् ईरते) से प्रकट होते हैं ।

ईशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः ।

स्तोता स्यां तव शर्मणि ॥ १८ ॥

भा०—(हि) क्योंकि हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (स्वः पतिः) समस्त सुखों का पालक, स्वामी है और (वार्यस्य दात्रस्य) वरण योग्य श्रेष्ठ दातव्य धन का भी (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुखमय शरण में रहकर (तव स्तोता स्याम्) तेरी स्तुति करने वाला होऊँ ।

त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चित्तिभिः ।

त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग में चलाने वाले, ज्ञान के अभिलाषी (त्वां) तुझे चाहते हैं । (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझे कर्मों से प्रसन्न करते हैं । (नः गिरः) हमारी वाणियों भी (त्वां वर्धन्तु) तुझे ही बढ़ावें, तेरा ही गुणगान करें ।

अदब्धस्य स्वधावतो दूतस्य रेभतः सदा ।

अग्नेः सख्यं वृणीमहे ॥ २० ॥ ३६ ॥

भा०—(अदब्धस्य) विनाशरहित, (स्वधावतः) स्वयं जगत् की धारक शक्ति से युक्त (दूतस्य) दुष्टों के संतापक, (रेभतः) ज्ञान का उपदेश देने वाले, (अग्नेः) तुझ तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष के (सख्यं) मैत्रीभाव की हम (सदा वृणीमहे) सदा याचना करें । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अग्निं शुचिर्व्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कृविः ।

शुचीं रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

भा०—(शुचिर्व्रत-तमः) अत्यन्त शुद्ध पवित्र कर्मों वाला पुरुष, (विप्रः शुचिः) शुद्ध चरित्रवान्, विद्वान् (शुचिः कविः) शुद्ध चरित्रवान्, क्रान्तदर्शी, तत्त्व ज्ञानी पुरुष (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी (आहुतः) आहुति किये अग्नि के समान ही सत् दान प्राप्त कर (रोचते) प्रकाशित होता, और सबके मन को अच्छा लगता है ।

उत त्वां धीतयो मम गिरो वधन्तु विश्वहा ।

अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! विद्वन् ! (मम) मेरे (धीतयः) उत्तम कर्म और (गिरः) वाणिजां (त्वा विश्वहा वधन्तु) तुझे सदा बढ़ावें और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्रभाव को जान ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घ्रा स्या अहम् ।

स्युष्टे सत्या इहाशिपः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! हे प्रभो ! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं (त्वं वा घ अहम् स्याः) और तू मैं बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशिपः सत्याः स्युः) तेरी कामनाएं, वा तेरे विषय मैं मेरी भावनाएं सत्य हों ।



वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावंसुः ।

स्यामं ते सुमतावपि ॥ २४ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विभा-वसुः) दीसियुक्त, दीसि से जगत् भर को आच्छादित करने हारा, (वसुः) सर्वव्यापक और (वसु-पतिः) समस्त वसु, जीवों का पालक, (असि) है । हम भी (ते सुमतौ स्याम) तेरी शुभ मति और उत्तम ज्ञान में रहें ।

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायैव सिन्धवः ।

गिरो वाश्वास ईरते ॥ २५ ॥ ४० ॥

भा०—(धृत-व्रताय समुद्राय सिन्धवः इव) जल को धारण करने वाले समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदी वेग से (ईरते) चलती है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (धृत-व्रताय) व्रतों, कर्मों के धारक (ते) तेरे लिये ही (वाश्वासः गिरः) शब्दमय वाणियां (ईरते) निकलती हैं । तेरी स्तुतियां अनायास हृदय में उठती हैं । इति चत्वारिंशो वर्गः॥

युवानं विश्वपतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् ।

अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥ २६ ॥

भा०—मैं ( युवानं ) बलवान्, ( विश्वपतिं ) प्रजाओं के पालक, (कविं) विद्वान्, मेधावी, ( विश्व-अदं ) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाले, (पुरु-वेपसम्) नाना कर्म करने वाले, (अग्निं) तेज-स्वरूप, ज्ञान प्रकाशक प्रभु को (मन्मभिः) मन्त्रों से अलंकृत करता हूँ ।

यज्ञानां रथ्ये व्यं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥ २७ ॥

भा०—(यज्ञानां) यज्ञों के बीच ( रथ्ये ) रथी के समान नायक, (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्ण वशकारी साधनों से युक्त, (वीळवे) बलवान्, (अग्नये) तेजस्वी प्रभु को हम (स्तोमैः इषेम) स्तुति वचनों से चाहें ।

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृलय २८

भा०—हे (सन्त्य) उपास्य ! (अग्ने) स्वप्रकाश (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता (ते अपि-भूतु) तेरे में मग्नता को प्राप्त हो, हे (पावक) पवित्र करने हारे परम पावन ! (तस्मै मृड) तू उसको सुखी कर ।

धीरो ह्यस्य ब्रह्माद्विप्रो न जागृविः सदा । अग्नौ दीदयसि द्यवि २६

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तू (विप्रः न) विद्वान् पुरुष के समान (धीरः हि असि) कमौं, जानों, बुद्धियों का प्रेरक, (अग्नसत्) भोग्य, ऐश्वर्यमय ब्रह्माण्ड में, गृह में विराजमान (सदा जागृविः) सदा जागरणशील है । तू (द्यवि) आकाश में सूर्यवत् (दीदयसि) प्रकाश करता है ।

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे ।

प्र ण आयुर्वसो तिर ॥ ३० ॥ ४१ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन ! हे (वसो) सबमें बसने वाले ! सबको बसाने हारे ! (दुरितेभ्यः) दुष्टाचारों और (मृध्रेभ्यः) हिंसकों के भी (पुरा) पूर्व ही (नः आयुः प्र तिर) हमारे जीवनो को बढ़ा । इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[ ४५ ]

त्रिशोकः काण्व ऋषिः ॥ १ इन्द्राग्नी । २—४२ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—  
१, ३—६, ८, ९, १२, १३, १५—२१, २३—२५, ३१, ३६, ३७,  
३९—४२ गायत्री । २, १०, ११, १४, २२, २८—३०, ३३—३५  
निचृद् गायत्री । २६, २७, ३२, ३८ विराड् गायत्री । ७ पादनिचृद् गायत्री ॥

आ घा ये अग्निमिन्ध्रते स्तृणन्ति वर्हिरानुषक् ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

भा०—(ये घ) जो मनुष्य (अग्निम्) अग्नि को (आ इन्धते) अपने सन्मुख प्रज्वलित कर लेते हैं और (येषाम्) जिनका (युवा इन्द्रः)



ऐश्वर्यवान् प्रभु (सखा) मित्र है, वे (भानुषू) निरन्तर (बर्हिः) यज्ञवत् इस लोकस्थ प्रजा को (स्तृणन्ति) पृथिवी पर विस्तृत करते हैं ।

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २ ॥

भा०—( येषाम् इन्द्रः युवा सखा ) ऐश्वर्यवान्, बलवान्, प्रभु, राजा, वा विद्युत्, सूर्य आदि जिनका मित्र के तुल्य सहायक है ( एषां इध्मः बृहत् इत् ) उनका तेज भी महान् होता है । ( एषां शस्तं भूरि ) उनका उत्तम ज्ञान भी बहुत अधिक होता है । ( एषां स्वरुः पृथुः ) उनका शब्द वा शत्रु को सन्ताप बल भी भारी होता है ।

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः ।

येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ ३ ॥

भा०—( येषाम् इन्द्रः युवा सखा ) जिनका मित्र, बलवान्, शत्रु-हन्ता है वह ( शूरः ) शूरवीर होकर ( सत्वभिः ) अपने बलों से ही ( युधावृतं ) योधा जन से घिरे, बड़े सैन्यवान् शत्रु को भी ( आ अजति ) उखाड़ डालता है और ( अयुद्ध ) उससे युद्ध करता है ।

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्भि मातरम् ।

क उग्राः के हं शृण्वरे ॥ ४ ॥

भा०—( जातः ) अभिषिक्त हुआ, ( वृत्र-हा ) दुष्ट पुरुषों का मेघों को विद्युत्त्वत् ताड़ित करने वाला वीर पुरुष जब ( बुन्दं ) बाण, दुष्टों के भेदक, भयप्रद आयुध या सैन्य आदि को ( आ ददे ) अपने हाथ में ले तो वह ( मातरं ) माता के समान भूमि, राष्ट्र प्रजा वा विदुषी राज-सभा से ( पृच्छद् ) पूछे, कि ( के उग्राः ) कौन दुष्ट उग्र होकर प्रजा को सताते हैं और ( के हं ) कौन ( शृण्वरे ) दुष्ट संतापकारी सुने जाते हैं । वह पता लगा २ कर उनको दण्डित करे ।

प्रति त्वा शवसी चंदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।

यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥ ५ ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वा प्रति) तेरे प्रति ( शवसी ) बलवती सेना ( अवदत् ) कहे कि (यः) जो ( ते शत्रुत्वम् आचके ) तेरी शत्रुता चाहता है उससे तू (गिरौ) मेव में विद्यमान (अप्सः न) रूपयुक्त तेजस्वी विद्युत् के समान (योधिषत्) प्रहार कर । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

उत त्वं मघवञ्जृणा यस्ते वष्टिं ववक्षि तत् ।

यद्वीडयासि वीळु तत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! ( उत त्वं शृणु ) और तू श्रवण कर, (यः ते वष्टि) जो तुझसे किसी पदार्थ की कामना करे उसे तू (तत् ववक्षि) वह पदार्थ प्रदान कर । तू (यद् वीडयासि) जिसको बलवान् करे (तत् वीडु) वह सैन्य भी बलवान्, दृढ़ हो ।

यदार्जि यात्याजिह्वदिन्द्रः स्वश्चयुरूपं । रथीतमो रथीनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु-नाशक सेनापति (यत्) जो ( आर्जि याति ) युद्ध के लिये प्रयाण करता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता (आजिह्वत्) युद्ध करने में कुशल, (सु-अश्वयुः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी और (रथी-नाम् रथीतमः) रथवान् योद्धाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ रथी हो ।

वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह ।

भवा नः सुश्रवस्तमः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवीर्य से सम्पन्न, शस्त्रबल के स्वामिन् ! तू (विश्वा अभि-युजः) समस्त आक्रमणकुशल सेनाओं को (विश्वक् यथा) जिस प्रकार हो उसी प्रकार सब ओर ( वि सु वृह ) विविध और अच्छी प्रकार सुसज्जित खड़ा रख और तू(नः)हमारे बीच (सु-श्रवस्तमः अथ) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और धनैश्वर्यादिवान् हो ।



अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये ।

न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥ ६ ॥

भा०—(यं धूर्तयः) जिसको हिंसक जन (न धूर्वन्ति) नाश न कर सकें वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (अस्माकं सातये) हमारे लाभ के लिये (रथं पुरः सु कृणोतु) हमारे रथ सैन्य को आगे करे ।

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने ।

गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥ १० ॥ ४३ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हम (ते द्विषः) तेरे शत्रुओं को (अरं) खूब (परि वृज्याम) दूर करें । (गोमतः ते) भूमि, वाणी और गवादि पशु सम्पन्न, जितेन्द्रिय (ते दावने) तेरे दिये अन्न, भूमि, ज्ञान, शासन, वेतनादि के लिये (ते गमेम इत्) तुझे अवश्य प्राप्त करें ।

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः ।

विवक्षणा अनेहसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! हम (शनैः चित् यन्तः) शनैः शनैः जाते हुए, (अश्वावन्तः) अश्वों वाले, (शतग्विनः) सौ २ भूमियों वा सौ २ गायों के स्वामी, (अनेहसः) निष्पाप और (विवक्षणाः) राष्ट्र में विशेष पद के धारक हों ।

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रां सूनृतां शता ।

जरितृभ्यो विमंहते ॥ १२ ॥

भा०—(वि-मंहते) विविध ऐश्वर्य देने वाले (ते) तेरे लिये (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्ता विद्वानों की (शता सहस्रां) सैकड़ों, हजारों (सूनृतां ऊर्ध्वा) वाणियां ऊपर उठती हैं । उसी प्रकार विद्वानों के लिये तुझ दानशील के सैकड़ों हजारों उत्तम २ (सूनृता) धनैश्वर्य हों ।

विद्वा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्र हलहा चिदारुजम् ।

आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! द्रष्टा ! हम (त्वा) तुझको ही (धनं-जयम्) ऐश्वर्यों को जीतने वाला ( दृढा चित् आरुजम् ) शत्रु के दृढ़ से दृढ़ दुर्गों को तोड़ने वाला ( विद्वा हि ) जानते हैं और (यथा गयं अदारिणम्) जिस प्रकार गृह उत्तम द्वारा अर्थात् धर्मपत्नी से युक्त होकर सुखप्रद होता है उसी प्रकार हम (त्वा) तुझको भी (अदारिणम् विद्वा) उत्तम गृहपति वा शत्रु के छेदन भेदन में कुशल जानते हैं ।

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णाविन्दवः ।

आ त्वां पुणिं यदीमहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (कवे) विद्वन् ! हे ( धृष्णो ) शत्रुओं को पराजित करने वाले ! (ककुहं) विनीत (त्वा) तुझको (इन्दवः) नाना ऐश्वर्य (मन्दन्तु) तृप्त, पूर्ण रखते हैं । (यत्) जिससे हम ( पुणिं त्वां ) उत्तम व्यापारी तुझसे (आ ईमहे) धनादि की याचना करते हैं ।

यस्ते रेवां अदाशुरिः प्रममर्षं मघत्तये ।

तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥ ४४ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान्) धनवान् होकर भी (अदाशुरिः) दान, यज्ञादि नहीं करता और ( ते मघत्तये ) तेरे दिये पूज्य धन को लेने के लिये (प्रममर्षं) बलात्कार करता है, ( तस्य वेदः ) उसका धन (नः आभर ) हमें ला दे । इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।

पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—(पुष्ट-वन्तः) उत्तम हृष्ट पुष्ट पशु के स्वामी (यथा पशुम्) जिस प्रकार अपने पशु को खेह से देखते हैं उसी प्रकार हे ( इन्द्र )



ऐश्वर्यवान् ! (सोमिनः सखायः) ऐश्वर्यवान् मित्रगण ( इमे ) ये (त्वा उ विचक्षते) तुझे विशेष आदर, स्नेह से देखते हैं और स्तुति करते हैं ।

उत त्वाऽवधिरं वयं श्रुत्कर्णं संतमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७॥

भा०—(उत) और (वयं) हम लोग (अवधिरम्) श्रोत्रेन्द्रिय की शक्ति से युक्त (श्रुत्-कर्ण) श्रवण करने में समर्थ, (सन्तं) सज्जन तुझको (दूराद्) दूर रहते भी (उतये) रक्षार्थ वहां से (इह) यहां (हवामहे) बुलाते हैं ।

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिनो अन्तमः ॥१८॥

भा०—(यत्) जब (उत) भी (इमं) इस (हवं शुश्रूया) आह्वान को श्रवण करे तो तू (दुर्मर्षं) दुःसह्य (चक्रियाः) पराक्रम कर और (नः) हमारा (अन्तमः आपिः भवेः) निकटतम बन्धु हो ।

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि ।

गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जब भी (व्यथिः) दुःखित होकर हम (ते जगन्वांसः) तेरे शरण जाकर (अमन्महि) तेरा मनन करें, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तब भी तू (नः) हमें (गो-दाः) उत्तम वाणी देने हारा होकर हमें (बोधि) ज्ञान प्रदान कर ।

आ त्वा रम्भं न जित्रयो ररम्भा शवसस्पते ।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥ ४५ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल और ज्ञान के पालक ! जित्रयः रम्भं (न) बूढ़े जिस प्रकार दण्ड का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हम (त्वा आ ररम्भ) तेरा आश्रय लेवें । (सधस्थे) सब स्थानों में हम (त्वा आ उश्मसि) तेरी ही सदा कामना करते हैं । इति पञ्चनत्वारिंशो वगः ।

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्त्वेने ।

नकिर्यं वृणवते युधि ॥ २१ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यं) जिसको (युधि) युद्ध में (नकिः वृणवते) कोई रोक नहीं सकता उस (सत्त्वेने) बलशाली, (पुरु-नृम्णाय) बहुत धनों के स्वामी, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (स्तोत्रं गायत) स्तुति का गान करो ।

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवन् ! (सुतं त्वा) अभिपिक्त (सुते) ऐश्वर्य-युक्त इस पद पर (पीतये) रक्षा करने के लिये (अभि सृजामि) तुझे नियुक्त करता हूँ । तू (मदम् वि अश्नुहि) सुख आनन्द विविध प्रकार से प्राप्त कर और (तृम्प) तृप्तिकारक आनन्द का भोग कर ।

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान् आ दभन् ।

मार्की ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥

भा०—(अविष्यवः) हिंसाशील (मूराः) घातक लोग (त्वा मा आदभन्) तुझे नाश न करें और (मा उपहस्वानः) उपहास करने वाले जन भी तुझे हानि न पहुँचावें । (ब्रह्म-द्विषः) वेद व ब्राह्मण वर्ग और तेरे धन के द्वेषी जनों का तू (मार्की वनः) संग मत कर ।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ।

सरौ गौरो यथा पिव ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन् विद्वन् ! (इह) इस राष्ट्र में या इस पद पर (गो-परीणसा) भूमि या वाणी के महान् बल से (महे राधसे) बड़े ऐश्वर्य के लिये लोग (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करें । (यथा गौरः सरः) तालाब के जल को मृग जैसे यथेच्छ पीता है वैसे ही तू भी (गौरः) पृथिवी पर



या ज्ञान-वाणी में रमण करता हुआ (सरः) प्रशस्त ज्ञानरूप जल का (पिव) पान कर ।

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे ।

ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥ ४६ ॥

भा०—(वृत्रहा) दुष्टों का नाशक सेनापति विघ्नादि का नाश करके सफल विद्वान् (परावति) दूर देश में भी (या) जिन (सना) सनातन से चले आये ( नवा च ) और नये ऐश्वर्यों और नये तत्त्वों, ज्ञानों को (चुच्युवे) प्राप्त करे (ता) उनको ( संसत्सु ) सभाओं, परिषदों में (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उत्तम आदर से कहो, जिससे ज्ञान वृद्धि हो । इति षट्चत्वारिंशो वर्गः ॥

अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रवाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥ २६

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का हन्ता वा सत्य ज्ञान का द्रष्टा पुरुष (कद्रुवः) उपदेष्टा विद्वान् के ( सुतम् ) प्रकट किये ज्ञान को भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य, अज्ञादि के समान (सहस्र-वाह्वे) सहस्रों वा बलशाली बाहुबल की वृद्धि के लिये (अपिबत्) पान करे । (अत्र) इस प्रकार उसका इस लोक में (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमकता है ।

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्मवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणो शमि २७

भा०—विद्वान्, राजा (तुर्वशे) चारों अर्थों को चाहने वाले बलवान् जन में (सत्यं) यथार्थ ज्ञान और (अह्मवाय्यं) दिन में करने योग्य कार्य मात्रा को ठीक २ (विदानः) जानता हुआ (तुर्वणे) शीघ्र, कार्य करने में कुशल पुरुष पर (शमि) कार्य का (वि-आनट्) विभाग करे ।

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् २८

भा०—मैं (जनानां वः) आप लोगों को ( तरणिं ) संकटों से पार उतारने वाले (त्रदं) शत्रु नाशक और (गोमतः वाजस्य) भूमि युक्त ऐश्वर्य के दाता की (समानम् उ प्रशंसिषम्) समान रूप से प्रशंसा करता हूँ ।

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्रयावृधम् ।

इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २६ ॥

भा०—(सोमे) सोम, अर्थात् पुत्रवत् शासन करने योग्य पुत्र के (सुते) अभिवेक कर देने पर (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्रयावृधम्) शत्रु की हिंसा करने वाले, बल बढ़ाने वाले, राष्ट्र पालक राजा प्रजा के आश्रय, शक्ति को बढ़ाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, प्रभु, राजा को (वर्तवे) वरण करने के लिये (उक्थेषु) उत्तम २ वचनों में उसकी (सचा) एक साथ मिलकर प्रशंसा करें, उसका गुणानुवाद करें ।

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।

गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥ ४७ ॥

भा०—सूर्य (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी मेघ को (विकृन्तत्) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता और (गोभ्यः निरेतवे गातुं) किरणों के निकलने के लिये मार्ग बना लेता है, वैसे ही (यः) जो पराक्रमी पुरुष (त्रि.शोकाय) तीनों प्रकार के तेजों की प्राप्ति के लिये, (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वत को, (विकृन्तत्) विविध स्थानों से काटता और (गोभ्यः निरेतवे) वेगयुक्त जलधाराओं के निकलने के लिये मार्ग तैयार करता है वह राजा श्रेष्ठ है, उसी की प्रशंसा करें । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

यदधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।

मा तत्करिन्द्र मृलय ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत्) जिस जगत् वा देह को आत्मवत् तू (दधिषे) धारण करता है, (यत् मनस्यसि) जिसको तू मनन द्वारा संकल्प करता है और (मन्दानः) हर्षित होकर (यत् प्र इयक्षसि इत्) जिसे प्राप्त होता है, (मा तत् कः) क्या तू उसको नहीं बनाता, तू (मृलय) उस जगत् को सुखी कर ।



दुभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृणवे अधि क्षमि ।

जिगात्विन्द्र ते मन ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी का (दुभ्रं चिद्धि) थोड़ा भी (कृतं) किया कार्य (अधि क्षमि) भूमि पर (शृणवे) प्रसिद्ध सुना जाता है (ते मनः) तेरा मन (जिगात्) आगे बढ़े ।

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसंभ्रुत प्रशस्तयः ।

यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ ३३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (नः मृळयांसि) हमें सुखी करता है (ताः सुकीर्तयः) वे नाना उत्तम कीर्तियां और (उत्तः प्रशस्तयः) उत्तम प्रशंसाएं भी (तव इत्) तेरी ही हैं ।

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु ।

वधीर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (एकस्मिन् आगसि) एक अपराध पर (नः मा वधीः) हम प्रजाओं को पीड़ित मत कर, (मा द्वयोः) दो अपराधों पर, (उत् त्रिषु) और तीन अपराधों पर भी सबको पीड़ित मत कर (भूरिषु) बहुत अधिक अपराध होने पर भी हम सबको दण्डित मत कर, प्रत्युत जिसका अपराध हो उसी को न्याय से दण्डित कर ।

विभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः ।

दस्मादहमृतीषहः ॥ ३५ ॥ ४८ ॥

भा०—(ऋति-सहः) शत्रुकृत हिंसा वा हिंसक सेनाओं को पराजित करने में समर्थ, (अभि-प्र-भङ्गिणः) आगे आये शत्रु को अच्छी प्रकार विनाश कर देने वाले, (दस्मात्) शत्रुनाशक, (उग्रात् त्वावतः) तुझ जैसे बलवान् प्रचण्ड स्वामी से, (विभया हि) मैं सदा भय करूं। सब पीड़ाओं को मिटा देने से “ऋतीसह” और विश्व भर के सब संकटों को प्रलय करने में समर्थ होने से ‘अभि-प्रभङ्गी’ है । इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः ।

मा सख्युः शुनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो ।

आवृत्त्वद्भूतु ते मनः ॥ ३६ ॥

भा०—हे (प्रभु-वसो) प्रभूत धन और प्रजा के स्वामिन् ! मैं (सख्युः शुनम् मा आ विदे) मित्र के सुखकारक धन को न अपहरण करूं । (पुत्रस्य मा) मैं पुत्र के धन को भी अपहरण न करूं । (ते मनः) तेरा मन (वावृत्त्वत् भूतु) हमारी ओर आने वाला, प्रेम से युक्त हो ।

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् ।

जहा को अस्मदीपते ॥ ३७ ॥

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो ! (कः सखा) कौन मित्र छोड़ी (अमि-थितः) बिना अनादर युक्त वचन कहा जाकर ही (सखायम् अब्रवीत्) अपने मित्र को कह सकता है । (कः जहा) कौन किसको मारता है (कः अस्मत् ईपते) कौन हमसे भयभीत होकर भागता है ? जब कोई किसी को नहीं मारता तो कोई किसी से भय खा कर नहीं भागता है ।

एवारै वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः श्वघ्नीव निवता चरन् ॥ ३८

भा०—(स्वघ्नी इव) अपना द्रव्य या आश्रित जन को नाश करने वाला, जिस प्रकार (निवता चरन्) लज्जा से नीचा मुख करके चलता है, हे (वृषभ) पुरुष (एवारै) आदरों से प्राप्त होने योग्य (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त हो जाने पर, (आवयः) रक्षक जन (भूरि असिन्वन्) बहुत बांध लेते हैं और (निवता चरन्) नम्र होकर आचरण करते हैं ।

आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा ।

यदी ब्रह्मभ्य इददः ॥ ३९ ॥

भा०—(यत्) जो तू (ब्रह्मभ्यः इद) वेदज्ञ पुरुषों के हितार्थ ही (ददः) सब देता है इसलिये (ते) तेरे (एता) इन (वचोयुजा) वाणी-मात्र से लगाने वाले (सुमद्-रथा) उत्तम बल युक्त रथों वाले, (हरी) अश्वों के समान उत्तम देहवान् स्त्री पुरुषों को (आगृभ्णे) तेरे अधीन करता हूँ ।



मिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जहि मृधः ।

वसुं स्प्राहं तदा भर ॥ ४० ॥

भा०—(विश्वाः द्विषः अप मिन्धि) सब शत्रुओं को छिन्न भिन्न करके दूर कर । (परि बाधः) पीड़ित कर और (मृधः जहि) हिंसकों का नाश कर । (तत् स्प्राहं वसु आ भर) वह चाहने योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शानि परामृतम् ।

वसुं स्प्राहं तदा भर ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत् वसु) जो ऐश्वर्य वा ज्ञान (वीळौ) बलवान् पुरुष में, (यत् स्थिरे) जो स्थिर शासक में, (यत् पर्शानि) जो विचारशील पुरुष में (स्प्राहं) अभिलाषा करने योग्य (परामृतम्) विद्यमान है, तू हमें (तत् आ भर) वह प्राप्त करा ।

यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।

वसुं स्प्राहं तदा भर ॥ ४२ ॥ ४६ ॥ ३ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! (ते दत्तस्य) तेरे दिये (यस्य भूरेः) जिस बहुत से ऐश्वर्य को (विश्व-मानुषः) समस्त मनुष्य जानते और प्राप्त करते हैं तू वह (स्प्राहं वसु आ भर) चाहने योग्य उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

[ ४६ ]

वशोऽव्य ऋषिः ॥ देवताः—१-२०, २६-३१, ३३ इन्द्रः । २१-२४ पृथुश्रवसः कानीनस्य दानस्तुतिः । २५—२८, ३२ वायुः ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, १०, १५, २९ विराड् गायत्री । ३, २३ गायत्री । ४ प्रतिष्ठा गायत्री । ६, १३, ३३ निचृद् गायत्री । ३० आर्ची स्वराट् गायत्री । ३१ स्वराड् गायत्री । ५ निचृदुष्णिक् । १६ भूरिगुष्णिक् । ७, २०, २७, २८ निचृद् बृहती । ९, २६ स्वराड् बृहती । ११, १४ विराड् बृहती । २१, २५, ३२ बृहती । ८ विराडनुष्टुप् । १८ अनुष्टुप् । १९ भूरिगनुष्टुप् । १२, २२, २४ निचृत् पंक्तिः । १७ जगती ॥ त्रयोदशचं सूक्तम् ॥  
स्वावतः पुरुवसो व्यमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (पुरुवसो) बहुत से धनों और प्रजाओं के स्वामिन् ! हे (हरीणां प्रणेतः) मनुष्यों के उत्तम नायक ! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले ! हे (स्थातः) अधिष्ठातः ! (वयं) हम (त्वावतः स्मसि) तेरे जैसे स्वामी की प्रजा होकर रहें ।

त्वां हि सत्यमद्रिचो विद्म दातारमिषाम् ।

विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्रिचः) शक्तिशालिन् ! मेघवत् उदार पुरुषों के स्वामिन् ! हम (त्वां हि) तुझको ही (सत्यम्) सच्चा (इषां दातारम्) अन्नों और कामनाओं का देने वाला, (विद्म) जानें और (त्वां रयीणां दातारं विद्म) तुझको ही ऐश्वर्यों का देने वाला जानें ।

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो ।

गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को (कारवः) विद्वान् जन (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्ति) बतलाते हैं हे (शतम् ऊते)

३० प.



सैकड़ों रक्षाओं से सम्पन्न ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं, कर्म सामर्थ्य से युक्त उस तुझको ही हम सच्चा अन्न, ऐश्वर्य का दाता जानें ।

सुनीथो ध्या स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुह ॥ ४॥

भा०—(यं) जिस मनुष्य को (मरुतः) विद्वान् लोग (यम् अर्यमा) जिसको न्यायकारी पुरुष और (मित्रः) खेहवान् जन (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (ध्या) अवश्य (सुनीथः) शुभ मार्ग में जाता है ।

दधानो गोमृदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते ।

सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—और वह पुरुष (गोमत्) गौ आदि पशुओं से समृद्ध (अश्व-वत्) अश्वदि साधनों से युक्त, (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को (दधानः) धारण करता हुआ (आदित्य-जूतः) सूर्यवत् तेजस्वी, उपासक पुरुषों से प्रेरित (पुरु-स्पृहा राया) बहुतों से चाहने योग्य धनैश्वर्य से (एधते) बढ़ता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

तस्मिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

भा०—हम (तम्) उस (रायः ईशानम्) धन के स्वामी, (शव-सानम्) बलशाली (अभीर्वम्) अभीरु, निर्भीक, किसी से भय न करने वाले (इन्द्रं) शत्रुनाशी, ऐश्वर्य वाले, सत्यदर्शी स्वामी पुरुष को प्राप्त कर उससे (दानम् ईमहे) दातव्य धन और ज्ञान की याचना करें ।

तस्मिन्नि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।

तमा वहन्तु सतयः पुरुवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—(तस्मिन् हि) उसके अधीन, (विश्वाः ऊतयः) समस्त ऐती रक्षक शक्तियां (सचा) सदा समवाय से रहतीं और (अभीरवः) भय-रहित (सन्ति) हैं । (तम्) उस (पुरुवसुम्) बहुत सी बसी प्रजा के

अनेक धनों के स्वामी (सुतम्) अभिषिक्त पुरुष की (ससयः हरयः) उसके शरणागत मनुष्य (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (आ वहन्तु) सारथि की अश्वत् अपने ऊपर धारण करें उसे प्रमुख बनावें ।

यस्ते मद्रो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।

य आददिः स्वः नृभिः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) प्रसन्न होने का साधन, शासन है (यः वृत्रहन्तमः) जो दुष्टों का अत्यन्त नाशक है, (यः) जो (नृभिः) उत्तम पुरुषों द्वारा (स्वः) सुख और तेज की (आ ददिः) प्राप्त करने वाला और (यः) जो (पृतनासु) संग्रामों में भी (दुष्टरः) पराजित न होने वाला है वह (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ है ।

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।

स नः शविष्ठ सवना वंसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥९॥

भा०—हे(विश्व-वार) सबसे वरण योग्य ! हे सब दुःखों के वारक ! (यः) जो (दुष्टरः) कभी पराजित न होने वाला, (वाजेषु) संग्रामों वा जानों में (श्रवाय्यः) श्रवण योग्य, सुप्रसिद्ध, (तरुता अस्ति) सब शत्रुओं का हिंसक और समस्त प्रजा को पार उत्तारने वाला है, (सः) वह तू हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (वसो) सबको बसाने वाले ! (नः) हमारे(सवना गहि) ऐश्वर्यों को प्राप्त हो और हम (गोमति व्रजे) उत्तम बैलों वाले रथ के समान इस इन्द्रियों से सम्पन्न देह में बैठकर (सवना) समस्त ऐश्वर्यों, जन्मों और नाना लीकों को (गमेम) प्राप्त करें ।

गव्यो पु गौ यथा पुराश्वयो रथया ।

वरिवस्य महामह ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (महामह) महा धनाधिपते प्रभो (यथा पुरा) पूर्व कल्प-वत् तू (नः) हमें (गव्यो) गौओं (अश्वया रथया) अश्वों और रथों से (वरिवस्य) युक्त कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥



नहि त शूर राघसोऽन्तं विन्दामि सूत्रा ।

दशस्या नो मघवन्नू चिदद्विवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! दुष्टों के नाशक प्रभो ! (सूत्रा) सचमुच मैं (ते राघसः) अन्तं नहि विन्दामि) तेरे धनैश्वर्य के अन्त को नहीं पाता हूँ । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! हे (अद्विवः) बलशालिन् ! (नः) हमें (दशस्य) प्रदान कर (नू चित्) और शीघ्र ही, (वाजेभिः) बलों, ज्ञानों ऐश्वर्यों से (नः आविथ) हमारी रक्षा कर ।

य ऋष्वः श्रवयत्सखा विश्वेत्स वेदं जनिमा पुरुषुतः ।

तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्तुचः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (ऋष्वः) महान् (सखा) स्नेही होकर (विश्वा इत्) समस्त ज्ञानों को (श्रवयत्) गुरुवत् उपदेश करता है, (सः) वह (इत्) वही (पुरुस्तुतः) बहुतों से स्तुति किया हुआ (विश्वा जनिमा) सब उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् को (विश्वे) समस्त मनुष्य (यतस्तुचः) स्तुच्, जुहु आदि को हाथ में लिये ऋत्विजों के समान (यतस्तुचः) इन्द्रियों को वश कर (मानुषा युगा) समस्त मनुष्योपयोगी वर्षों तक (तं) उस (इन्द्रं) प्रभु की (हवन्ते) उपासना करते हैं ।

स नो वाजेष्वविता पुरुवसुः पुरः स्थाता ।

मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक, (पुरुवसुः) बहुत धनों और प्रजाओं का स्वामी (पुरः स्थाता) अग्र पद पर स्थिर रहने वाला, (मघवा) धनैश्वर्य का स्वामी (नः) हमारे (वृत्रहा) विघ्नों का नाशक (भुवत्) होता है ।

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।

इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (वः मदेषु) आप लोग अपने हर्ष और (अंधसः) अज्ञादि पदार्थों के द्वारा प्राप्त आनन्द के अवसरों में (वीरम्) वीर, (विचे-  
तसम्) विविध चित्तों और ज्ञानों के स्वामी, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (श्रुत्यं)  
श्रुति-प्रसिद्ध, वेदगम्य, (शाकिनं) शक्तिशाली प्रभु की (यथा वचः)  
वाणी के अनुसार ही, (महागिरा गाय) श्रेष्ठ वाणी से स्तुति गान करो ।

दृदी रेक्णस्तन्वे दृदिर्वसु दृदिर्यज्ञेषु पुरुहूत वाजिनम् ।  
नूनमथ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य ! तू (तन्वे) हमारे  
शरीर के लिये (रेक्णः ददिः) धन देने वाला हो । (वाजेषु वसु ददिः)  
ऐश्वर्यों के लिये ऐश्वर्य देने वाला हो, (नूनम् अथ) और शीघ्र ही (वाजि-  
नम् ददिः) अज्ञादियुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्षसः ।  
कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥

भा०—(अथ) और (विश्वेषां वसूनां) समस्त प्रजाजनों के (इरज्य  
न्तम्) स्वामी और (अस्य) इस (कृपयतः) सामर्थ्यवान् (वर्षसः) तेज  
को (सासह्वांसं) अधीन रखने वाले तेरी स्तुति करते हैं ।

महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीह्लुषे अरङ्गमाय जग्मये ।  
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गायै त्वानमसा गिरा ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! हम लोग (वः) आप लोगों के प्रति  
(अरंगमाय) प्राप्त होने योग्य (जग्मये) सर्वत्र गत, (मीह्लुषे) सुखवर्षक  
उस प्रभु की (यज्ञेभिः गीर्भिः) वेद-वाणियों से (स्तवामहे) स्तुति करें ।  
वह हमें और हम उस (महः) पूज्य को ही (अरम्) बहुत (सु-इषे)  
उत्तम रीति से चाहें । हे प्रभो ! तू (विश्व-मनुषां मरुतां) सब मनन-  
शील मनुष्यों को (इयक्षसि) देता है । (त्वा) तेरी ही मैं (नमसा  
गिरा) विनययुक्त वाणी से (गाये) स्तुति करता हूँ ।



ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।

यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (स्नुभिः) बहने वाले (अज्मभिः) जलों से (पातयन्ते) आकाश में गमन करते हैं (एषाम्) उन (महिष्वनीनां, तुविष्वनीनाम्) घोर शब्दकारी, बहुत शब्द करने वाले मेघों के (यज्ञं सुम्नं) दिये जल और सुख को (अध्वरे) अविनाशित वज्र के आश्रय पर प्राप्त करते हैं ।

प्रभङ्गं दुर्मतीनामिन्द्र शविष्ठा भर ।

ज्येष्ठं चोदयन्मते रयिस्सभ्यं युज्यं चोदयन्मते ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (प्र-भङ्गं) नाना कष्टों के नाशक, (रयिस् आ भर) ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (चोदयन्-मते) संमार्ग में प्रवर्तक बुद्धि और वाणी वाले ! तू (प्रभङ्गं) शत्रुओं के बल तोड़ने वाले (युज्यं रयिम् आ भर) सहयोगी जनों के हितकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करा । हे (चोदयन्मते) प्रेरक वाणी के स्वामिन् ! तू (ज्येष्ठं रयिम्) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य और (प्रभङ्गं ज्येष्ठं आ भर) सर्व-कष्टनाशक, श्रेष्ठ पुरुष को हमें प्राप्त करा ।

सनितः सुसनितस्त्र्यं चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।

प्रासहा सञ्जाट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्यम् ॥२०॥४॥

भा०—हे (सनितः) दातः ! हे (सु-सनितः) उत्तम विभक्त करने वाले ! हे (उग्र) बलवान् ! हे (चित्र) अद्भुत ! हे (चेतिष्ठ) श्रेष्ठ ज्ञानिन् ! हे (सूनृत) उत्तम ज्ञानवान् ! हे (सञ्जाट्) सर्वोपरि विराजमान ! (सहुरिं) सबको पराजित करने वाले (सहन्तं) सहनशील (वाजेषु) संग्रामों में (पूर्यं) सबसे पूर्व विद्यमान, (भुज्युं) पालक तुमको (प्र-सहा) उत्कृष्ट बल से युक्त ज्ञान तेरी शरण लेते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।

यथा चिद्वशो अश्वयः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युप्याददे ॥२१

भा०—(यथा चित्) जैसे (अश्वयः वशः) अश्वों वा बलवान् पुरुषों का इच्छुक राष्ट्र (पृथु-श्रवसि) विस्तृत ज्ञानवान्, (कानीते) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (अस्याः वि-उवि) इस प्रजा की विशेष कामना-नुसार ही (आददे) राज्य को वश करता है, वैसे ही (यः) जो (अदेवः) असाधारण पुरुष भी (ईवद्) प्राप्त हुए (पूर्तम्) पूर्ण राज्य को (आददे) ग्रहण करने में समर्थ होता है । (सः) वह (आ एतु) हमें प्राप्त हो ।

पृष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुप्राणां विंशतिं शता ।

दश श्यावीनां शता दश अरुपीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥

भा०—(पृष्टिं सहस्रा) साठ हजार और (अयुता) दश सहस्र (अश्वय-स्य) उत्तम अश्वों के और (उप्राणां शता विंशतिं) ऊंटों के २० सौ, (श्यावीनां गवां दशशता) दयाव, काले, लाल रंग वाली गौओं या भूमियों के दस सौ और (त्रि-अरुपीणां) तीनों चमकने वाली शुभ्र रंग की (गवां दश दश सहस्रा) दस दस हजार गौएँ (असनम्) में दान करुं और प्राप्त करुं ।

दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः ।

मथा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥

भा०—(दश श्यावाः) दस दयाव अर्थात् लाल-काले वर्ण के (ऋधद्रयः) अति वेग वाले (वीतवारासः) चमकते वालों वाले, (आशवः) शीघ्रगामी, (मथाः) शत्रुओं का मथन करने वाले, वीर (नेमिं) रथ चक्रवत् राष्ट्र को (नि वावृतुः) नियम से संचालित करें ।

दानांसः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।

रथं हिरण्यं ददन्महिष्ठः सरिरभूद्विष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥

भा०—(पृथु-श्रवसः) अधिक ज्ञानी (सु राधसः) उत्तम ऐश्वर्य-



सम्पन्न, उस स्वामी के (दानासः) उत्तम दान हैं । वह (मंहिष्ठः) अति दानी, (हिरण्यं रथं ददत्) कान्तिमय रथ देता है । वह (सुरिः) विद्वान्, सर्वोत्पादक (अभूत्) हो, वह (वर्षिष्ठम्) प्रचुर (श्रवः) अन्नादि (अकृत) उत्पन्न करता है ।

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।

वयं हि ते चक्रमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) बलशालिन् ! तू (महे तने) भारी धनैश्वर्य और (मखाय पाजसे) उत्तम बल प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो । (दावने ते) दानशील तेरे लिये (वयं) हम (हि) अवश्य (भूरि चक्रम) बहुत कुछ करें और (दावने) ज्ञानदाता गुरु के लिये हम (सद्यः चित् महि चक्रम) सदा ही सत्कार किया करें । इति पञ्चमो वर्गः॥

यो अश्वेभिर्वहते वस्तं उस्त्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम् ।

एभिः सोमेभिः सोमसुद्धिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६ ॥

भा०—(यः) जो (अश्वेभिः वहते) अश्वारोही गणों के साथ मिल कर राष्ट्र के कार्य को अपने कर्णों पर लेता है, त्रिः सप्त सप्ततीनाम्) ७० के २१ गुणा अर्थात् १४७० (उस्त्राः) भूमियों, गौओं या प्रजाओं को (वस्ते) अधीन करता है, हे (सोमपाः) ऐश्वर्य-पालक ! हे (शुक्र-पूतपाः) शुद्ध रीति से प्राप्त ऐश्वर्य के पालक तेजस्विन् ! तू (एभिः) इन (सोमसुद्धिः) सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाले और (सोमेभिः) उत्तम विद्वान् शासकों सहित स्वयं भी (दानाय) दान देने के लिये प्रवृत्त रहता है, वह आनन्द लाभ करता है । अत्र द्वात्रिंशत्तममन्त्रगत 'मदन्ति' क्रियोपदेन सम्बन्धः ।

यो मं इमं चिदु त्मनामन्दच्छिन्नं दावने ।

अरद्वे अक्षे नहुषे सुकृत्त्वनि सुकृत्तराय सुकृत्तु ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो राजा (मे) मुझ प्रजा के लिये, (त्मना) स्वयं (इमं) इस (चित्रं) अद्भुत, धन के (दावने) देने के लिये (अमन्दत्) प्रसन्न होता है वह (अरट्वे=अलट्वे) बालकपन से मुक्त, युवा, (अक्षे) व्यवहारकुशल, (सुकृत्त्वनि) उत्तम कार्यकुशल (नहुषे) प्रबुद्ध मनुष्य-समाज के स्वयं (सुकृत्तराय) उत्तम कार्य करने वाले के हितार्थ (सुकृत्तुः) उत्तम कर्मकर्ता है वह (अमन्दत्) सुख पाता है ।

उच्चथ्ये वपुषि यः स्वरालुत वायो घृतस्नाः ।

अश्वेषितं रजेपितं शुनेपितं प्राज्म तद्विदं नु तत् ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (उच्चथ्ये) वचन-योग्य, स्तुति-पात्र (वपुषि) दर्शनीय शरीर में (घृत-स्नाः) जल से सदा स्नान करने वाला, तेजस्वी (उत् स्वरालु) और स्वयं अपने तेज से वा धन से चमकने वाला हो (तत्) वह (अश्वेषितं) अश्वों से प्राप्त होने योग्य, (रजेपितं) गर्दभों या ऊंटों से वा लोक में बसे प्रजाजनों से प्राप्य और (शुनेपितम्) सुख से प्राप्य (इदं नु तत्) यह सब उत्तम (अज्म) अन्न, बल और ऐश्वर्य (प्र) प्राप्त करता है ।

अथ प्रियमिविराय षष्टिं सहस्रासनम् ।

अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २९ ॥

भा०—मैं (इविराय) इच्छा और प्रेरणा करने वाले विद्वान् वीर के हितार्थ (वृष्णाम् अश्वानाम्) बलवान् घोड़ों के (इत् न) समान बलवान् आशुगामी, (षष्टिं सहस्रा) ६० हजार (असनम्) दान करूँ ।

गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ३० ॥

भा०—(गावः न यूथम्) गौएँ जैसे अपनी रक्षा के लिये यूथ को प्राप्त होती हैं, यूथ में आकर अपने को सुरक्षित समझती हैं वैसे ही (वध्रयः) निर्वीर्य, जन भी (यूथम् उपयन्ति) अपने यूथ को प्राप्त होते और अपने गोल में अपने को सुरक्षित समझते हैं ।



अथ यच्चारथे गणे शतमुष्ट्रं अचिक्रदत् ।

अथ श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥ ३१ ॥

भा०—(अथ यत्) और जो (चारथे गणे) विचरणशील सैन्य गण पर (उष्ट्रान् शतम्) शत्रु के संतापक सौ जनों को (अचिक्रदत्) नियुक्त करता है, (अथ) और (श्वित्नेषु) शुद्धचरित्र तेजस्वी पुरुषों के अधीन (शता विंशतिं) सौ २ के २० दस्ते नियुक्त करता है वह शासक सुख भोगता है ।

शत दासे बलवृथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।

ते ते वायधिमि जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२ ॥

भा०—(तरुक्षः) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सबका आश्रय-दाता, दुःखों से पार लगाने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् राजा (बलवृथे) बलशाली, (दासे) मृत्यु जन के आधार पर ही (शतम् आददे) सैकड़ों को अपने कन्धे लेता है । (वायो) हे बलवन् ! (ते) तेरे नाना प्रकार के (इमे जनाः) ये जन (इन्द्र-गोपाः) ऐश्वर्यवान् नायक की रक्षा में रहते हुए (मदन्ति) प्रसन्न रहते हैं और (देव-गोपाः मदन्ति) विद्वानों की रक्षा में रहकर वे सुखी रहते हैं ।

अथ स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्नयम् ।

अधिरुक्मां वि नीयते ॥ ३३ ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (योषणा) स्त्री (मही) पूज्य (प्रतीची) ग्रिय के अभि-मुखी होकर (अधि-रुक्मा) देह पर सुवर्णादि के आभरणों को धारण करके (अश्वयम् वशम्) अश्वारोही, कान्तिशुक्त वर के प्रति (विनी-यते) विशेष रूप से ले जाई जाती है (अथ स्या) ठीक वैसे ही वह (मही) पृथिवी-निवासिनी राजा (प्रतीची) सन्मुख प्राप्त (अधि-रुक्मा) अविकाधिक सुवर्ण रत्नादि से मण्डित होकर (अश्वयम्) अश्व सैन्यादि के नायक वा राष्ट्रपति (वशं) वश करने में कुशल पुरुष के अधीन (वि

नीयते) विशेष रूप से प्राप्त करा दी जाती है, शासन के लिये दी जाती है । इति षष्ठो वर्गः ॥

[ ४७ ]

त्रित आप्त्य ऋषिः ॥ १—१३ आदित्याः । १४—१८ आदित्या उषाश्च देवताः ॥ छन्दः—१ जगती । ४, ६—८, १२ निचृज्जगती । २, ३, ५, ६, १३, १६, १८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, ११, १७ स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

सहिं वो महतामवो वरुण मित्रं दाशुषे । यमादित्या अमि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः । सुऊतयो व ऊतयः ॥१॥

भा०—हे (वरुण) राजन् ! प्रभो ! हे (मित्र) स्नेहधन् ! हे वायु-वत् मित्र ! हे (आदित्याः) सूर्यकिरणतुल्य भूमि या अखण्ड शासन के हितकारी जनो ! (वः महतां दाशुषे सहि अवः) तुम महापुरुषों श्री, ज्ञानशील आत्मसमर्पक के लिये बड़ी भारी रक्षा व कृपा रहती है । आप लोग (यं) जिसको (द्रुहः अमि रक्षथ) द्रोहकारी जन से बचा लेते हो (ईम् अघं न नशत्) उसको पाप, हत्यादि प्राप्त नहीं होता (वः ऊतयः अनेहसः) आप की रक्षाएं निष्पाप और (वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षाएं व रक्षा-साधन उत्तम रक्षासाधन होते हैं ।

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् । पक्षा वयो यथोपरि व्यः शर्म यच्छन्ति नेशो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ २ ॥

भा०—हे (देवाः आदित्यासः) सूर्य किरणवत् प्रकाश, ज्ञान के दाता आदित्य ब्रह्मचारियो ! पूज्य पुरुषो ! आप लोग (अघानाम् अपा-कृतिम्) पापों को दूर करना (विद) जानते हो । (यथा वयः पक्षा उपरि शर्म यच्छन्ति) जैसे पक्षी बच्चों के ऊपर दोनों पांखों को गृह के समान रक्षार्थ तान लेते हैं वैसे ही (अस्मे उपरि) हमारे ऊपर (शर्म वि



यच्छत) सुख शरणादि विविध प्रकार से प्रदान करो । (अनेहसः वः  
ऊतयः, वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षा पापरहित और  
आप लोगों की रक्षा उत्तम रक्षाएं होती हैं ।

व्य॥ स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन । विश्वानि विश्व-  
वेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतय सुऊतयो व ऊतयः ॥३॥

भा०—(वयः पक्षा न) पक्षीगण जैसे दोनों पक्षों को अपने बच्चों  
पर शरणवत् प्रदान करते हैं वैसे ही आप लोग (अस्मे अधि) हमारे  
ऊपर (शर्म वि यन्तन) सुख, विविध प्रकार से दें । हे (विश्व-वेदसः)  
समस्त धनों के स्वामी जनो ! हम आप लोगों से (विश्वानि वरूथ्या)  
समस्त गृहीत धन धान्यादि और समस्त (वरूथ्या) दुःख वारण में  
समर्थ साधनों की (मनामहे) याचना करते हैं । (अनेहसो वः० इत्यादि)  
पूर्ववत् ॥

यस्मा अरासत् क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः । मनोर्विश्वस्य घेदिम  
आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥४॥

भा०—(प्र चेतसः) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न जन (यस्मै) जिसको  
(क्षयं) ऐश्वर्य और (जीवातुं च) जीवन (अरासत्) प्रदान करते हैं (इमे  
आदित्याः) वे सूर्य के तुल्य ज्ञानी जन (विश्वस्य मनोः घ) समस्त मनुष्यों  
के उपयोगी (रायः ईशते) धनों के स्वामी होते हैं । (अनेहसः वः०  
इत्यादि) पूर्ववत् ।

परि॥ णो वृणजन्धा दुर्गाणि रथ्यो यथा । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्या-  
दित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥५॥७॥

भा०—(यथा रथ्यः दुर्गाणि) जैसे रथ में लगे अश्व दुर्गम स्थानों  
से बचाते हैं वैसे ही (रथ्यः) उत्तम उपदेश-युक्त जन (नः अघा परि  
वृणजन्) हमारे पापों को दूर करें, हमारी पापों से रक्षा करें । हम लोग

(इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) ऐश्वर्यवान् प्रभु के ही शरण में रहें (उत्त) और हम (आदित्यानाम् अवासि) सूर्य रश्मियों के तुल्य तेजस्वी पुरुषों की रक्षा में (स्याम) रहें । (शेष पूर्ववत्) इति सप्तमो वर्गः ॥

परिहृत्यतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति । देवा अदभ्रमाश वो  
यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (देवाः) दानशील, (आशवः) शीघ्रगामी, (आदित्याः) तेजस्वी जनो ! आप लोग (यम् अदभ्रम्) जिस अनल्प, गुणवान्, बल-शाली जन को (अहेतन) संचालित करते हो वह (जनः) जन (परिहृत्यता इत् अना) कुटिलता से रहित जीवन से (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये ज्ञान और धन को (वायति) परम्परा से प्राप्त करता है । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु । यस्मा उ शर्म सप्रथ  
आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ७ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग (स प्रथः) सर्व प्रकार से महान् होकर (यस्मै उ शर्म अराध्वम्) जिस किसी को भी सुख प्रदान करते हो, (तं) उस तक (तिग्मं चन त्यजः) तीक्ष्ण क्रोध या उसकी ओर फेंका हुआ अस्त्रादि भी (न द्रासत्) नहीं पहुँचता और (तं गुरु चन त्यजः न द्रासत्) उस पर किसी का भारी क्रोध वा दुर्वचन, वाण आदि भी कुटिल चाल से नहीं पहुँच पाता । (अनेहसः वः० इत्यादि पूर्ववत्)

युष्मे देवा अपि षमसि युध्यन्तइव वर्मसु । यूयं महो न एनसो  
यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ८ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (वर्मसु युध्यन्तः इव) योद्धा लोग जैसे कवचों में सुरक्षित रहते हैं वैसे ही हम लोग (युष्मे अपि



स्मसि) आप लोगों के बीच सुरक्षित रहें। (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (महः एनसः) बड़े पाप और (अर्माद् एनसः) छोटे से भी पाप से (उत्थयत) बचाइये। शेष पूर्ववत् ॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्मं यच्छतु । माता मित्रस्य रेवतो  
ऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ६ ॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड ब्रह्मचारिणी, जो (रेवतः) ऐश्वर्यसम्पन्न (मित्रस्य) न्यायाधीश, ब्राह्मण वर्ग, (अर्यम्णः) न्यायकारी और (वरुणस्य) श्रेष्ठ राजा की भी (माता) उत्पन्न करने वाली माता के तुल्य जननी, भूमि, वा प्रकृति है वह (नः ऋष्यतु) हमारी रक्षा करे और वह (अदितिः) अदीन व्रत की पालक (नः शर्मं यच्छतु) हमें शान्ति प्रदान करे।

यद्देवाः शर्मं शरणं यद्भद्रं यदनातुरम् । त्रिधातु यद्वरुथ्यं तद-  
स्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१०॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजयेच्छुक्तेजस्वी पुरुषो ! (यत् शर्मं) जो गृह, (शरणं) शत्रुओं और दुःखों का नाशक, (यत् भद्रं) जो कल्याणकारक, (यत् अनातुरम्) जो रोगों-कष्टों, बाधाओं से शून्य, (यत् त्रिधातु) जो वात पित्त कफ के बने देह के समान स्वर्ण, रजत, ताम्र तीन धातुओं से दृढ़, (यत् वरुथ्यम्) जो सुखप्रद और गृह होने योग्य है (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह हमें प्रदान करो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः । सुतीर्थमर्वतो  
यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥११॥

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य किरणतुल्य सब संसार से ग्रहण-योग्य समाचार आदि के छे आने वाले और (स्पशः) सब पदार्थों के देखने

वाले जनो ! (कूलात् इव) तट से जैसे द्रष्टा निष्पक्ष होकर (अव हि ख्यत) जल-स्थित पदार्थों को सावधानी से देखता है वैसे ही निष्पक्ष और विवेकी हमें देखे (यथा अवतः सुतीर्थम्) जैसे अश्वादि को तीर्थ या उतरने की जगह से जल में उतार दिया जाता है वैसे ही आप लोग भी (अवतः नः) शत्रुहिंसक हमको (सुगम् सुतीर्थं तु) सुगम और उत्तम तीर्थ अर्थात् परपक्ष के राजभृत्यादि को वश कर सुखमय मार्ग से (अनु नेवथ) ले आओ । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

नेह भद्रं रक्षस्विने नात्रयै नोपया उत । गर्वे च भद्रं धेनवे  
वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१२॥

भा०—(इह) इस लोक में (रक्षस्विने भद्रं न) दुष्ट पुरुषों के स्वामी को ऐश्वर्य न हो, (न अवयै उत न उपयै) और वह न दूर जा सके, न पास आ सके । वा विपरीत इसके (गवे च धेनवे भद्रं) तुधार बैल और गौ का कल्याण हो और (श्रवस्यते वीराय च भद्रं) बल, यश के इच्छुक वीर और ज्ञान के इच्छुक विद्वान् को सुख हो (अनेहसः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् । त्रिते तद्विश्वमाप्त्य  
आरे अस्मद्धातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! (यद् दुष्कृतं आविः) जो बुरा काम प्रकट में है और (यत् दुष्कृतं अपीच्यं अस्ति) जो बुरा काम छुपा हुआ है, (त्रिते आसये) तीनों विद्याओं में निष्णात, आस जन के अधीन (अस्मत्) हमसे (आरे दधातन) उस दुष्ट कर्म को दूर करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) । सायण प्रोक्त 'मा' पद मन्त्र में नहीं है ।

यच्च गोषु दुःष्वप्न्थं यच्चास्मे दुहितर्दिवः । त्रितायं तद्विभाव-  
र्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥



भा०—हे (दिवः दुहितः) उपाकालवत् ज्ञानप्रकाश का दोहन एवं प्रदान करने वाली ! (विभावरी) विशेष ज्ञान प्रकाश से वरण योग्य, ज्ञानदात्री (यत् च गोषु) जो भी हमारी वाणियों और इन्द्रियों में (दुःष्वप्यं) दुःस्वप्नों का बुरा प्रभाव हो और (यत् च अस्मे) जो हममें बुरे स्वप्नों का दुःपरिणाम हो उसको (आप्त्याय त्रिताय) आप्त-जन हितकारी, तीनों दुःखों से मुक्त जन के हितार्थ (परा वह) दूर कर । (अने० इत्यादि पूर्ववत्)

निष्कं वा घा कृण्वते स्रजं वा दुहितर्दिवः । त्रिते दुःष्वप्यं सर्वमाप्त्ये परि ददास्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १५ ॥

भा०—हे(दिवःदुहितः)ज्ञान और सद् व्यवहार के देने वाली ! (वा) और(निष्कं कृण्वते) स्वर्णादि मुद्रा बनाने वा धारने वाले (वा स्रजं कृण्वते)अथवा माला बनाने वा धारने वाले के लिये हुआ जो(दुःष्वप्यं) बुरा स्वप्न वा विकार है (सर्व) उस सबको (त्रिते आप्त्ये) तीनों कष्टों वा एषणाओं से मुक्त विद्वान् के अधीन रहकर हम (परि ददासि) दूर करें । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति नवमो वर्गः ॥

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे । त्रिताय च द्विताय चोषो दुःष्वप्यं वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १६ ॥

भा०—(तदन्नाय) नाना प्रकार के भोज्यान्न प्राप्त करने वाले, (तदपसे) नाना श्रेष्ठ कर्म करने वाले, (तं भागम् उपसेदुषे) अपने उस उत्तम २ सेव्य अंश को प्राप्त करने वाले (त्रिताय) मन, वाणी, कर्म तीनों पर वशी और (द्विताय च) भीतर और बाहर वश करने वाले पुरुष के भी (दुःष्वप्यं) बुरे स्वप्न के प्रभाव को हे (उषः) प्रभातवेला के समान अन्धकार के मुख्य पापों को दूर करने वाला मातः ! तू (वः) दूर कर । यथा कलां यथा शफं यथा ऋणं सन्यामसि । एवा दुःष्वप्यं सर्वमाप्त्ये सं नयामस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ १७ ॥

भा०—(यथा) जैसे हम (कलां सं नयामसि) काल की मात्रा को शनैः २ व्यतीत करते हैं, (यथा शफं) जैसे चरण को (सं नयामसि) समान रूप से आगे बढ़ाते हैं और (यथा ऋणं) जैसे अपने ऋण को (संनयामसि) ईमानदारी से चुका देते हैं, (एवा) वैसे ही हम लोग भी (आप्त्ये) आप पुरुष के अधीन रहकर शनैः २ (दुःस्वप्न्यं सं नयामसि) दुःस्वप्नादि बुरे प्रभावों को दूर करें। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानांगसो वयम् । उषो यस्मादुःस्व-  
प्न्यादमैष्माण तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः । १८।१०

भा०—हम लोग (अजैष्म) विजय प्राप्त करें, (असनाम च) ज्ञान करें, (वयं अनागसः अभूम) निष्पाप होकर रहें। (उषः) प्रभात वेंला के समान ज्ञान को देने और पाप को वश करने वाली मातः ! (यस्मात् दुःस्वप्न्यात् अमैष्म) हम जिस दुःस्वप्न के दुष्प्रभाव से भय करते हैं (तद् अप उच्छतु) वह दूर हो। (अनेहसः० पूर्ववत्) इति इशमो वर्गः ॥

[ ४८ ]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, १३ पादनिचृत्  
त्रिष्टुप् । १२, १५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ३, ७—९ विराट् त्रिष्टुप् ।  
४, ६, १०, ११, १४ त्रिष्टुप् । ५ विराड् जगती ॥ पञ्चदशचं सूक्तम् ॥  
स्वादीरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यां वरिवोवित्तरस्य ।  
विश्वे यं देवा उत मर्त्यांसो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥ १ ॥

भा०—मैं (सु-मेधाः) उत्तम ज्ञान से युक्त होकर (स्वादीः) सुस्वादु (वयसः) अन्न का (अभक्षि) भोजन करूँ और (स्वाध्यः) उत्तम रीति से धारण योग्य (परिवोवित्तरस्य) अति पूजनीय, उस धन का भी सेवन करूँ, (यं विश्वे देवाः) जिसको सब मनुष्य और (उत मर्त्यांसः)



साधारण मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) आनन्दप्रद वचन कहते हुए (अभि सं चरन्ति) प्राप्त होते और उपभोग करते हैं ।

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।

इन्द्रविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्रो) चन्द्रवत् आह्लादक सोम ! शिष्यजन ! तू (अन्तः च प्र अगाः) भीतर गुरुगृह में, माता के गर्भ में बालक के समान आ । तू (अदितिः भवासि) अखण्डित व्रत होकर पुत्रवत् रह । तू (दैव्यस्य हरसः) विद्या चाहने वाले शिष्य जनों के उचित, (हरसः) क्रोध या तीक्ष्णता को (भव-याता) विनीत होकर प्राप्त कर । तू (इन्द्रस्य) ज्ञानी, आचार्य की (सख्यं जुषाणः) मैत्री को प्राप्त करता हुआ, (श्रौष्टी इव धुरम्) जूए के नीचे क्षिप्रगामी अश्व या बैल के समान विनीत होकर (राये अनु ऋध्याः) दानयोग्य ज्ञान-ऐश्वर्य प्राप्त के लिये अनुगामी होकर, ज्ञान से सम्पन्न हो ।

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।

किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (सोमम् अपाम) ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य और पुत्र-शिष्यादि का पालन करें और (अमृता अभूम) 'अमृत', दीर्घायु, अमर होवें, (ज्योतिः आगन्म) प्रकाश को प्राप्त हों, (देवान् अविदाम) शुभ गुणों, विद्वान् पुरुषों और पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त करें, जानें ! हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! (अरातिः) शत्रु (नूनम् अस्मान् किं कृणवत्) निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है ? कुछ नहीं । और (मर्त्यस्य धूर्तिः किमु) मनुष्य का हिंसा-स्वभाव भी हमारा कुछ नहीं कर सकता ।

शं नो भव हृद आ पीत इन्द्रो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।

सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥

भा०—(आपीतः हृदे शम्) जैसे पान किया हुआ सोमरस, या ओषधिरस हृदय को शान्ति देता है वैसे ही (आपीतः) सब प्रकार से पालित, रक्षित वीर्य, पुत्र और शिष्य भी (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय को शान्तिदायक हो। हे (इन्द्रो) प्रेमरस से आर्द्र ! हे (सोम) सोम ! (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता के तुल्य तू (सु-शेवः) उत्तम सुखदायक हो। हे (उरुशंस) बहुत २ उत्तम उपदेश वचन करने वाले विद्वन् ! (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य होकर, (धीरः) बुद्धिमान् होकर (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (नः आयुः प्र तारोः) हमारी आयु की वृद्धि कर।

इमे मा पीता यशसं उरुण्यवो रथं न गावः समंनाह पर्वसु ।  
ते मां रक्षन्तु विस्त्रस्तश्चरित्राद्भुत मा स्नामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥५॥११

भा०—(इमे) ये (पीताः) पान किये ओषधिरसों के तुल्य पालित देह में वीर्य, राष्ट्र में विद्वान्, गृह में पुत्र (यशसः) कीर्तियुक्त (उरु-ण्यवः) रक्षा के इच्छुक (गावः रथं न) रथ को अश्वों के समान (पर्वसु) पर्व २, पोर २, खण्ड २ पर (सम् अनाह) सुदृढ़ हों, राष्ट्र के खण्ड २ को, शरीर के पोर २ के समान सुदृढ़ करें। (ते) वे (मा) मुझे (विस्त्रस्तः चरित्रात्) शिथिल आचरण से (रक्षन्तु) बचावें। वे (इन्दवः) दयार्द्र-जन(मा)मुझे (स्नामात् यवयन्तु) व्याधि से दूर करें। इत्येकादशो वर्गः ॥  
अग्निं न मां मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।  
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

भा०—हे (सोम) ओषधि-रसवत् विद्वन् ! तू (मथितं अग्निं न) मथित अग्नि के समान (मा सं दिदीपः) मुझे तेजस्वी कर, (प्र चक्षय) उत्तम ज्ञान-दर्शन करा। (नः वस्यसः कृणुहि) हमें धनयुक्त कर। (अथ) और (मन्ये ते हि मदः) मैं मानता हूँ कि तेरा ही यह सब हर्ष है। तू (रेवान् इव) धन-सम्पन्न के समान (अच्छ पुष्टिम् प्र चर) उत्तम पुष्टि दे।



इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।  
सोमं राजन् प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (सुतस्य ते) अभिषिक्त तेरा हम (पित्र्यस्य इव रायः) पिता के धन के तुल्य (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त चित्त से (भक्षीमहि) सेवन करें । (सूर्यः वासराणि अहानि इव) जगत् के आच्छादक दिनों को सूर्य तुल्य (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुओं को बढ़ा ।

सोमं राजन् मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि ब्रत्याः स्तस्य विद्धि ।  
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अया अनुकामं परा दाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् तेजस्विन् ! तू (नः मृडय) हमें सुखी कर, (स्वस्ति) हमारा कल्याण हो । हम (तव ब्रत्याः स्मसि) तेरे व्रत के पालक हों । (तस्य विद्धि) तू उस व्रत को जान । (दक्षः अलर्ति) बलवान् पुरुष आगे बढ़ता है (उत) और (मन्युः) ज्ञानी पुरुष भी आगे बढ़ता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अयः) हमारा स्वामी होकर (नः) हमें (अनु-कामं) यथेच्छ होकर (मा परा दाः) मत त्याग ।

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।  
यत्ते वयं प्रमिनाम ब्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! (त्वं) तू ही (नः तन्वः) हमारे शरीरों का (गोपाः) रक्षक है । (गात्रे-गात्रे) प्रत्येक शरीरधारी पर तू (नृ-चक्षाः) नेता जनों को देखने वाला सर्वसाक्षी के तुल्य (नि-ससत्थ) आसन पर विराज । (वयं) हम (यत्) जब २ (ते ब्रतानि प्र-मिनाम) तेरे व्रतों का नाश करें, तब २ हे (देव) देव ! (सः) वह तू (नः) हमें (मृड) सुखी कर और (सु-सखाः) उत्तम मित्र होकर हमें (वस्यः) उत्तम बना ।

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्वर्यश्च पीतः ।

अयं यः सोमो न्यधात्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेत्यायुः ॥१०॥१२॥

भा०—(यः) जो (पीतः) ओषधि-रसवत् पान प्राप्त किया जाकर (मा न रिष्येत्) मेरा नाश न करे, हे (हर्यण्व) मनुष्यों के अश्वत् सन्मार्ग चालक राजन् ! ऐसे (ऋदूदरेण) मृदु पेट वाले, भीतर कोमल स्वभाव वाले (सख्या सचेय) मित्र से मैं संगत रहूँ । (यः) जो (अयं) यह (सोमः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे) हमारे बीच (नि अधायि) नियत है, (तस्मै) उसके लिए मैं (प्रतिरम् आयुः) सुदीर्घ आयु और (इन्द्रं ऐमि) ऐश्वर्य प्राप्त करूँ ।

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा निरत्रसन्तमिषीचीरमैषुः ।

आ सोमो अस्मा अरुहद्विहाया अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११॥

भा०—जैसे सोम-ओषधि पान करने पर (अनिराः) बलरहित कर देने वाली (त्याः अमीवाः) वे दुःखजनक रोगपीड़ाएं (अप अस्थुः) दूर होती हैं, वैसे ही राजा के अभिषेक कर देने पर समस्त दुःखदायी विपत्तियां भी (अप अस्थुः) दूर होती हैं । (तमिषीचीः) अन्धकार ला देने वाली बाधाओं के तुल्य बलवती सेनाएं भी उससे (निःअत्रसन्, अमैषुः) डरती हैं । वह (सोमः) सोम (विहायाः) आकाश के समान महान् (अस्मान् आ अरुहत्) हम पर अध्यक्ष हो, (यत्र) जिसके आश्रय लोग (आयुः प्रतिरन्ते) अपना जीवन बढ़ा लेते हैं हम उसे (अगन्म) प्राप्त हों ।

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्यो आविवेश ।

तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृलीके अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

भा०—हे (पितरः) पालक गुरुजनो ! (यः इन्दुः) जो ऐश्वर्यवान् ओषधि रसवत् (पीतः) पान वा पालन किया जाकर (अमर्त्यः) दुष्टों का नाशक होकर, आत्मा के तुल्य अमृत होकर (मर्त्यान् आविवेश)



मनुष्यों में प्रविष्ट है, (तस्मै) उस (सोमाय) ऐश्वर्यवान् की हम (हविषा) उत्तम अन्नादि से (विधेम) परिचर्या करें। उसके (मृडीके) सुख और (सुमतौ) शुभ ज्ञान में हम सदा (स्याम) रहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।  
तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवान् ! (त्वा) तू (पितृभिः) पालक जनों से (संविदानः) संमति करता हुआ, (द्यावापृथिवी) सूर्य-पृथिवीवत् स्त्री-पुरुष और शास्य-शासक वर्गों की (अनु आ ततन्थ) वश करता है, हे (इन्द्रो) ऐश्वर्यवान् ! (वयं तस्मै ते) हम उस तेरे लिये (हविषा) अन्न वचनादि से (विधेम) सेवा करें (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम धनैश्वर्यादि के स्वामी हों ।

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः ।  
वयं सोमस्य विश्वहं प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (त्रातारः) रक्षक होकर (नः अधि वोचत) हमें उपदेश करो, जिससे (नः) हम पर (निद्रा) निद्रा, आलस्यादि (मा ईशत) अधिकार न करे (उत) और (जल्पिः मा ईशत) बकबासी पुरुष हम पर वश न करे । (विश्वहा) सदा, सब दिनों, (वयं) हम (सोमस्य प्रियासः) सोम, पुत्र, शिष्य, ऐश्वर्यवान् आदि के प्रिय और (सु-वीरासः) उत्तम वीर्यवान्, विद्वान् होकर (विदथम् आवदेम) ज्ञान का उपदेश करें ।

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वविदा विशा नृचक्षाः । त्वं न इन्द्र ऊतिभिः सजोषाः प्राहि पश्चातादुत वां पुरस्तात् ॥१५॥१३६

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! वीर्यवत् पालक पोषक ! (त्वं नः विश्वतः)

वयोधाः) तू हमें सब प्रकार से ज्ञान, बल धारण कराने वाला, (त्वं स्वर्विद्) तू सुखदाता, (नृ-चक्षाः) सबका द्रष्टा होकर (नः आविश) हमें प्राप्त हो। हे (इन्द्रो) ऐश्वर्यवान् ! (त्वं) तू (नः सजोषाः) हमें सप्रेम (कृतिभिः पाहि) रक्षा साधनों से सदा पालन कर और तू (पश्चात्तात् उत वा पुरस्तात्) हमारी पीछे और आगे से भी रक्षा कर। इति अथोदशो वर्गः ॥

## अथ बालखिल्यम्<sup>१</sup>

[ ४९ ]

प्रस्कण्वः काण्वः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३ विराड् बृहती । ५ भुरिवृहती । ७, ९ निचृद् बृहती । २ पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अभि प्र वः सुरार्धसमिन्द्रमर्चं यथा विदे ।

यो जरितृभ्यो मघवा पुरुवसुः सहस्रेणैव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मघवा) उत्तम धन का स्वामी (पुरुवसुः) नाना धनों, जनों का स्वामी होकर (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के हितार्थ (सहस्रेण इव) सहस्रों के समान (शिक्षति) दान देता है, उस (सुरार्धसम्) सुखपूर्वक आराधना करने योग्य (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और धनलाभ के लिये (अभि प्र अर्च) उत्तम रीति से अर्चना करो और उसी को (प्र वः) उत्तम रीति से वरण करो ।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णाया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।

गिरोरिव प्ररसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

१ सर्वानुक्रमण्यां बालखिल्यसूक्तानामप्यनुक्रमणदर्शनात् संहितान्तर्गतत्वं । तानि च पठानुवाकान्तर्गतान्येव ॥



भा०—वह ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाशक (शत-अनीकः इव) सैकड़ों सेनाओं का स्वामी, सेनापति के समान (प्र जिगाति) सबका विजय करता है और (दाशुवे) करप्रद राष्ट्र के हित के लिये (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं का (घृणुया) अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से (हन्ति) नाश करता है, (गिरेः इव रसा) पर्वत से झरने वाले जलतुल्य (अस्य पुष्पभोजसः) नाना भोग्य ऐश्वर्य के इस स्वामी के (दत्राणि) नाना दान (पिन्विरे) प्रजाओं को पुष्ट करते हैं ।

आ त्वां सुतास इदं न्वो मद्रा य इन्द्रं गिर्वणः ।

आपो न वज्रिन्नन्वोभ्यं सरः पूरयन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा भजन योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-  
वान् ! (ये) जो (मदाः) वृत्तिकारक (इन्द्रवः) आर्द्रहृदय (सुतासः) अमिषिक्त जन (त्वा आ पूरयन्ति) तुझे हर्षजनक हैं हे (शूर) शूरवीर !  
हे (वज्रिन्) वीर्यवान् ! वे सब (राधसे) धन प्राप्ति के लिये ही (ओभ्यं सरः आपः न) आश्रयभूत सरोवर को पूर्ण करने वाले जलप्रवाहों के समान (त्वा आपूरयन्ति) तुझे पूर्ण करते हैं, तुझमें ही आश्रय लेते हैं ।

अनेहसं प्रतरणं विवक्ष्णं मध्वः स्वादिष्टमीं पिब ।

आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! तू (मध्वः) मधुर अन्न और ज्ञान का (अनेहसं) निष्पाप (प्र-तरणम्) दुःखों से पार उतारने वाला, (विवक्ष्णं) विविध वचनों से स्तुत्य (स्वादिष्टम् ईम्) अति स्वादु रस का (पिब) पान कर (यथा) जैसे (मन्दसानः) तृप्त होकर (क्षुद्रा इव) क्षुद्रा, छोटी मधु मक्खियों के समान (त्मना धृषत्) स्वयं सामर्थ्य से शत्रु पर विजयी होकर (नः) हमें (प्र किरासि) नाना ऐश्वर्य दे ।

आ नः स्तोममुप द्रुवद्वियानो अश्वो न सोतृभिः ।

यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्रं कर्षेषु रातयः ॥ ५ ॥ १४-॥

भा०—हे (स्वधावन् इन्द्र) ऐश्वर्यधारक शक्ति के स्वामिन् ! (ते) तेरे (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (रातयः) दिये दान ही (यं स्तोमम्) जिस स्तुतियोग्य पद को (धेनवः) गोरसों के समान (स्वद-यन्ति) अधिक स्वादु, सुखद कर देते हैं तू उस (नः स्तोमम्) हमारे पद को (सोतृभिः हियानः) अभिषिक्त वर्ग से प्रेरित होकर (अश्वः न) अश्व के समान (आ उप द्रवद्) साक्षात् प्राप्त हो । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उग्रं न वीरं नमसोप सोदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।  
उद्गीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ॥ ६ ॥

भा०—(उग्रं वीरं न) वीरतुल्य शत्रुओं के लिये उग्र (विभूतिम्) शक्तिमान् (अक्षिता वसुम्) अक्षय धनसम्पन्न पुरुष को हम (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (वज्रिन्) वीर्यशालिन् ! (अवतः न उद्गीवः) ऊर्ध्वमुख कूप के समान तू अपनी प्रजा के क्षेत्र को उदार होकर (सिञ्चते) सींचता है। हे (हृन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धीतयः) नाना स्तुतियें (क्षरन्ति) तेरी ओर बहती हैं।

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।  
अतो नो यज्ञमाश्रभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गंहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह) चाहे जहां हो (यद् वा यज्ञे) चाहे यज्ञ में,  
(यद् वा पृथिव्याम् अधि) चाहे पृथिवी पर, हे (महे मते) महा मति-  
मन् ! हे (उग्र) बलवान् ! तू (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (उग्रभिः  
आशुभिः) बलवान् अश्वों से (अतः) इस स्थान से (आ गहि) प्राप्त हो ।

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाताश्च प्रसक्षिणः ।  
येमिरपत्यं मनुषः परीयसे येमिर्विश्वं स्वर्दशे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (ये) जो (अजिरासः) कभी नाश



को प्राप्त न होने वाले (हरयः) अश्व, (आशवः) शीघ्रगामी, (वाताः इव) वायु के झकोरों के समान (प्र-सक्षिणः) बलात् शत्रुओं को विजय करने वाले हैं । (येभिः) जिनसे तू (मनुष्यः अपत्यं) मनुष्यों के समीप (परीयसे) आता है और (येभिः) जिनसे तू (स्वः-दशे) सबको देखने के लिये (विश्वं परि ईयसे) समस्त जगत् में व्याप रहा है ।

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुस्रस्य गोमतः ।

यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (यथा) जैसे भी हो तू (मेध्या-तिथिं) अतिथिवत् पूज्य पुरुष को (प्र अवः) उत्तम रीति से प्रसन्न करता है और (यथा) जैसे और जितने (धने) धन में तू (नीपातिथिं) सन्मार्गदर्शक अतिथिवत् पूज्य पुरुष का (प्रावः) सत्कार करता है, हम भी (ते) तुझसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एतावतः) इतने (गोमतः सुस्रस्य) गौ आदि पशुओं से समृद्ध सुखप्रद धन को (ईमहे) मांगते हैं ।

यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।

यथा गोशर्ये असनोऽर्जुजिह्वनीन्द्र गोमद्विरणयवत् ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (कण्वे) मेधावी विद्वान्, (त्रसदस्यवि) दस्यु को भय देने वाले को (यथा) जैसे (पक्थे दशव्रजे) दश मार्गयुक्त परिपक्व शरीर को, (यथा गो-शर्ये) जैसे गो-अर्थात् धनुष की डोरी और शर अर्थात् बाणों के चलाने में कुशल धनु-धारी को और (ऋजिश्चनि) अश्वों को ऋजु-मार्ग में चलाने हारे सारथि-वत् अश्वसाधक जितेन्द्रिय पुरुष को तू (गोमत् हिरण्यवत्) गवादि पशु और सुवर्णादि युक्त धन (असनोः) पात्रापात्र विवेक से देता है वैसा ही धन हमें दे । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[ ५० ]

पुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७ निचृद्  
वृहती । ६ विराड् वृहती । २, ४, ६, १० पंक्तिः । ८ निचृत् पंक्तिः ॥  
दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु श्रुतं सुरार्धसमर्चो शक्रमभिष्टय ।

यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणैव मंहते ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सुन्वते) सत्कार करने वाले, (स्तुवते) स्तुति-  
शील पुरुष को (काम्यं वसु) कामना योग्य धन (सहस्रेण-इव मंहते)  
सहस्रों संख्या में देता है, उस (श्रुतं) जगत्-प्रसिद्ध (सु-रार्धसम्) सुख  
से आराधनीय, धनसम्पन्न (शक्रम्) शक्तिशाली पुरुष की (अभिष्टये)  
अभीष्ट कार्य के लिये (प्र सु अर्चं) उत्तम रीति से पूजा कर ।

श्रुतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।

गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदी सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (श्रुत-अनीका)  
सैकड़ों सैन्य, सैकड़ों बल, (हेतयः दुष्टराः) हनन या दण्ड देने के  
साधन अजेय हैं और इसकी (महीः समिषः) समस्त भूमियां भी उत्तम  
अर्जों से सम्पन्न हैं, (यदि) जब (सुताः) उत्पन्न पदार्थ एवं ऐश्वर्य (अम-  
न्दिषुः) समस्त प्रजागण को प्रसन्न करते हैं तब प्रतीत होता है कि वही  
(भुज्मा) पालक परमेश्वर (गिरिः न) मेघ के समान उदार होकर  
(मघवत्सु) धनवानों में (पिन्वते) ऐश्वर्य की वर्षा करता है ।

यदी सुतास इन्द्रोऽभि प्रियममन्दिषुः ।

आपो न धायि सर्वनं स आ वसो दुघाह्वोप दाशुषे ॥ ३ ॥

भा०—(सुतासः इन्द्रवः) उत्पन्न हुए, ऐश्वर्ययुक्त, वा आर्द्र, ओषधि  
वसवत् आनन्दमय जीवगण, (यदि) जब (प्रियम् अमन्दिषुः) प्रिय प्रभु



को प्रसन्न कर लेते हैं तब हे (वसो) सबको बसाने हारे ! (दाशुपेदुधाः हव) यज्ञशील, वा घास आदि देने वाले स्वामी के लिये दुधार गौवों के समान, वा (सवनं) अभिषेकार्थ (आपः न) जलधाराओं के समान उन सबको (मे उप आ धायि) मेरे लिये प्राप्त कराओ ।

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।

आ त्वा वसो हवमानास इन्द्रव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों की (धीतयः) स्तुतियाँ और कर्म (अनेहसं) पाप से मुक्त (हवमानम्) सब ऐश्वर्यों के दाता को उद्देश्य करके किये जाकर ही (ऊतये) तुम्हारी ही रक्षा और सुख प्राप्ति के लिये (मध्वं क्षरन्ति) आनन्दयुक्त उत्तम फलों को उत्पन्न करते हैं । हे (वसो) सबमें बसाने हारे प्रभो ! (हवमानासः) तेरी स्तुति करने वाले (इन्द्रवः) तेरी तरफ प्रेमरस में द्रवित जीवगण (त्वा आ) तुझे ही अपने (स्तोत्रेषु) स्तुति वचनों में (उप दधिरे) वर्णन करते हैं ।

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।

यं ते स्वदावन्तस्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (स्वदावन्) उत्तम कर्म-फल देने हारे ! (यं) जिस (ते) तेरे दिये को (गूर्तयः) स्तुतिकर्त्ता जन (सु अदान्ति) सुखपूर्वक भोगते हैं, हे ऐश्वर्यवन् ! (तोशते) हिंसाकारी शत्रुदमन करने के लिये (इयानः) जाने वाले (अत्यः) अश्वारोही के लिये (इयानः) गमन करने वाले (अत्यः) अश्वारोही के समान तू (नः स्वध्वरे सोमे) हमारे हिंसारहित ऐश्वर्य के निर्मित (पौरे) प्रजा समूह की (हवं छन्दयसे) स्तुति को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर । इति षोडशो वर्गः ॥

प्र धीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूर्तिं राधसो महः ।

उद्गीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—हम (महः राघसः) बड़े धनैश्वर्य के स्वामी (वीरम्) वीर, (उग्रं) बलवान्, (विधिञ्चि) विवेक करने वाले (धन-स्पृतम्) धन से प्रजादि के पालक (विभूतिम्) विशेष सामर्थ्यवान् प्रभु की स्तुति करते हैं। हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! तू (उद्गीव अवतः) गर्दन ऊपर उठाये उदार पराक्रमी वा उपर जल देने वाले कूप के समान (अवतः) जगत् की रक्षा करने हारा, (वसुत्वना) अपने ऐश्वर्य द्वारा ही (दाशुषे पीपेथ) आत्मसमर्पक भक्त का पालन करता है।

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।

युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह नूनं परावति) जो तू परम दूर भी है, (यद्-वा पृथिव्यां) वा जो तू पृथिवी पर और (दिवि घ नूनं) आकाश में भी व्यापक है, तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (महेमते) महाज्ञानिन् ! तू (ऋषवः) सबसे महान् है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (हरिभिः युजानः) योग द्वारा चिन्तन किया जाकर हमें (नूनं) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त होता है।

रथिरासो हरयो ये ते अस्त्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।

येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (हरयः) जीवगण बलवान् अश्वों के समान ही (रथिरासः) रथारोही वीर वा रमण योग्य देह-धारी (अस्त्रिधः) अविनाशी हैं वे भी (वातस्य) वातवत् बलवान् और जीवनों के जीवन रूप तेरे ही (ओजः) पराक्रम को (पिप्रति) धारण करते हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुषः) मननशील जीव के (दस्युं) विनाशक रोगादि को भी (नि घोषयः) नष्ट करता है और (येभिः) जिन्हों से तू (स्वः परि ईयसे) समस्त आकाश को पूर्ण करता है।



एतावतस्ते वसो विद्याम' शूर नव्यसः ।

यथा प्राव एतं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥ ६ ॥

भा०—वे (वसो) सबमें बसने वाले प्रभो ! हे (शूर) दुष्टनाशक !  
तू (यथा) जिस ऐश्वर्य से (कृत्व्ये धने) करने योग्य संग्राम के समय  
(एतं) अश्वसैन्य को (प्रावः) अच्छी प्रकार रक्षा करता और (यथा  
दशव्रजे) जैसे दशों दिशाओं में दश मार्ग वाले शरीरवत् नगर में  
जितना ऐश्वर्य (वशं) वशकारी नगर के अध्यक्ष राजा को (प्रावः) संतुष्ट  
करे हम (नव्यसः ते) स्तुति योग्य तेरे (एतावतः) इतने ऐश्वर्य का  
(विद्याम) लाभ करें ।

यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।

यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिचो मयि गोत्रं हरिश्चियम् ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—हे (मघवन्) धनसम्पन्न ! हे (अद्रिचः) शक्तिशालिन् !  
(यथा) जितना ऐश्वर्य (कण्वे) विद्वान् जन में (अध्वरे) हिंसारहित  
(मेधे) यज्ञ में, (दीर्घ-नीथे) दीर्घ मार्ग में ले जाने वाले (दमूनसि) दान्त-  
चित्त वाले, जितेन्द्रिय पुरुष में, (यथा) जितना ऐश्वर्य तू (गोशर्ये)  
धनुष बाण की शक्ति से सम्पन्न योद्धा में (असिषासः) प्रदान करता है,  
उतना ही (हरि-श्चियम्) मनुष्यों और विद्वानों को आश्रय देने वाला  
(गोत्रं) भूमि और गवादि पशु-सम्पदा की रक्षा करने वाला धन-  
(मयि) मुझे भी दे । इति सप्तदशो वर्गः ।

[ ५१ ]

श्रुष्टिगुः काण्य ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६ निचृद्बृहती ।  
५ विराट् बृहती । ७ बृहती । २ विराट् पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत्-  
पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम् ।

नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१॥

भा०—(यथा) जितना और जैसा (सांवरणौ) उत्तम रीति से वरण-योग्य (मनौ) प्रजा को मर्यादा में स्थापित करने वाले राजा के पद पर विराज कर हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य का (अपिबः) भोग करता है उतना ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (नीपातिथौ) मार्गदर्शी के अतिथिवत् पूज्य पद पर और (मेध्यातिथौ) अन्न यज्ञादि से सत्कार योग्य अतिथिवत् पूज्य परिव्राजक के पद पर और (पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ) उतना ही पुष्टि अर्थात् पशु सम्पदायुक्त एवं अन्नादि से समृद्ध भूमि के स्वामी पद पर (सचा) समवेत होकर भी भोगता है ।

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिब्रिमुद्धितम् ।

सहस्राण्यसिषासद् गवामृपिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२॥

भा०—(पार्षद्-वाणः) वेदवाणी का सेवन करने वाला विद्वान् (शयानम्) अन्धकार में सौते के समान (जिब्रिम्) जीर्ण, वा प्रसन्न करने वाले, (उद्-हितम्) उत्तम सम्बन्ध में बद्ध (प्रस्कण्वं) तेजस्वी, शिष्य वर्ग को (सम् असादयत्) प्राप्त करे और (वृकः दस्यवे गवां सहस्राणि असिषासद्) हल जैसे भूमि को तोड़ने वाले किसान के लाभार्थ सहस्रों अन्न देता है, वैसे ही (त्वा-उतः) तेरी रक्षा में रहकर (वृकः) तेजोमय, ज्ञान प्रकट करने वाला (ऋष्टिः) ज्ञानदर्शी पुष्प (दस्यवे) आत्मसमर्पक शिष्य के लाभार्थ (गवां सहस्राणि) सहस्रों वेद-वाणियों को (असिषासत्) प्रदान करे ।

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।

इन्द्रं तमच्छां वट नव्यस्या मृत्युरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥

भा०—(यः) जो (चिकिद्यः) जानने योग्य, (ऋषिचोदनः) साक्षात्



तत्त्वदर्शी पुरुषों से उपदेश करने योग्य आत्मा (उक्थेभिः) शास्त्र-वचनों से भी (न विन्धते) नहीं जाना जाता (तम्) उस (अविष्यन्तं न इन्द्रम्) सर्वरक्षक के समान प्रभु को (भोजसे) रक्षा और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, (नव्यस्या मती) स्तुति वाणी द्वारा (अच्छ वद) साक्षात् उपदेश करे ।

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणामानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।

स त्वि३ मा विश्वा भुवनानि चिक्रददादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥४॥

भा०—इन्द्र विषयक उपदेश । (उत्तमे पदे) उत्तम पद पर विद्यमान (यस्मै) जिस प्रभु के वर्णन करने के लिये (त्रि-धातुम्) तीन धातु वाले या तीन प्रकार से धारित (सप्त-शीर्षाणम् अर्कं) सात शिरों वाले अर्चना योग्य की (आनृचुः) स्तुति करते हैं, (सः तु) वही परमेश्वर (इमा विश्वा भूतानि) इन समस्त भुवनों का (चिक्रदत्) शासन करता है और (पौंस्यं जनिष्ट) पौरुष, महती शक्ति प्रकट करता है । वेद मन्त्र प्रभु की स्तुति करने योग्य होने से 'अर्क' है । ऋक्, यजुः, साम तीन रूप से धारण करने योग्य होने से 'त्रिधातु' और सात छन्द उसके प्राण हैं ।

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।

विद्वा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम गोमति व्रजे ॥५॥१८॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (वसूनां दाता) समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का देने वाला है (तम् इन्द्रम् हूमहे) हम उसी ऐश्वर्यवान् की प्रार्थना करें । (अस्य) उसकी (नवीयसीं) अति स्तुत्य (सु-मतिं) ज्ञान-युक्त वेदवाणी को हम (विद्वा) जानें और (गोमति व्रजे) इन्द्रियों रूप अर्थों से युक्त गमन-साधन रथवत् इस देह में ही उसे (गमेम) प्राप्त करें, जानें ।

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।

तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गर्विणः सुतावन्तो हवामहे ॥६॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने हारे प्रभो ! (यस्मै दानाय शिश्रसि) जिस दानशील पुरुष को तू दान करता है (सः) वह (रायः पोषम् अश्नुते) ऐश्वर्य की वृद्धि को प्राप्त करता है । हे (गिर्वणः) वेद-वाणियों से सेवने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (मघवन्) पूजित पदयुक्त ! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न अनित्य पदार्थों वाले (ते त्वा इवामहे) उस तेरी प्रार्थना करते हैं ।

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्रसि दाशुषे ।

उपोपेक्षु मघवन् भूय इक्षु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभो ! तू (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न) हिंसक नहीं है । तू (दाशुषे सश्रसि) आत्मसमर्पक के साथ रहता है । हे (मघवन्) पूजित धन-युक्त ! (देवस्य ते) दानशील तेरा (दानं) दिया धन (उप-उप इत् तु पृच्यते) बराबर प्राप्त होता है और (भूयः इत् तु) खूब अधिक प्राप्त होता है ।

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा किंवि वधैः शुष्णां निघोषयन् ।

यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्ममं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) बलपूर्वक (शुष्णम्) मेघस्थ विद्युत् के समान प्रजा के शोषक शत्रु को (वधैः) आघातकारी शस्त्रास्त्रों से (निघोषयन्) विनाश करता हुआ (किंवि) जल से कूप, तड़ागवत् संसार को पराक्रम से (अभि प्र ननक्षे) पूर्ण करता है और (यत्) जो (अमृं दिवम् प्रथयन् अस्तम्भीत्) इस आकाश वा सूर्य को भी विस्तृत करता हुआ स्थिर करता है और (आत् इत्) अनन्तर वह (पार्थिवः) समस्त पृथिवियों का स्वामी, स्वयं पृथिवीवत् माता होकर (जनिष्ट) समस्त संसार को उत्पन्न करता है । उसी की उपासना कर ।

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।

तिरश्चिद्वर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥९॥

३२ प.



भा०—(यस्य) जिस प्रभु का (विश्वः आर्यः) समस्त श्रेष्ठ (अरिः) पुरुष (दासः) सेवकवत् (शेवधि-पाः) उसी के खजाने की रक्षा करने वाला है। उस (अर्थे) स्वामी (रक्षणे) सर्व-नियन्ता, (पवीरवि) पाप-निवारक राजदण्डवत् परम तप-रूप वज्र के धारक प्रभु के अधीन समस्त विश्व विद्यमान है। हे प्रभो ! (सः रयिः तुभ्य इत् अज्यते) यह सब मूर्त्त संसार तेरे ही गुणों के दर्शन के लिये प्रकट है। और (तिरः चित्) सुगुप्त वह भी (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे लिये ही प्रकट है।

तुरग्यवो मधुमन्तं घृतश्रुतं विप्रांसो अर्कमानृचुः ।

अस्मे रयिः पप्रथे वृष्णायं शवोऽस्मे सुवानास इन्द्रवः ॥१०॥११॥ ?

भा०—(तुरग्यवः) क्षिप्रकारी (विप्रासः) विद्वान् जन (घृत-श्रुतम्) जलदाता मेघ के तुल्य उदार, तेजःप्रद सूर्यवत् प्रकाश-स्वरूप (मधुमन्तं) जलयुक्त समुद्रवत्, अपार अन्नयुक्त पृथिवीवत् पालक (अर्क) अर्चनीय प्रभु की (आनृचुः) प्रार्थना करते हैं कि (अस्मे रयिः, वृष्णायं शवः पप्रथे) हमारा ऐश्वर्य और सुखवर्षक बल बढ़े। (अस्मे सुवानासः इन्द्रवः) हमारे प्रजा उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य हों। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[ ५२ ]

आयुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ९ विराड् बृहती । २ पादनिचृत् पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शुक्रापिवः सुतम् ।

यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥ १ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! (यथा) जैसे और जितना (विव-स्वति मनौ) विविध प्रजाओं के स्वामी, सुव्यवस्थापक राजा के पद पर विराज कर (सुतं सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य को (अपिवः) तू उपभोग

करता है और (यथा) जैसे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्रिते) तीनों विद्याओं में पारंगत विद्वान् के पद पर भी (छन्दः जुजोषसि) वेद वाणी का प्रेमपूर्वक सेवन करता है वैसे ही तू (आयौ) मनुष्यों में (सचा) वत्तमान भी (मादयसे) हर्ष लाभ करता और देता है ।

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।

यथा सोमं दशशिप्रे दशौण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (पृषध्रे) जलसेचक मेघ धारक (मेध्ये) उत्तम अन्न के हितकारी (सुवाने) उत्पादक (मातरिश्वनि अमन्दथाः) आकाशगामी वायु में (यथा) जैसे आनन्द पाता है और (दशशिप्रे) दशों प्राणों को मुकुटवत् धारण करने वाले, (दशौण्ये) दश प्राण युक्त (स्यूमरश्मौ) रश्मियों से युक्त तेजस्वी (ऋजु-नसि) सरल नासिका वाले, अभ्यासी पुरुष में वैसे (सोमं) परमानन्द रस का (अमन्दथाः) पान कराता है ।

य उक्था केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।

यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (केवला उक्था दधे) केवल स्तुत्य वचनों को स्वीकार करता है, (यः धृषिता) जो दुष्टों को धर्पण करता (सोमं अपिबत्) उत्पन्न जगत् को पुत्रवत्, ऐश्वर्य को स्वामीवत् पालता, भोग करता है, (मित्रस्य धर्मभिः) मित्रवत् सूर्य के धारण-सामर्थ्यों से (यस्मै विष्णुः) व्यापक वायु जिसके लिये (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनों लोकों में व्यापता है, वही 'इन्द्र' है ।

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजं वाजिबद्धतक्रतो ।

तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहां जुह्वमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिन्) बलवन् ! (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञा वाले !



(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (त्वम्) तू (यस्य) जिसके (वाजे) यज्ञ में (स्तो-  
मेषु) स्तुतिवचनों में (चाकनः) अभिलाषा करता है, (गोदुहः) सुदुधाम्  
इव) गौ दुहने वाले उत्तम दुग्धदात्री गौ को जैसे बुलाते हैं वैसे (वयं)  
हम लोग (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) अन्नादि के इच्छुक होकर  
(जुहूमसि) पुकारते हैं ।

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।

अयामन्त्रो मघवा पुरुवसुगोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५॥२०॥

भा०—(यः नः दाता) जो हमें देता है, (सः नः पिता) वही  
हमारा पालक है । वह (महान् उग्रः) बड़ा, बलवान् (ईशानकृत्)  
ऐश्वर्यदाता शासक है । वह (उग्रः) बलवान्, (मघवा) धनाढ्य होकर  
(पुव-वसु अयामन्) बहुत धन देता है और वह (गोः अश्वस्य नः  
प्रदातु) गौ अश्व आदि हमें देवे । इति विंशो वर्गः ॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।

वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सर्वव्यापक ! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिस  
दानशील को दान देता है (सः रायः पोषम् इन्वति) वह ऐश्वर्य की  
समृद्धि को प्राप्त करता है । हम (वसु-पतिं) सब लोकों और जीवों के  
पालक (शत-क्रतुं) अनेक कर्मों के कर्त्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को  
(वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक होकर (हवामहे) स्तुति प्रार्थना करते हैं ।

कदा च न प्र युच्छस्युमे नि पासि जन्मनी ।

तुरीयादित्य हर्वनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (कदाचन प्रयुच्छसि) कभी प्रमाद नहीं  
करता । (उमे जन्मनी नि पासि) इह और पर दोनों लोकों को पालन  
करता है । हे (तुरीय) सबसे पार ! हे (आदित्य) सब विश्व के

नियन्तः ! (ते) तेरा यह (हवनं इन्द्रियम्) देने योग्य ऐश्वर्य है जो (दिवि) मोक्ष में (अमृतं) अमृतस्वरूप (आ तस्यौ) विद्यमान है ।

यस्मै त्वं मधवन्निन्द्र गिर्वणाः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।

अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥८॥

भा०—हे (मधवन् इन्द्र) पूजित धन के स्वामिन् ! (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति योग्य प्रभो ! हे (शिक्षो) दानशील ! तू (यस्मै दाशुषे) जिस दानशील पुरुष को (शिक्षसि) देता है वह सम्पन्न हो जाता है । हे (वसो) सर्वस्वामिन् ! (उत) और तू (कण्ववत्) ज्ञानी के समान (अस्माकं गिरः) हमारी वाणियों और (सु-स्तुतिं हवम्) उत्तम स्तुति प्रार्थना को (शृणुधि) सुन ।

अस्तावि मन्म पूर्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।

पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—(मन्म) मनन योग्य, ज्ञानमय (पूर्यं) सनातन ब्रह्म वेद का (अस्तावि) उपदेश करो, उसका (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (वोचत) उच्चारण करो । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पूर्वीः बृहतीः) सनातन वेदवाणियों की (अनूषत) स्तुति करो और (स्तोतुः मेधाः) वाणियाँ और बुद्धियाँ स्वयं (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं ।

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।

सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१०॥२१॥

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर ही (रायः) समस्त ऐश्वर्यों और (बृहतीः) जगत् की बड़ी २ शक्तियों को (सम् अधूनुत) अच्छी प्रकार संचालित करता है । वही (क्षोणीः सं सूर्यम् उ सम्) पृथिवियों और सूर्य को चलाता है, (शुचयः शुक्रासः) शुद्धाचारवान् पुरुष और (गवाशिरः सोमाः) वेदवाणी का आश्रय लेने वाले जितेन्द्रिय लोग उसी को



(इन्द्रम् सं सम् अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[ ५३ ]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराड् बृहती । ३ आर्ची स्वराड् बृहती । २, ४, ६ निचूत् पंक्तिः । ८ विराट् पंक्तिः अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उपमं त्वा मघोनाज्येष्टं च वृषभाणाम् ।

पूर्मित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) धनसम्पन्न ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (मघोनां उपमानं) धनवानों के आदर्श और (वृषभाणां च) मेघवत् सुखवर्षक उदार दाताओं में (ज्येष्ठं) सबसे बड़े, (पूर्मित्त-तमं) शत्रुओं के दुर्ग भेदने में कुशल जीवों के पुर-रूप देहबन्धनों को भेदने वाले, (गो-विदम्) भक्त की वाणी के ज्ञाता (ईशानं) परमेश्वर से हम (रायः ईमहे) ऐश्वर्यों की याचना करते हैं ।

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।

तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (दिवे-दिवे) दिनोदिन (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ (आयुम्) शरण में आने वाले (कुत्सम्) स्तुति करने और (अतिथिग्वम्) अतिथिवत् परमेश्वर के प्रति स्तुति वाणी का प्रयोग करने वाले पुरुष को (अर्दयः) प्राप्त होता है (हर्यश्वं तं) मनुष्यों को अश्वों के तुल्य सन्मार्ग में संचालन करने वाले उस (शत-क्रतुं त्वां) सैकड़ों कर्म और प्रज्ञाओं वाले तुल्य प्रभु से (वाजयन्तः) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना करते हुए हम (हवामहे) याचना करें ।

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।

ये परावर्ति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावितीन्द्रवः ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (इन्द्रवः) विद्वान् तेजस्वी जन (परावति) पर ब्रह्म में (सुन्विरे) अभिषिक्त होते हैं और (ये) जो (अर्वावति) इस लोक में भी (जनेषु) मनुष्यों के बीच (सुन्विरे) प्रतिष्ठा पाते हैं वे (अद्रयः) मेघ के समान (नः विश्वेपां) हम सबके हितार्थ (मध्वः रसं) मधुर ज्ञान रस ओषधि-रसवत् (आसिञ्चन्तु) आसेचन करें, प्रदान करें ।

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।  
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृप्पसि ॥४॥२२॥

भा०—(यत्र) जिस दशा में तू (सोमस्य तृप्पसि) ऐश्वर्य से तृप्त होता है, उसी दशा में तू (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषों और द्वेष करने वाले जनों को (जहि) विनष्ट कर और (अव कृधि च) नीचा कर । (चित्ते मदिरासः) चित्त में सुप्रसन्न (अंशवः) व्यास विद्यावान् (विश्वे) समस्त जन (शीष्टेषु) शिष्टों, विद्वानों के बीच में (त्वा वसु सन्वन्तु) तुझे समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इन्द्र नेदीय पदिहि मितमेधामिरुतिभिः ।

आ शन्तम शन्तमाभिरुमिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५॥

भा०—हे (शन्तम) अतिशान्तिदायक ! हे (स्वापे) बन्धो ! तू (मित-मेधाभिः) परस्पर सत् संगतियुक्त, (ऊतिभिः) रक्षाओं और (शन्तमाभिः) अति शान्तिदायक (अमिष्टिभिः) अभीष्ट, सुखप्रद उपायों सहित हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू हमारे (नेदीयः इत्) अति समीप ही (आ इहि) प्राप्त हो ।

आञ्जितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वामंगम् ।

अ सू तिरा शचीभिरे त ऊक्थितः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! (ये) जो (ते) तेरे (उक्थितः) वेद-वचनों के ज्ञाता जन (शचीभिः) वाणियों द्वारा (ते क्रतुं) तेरे यज्ञ, वा ज्ञान को



(आनुपक्) निरन्तर (पुनते) पवित्र करते रहते हैं वह तू (प्र सु-तिर) उनको अच्छी प्रकार बढ़ा और (प्रजासु) प्रजाओं में (आजि-तुर) संग्राम में शत्रुओं के नाशक (सत्पति) सज्जनों के पालक (विश्व-चर्षणि) सबके द्रष्टा (आ-भगम्) सब प्रकार से सेवनयोग्य को (कुधि) अधिकारवान् कर ।

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।

वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससुवांसो मनामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ते) तेरी (साधिष्ठः) उत्तम साधना करने वाला है वह (अवसे) हमारी रक्षा करने वाला हो । हम (भरेषु) यज्ञों में भी (ते स्याम) तेरे ही रहें । (वयं) हम लोग (देव-हूतिभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्वीकृत (होत्राभिः) वाणियों और यज्ञ सक्रियाओं द्वारा (ससुवांसः) स्तुति करते हुए (मनामहे) तेरा चिन्तन करें ।

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सद्योतिभिः ।

त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युग्ने मथीनाम् ॥ ८ ॥ २३ ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के तुल्य मनुष्यों पर वश करने हारे ! (अहं हि) मैं (ते ब्रह्म यामि) तेरे महान् ऐश्वर्य की याचना करता हूँ । मैं (वाजयुः) बल का इच्छुक, (सदा उतिभिः) सदा तेरी ही शक्तियों द्वारा (आजिं यामि) युद्धादि शत्रुगण को उखाड़ डालने वाले बल की याचना करता हूँ । मैं (अश्वयुः गव्युः) अश्वों और गौवों की कामना करता हुआ (मथीनां अग्ने) शत्रु-मंथनकारी सेनाओं के अग्रभाग में (त्वाम् इत् इव) तुझे ही (सं तममे) स्थापित करता हूँ । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ ५४ ]

मातरिश्वा काण्व ऋषिः ॥ १, २, ५—८ इन्द्रः । ३, ४ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ५ निचृत् बृहती । ३ बृहती । ७ विराड् बृहती । २, ४, ६, ८ निचृत् पंक्तिः ॥

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।

ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्रुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (कारवः) स्तुति कर्त्ता जन(गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ते) तेरे (एतत् वीर्यं) इस महान् प्रत्यक्ष बल का (गृणन्ति) उपदेश करते हैं । (ते पौरासः) वे दृढेन्द्रिय पुरुष (घृत-श्रुतं) तेज व जल के दाता तुझको ही (स्तोभन्तः) स्तुति करते हुए (ऊर्जम् आवन्) अन्न को प्राप्त करते हैं और (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से तुझे (नक्षन्) प्राप्त करते हैं ।

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।

यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (येषां) लिनके (सुतेषु) उत्पन्न किये उत्तम ऐश्वर्यों पर (मन्दसे) प्रसन्न होता है वे अपने (सुकृत्यया) उत्तम कर्म-सामर्थ्य से (अवसे) रक्षा के निमित्त (इन्द्रम्) दुष्टनाशक उसी स्वामी को (नक्षन्त) प्राप्त करते हैं । हे प्रभो ! तू (यथा) जैसे (संवर्ते) सम्यक् दृष्टि से वर्चने वाले सम्यग् व्यवहारवान् पुरुष पर (अमदः) प्रसन्न होता है और (यथा) जैसे (कृशे) तपस्या द्वारा कृश-शरीर या निर्बल पर कृपालु होता है (एव अस्मे मत्स्व) वैसे ही तू हम पर कृपालु रह ।

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।

वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्कृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप (विश्वे) सब (नः) हमसे (सजोषसः) प्रीतियुक्त होकर (नः उप गन्तन) हमें प्राप्त हों । (वसवः) रक्षक, (रुद्राः) दुष्टों को दलाने वाले, प्राणवत् प्रिय पुरुष, (नः) हमें (अवसे) रक्षार्थ (आगमन्) प्राप्त हों और (मरुतः) वे बलवान् पुरुष (नः हवम् शृण्वन्तु) हमारा आह्वान सुनें ।



पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।

आपो वातः पर्वासा वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४।२४॥

भा०—(पूषा) सर्गपोषक, सूर्य (विष्णुः) व्यापक वायु, (सरस्वती) उत्तम ज्ञानसम्पन्न वाणी और (सप्त सिन्धवः) शरीरस्थ सातों गति-शील प्राण, (आपः) जल, (वातः) वायु, (पर्वासाः) मेघगण (वन-स्पतिः) वृक्षादि, ये सब (मे हवनं अवन्तु) मेरी यज्ञाहुति को प्राप्त हों । (पृथिवी मे हवम् शृणोतु) पृथिवी मेरे कथन या दान यज्ञादि को श्रवण करे । मेरी प्रसिद्धि हो ।

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।

तेन न बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (मघवत्तम) धन के स्वामियों में श्रेष्ठ ! (यत् ते राधः) जो तेरा धन तुझे (माघोनं) धन-स्वामी बनाने वाला है, तू (सधमाद्यः) सबके साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला होकर (तेन) उस धन से (नः) हमें भी (वृधे) बढ़ाने और (दानाय) देने के लिये (बोधि) जान, हे (वृत्रहन्) विघ्ननाशक ! तू (भगः) सर्वसेवनीय है ।

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज्र आ वक्षि सुकृतो ।

वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः सस्रवांसो वि शृण्वरे ॥६॥

भा०—हे (आजिपते) युद्धों के पालक ! (नृपते) मनुष्यों के पालक ! हे (सुकृतो) उत्तम प्रज्ञावान् ! (त्वम् इत् हि नः) तू ही हमें (वाजे आवक्षि) संग्राम में धारण कर । (देव-वीतिभिः) विद्वानों या शुभ गुणों की प्रकाशक (वीती) ज्ञानयुक्त (होत्राभिः) वाणियों से (सस्र-वांसः) स्तुति करते हुए विद्वान् (वि शृण्वरे) विविध प्रकार से सुने जावें ।

सन्ति ह्य॑ र्य आशिष॑ इन्द्र आयु॑र्जनानाम् ।

अस्मान् रक्ष॑स्व मगव॑न्नुपाव॑से धुक्ष॑स्व पि॒प्युषी॑मिषम् ॥ ७ ॥

भा०—(अर्ये) स्वामी के आश्रय ही (जनानाम्) मनुष्यों की सब (आशिषः सन्ति) आशाएं होती हैं और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन समस्त जनों का (आयुः) जीवन है। हे (मगवन्) प्रभो ! तू (अस्मान् रक्षस्व) हमारी रक्षा कर और (अवसे) हमें तृप्त करने के लिये (पिप्युषीम्) पुष्टि वृद्धिकारक (इषं उप धुक्षस्व) भोजन दे ।

वयं तं इन्द्र॑ स्तोमे॑भिर्विधेम॑ त्वम॑स्माकं॑ शतक्र॑तो ।

महि॑ स्थूरं॑ शश॑यं राधो॑ अह॒यं प्रस्क॑णवाय॒ नि तो॑शय ॥ ८ ॥ २५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (वयम्) हम (ते) तेरा (स्तोमेभिः) स्तुतियों द्वारा (विधेम) वर्णन करें। हे (शत-क्रतो) सैकड़ों ज्ञान-विज्ञानों से सम्पन्न ! (त्वं) तू (अस्माकं) हमारा ही है। तू (प्रस्कणवाय) उत्तम विद्वान् को (महि स्थूरं) बहुत बड़ा स्थिर (शशयं) प्रशंसनीय, (अहयं) अविनाशी, (राधः नि तोशय) धन दे। इति यश्चविंशो वर्गः :

[ ५५ ]

कुशः काण्व ऋषिः ॥ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद्ध गायत्री । २, ४ गायत्री । ३, ५, अनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूरी॑दिन्द्र॑स्य वी॒र्यं॑ व्यख्य॑मभ्याय॑ति । राध॑स्ते दस्य॑वे वृ॒क ॥ १ ॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट पुरुष के नाश के लिये वृक के समान भयप्रद ! (इन्द्रस्य ते) ऐश्वर्यवान् तेरे (वीर्यं भूरि इत्) बहुत अधिक बल को मैं (वि व्यख्यम्) साक्षात् करता हूँ और (ते भूरि राधः) तेरा बहुत अधिक धन (अभ्यायति) हमारे सम्मुख आता है ।



शतं श्वेतासं उक्ष्णो दिवि तारो न रोचन्ते ।

महा दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

भा०—(दिवि) आकाश में (शतं) सैकड़ों (श्वेतासः) शुभ्र वर्ण के, (उक्ष्णः) नाना पिण्डों, ग्रहों को वहन करने वाले, सूर्यगण (तारः न) तारों के तुल्य ही (रोचन्ते) चमकते हैं। वह (महा) महान् सामर्थ्य से (दिवं न) सूर्य के समान तेजस्वी पिण्डों को भी (तस्तभुः) थामते हैं, वह उसी प्रभु का सामर्थ्य है।

शतं वेणूकृतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।

शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥

भा०—(शतं वेणून्) सौ अर्थात् अनेक वीणाएं, (शतं शुनः) सौ, अर्थात् अनेक कुत्ते (शतं म्लातानि चर्माणि) सैकड़ों बनाये हुए चमड़े और (शतं बल्वजस्तुकाः) सौ मूँज की सी गुच्छों वाली वनभूमियाँ और (अरुषीणां चतुःशतम्) दीप्तियुक्त चमकती भूमियों की ४ सौ संख्या ये सब जैसे ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होती हैं, वैसे (मे) मेरे भी हों। अर्थात् राजसी सैकड़ों बाजे, सैकड़ों कुत्तों के समान स्वामिभक्त सेवक, सैकड़ों रक्षार्थ ढालें, सैकड़ों वन-भूमियों और सैकड़ों पके खेत ये सब विभूति हमें प्राप्त हों।

सुदेवाः स्थ काणवायना वयोवयो विचरन्तः ।

अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

भा०—हे (सु-देवाः) उत्तम कामनावान् मनुष्यो! आप लोग (काणवायनाः स्थ) विद्वान् पुरुषों के अधीन, जाने वाले होकर रहो। आप लोग (वयः वयः चरन्तः) एक के बाद दूसरी अवस्था को व्यतीत करते हुए, (अश्वासः न) अश्वों के समान (चङ्क्रमत) कदम बढ़ाते चलो।

आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।

श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा छन सन्नशे ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(साप्तस्य) सातों प्राणों के स्वामी (अनूनस्य) अनून, पूर्ण पुरुष का (महि श्रवः) महान् यज्ञ (चर्किरन्) फैला रहे हैं। (श्यावीः पथः) राजस और तामस मार्गों का अतिक्रमणकर्ता विद्वान् (चक्षुषा न) चक्षु से भी उसकी विभूतियों को (सं नशे) देखता है। इति षड्विंशो वगः ॥

[ ५६ ]

पृषध्नः काण्व ऋषिः ॥ १—४ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः । ५ अग्निसूयौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराड् गायत्री । २ गायत्री । ५ निचृत् पंक्तिः ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

प्रति ते दस्यवे वृक राधो अदृश्यह्वयम् ।

द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ १ ॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट चोर-पुरुषों के विनाश के लिये तेजस्वी चीर पुरुष ! (ते राधः) तेरे ऐश्वर्य को मैं (अदृश्यं प्रति अदर्शम्) प्रत्यक्ष रूप में अविनाशी रूप से देखता हूँ । (ते शवः) तेरा महान् बल (द्यौः न प्रथिना) आकाश के समान विस्तृत है ।

दश मह्यं पौतक्रतः सहस्रा दस्यवे वृकः ।

नित्याद्रायो अमंहत ॥ २ ॥

भा०—(दस्यवे वृकः) सत्-कर्मों के नाशक दुष्ट, पुरुष को नाश करने के लिये जैसे 'वृक' के समान बलवान् शस्त्रधारी पुरुष ही समर्थ होता है वैसे ही आत्मा की शक्तियों के नाशक काम, क्रोध, लोभ, मोहादि भीतरी चोर डाकुओं को नाश करने वाला, ज्ञानप्रकाशक तेजस्वी, (पौतक्रतः) पवित्र ज्ञान और कर्म वाला वह प्रभु (मह्यं)



मुक्षे (नित्याद्), सनातन ज्ञान कोश, वेद से (दशसहस्रा वयः) दस सहस्र मन्त्र रूप धन, (अमंहत) प्रदान करता है । इसी प्रकार आचार्य शिष्य के अज्ञान दूर करने वाला हो और वह नित्य वेद के दस सहस्र ऋचाओं का ज्ञान दे ।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ॥३॥

भा०—वह प्रभु (मे) मुक्ष प्रजाजन को (गर्दभानां शतम्) सौ गर्दभ, अनेक जाति के जीव, (मूर्णावतीनाम् शतम्) उन वाली भेड़ों की जाति के सौ, अनेक पशु (शतं दासान्) सौ दास, भृत्य (अतिस्रजः) देता है । भृत्यों ने भृति, अर्थात् शरीरपोषण मात्र वेतन लेकर कार्य करना है, उनका एक से दूसरे के यहाँ जाना कोई असंगत नहीं है । एक राजा का एक विद्वान् की सेवा में सैकड़ों भृत्य नियुक्त करना क्या बुरा है ? जब कि उनका वेतन और कार्य वैसा ही है । इसी प्रकार शत्रु-नाशक सेनादि के सौ २ दस्तों का परस्पर दान-आदान भी होता है ?

तत्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।

अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥

भा०—(अश्वानाम् यूथ्याम् इत न) अश्वों या घुड़सवार सैनिकों की टुकड़ी या सेना के समान ही (तत्र उ अपि) वहाँ भी (पूत-क्रतायै) पवित्र कर्मकर्ता व्यक्ति की सेवा में उपकार के लिये (व्यक्ता) स्पष्टरूप से (प्रानीयत) उक्त सैकड़ों पशु गधे, भेड़ और भृत्यों को कार्य में लगा दिया जावे ।

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः । अग्निः शुक्रेण ।

शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥५॥२७॥

भा०—(चिकितुः) ज्ञानी पुरुष (अग्निः) अग्नि तुल्य तेजस्वी, (हव्य-वाट्) अन्न को ग्रहण करने वाला हो । (सः) वह (सुमद्रथः) उत्तम

स्वरूप और उत्तम रथ वाला हो। वह (शुक्रेण शोचिषा) कान्तियुक्त तेज से (अग्निः) अग्नि के समान ही, (शुक्रेण शोचिषा) वीर्य, ब्रह्मचर्य और उसके प्रभाव से युक्त, (बृहत् सूरः) महान् सूर्य के समान (अरोचत) चमके, (दिवि सूर्यः) आकाश में सूर्य तुल्य वह (दिवि) ज्ञान विज्ञान वा उस पृथिवी पर (अरोचत) चमकता है। इति सप्त-विंशो वर्गः ॥

[ ५७ ]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।

आगच्छतं नासत्या शचीभिर्द्विदं तृतीयं सवनं पिबथः ॥१॥

भा०—हे (नासत्या) सत्याचरणशील स्त्री-पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (देवा) ज्ञान धनादि देने में समर्थ होकर (पूर्येण) अपने पूर्व के (क्रतुना) कर्म-सामर्थ्य से (युक्ता) युक्त एवं सावधान, (यजत्रा) दान-परायण, ईश्वरोपासना में रत होकर (तविषं) इदंतापूर्वक (आ गच्छतम्) आगे बढ़ो। (शचीभिः) वेदवाणियों द्वारा (द्विदं तृतीयं सवनं) इस तृतीयसवन, तीसरे आश्रम को भी (पिबथः) पालन करो ॥

जीवन के ४८ वर्ष बीतने पर तीसरा सवन है। वह जगत् के उपकारार्थ होता है। उसका ज्ञापक जगतीछन्द है। जगतीछन्द के ४८ अक्षर होते हैं। उसको आदित्य प्राप्त होते हैं। प्राण आदित्य हैं, वे उसका ग्रहण करते हैं। इस अवस्था में तप करना यज्ञ में तृतीय सवन के समान है।

युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् ।

अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीयन्ती ॥ २ ॥

भा०—(देवः) दिव्य गुणधारक (त्रयः एकादशासः) ११ × ३ =



३३ (सत्याः) सत् गुण-युक्त हैं। विद्वानों ने (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) इस सत्य का पहले ही साक्षात् किया है। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (दीद्ययी) प्रज्वलितान्नि होकर (युवां) आप दोनों (अस्माकं) हमारे (सवनं यज्ञं) यज्ञ सवन का सेवन करते हुए (सोमं पातम्) ओषधि-रसवत् देह में वीर्य का पालन और ज्ञान-अर्चनादि में उपयोग करो।

पुनार्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।  
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वा इत्ता उप यात पिबध्वै ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः) आकाश (रजसः) अन्तरिक्ष और (पृथिव्याः) भूमि का (वृषभः) सूर्य अग्निवत् वर्षण करने वाला, विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों के प्रति (पुनार्यं) स्तुत्य (कृतं) कर्म का उपदेश दे। (ये) जो विद्वान् (गविष्टौ) वेद-वाणियों के ज्ञान-प्रदान के निमित्त (सहस्रं शंसा) सहस्रों मन्त्रों का उपदेश देते हैं, हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (तान् सर्वान् पिबध्वै उपयातम्) उन सबके व्रत-पालन के लिये जाओ। अयं वां भागो निहितो यज्ञेमा गिरो नास्त्योप यातम्।

पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥२८॥

भा०—हे (नास्त्या) सत्य व्रत के पालक स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यज्ञा) दानशील होकर (इमा गिरः उप यातम्) इन वेद-वाणियों को प्राप्त करो। (अयं वां भागः निहितः) यह तुम दोनों का सेवनयोग्य भाग निश्चित किया गया है। (अस्मे) हमारे इस (मधुमन्तम्) मधुर ज्ञान से युक्त (सोमं) उपदेश का (पिबतं) पान करो और (शचीभिः) उत्तम वाणियों, सत्क्रियाओं से (दाश्वांसम् प्र अवतम्) ज्ञानदाता को उत्तम रीति से प्राप्त होवो, रक्षा करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[ ५८ ]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ १ विश्वदेवा ऋत्विजो वा । २, ३ विश्वदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचूत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो  
अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥१

भा०—(यं) जिस (यज्ञं) उपासनीय परमेश्वर की (बहुधा) बहुत  
अकारों से (कल्पयन्तः) कल्पना करते हुए, (सचेतसः) तत्समान चित्त  
होकर (ऋत्विजः) प्रति ऋतु, प्रति प्राण, ज्ञानपूर्वक यज्ञोपासना करने  
वाले, विद्वान् (इमं) इस उपास्य यज्ञ को (वहन्ति) हृदय में ज्ञान  
और कर्मरूप से धारण करते हैं । (यः) जो (अनूचानः) बहुश्रुत  
(ब्राह्मणः) वेदज्ञाता पुष्य (युक्तः आसीत्) इस उपासना कार्य में  
नियुक्त होता है (तत्र) उसमें (यजमानस्य का स्वित् संवित्) यजमान  
उपासक की कैसी मनोभावना, वा प्राप्ति होती है ?

एकं एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।  
एकैवोषा सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥ २ ॥

भा०—उपास्य की यज्ञ द्वारा उपासना करने में यजमान की  
ऋत्विजों के साथ इस प्रकार सम्यग् दृष्टि हो कि—जैसे (एकः एव  
अग्निः) एक ही अग्नि (बहुधा समिद्धः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि  
आदि नाना प्रकार से संदीप्त किया जाता है और जैसे (एकः सूर्यः) एक  
ही सूर्य (विश्वम् अनु प्रभूतः) विश्व के प्रति प्रकाश ताप देने और  
जगत् के गतिमान् पिण्डों को स्तम्भन करने में समर्थ होता है और जैसे  
(एकः एव उषाः) एक ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब ब्रह्माण्ड  
को चमका देती है, वैसे ही (इदं) यह (सर्वम्) सब भी (एकं वा वि  
बभूव) एक ही सत् पदार्थ नाना रूप से प्रकट होता है ।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् ।  
त्रिचक्रमग्ना यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अतिं रिक्तं पिबन्धै ॥३॥२६

भा०—विराट् रथ का वर्णन । (यस्य योगे) जिसके प्राप्त होने पर



(चित्रा मघा अधिजज्ञे) अद्भुत ऐश्वर्य-विभूति उत्पन्न होती है (तं रिक्तम्) सबसे बड़ के शक्तिशाली उसका (पिबध्यै) आनन्द-रस पान करने के लिये (वां अति हुवे) आप दोनों को मैं उपदेश करता हूँ । वह कैसा है ? अग्नि के समान (ज्योतिष्मन्तं) तेजोमय, (केतुमन्तं) ज्ञानवान्, (त्रिचक्रं रथं) रथ के समान तीन चक्रों वाला, (सुखं) सुखप्रद, उत्तम आकाशों, वा इन्द्रिय वा छिद्रों से युक्त, (सु-पदं) उत्तम रीति से सुख-पूर्वक रहने योग्य, व सुख से जाने या गति करने वाला, (भूरिवारम्) बहुतों से वरणीय, बहुत कष्टों का वारक है, (तं वां हुवे) मैं उसका तुमको उपदेश करता हूँ । प्रकृति के तीन गुण प्रभु के तीन चक्र अर्थात् संसार रचना करने के साधनवत् हैं । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[ ५६ ]

सुपर्णः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणा देवते ॥ छन्दः—१ जगती । २, ३ निचृज्जगती । ४, ५, ७ विराड् जगती । ६ त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

इमानि वां भागधेयानि सिञ्चत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम् ।  
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१॥

भा०—ओषधियों में जैसे विद्युत् तत्त्व और रोगनिवारक जल तत्त्व दोनों सेवन करने वाले को बल देते हैं वैसे ही हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, शत्रुहन्तः ! हे वरुण, दुःखवारक सेनापति, राजन् ! (सुतेषु) उत्पन्न ऐश्वर्यों के निमित्त (वाम्) तुम दोनों का (प्र महे) आदर करता हूँ । (इमानि) ये (वां भागधेयानि) आप दोनों के सेवनीय अंश (प्र सिञ्चते) फैल रहे हैं । (यज्ञे यज्ञे ह) प्रत्येक यज्ञ में (यत्) जो आप दोनों (यजमानाय) यज्ञकर्त्ता को (शिक्षथः) साहाय्य प्रदान करते हो और (सवना भुरण्यथः) ऐश्वर्यों को पुष्ट करते हो इसलिये तुम्हारे देने योग्य अंश हैं ।

अ०६।सू०५१।४] ऋग्वेदभाष्ये षष्ठोऽष्टकः

५१५

निः शिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत ।  
या सिञ्चतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥

भा०—राष्ट्र में (इन्द्रा वरुणा) सेनापति और राजा दोनों (आस्ताम्) आसन पर विराजें और (ओषधीः आपः) तेज धारण करने वाली आस प्रजा (निः शिध्वरीः) शत्रुओं का परिहार करने में समर्थ होकर (महिमानम् आशत) महान् सामर्थ्य प्राप्त करें । (ययोः शत्रुः) जिन दोनों का शत्रु (नकिः आप एव ओहते) कोई भी समर्थ नहीं होता और (या) जो दोनों (रजसः पारे अध्वनः) अन्तरिक्ष के पार के मार्ग में (सिञ्चतुः) जाते हैं ।

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मि दुहते सप्त वाणीः ।  
तामिन्द्राश्वान्समवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति  
चित्तिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवान् ! हे वरणीय श्रेष्ठ जनो ! (वां) आप दोनों के प्रति (कृशस्य) तपस्या द्वारा कृश हुए तपस्वी जन की (सप्त वाणीः) सातों छन्दों वाली वेद-वाणियां (सत्यं) सत्य ज्ञान और (मध्वः) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान के (ऊर्मिम्) तरंग को (दुहते) दोहन या प्रदान करती है, (ताभिः) उन वाणियों से आप दोनों (शुभः पती) कल्याण मार्ग के पालक उस (दाम्नासम् अवतम्) दानशील भद्रपुरुष की रक्षा वा ज्ञान दान करते हो । जो (मदब्धः) अबाधित होकर (वां) आप दोनों के (चित्तिभिः) उत्तम ज्ञानों उत्तम विचारों द्वारा (अभि-पाति) रक्षा करता है ।

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य । या  
ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्रुतस्तामिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥४॥३०

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवान् ! श्रेष्ठ पुरुष ! आचार्य ! स्वयं-वृत्त गुरो ! (याः) जो (वां) आप दोनों की, (घृत-प्रुषः) जल बिन्दु-



निषेकवत् शीतल सुखदायिनी, (सौम्या) उत्तम शिष्यों की हितकारिणी, (जीर-दानवः) जीवन प्रदान करने वाली, (सप्तस्वसारः) सात वहनों के समान सात छन्दोमयी, सुख से अज्ञान का नाश करने वाली, (घृत-श्रुतः) तेजः प्रकाश के देने वाली वाणियां हैं (ताभिः) उन से आप दोनों (यजमानाय) दानशील, आत्मसमर्पक जन को (ऋतस्य सदने) सत्य ज्ञान और न्याय के स्थान में (धत्तम्) स्थापित करो और (शिक्ष-तम्) शिक्षा करो ।

अवोचाम महते सौमगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम् ।  
अस्मान्तिस्वन्द्रावरुणा घतश्रुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ॥५॥

भा०—(महते सौमगाय) बड़े ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वेषा-भ्याम्) दीक्षियुक्त इन्द्र, वरुण, विद्युत् और जलवत् शत्रु नाशक, दुःख-वारक जनों के (सत्यं महिमानम्) सच्चे महत्व और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की (अवोचाम) हम स्तुति करें । हे (शुभः-पती) शुभ गुणपालको ! आप दोनों (त्रिभिः सप्तेभिः) ३ × ७ = २१ तत्त्वों से (घृत-श्रुतः) घृता-हुति देने वाले (अस्मान्) हम लोगों की (सु अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो ।

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्ने ।  
यानि स्थानान्यसृजन्त धीरा यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) सत्य ज्ञान के साक्षात् दर्शन करने वाले 'इन्द्र' और गुरु आचार्य रूप से वरणयोग्य और पापों से हटाने हारे श्रेष्ठ जनों ! आप दोनों (यत्) जिस (मनीषाम्) ज्ञान की प्रेरणा और (याः वाचः) जिन वाणियों, (याम् मतिम्) जिस बुद्धि और (यत् श्रुतम्) गुरु द्वारा श्रवण-योग्य वेदोपदेश को (अग्ने) सबसे प्रथम (अदत्तम्) देते हो और जिन (स्थानानि) गृहादि शालाओं, आश्रमों वा लोकों को (धीराः) बुद्धिमान् लोग (यज्ञं तनवानाः) यज्ञ का विस्तार

करते हुए (असृजन्त) बनाते हैं उन को मैं (तपसा भूमि अपश्यम्)  
तप द्वारा साक्षात् करूं ।

इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तं रायस्पोषं यजमानेषु धत्तम् ।

प्रजां पुष्टिं भूतिमस्मासुं धत्तं दीर्घायुत्वाय प्र तिरतं न आयुः७।३१

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र वरुण ! हे तत्त्वदर्शिन !  
गुरो ! आप दोनों (यजमानेषु) यज्ञ, सत्संग आदि करने वाले जनों में  
(अदृप्तं सौमनसं) गर्व से रहित उत्तम चित्त का भाव और (अदृप्तम् रायः  
पोषम् धत्तम्) गर्व से रहित धनैश्वर्य की समृद्धि धारण कराओ ।  
(अस्मासु) हममें (प्रजां, पुष्टिम्, भूतिम्, धत्तम्) उत्तम सन्तान, पुष्टि  
और धनसमृद्धि धारण कराओ और (नः आयुः) हमारी आयु को  
(दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (प्र तिरतम्) बढ़ाओ । इत्येकत्रिंशो  
वर्गः ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

इति बालखिल्यं समाप्तम्

[ ६० ]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ६, १३, १७ विराड्  
बृहती । ३, ५ पादनिचूट् बृहती । ११, १५ निचूट् बृहती । ७, १६  
बृहती । २ आर्ची स्वराट् पङ्क्तिः । १०, १६, पादनिचूट् पङ्क्ति । ४, ६,  
८, १४, १८, २० निचूट् पङ्क्तिः । १२ पङ्क्तिः ॥ विशत्यृचं सूक्तम् ॥

अग्न आ याग्यग्निमिहोतारं त्वा वृणीमहे ।

आ त्वामनक्तु प्रयता हविर्मती यजिष्ठं बहिरासदे ॥ १ ॥

१ बालखिल्यसूक्ते सायणीयं भाष्यं नास्ति । ऐतरेयभाष्येऽपि तेन  
अष्टावेव बालखिल्यानि स्वीक्रियन्ते । माक्समूलरादि सम्पादितायां तु  
ऋक्संहितायामेकादश सूक्तानि पठ्यन्ते । तान्येवान्न व्याकृतानि ।



भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! तू (अग्निभिः) गार्हपत्यादि अग्नियों सहित यज्ञाग्नि होता के समान तू ज्ञानी पुरुषों के साथ (आ याहि) प्राप्त हो । (होतारं त्वां वृणीमहे) अपने समीप प्रेम से बुलाने और ऐश्वर्यादि देने वाले तुझको हम वरण करते और तुझसे ही याचना करते हैं । (यजिष्ठं) अतिदानशील (त्वाम्) तुझको (हविष्मती) दी हुई हवि वाली आहुति अग्नि को जैसे प्रकाशित करती है उत्तम हवि, ग्राह्य ज्ञानादि से युक्त (प्रयता) अच्छी प्रकार सुसंयत, सुप्रबद्ध वाणी वा नीति (बर्हिः) आसनवत् वृद्धिशील राष्ट्र वा प्रजाजनों वा लोकों पर (आसदे) शासनार्थ विराजने के लिये (आ अनवत्) अच्छी प्रकार प्रकाशित करे ।

अच्छा हि त्वां सहसः सूनो अङ्गिरः स्तुचश्चरन्त्यध्वरे ।

ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) सैन्यादि के प्रेरक ! हे (अङ्गिरः) अंग में रसवत् राष्ट्र में बलवन् ! (त्वा हि अच्छ) तुझे लक्ष्य करके ही (अध्वरे स्तुचः) यज्ञ में स्तुचों के समान ही समस्त प्रजागण, (चरन्ति) चलते हैं । हम (ऊर्जः नपातं) उत्तम अन्न और वृष्टि को सूर्यादि के तुल्य नष्ट न होने देने वाले (घृत केशम्) स्निग्ध केश वाले, सुकेश, एवं प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले (यज्ञेषु पूर्यम्) सत्संगों में एवं यज्ञादि कार्यों के निमित्त, सबसे श्रेष्ठ, (अग्निम् ईमहे) तेजस्वी पुरुष को ही प्राप्त हों और उससे ही (ऊर्जः ईमहे) बलों, अन्नों आदि की याचना करते हैं ।

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।

मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रैभिः शुक्र मन्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् प्रभो ! तू (कविः असि) क्रान्तदर्शी विद्वान् है, तू (वेधाः असि) बुद्धिमान् (असि) है । हे (पावक) पवित्र

करने हारे ! तू (यक्ष्यः) पूज्य, उपास्य, (होता) ऐश्वर्यों का दाता है ।  
तू (मन्द्रः) स्तुति-योग्य, सुख का दाता, (यजिष्ठः) बड़ा दानी (अध्व-  
रेषु) यज्ञों में (मन्त्रभिः) मन्त्रों द्वारा और (विप्रेभिः) विद्वानों द्वारा  
(ईडयः) स्तुत्य है ।

अद्रोष्टुमा वंहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अंजस वीतये ।

अभि प्रयांसि सुधिता वंसो गहि मन्दस्व धीतिमिर्हितः ॥ ४

भा०—हे (यविष्ठ्य) बलवन् ! हे (अजस) अविनाशिन ! तू (अद्रो-  
ष्टम्) द्रोहरहित सुशको (उशतः देवान्) उत्तम कामना वा प्रीति करने  
वाले देव, विद्वान् पुरुषों के पास, (वीतये) ज्ञानप्रकाश करने, रक्षा  
करने और उत्तम अन्नादि खाने के लिये (आ वह) प्राप्त करा । हे  
(वसो) पितावत् सबको बसाने वाले तू (सु-धिता) उत्तम भाव से  
स्थापित (प्रयांसि) उत्तम अन्नों, भावों को (अभि गहि) प्राप्त कर । तू  
(हितः) स्थापित वा समाहित होकर (धीतिभिः मन्दस्व) उत्तम कर्मों,  
उपदेशप्रद वाणियों से प्रसन्न तू हो ।

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने ज्ञातः प्रतस्कविः ।

त्वां विप्रांसः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥ ५।३२॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (त्वम् इत्) तू ही (स प्रथाः)  
सबसे बड़ा, (असि) है । हे (ज्ञातः) रक्षक ! तू ही (क्तः) न्यायशील  
और तू ही (कविः) सर्वोपरि द्रष्टा है । हे (सम्-इधान) समान भाव  
से देदीप्यमान ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् ! (वेधसः) कर्त्ता, विद्वान्,  
(विप्रांसः) कर्मण्य पुरुष (त्वाम् आविवासन्ति) यज्ञाग्निवत् तेरी ही  
सेवा करते हैं । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शोचां शोचिष्ठ दीदिवि विशे मयो रास्व स्तोत्रे मद्वाँ असि ।

देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रुषाहः स्वग्रयः ॥ ६ ॥

भा०—हे(शोचिष्ठ)अति तेजस्विन् ! तू (शोचा) तेज से (दीदिवि)



चमक । (स्तोत्रे विशे) स्तोता प्रजा को (मयः रास्व) सुख दे ।  
(देवानां महान् असि) विद्वानों के बीच और गुणों में, तू महान् है ।  
राजा चाहे कि (मम शर्मन्) मेरी शरण में, गृह में (शत्रु-साहः)  
शत्रुओं को पराजित करने वाले वीर, (सूरयः) विद्वान् और (सु-  
अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी पुरुष हों ।

यथा चिद्वृद्धमत्समग्रे सज्जूर्वासि क्षमि ।

एवा दह मित्रमहो यो अस्मधुक् दुर्मन्मा कश्च वेनन्ति ॥ ७ ॥

भा०—(यथा चित्) जैसे अग्नि (क्षमि) पृथिवी पर (वृद्धम् अत-  
सम्) बड़े भारी लकड़ को भी जला देता है (एव) वैसे ही (अग्ने)  
तेजस्विन् ! हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य ! (क्षमि) भूमि पर (वृद्धम्)  
बड़े हुए उसको अवश्य (दह) जला (यः) जो (अस्मधुक्) हमारा  
द्रोही (दुर्मन्मा) दुष्ट चित्त वाला, (कः च वेनन्ति) कोई भी यज्ञ करता,  
शोभा पाता, या अपने बाजे बजाता, या आदर चाहता है ।

मा नो मर्त्याय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।

अस्त्रेधद्भिस्तरेणिभिर्विष्टय शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (यविष्टय) अतिबलशालिन् ! तू (नः) हमें (रिपवे मर्त्याय)  
शत्रु मनुष्य और (रक्षस्विने) दुष्ट पुरुषों वाले के हित (मा रीरधः)  
मत पीड़ित कर और तू (अघ-शंसाय मा रीरधः) पाप की शिक्षा देने  
वाले के अधीन मत कर । तू (अस्त्रेधद्भिः) अहिंसक, (तरेणिभिः) संकटों  
से पार उतारने में समर्थ दयाशील (शिवेभिः) शान्तिकारक, कल्याण-  
कारी, (पायुभिः) पालनकर्त्ताओं द्वारा (पाहि) पालन कर ।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युः त द्वितीयया ।

पाहि ग्रीभिस्तसृभिरूर्जास्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजाओं वा शिष्य को बसाने वाले प्रजापते !

हे (ऊर्जापते) अन्नो, बलों के पालक ! तू (नः) हमें (एकया गिरा पाहि) एक वेदवाणी से पालन कर । (उत द्वितीयया गिरा पाहि) और दूसरी वेदवाणी से पालन कर । (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) तीनों वेद वाणियों से पालन कर । (चतसृभिः गीर्भिः पाहि) चारों वेद वाणियों से पालन कर ।

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्याः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।  
त्वामिद्धि नेदिष्टं देवतातय आपि नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (विश्वस्माद् रक्षसः अराव्याः) सब प्रकार के दुष्ट और शत्रु से (पाहि) बचा और (नः) हमारी (वाजेषु) संग्रामों में (प्र अव स्म) अच्छी प्रकार रक्षा कर । हम (देवतातये) वीर आदि जनों के हितार्थ (त्वाम् इत् हि नेदिष्टं) तुझको ही अति निकट का (आपि) बन्धु जानकर (वृधे) वृद्धि के लिये (नक्षामहे) प्राप्त होते हैं । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

आ नो अग्रे वयोवृधं रयिं पावकं शंस्यम् ।  
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयंशस्तरम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्रे) तेजस्विन् ! हे (पावक) पवित्र करने वाले ! (नः) हमें (शंस्यं) प्रशंसनीय (वयोवृधं) आयु, बल का वर्धक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ रास्व) सब ओर से प्राप्त करा । हे (उपमाते) अनुपम ! तू (नः) हमें (सुनीती) उत्तम नीति से (स्वयंशस्तरम्) कीर्ति को अधिक बढ़ाने वाला, (पुरु-स्पृहं) सबको अच्छा लगाने वाला धन (रास्व च) प्रदान भी कर ।

येन वंसां पृतनासु शर्धत्तस्तरन्तो अर्य आदिशः ।  
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसा जिन्वा धियो वसुविदः ॥ १२ ॥

भा०—(येन) जिस धन से हम (पृतनासु) संग्रामों में (आदिशः) हरन्तः) दिशा उपदिशाओं तक पार करते हुए (शर्धतः) दुष्ट बलशाली



शत्रुओं को भी (वंसाम) नाश करें। हे (शचीवसो) शक्ति के धनी !  
(सः त्वं) वह तू (नः) हमें (प्रयसः वधं) अन्न सम्पदा और बल से  
बढ़ा और (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले कर्मों की  
वृद्धि कर।

शिशानो वृषभो यथाग्निः शृङ्गो दविध्वत् ।

तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा वृषभः) जैसे सांड (शृङ्गे शिशानः) सींग पैनाता  
हुआ (दविध्वत्) शिर चलाता है और जैसे (अग्निः) अग्नि अपने शिखर  
कंपाता है वैसे ही (शिशानः) बल को तीक्ष्ण करता हुआ (अग्निः)  
तेजस्वी पुरुष, (शृङ्गे) शत्रु-हनन के अस्त्र-शस्त्रों को कंपावे। (अस्य)  
इसकी (हनवः) हननकारिणी सेनाएं (तिग्माः) तीखी दाढ़ों के तुल्य  
(न प्रति-धृषे) कभी पराजित होने के लिये न हों, वह (सुजम्भः) दुष्टों  
को उत्तम रीति से दण्ड देने में समर्थ (सहसः यहुः) सैन्य को सुसंगत  
करने में समर्थ हो।

नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद्वितिष्ठसे ।

स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वोर्यां पुरु ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने वृषभ) तेजस्विन् ! बलशालिन् ! (यद् वि तिष्ठसे)  
जब तू शत्रु के विजयार्थ खड़ा हो, तब (ते जम्भासः) दाढ़ों के समान  
शत्रु को कुचल डालने वाले तेरे शस्त्रादि सैन्य (नहि प्रति-धृषे) कभी  
हारने के लिये न हों। (सः त्वं) वह तू (नः) हमारे हे (होतः) दातः  
(सुहुतं हविः कृधि) उत्तम रीति से दिये करादि को सफल कर। (नः)  
पुरुवार्या वंस्व) हमें बहुत उत्तम ऐश्वर्य, शत्रुवारक साधन दे।

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।

अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिदेवेषु राजसि ॥ १५ ॥ ३४ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (वनेषु मात्रोः) दो उत्पादक भरणियों में अग्नि के समान (वनेषु) सेवनीय ऐश्वर्यों और (मात्रोः) माता-पिता रूप विद्वान्-अविद्वान् प्रजाओं में बालकवत् (शेषे) सुख से रह । (त्वा मर्त्तासः सम् इन्धते) तुझे शत्रुमारक वीर जन तेजस्वी बनाते हैं । तू (हविः-कृषतः) उत्तम अन्न उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के दिये करादि को (अतन्द्रः) अनालसी होकर (वहसि) धारण कर (आत् इत्) और विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच, किरणों में सूर्यवत् (राजसि) प्रकाशित हो । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

सप्त होतारस्तमिदील्लते त्वाग्ने सुत्यजमह्वयम् ।

मिनत्स्यद्भि तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (सप्त होतारः) सात अधिकाधिक बल आदि देने वाले प्रकृतिगण (सु-त्यजम्) उत्तम दाता (अह्वयम्) अक्षीण, (तं त्वा) उस तुझको (ईडते इत्) चाहते, तेरी प्रतिष्ठा करते हैं । वह तू (शोचिषा) तेज से और (तपसा) प्रताप से (अद्भि) प्रबल शत्रु सैन्य को (मिनत्सि) मेघ को सूर्य के समान भेदन करता है । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (जनान् अति प्र तिष्ठ) सब जनों से बढ़ कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर ।

अग्निमग्निं वो अग्निगुं हुवेम वृक्तवर्हिषः ।

अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृक्त-वर्हिषः) कुशाओं के समान शत्रु को छिन्न-भिन्न करने वाले पुरुषो ! हम लोग (वः) आप में से (अग्निम्-अग्निम्) प्रत्येक अग्नि के मुख्य तेजस्वी और (अग्निगुम्) भूमि पर का शासक, आज्ञापक (हुवेम) स्वीकार करें । हम (हितप्रयसः) अज्ञादि-धारक होकर (शश्वतीषु) बहुत सी प्रजाओं में (चर्षणीनाम्) विद्वान् मनुष्यों को वृत्ति देने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही (आ हुवेम) आदर से स्वीकार करें ।



केतेन शर्मन्सचते सुप्रामग्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।

इषग्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! यह प्रजाजन (चिकित्वना) ज्ञानयुक्त विद्वान् द्वारा (केतेन) ज्ञानपूर्वक (तुभ्यम्) तेरे ही (सु-सामनि) उत्तम समान भाव से युक्त, निष्पक्षपात (शर्मन्) गृहवत् राज्य में (इषया) इच्छापूर्वक (नः) हमें हमारी रक्षा के लिये (पुरुरूपं) नाना प्रकार का (नेदिष्ठं) अति समीपतम, प्राप्य (वाजं) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने जरितर्विशपतिस्तेपानो देव रक्षसः ।

अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जरितः) उपदेश करने वाले ! हे (देव) दानशील ! तू (रक्षसः) दुष्टों को (तेपानः) पीड़ित करता हुआ, (विशपतिः) प्रजाओं का पालक है । तू (अप्रोषिवान्) कभी प्रवास में न जाने वाले (गृह-पतिः) गृहस्वामी के समान (दुरोणयुः) गृहवत् राष्ट्र को दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तम पद की अभिलाषा करने वाला और (दिवः महान् पायुः), तेज और भूमि का बड़ा पालक (असि) है ।

मा नो रक्ष आ वैशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।

परोगव्यूतिर्निरामप क्षुध्रमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२०॥३५॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र के बसाने वाले राजन् ! (नः) हममें (रक्षः) नाशकारी उपद्रवी (मा आवेशीत्) न आ चुसे । (यातुमा-वताम्) पीड़ादायक दुष्ट रोगों और पुरुषों के कारण (यातुः नः मा आवेशीत्) हममें पीड़ा, उनकी यातना भी न प्रवेश करे । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (अनिराम क्षुधम्) बिना अन्न की भूखमरी और (रक्षस्विनः) दुष्टों को (परः गव्यूतिम्) हमसे कोसों (अप सेध) दूर कर । इति पञ्चत्रिंशो वगः ॥

[ ६१ ]

भर्गः प्रागाथः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ११, १५  
 निचृद् बृहती । ३, ६ विराड् बृहती । ७, १७ पादनिचृद् बृहती । १३  
 बृहती । २, ४, १०, पंक्तिः । ६, १४, १६ विराट् पंक्तिः । ८, १२, १८  
 निचृत् पंक्तिः ॥ अष्टादशचं सूक्तम् ॥

उभयं शृण्वच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।

सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) तत्त्वदर्शी पुरुष (नः) हमारे (इदं) इस (उभयं)  
 पक्ष विपक्ष दोनों प्रकार के (वचः) वचन को (अर्वाक) सन्मुख (शृण-  
 वत् च) सुने, (सत्राच्या धिया) सत्य के निर्धारक विवेक बुद्धि से  
 (सोमपीतये) राष्ट्र के पालनार्थ (मघवा) पूज्य पद पर स्थिर होकर  
 (शविष्ठः) सबसे अधिक बली होकर (नः आगमत्) हमें प्राप्त हो ।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।

उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २ ॥

भा०—(तं) उस (वृषभं) 'वृष' अर्थात् धर्म, राष्ट्र के प्रबन्ध-साम-  
 र्थ्य से सामर्थ्यवान् (स्वराजं) अपने बल से तेजस्वी, स्वयं राजा, बल-  
 शाली पुरुष को (हि ओजसे) उसके बल पराक्रम के कारण (धिषणे)  
 पृथिवी आकाशवत् शास्य-शासक वर्गों की दोनों समितियां (निष्ट-  
 तक्षतुः) राजा को बनावें और, हे राजन् ! (हि) क्योंकि (ते मनः) तेरा  
 चित्त भी (सोम-कामं) राष्ट्रैश्वर्य तथा अभिवेक-योग्य पद चाहता है, इस  
 कारण तू (उपमानां) उपमान-योग्य पुरुषों में (प्रथमः) श्रेष्ठ होकर  
 नि षीदसि) मुख्यासन पर विराज ।

आ वृषस्व पुरुवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।

विज्ञा हि त्वा हरिवः पृतसु सांसहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥ ३ ॥



भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत प्रजा को बसाने वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! शत्रुहन्तः ! तू (अन्धसः सुतस्य) अन्न और ऐश्वर्य से (आ वृषस्व) प्रजा पर सुखों का वर्षक और बलवान् हो । हे (हरिवः) अश्वों और मनुष्यों के राजन् ! हम (त्वा) तुझको (पृत्सु) संग्रामों में (सासहिम्) विजयी, (अष्टष्टम्) अपराजित और (दधृष्वणिम्) शत्रुओं के पराजित करने हारा (हि) ही (विश्व) जानते हैं ।

अग्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।

सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मच्छ चिद्यन्तो अद्रिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (क्रत्वा) बुद्धि और कर्म के सामर्थ्य से (यथा वशः) जैसे भी चाहता है, हे (मघवन्) पूजित विश्व-सम्पन्न ! हे (अग्रामि-सत्य) सत्यरूप महाव्रत का नाश न करने हारे ! (तथा इत् असत्) वैसा ही होता है । हे (शिप्रिन्) मुकुटधारिन् ! सत्यपालक ! हे (अद्रिवः) बलशालिन् ! हम लोग (मक्षु चित् यन्तः) बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए (अवसा) ज्ञान और रक्षा, बल से (तव वाजं) तेरा ज्ञान, बल, ऐश्वर्य (सनेम) प्राप्त करें ।

शग्ध्युषु शचीपत् इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—हे (शचीपते) सत्य वाणी और शक्ति के पालक ! हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त ज्ञानों और बलों से (सु शग्धि उ) उत्तम रीति से सब कार्य करने में समर्थ है । (भगं न) ऐश्वर्य-वान् के समान ही (यशसं) यशस्वी (वसु-विदम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला जान कर (हि) ही हे (शूर) शूरवीर ! (त्वा अनु चरामसि) हम तेरे कहे अनुसार आचरण करें, तेरा अनुगमन करें । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

नकिर्हि दानं परिमर्षिषत्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! हे व्यवहारज्ञ ! तू (पौरः) बहुतों का स्वामी, (अश्वस्य गवाम् पुरुकुत्) अश्वों और गौ-आदि सम्पदा को बहुत संख्या में करने में समर्थ (असि) है। तू (हिरण्ययः उत्सः) सुवर्ण का उद्गम स्थान, निकास वा खान के समान है। (त्वे) तेरे (दानं) दिये ऐश्वर्य का (नकिः हि परि मधिषत्) कोई भी नाश नहीं कर सकता। मैं (यत्-यत् यामि) जिस २ पदार्थ की भी याचना करूं, तू (तत् आभर) वह २ पदार्थ मुझे दे।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्ठये उदिन्द्राश्वमिष्ठये ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (त्वं हि एहि) तू अवश्य आ और (चेरवे वसुत्तये) सेवा, परिचर्या करने वाले परिजन को जीवनीपयोगी धन प्रदान करने के लिये और (अश्वम् इष्ठये) अश्व देने के लिये (उत् वावृषस्व) सर्वोत्तम दानशील, उदार हो।

त्वं पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।

आ पुरन्दरं चक्रम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (पुरु सहस्राणि शतानि च यूथा) अनेक सैकड़ों और सहस्रों, अश्वदि के यूथ, गौ, (दानाय मंहसे) दान के रूप में दे। हम लोग (अवसे) रक्षा के निमित्त (विप्रवचसाः) उत्तम वचन बोलते और (गायन्तः) स्तुति गान करते हुए (पुरन्दरं) शत्रु नगर को तोड़ने वाले पुरुष को (इन्द्रं आ चक्रम) ऐश्वर्य-युक्त करें।

अविप्रो वा यद्विधद विप्रो वेन्द्र ते वचः ।

स प्र ममन्दत्वाया शतक्रतो प्राचा मन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म-सामर्थ्यों से सम्पन्न ! हे (प्राचा-मन्यो) सर्वोत्कृष्ट ज्ञानशालिन् ! हे (अहंसनं)



आत्मसन्मान के भाव को देने हारे ! (अविप्रः वा) चाहे अबुद्धिमान् हो, चाहे (विप्रः) विद्वान् पुरुष भी (ते वचः अविधत्) तेरे वचन अनुसार कार्य करता है, वह (त्वाया) तेरे अधीन (प्र ममन्दत्) बहुत सुख पाता है ।

उग्रबाहुर्धृक्कृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृण्वद्धवम् ।  
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वसूयवः) घनाभिलाषी जनो ! (यदि) जब २ (वसुपतिं) ऐश्वर्यों और जीवों के पालक, (शतक्रतुं) अनन्त ज्ञानों, कर्म सामर्थ्यों से पूर्ण, (इन्द्रं) ऐश्वर्यप्रद स्वामी को हम (स्तोमैः हवामहे) स्तुति वचनों से प्रार्थना करें (उग्र-बाहुः) बलवान् बाहु वाला, (धृक्कृत्वा) शत्रुओं का नाशक, (पुरन्दरः) शत्रुपुत्रों को तोड़ने में समर्थ, (मे हवम् शृणवत्) मेरे स्तुति-वचन श्रवण करे । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः ।  
यदिन्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृण्वामहे ॥ ११ ॥

भा०—(यत् इत् तु) जब २ भी हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (सखायं) सबके मित्र (वृषणं) बलवान् पुरुष को (सुते) ऐश्वर्य वा शासन में (सचा कृण्वामहे) अपने हाथ लेते हैं, तब २ हम (पापासः न मनामहे) पापी होकर विचार नहीं करते और (नारायासः न) तब हम दूसरे का अधिकार न देने वाले होकर भी नहीं विचारते, (न जल्हवः) और न ज्वलन या प्रकाश से रहित होते हैं ।

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम् ।  
वेदा भृमं चित्सनितारथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् इत् उ) जिसको प्रजाजन (वाजिनं) बलवान् (नशत्) पावें और जो (रथीतमः) सबसे उत्तम महारथी, (सनिता) दानशील

हो और जिसको हम (भृशं बित्) भरण पोषण में समर्थ (वेद) पावें उस (सासहिस्) शत्रुपराजयकारी, (उग्रम्) दण्डधारी, (ऋगकात्सि) धर्मोत्पादक, (आदाभ्यम्) अहिंसनीय पुरुष को हम (पुतनासु) संग्रामों, सेनाओं पर (युयुज्म) नियुक्त करें।

यत् इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।

मघवन्नृधि तव तन्न कृतिमिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! अन्नादि दातः ! हम लोग (यतः भयामहे) जिस कारण से भी भय करें तू (ततः नः अभयं कृधि) हमें उससे भय रहित कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (तव) अपना (नः) हमें (तत् शग्धि) वह सामर्थ्य दे और (कृतिमिः) रक्षाकारिणी शक्तियों से (द्विषः) शत्रुओं और (मृधः वि जहि) हिंसकों को दण्डित कर।

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः ।

तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्ययुक्त ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना योग्य ! हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्य देने हारे। (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न, अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त होकर (त्वा) तुझसे (हवामहे) याचना करते हैं, हे (राधसः पते) धन के पालक स्वामिन् ! (त्वं हि) तू अवश्य (विधतः) कार्य करने वाले, सेवक के (महः) बड़े भारी, (क्षयस्य) ऐश्वर्य और (राधसः) धन का बढ़ाने और देने वाला है।

इन्द्र स्पलुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः ।

स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु नाशक, ऐश्वर्यों का दाता, प्रभु (स्पट्) सर्व-जडा, (वृत्रहा) विघ्नों का नाशक (परः-पाः) परम पालक और (नः वरेण्यः) हममें सर्वश्रेष्ठ वरण योग्य है। (सः) वह (नः) हममें से



(चरमं) अन्तिम को, (सः मध्यमं) वह बीच को (सः पश्चात् पुरः नः पातु) वह हमारे पीछे और आगे से भी हमें बचा । इत्यष्टान्निशो वगैः ॥

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः ।

आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः पश्चात् अधरात् उत्तरात् पुरः विश्वतः निपाहि) हमारी पीछे, नीचे, ऊपर, आगे से और सब ओर से रक्षा कर । (अस्मत् दैव्यं भयम् आरे कृणुहि) हमसे विजयेच्छुक व्यवहार-चतुरादि जनों से होने वाला भय दूर कर और (अदेवीः हेतीः आरे कृणुहि) अविद्वान्, दुष्टजनों के शस्त्रों को भी दूर कर ।

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।

विश्वा च नो जरितृन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (नः) हमें (अद्य अद्य) आज, आज कहाने वाले सब दिनों और (श्वः श्वः) कल कल, कल कहाने वाले सब दिनों में और (परे च) परले दिनों में भी (त्रास्व) रक्षा कर । हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! तू (नः जरितृन्) प्रार्थना स्तुति करने वाले हम लोगों को (विश्वा च अहा) सब दिनों और (दिवा नक्तं च) दिन और रात, प्रकाश और अंधेरे में भी (रक्षिषः) रक्षा कर ।

प्रभङ्गी शूरो मघवा त्वीमघः समिश्नो वीर्याय कम् ।

उभा ते बाह्व वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥ १८ ॥ ३६ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनन्त कर्म और प्रजा से युक्त स्वामिन् ! (या) जो दो (ते बाह्व) तेरी बाहुएं, (वज्रं नि मिमिक्षतुः) शस्त्र को धारण करती हैं (उभा) वे दोनों (वृषणा) बलवान् हों । (वीर्याय) वीरकर्म सम्पादन करने के लिये (शूरः) शूरवीर पुरुष (प्रभङ्गी) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला, (मघवा) धनाढ्य, (त्वीमघः) बहुत

धनसम्पन्न और (सम्मिश्रः) सबसे अच्छी प्रकार मिलने जुलने वाला हो । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

[ ६२ ]

प्रगाथः काप्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ६, १०, ११ निचृत् पंक्तिः । २, ५ विराट् पंक्तिः । ४, १२ पंक्तिः । ७ निचृद् बृहती । ८, ९ बृहतो । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजाषति । उक्थैरिन्द्रस्य माहिं वयो यर्थान्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ १ ॥

भा०—(यत् जुजाषति) जो प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है (अस्मै) उसकी (उप स्तुतिं प्र भरत) उत्तम स्तुति करो । (सोमिनः) वीर्य पालक ब्रह्मचारी लोग ही (उक्थैः) उत्तम वचनों द्वारा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् स्वामी के (माहिं वयः वर्धन्ति) बड़े बल को बढ़ा देते हैं । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस परमेश्वर के दिये सब दान सुखकारी होते हैं ।

अयुजो अस्मो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः । पूर्वोरिति प्र वावृधे विश्वा ज्ञातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर (एकः) अद्वितीय, (अयुजः) अन्य सहायक के बिना, (अस्मः) अपने समान से रहित, (अयास्यः) अविनाशी, कभी न थकने वाला है । वह (नृभिः) जीवों द्वारा (पूर्वाः कृष्टीः) बहुत-सी सनातन प्रजाओं को (प्र वावृधे) बढ़ाता है और (विश्वा जातानि) सभी प्राणियों को (ओजसा) पराक्रम से (इति प्र वावृधे) इसी प्रकार बढ़ाता रहता है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के दान सुखकारी होते हैं ।

अहितेन चिद्वता जीरदानुः सिषासति । प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥



भा०—यह ईश्वर (जीर-दानुः) जीवन दाता है। वह (अहितेन अर्चता चित्) बिना बन्धे अश्व लगाये ही (सिपासति) सबको चलाता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (करिष्यतः) जगत् बनाने वाले (तव) तेरे ये सब (वीर्याणि) सामर्थ्य हैं। (तत् तव प्रवाच्यम्) यह सब तेरा उत्तम रीति से स्तुति-योग्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान सुखकारी हैं।

आ याहि कृण्वाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना । येभिः शविष्ठ  
चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (आ याहि) आ। (ते) तेरे (ब्रह्माणि) वेदवचनों को हम (वर्धना) अपने को बढ़ाने वाला (कृण्वाम) करें। हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! (येभिः) जिनसे तू (इह) इस लोक में (श्रवस्यते) ज्ञान के इच्छुक जीव के लाभार्थ (भद्रम् चाकनः) कल्याण चाहता है उन वेदों का हम अभ्यास करें। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) प्रभु के दान सुखकारी हैं।

धृषतश्चिद्धषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् । तीव्रैः सोमैः सपर्यतो  
नमोमिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥

भा०—(तीव्रैः सोमैः) बलकारक साधन से (सपर्यतः) सेवा करते हुए (नमोमिः प्रतिभूषतः) दुष्ट-दमनकारी उपायों से प्रतिपक्षी का साम्मुख्य करने वाले (धृषतः) प्रतिपक्ष का पराजय करने वाले के (मनः चित्) मन को भी, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत् त्वम्) जो तू (धृषतः कृणोषि), सहनशील कर देता है यह तेरा ही सामर्थ्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के दान सुखप्रद होते हैं।

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः । जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः  
सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥ ४० ॥

भा०—जैसे (मानुषः) पियासा मनुष्य (भवतान् अव चष्टे) कुर्भों के नीचे झांकता है और (सोमिनः दक्षस्य जुष्ट्वी, युजं सखायं कृणुते) जल-कूप के रक्षक पुरुष को प्रेम से अपना साथी, मित्र बना लेता है वैसे ही (शचीपमः) स्तुति के अनुरूप यथार्थ दयाशील प्रभु (भवतान् अव चष्टे) रक्षा-योग्य जनों को दया से देखता है और (सोमिनः दक्षस्य) वीर्यवान् कर्म करने में समर्थ पुरुष को (जुष्ट्वी) प्रेम करके अपना (युजं सखायं कृणुते) संगी, मित्र बना लेता है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।

भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! वाणी द्वारा ज्ञान देने वाले ! (देवाः) विद्याओं के इच्छुक जन (ते वीर्यम् अनु, ते क्रतुम् अनु) तेरे बल और ज्ञान के अनुसार (अनु ददुः) स्वयं बल और ज्ञान धारण करें, अन्धों को भी दें, हे (पुरु-स्तुत) बहुत जीवों के उपदेष्टा ! तू ही (विश्वस्य गोपतिः भुवः) समस्त वाणियों का पालक है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्)

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।

यदंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के स्वामिन् ! (देवतातये) दानशील, मनुष्यों के हितार्थ, (ते) तेरे (उपमं शवः) आदर्श बल की (गृणे) स्तुति करता हूँ। (यत्) जिस (ओजसा) पराक्रम से तू (वृत्रम्) अज्ञान, वा बढ़ते शत्रु को (हंसि) नष्ट करता है।

समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।

विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९ ॥

भा०—(समना-इव) समान चित्त वाली स्त्री जैसे (वपुष्यतः



मानुषा युगा कृणवत्) उत्तम-शरीर पुरुष को जोड़ा बना देती है वैसे ही (इन्द्रः) वह प्रभु (वपुष्यतः) शरीर-धारण की इच्छा वाले (मानुषा युगा कृणवत्) मनुष्यों के जोड़े बनाता है। वही (इन्द्रः) प्रभु (तत् चेतनं) उस चेतन जीव को (विदे) जानता, वा शरीर में प्राप्त कराता है, (अध) और (श्रुतः) वेद में गुरुजनों द्वारा श्रवण किया जाता है। (भद्रा० हस्यादि पूर्ववत्)

उज्जातमिन्द्र ते शब्द उत्त्वामुत्तव क्रतुम् ।

भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१०॥

भा०—हे (भूरि-गो) बहुत भूमियों, वाणियों के स्वामिन् ! हे (मघवन्) ज्ञानादि-सम्पन्न, प्रभो ! गुरो ! हे (इन्द्र) वाणी के मर्म-भेदक ! ऋष्यभेदक ! (ते जातम् शब्दः) तेरे प्रकट बल और ज्ञान को लोग (भूरि उव वावृधुः) उत्तम रीति से बढ़ावें। (उत् त्वाम्) तुझे भी बढ़ावें। (तव क्रतुम् उत्) तेरे कर्म और ज्ञान की भी वृद्धि करें। (तव शर्मणि) तेरी शरण में रहें। (भद्राः० पूर्ववत्)

अहं च त्वं च वन्नहन्तसं युज्याव सनिभ्य आ ।

अरातीवा चिदद्विवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥११॥

भा०—हे (वृत्र-हन्), शत्रु नाशक ! (अहं त्वं च) मैं और तू दोनों (सनिभ्यः आ) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (सं युज्याव) परस्पर मिल जावें। हे (अद्विवः) बल-सम्पन्न ! हे (शूर) दुष्टनाशक ! (अरातीवा चित्) अदावशील भी (नौ अनुमंसते) हम दोनों को मानेगा। (भद्राः० पूर्ववत्)

सत्यमिद्धा उ तं वयमिन्द्रं स्त्वाम नानृतम् । महा असुन्वतो

वधो भूरि ज्योतीषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥४१॥

भा०—(वयम्) हम (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (सत्यम्

इत् वा स्तवाम्) सत्य सत्य ही स्तुति करें (अनृतं न) असत्य कभी न करें। (असुन्वतः) उपासना न करने वाले का (महान् वधः) बड़ा नाश होता है। (सुन्वतः भूरि ज्योतींषि) उपासक को बहुत तेजोमय ज्ञान प्राप्त होते हैं। (भद्रा० पूर्ववत्) ॥ हत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[ ६३ ]

प्रगाथः काण्वः ऋषिः ॥ १—११ इन्द्र । १२ देवा देवताः ॥ छन्दः—  
१, ४, ७ विराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३, ६ विराड् गायत्री ।  
८, ९, ११ निचृद् गायत्री । १० गायत्री । १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

स पूव्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।

यस्य द्वारा मनुषितां देवेषु धियं आनजे ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (महानां) बड़ों का भी बड़ा (पूव्यः), पूव्य, (वेनः) तेजस्वी सूर्यवत् (क्रतुभिः) उत्तम प्रज्ञाओं द्वारा (आनजे) हमें प्रेरित करता वा प्राप्त होता है (यस्य धियः) जिसकी मतिथों और कर्मों को (देवेषु) विद्या के इच्छुक मनुष्यों में (पिता मनुः) पालक, मननशील, विद्वान् वा राजा भी (द्वारा आनजे) द्वारों के समान प्रकट करे ।

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।

उक्था ब्रह्मं च शंस्या ॥ २ ॥

भा०—जैसे (अद्रयः) मेघ (सोम-पृष्ठासः) जल-वर्षणकारी होकर भी (दिवः मानं न उत्सदन्ति) सूर्य की थाह नहीं पाते, वैसे ही (सोम-पृष्ठासः) अभिषिक्त राजा वा नायक को अपनी पीठ पर रखने वाले, तदधीन (अद्रयः) सेना के जन (दिवः मानं न उत्सदन्) तेजस्वी राजा के मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकते । ऐसे ही (सोम-पृष्ठासः) सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त (अद्रयः) अविनाशी, धर्म मेघस्थ योगीजन वा



‘सोम’, वीर्य द्वारा पुष्ट, ऊर्ध्वरेता जन (दिवः मानं) ज्ञानमय प्रभु के ज्ञान, वेद को (न उत सदन्) नहीं छोड़ सकते । वह प्रभु का ज्ञान (उक्त्वा) वचन-योग्य उत्तम मन्त्र (ब्रह्म च) महान् वेद (शंस्या) स्तुति करने, उपदेश देने योग्य होते हैं ।

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवशोदप ।

स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु आचार्य के समान (इन्द्रः) ज्ञान को साक्षात् करने वाला, प्रभु (अङ्गिरोभ्यः) अंगारों के तुल्य तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों को (गाः अप अवृणोत्) वेद वाणियों का प्रकाश करता है । (अस्य तत्) उसके उस (पौंस्यं) परम पुरुष-रूप की मैं (स्तुषे) स्तुति करूँ ।

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।

शिवो अर्कस्य होमन्यस्मन्ना गन्त्ववसे ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ज्ञान प्रकाशक प्रभु, (प्रत्नथा) पूर्व कल्पों में भी (कवि-वृधः) विद्वानों को बढ़ाने वाला, (वाकस्य वक्षणिः) प्रवचन योग्य वेद को धारण करने और पहुँचाने वाला है । वही (शिवः) कल्याणकारी (अर्कस्य होमनि) अर्चनीय वेद मन्त्र के उच्चारण वा होम-काल में (अस्मन्ना अवसे) हमें रक्षा करने के लिये (आ गन्तु) प्राप्त हो ।

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।

श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यज्यवः) तेरे उपासक, यज्ञशील, (अर्काः आत् उ नु) अर्चना करने हारे जन भी (वरस्य ते) वरण करने, चाहने योग्य तेरे (क्रतुम् अनु) वेद ज्ञान के अनुसार (स्वाहा) उत्तम वाणी, आहुति द्वारा (गोत्रस्य) वाणियों के रक्षक तेरा ही (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (श्वात्रम्) शीघ्र ही (ते अनूपत) तेरी स्तुति करें ।

इन्द्रे विश्वानि वीर्यां कृतानि कर्त्तव्यानि च ।

यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥ ४२ ॥

भा०—(अर्काः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान्(यं) जिस परमेश्वर को (अध्वरं) अविनाशी (विदुः) जानते हैं उसी (इन्द्रे) प्रभु में (विश्वानि वीर्याणि) समस्त वीर्य और समस्त (कृतानि) बने पदार्थ और किये (कर्त्तव्यानि) और करने योग्य कार्य आश्रित जानते हैं । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।

अस्तृणाद् बर्हणा विपोऽ यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥

भा०—(पाञ्चजन्यया) पाँचों जनों से बनी, (विशा) प्रज्ञा (यत् इन्द्रे घोषाः असृक्षत) जिस ईश्वर वा राजा-विषयक स्तुतियें करती हैं वही (बर्हणा) बड़े सामर्थ्य से जगत् को विस्तृत करता है, (सः) वही (अयः) स्वामी (विपः मानस्य क्षयः) विद्वान् की पूजा का आधार होता है ।

इयम् ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या ।

प्रार्चश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥

भा०—(इयम् ते अनु-स्तुतिः) यह तेरी स्तुति तेरे अनुरूप है, क्योंकि तू ही (तानि पौंस्या चवृषे) वे शक्तिमान् पुरुष के करने योग्य बल के कार्य करता है और तू (चक्रस्य) जगत् के इस महान् चक्र, ग्रहाण्ड के (वर्तनिं) निरन्तर भ्रमण कार्य को (प्र अवः) अच्छी प्रकार कराता है, उसको रथ-चक्र या यन्त्र-चक्र की तरह गति दे रहा है ।

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे ।

यखं न पृथ्व आ ददे ॥ ९ ॥

भा०—(वृष्णः व्योदने) बरसते मेघ से उत्पन्न अन्न पर जैसे जीव संसार जीवन के लिये कदम बढ़ाता है वैसे ही (अस्य वृष्णः) इस सुख-



वर्षक प्रभु के (वि-जीवने) विशेष दयाद्रं भाव से पूर्ण रसवत् सुख में यह जीव लोक (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिये (उरु क्रमिष्ट) बहुस कदम बढ़ावे और (पशुः यवं न) पशु जैसे जौ का भोजन लेते हैं वैसे ही ये जीवगण ब्रह्मरूप सुखद, रसस्वरूप को (आददे) प्राप्त करते हैं।

तद्वद्वाना अवस्यवीं युष्माभिर्दक्षपितरः । स्थाम मरुत्वतो वृधे । १०

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम (दक्ष-पितरः) अन्न और प्रज्ञा के बालक होकर और (अवस्यवः) ज्ञानादि के इच्छुक होकर (युष्माभिः) तुम लोगों के साथ ही (तत्) उस परम ब्रह्म को (दधानाः) धारण करते हुये (मरुत्वतः) प्राणों वाले देह वा आत्मा की (वृधे स्याम) वृद्धि में लगे रहें।

वृत्तित्वियाय धाम्न ऋक्भिः शूर नोनुमः ।

जेषामिन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (वद्) सत्य ही, हम (ऋत्तित्वियाय) ऋतु ऋतु में आने वाले (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये हम (ऋक्भिः) ऋक्षाओं, अर्चनादि सत्कारों से (नोनुमः) स्तुति करते हैं, (त्वया युजा) मुझे सहयोगी बना कर हम (जेषाम) विजय करें।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहृतौ सजोषाः ।

यः शंसते स्तुवते धायि पञ्च इन्द्रज्येष्ठा अस्मा अचन्तु देवाः १२।४३

भा०—(यः) जो (शंसते) उत्तम प्रशंसा करते हुए और (स्तुवते) स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये (पञ्चः) दृढ़ रूप से (धायि) स्थित है और (रुद्राः) गर्जना करने वाले (मेहना) वर्षाकारी, (पर्वतासः) मेघों के समान (रुद्राः) दुष्टों को खलाने वाले (मेहनाः) मेरा कुछ स्वार्थ नहीं, ऐसी त्याग-भावना वाले, (पर्वतासः) पर्वतवत् अचल, प्रजापालक जन (वृत्र-हत्ये) दुष्टों के हनन और (भर-हृतौ) यज्ञ के आहुति वा पोषण-

कार्य में योग देने के समय (सजीवाः) मिल कर (देवाः) विद्वान् जन (अस्मान्) हमें (अवन्तु) रक्षा करें । इति त्रिचत्वारिंशो वर्गः ॥

[ ६४ ]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७, ९ निचृद् गायत्री । ३ आर्ची स्वराड् गायत्री । ४ विराड् गायत्री । २, ६, ८, १०—१२ गायत्री । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।  
अवं ब्रह्माद्विषो जहि ॥ १ ॥

भा०—(स्तोमाः) वेद के सूक्त और उत्तम स्तुति-वचन (त्वा उत् मन्दन्तु) तुझे अति प्रसन्न करें । हे (अद्रिवः) बलवन् ! तू (राधः कृणुष्व) ऐश्वर्य सम्पादक कर और (ब्रह्माद्विषः) वेद, ईश्वर और भक्त से द्वेष करने वालों को (अव जहि) दण्डित कर ।

पदा पृणीं रराधसो नि बाधस्व मुहौ असि ।  
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भा०—(पदा) पैर से (पृणीन् अराधसः) दान-पुण्यार्थ, धन के अदाता केवल धनव्यवहारियों को (नि बाधस्व) पीड़ित कर । (महान् असि) तू बड़ा है । (प्रति कश्चन नहि) तेरे मुकाबले का और दूसरा नहीं है । राजा सब धन-व्यवहारियों पर करादि दण्ड लगावे, जो राज-कर वा धर्मकर न दे उसे दण्डित करे, उसके व्यवहार में बाधा करे ।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्वम्) तू (सुतानाम्) अभिवेक प्राप्त पुत्रों का और (त्वम् असुतानां ईशिषे) अनभिषिक्तों का भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू सब मनुष्यों का राजा है ।



पहि प्रेहि क्षयो दिव्या घोषञ्चर्षणीनाम् ।

ओमे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन् ! (आ इहि) आ । (क्षयः प्र इहि) अच्छी प्रकार अपने निवासस्थान या ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो, (चर्षणीनाम्) प्रजामों के बीच (दिवि) भूमि वा आकाश में (आघोषन्) घोपणा करता हुआ, (उमे रोदसी) दोनों लोकों को (आ पृणासि) पूर्ण कर ।

त्वं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।

वि स्तोतृभ्यां हरोजिथ ॥ ५ ॥

भा०—जैसे सूर्य या विद्युत् (पर्वतं चित् रजति) मेघ को छिन्न-भिन्न करता है, वैसे ही हे ज्ञानशालिन् ! तू भी (त्वं) उस (पर्वतं) नाना पौद्यों से युक्त (गिरिं) ज्ञानोपदेशक (शत-वन्तं सहस्रिणं) सौ और हजार अध्यायों वा सूक्तादि से युक्त वेद को (स्तोतृभ्याः) यथार्थ वक्ताजनों के लिये (हरोजिथ) पृथक् २ तोड़ २ कर व्याख्या कर ।

वयम् त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे ।

अस्माकं काममा पूण ॥ ६ ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (सुते) ऐश्वर्ययुक्त अभिषेचनीय पद के लिये, (त्वा) तुझे (वयम् उ) हम (दिवा नक्तम्) दिन रात (हवामहे) प्रार्थना करते हैं (अस्माकं कामम् आपूण) हमारी कामना को पूर्ण कर । इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

कः स्य वृषभो युवा तुविग्नीवो अनानतः ।

ब्रह्मा कस्तं संपर्यति ॥ ७ ॥

भा०—(स्यः) वह (वृषभः) सुखों का वर्पण करने वाला, (युवा) बलवान्, (तुविग्नीवः) दृढ़, बलशाली गर्दन वाला, भार उठाने में समर्थ, (अनानतः) कभी न झुकने वाला (कः) कहां है (कः ब्रह्मा) कौन ब्रह्म-वेत्ता, विद्वान् है जो (तं संपर्यति) उसकी पूजा करता है ।

कस्य स्विस्सर्वनं वृषा जुजुष्वौ अव गच्छति ।

इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, वह प्रभु (कस्य स्विस् सर्वनं) किस की उपासना को (जुजुष्वान् अव गच्छति) प्रेम से युक्त होकर स्वीकार करता है, (कः उ स्विस्) वह कौन सा पुरुष है जो (इन्द्रं आवके) उस परमेश्वर्यप्रद को चाहता है। ऐसा कोई ही विरला है।

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या ।

उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्ननाशक ! (ते दाना) तेरे दान (कं असक्षत) कैसे व्यक्ति को प्राप्त होते हैं ? (कं सुवीर्या) उत्तम बल किस को मिलते हैं ? (क उ स्विस्) कौन ऐसा है जो (अन्तमः) तेरे अति पास है ?

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु स्यूते ।

तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥

भा०—(मानुषे जने) मननशील जनों में (ते) तेरे लिये (पूरुषु) इन्द्रियों में ज्ञान के समान (सोमः स्यूते) सोम, ऐश्वर्यप्रद का अभिषेक किया जाता है, तू (प्र द्रव) उत्तम मार्ग से चल और (इहि) प्राप्त हो और (आ पिब) ओपधि रसवत् उपभोग और पालन कर।

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः ।

आर्जीकीर्ये मदन्तमः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह तेरा अभिषेक, हे राजन् (आर्जीकीर्ये), सरल धर्ममार्ग में वर्तमान (शर्यणावति) शर अर्थात् वाण धनुषादि में कुशल जनों से समृद्ध स्थान में (सु-सोमायां) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त या जल-भक्ष से समृद्ध भूमि के ऊपर (प्रियः) प्रिय और (मदन्तमः) अतिहर्ष-जनक हो। ॐ

ॐ सरल, सम उत्तम जलयुक्त शरकाण्ड वाली भूमि में उत्पन्न



तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये ।

एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥ ४५ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ इहि) आ । (तस् चारुं) उस उत्तम वा चरण अर्थात् फल रूप में उपभोग योग्य ऐश्वर्य पद को (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्ति के लिये और (घृष्वये मदाय) शत्रु-पराजयकारी, आनन्द लाभ के लिये (द्रव) प्राप्ति हो और (आ पिब) पालन और उपभोग कर । इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

[ ६५ ]

प्रागायः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९, ११, १२ निचृद् गायत्री । ३, ४ गायत्री । ७, ८, १० विराड् गायत्री ।  
द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्ग्यंवा ह्यसे नृभिः ।

आ याहि तूयमाशुभिः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जो तू (प्राक् अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः ह्यसे) पूर्व पश्चिम, उत्तर वा नीचे कहीं से भी बुलाया जाय, तू (तूयम्) शीघ्र ही (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों के तुल्य व्यापक गुणों से (आ याहि) प्राप्त हो ।

सोमलता का रस अर्थात् आह्लादजनक, पौष्टिक, मनभावन होता है । यह वेद ने स्पष्ट कहा । आर्जिकीया नदी विपाशा नाम से प्रसिद्ध है ऐसा यास्क का मत है । सायण के मत से कुक्षेत्र के दक्षिणार्ध भाग में वह स्थान है । प्रायः जहां भी हिमवती नदियां पर्वतों से निकल कर सम भूमि भाग में आती हैं वहां २ वेद के बतलाये उक्त लक्षण पाये जाते हैं उन्हीं स्थलों पर बाही आदि ओषधियां प्रचुर होती हैं । सोम उन स्थानों में सम्भव है ।

यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे ।

यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥ २ ॥

भा०—(यद्वा) चाहे तू (दिवः प्रस्रवणे) प्रकाश के विकास रूप (स्वः-नरे) सुख प्राप्त कराने वाले रूप में (यद्वा) अथवा (अन्धसः) अज्ञ के (समुद्रे) अपार उत्पादक, सेचक, मेघवत् सर्वजीवनप्रद रूप में (मादयासे) सबको सुखी करता है ।

आ त्वा गीर्भिर्महामुखं हुवे गामिन् भोजसे ।

इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(भोजसे गाम् इव) खाद्य, दुग्ध आदि प्राप्त करने के लिये गौ के समान है (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सोमस्य पीतये) ज्ञान रस के पान और ब्रह्मचर्य ऐश्वर्यादि के पालनार्थ (त्वा) तुम (महान् उच्यते) बड़े ज्ञानी को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (हुवे) पुकारता हूँ ।

आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहन्तु विभ्रतः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! (महिमानं विभ्रतः) महान् सामर्थ्यधारक और (महः विभ्रतः ते) तेज वा बड़े जगत् को धारण करने वाले तुझे (रथे हरयः) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (रथे हरयः) रमण-योग्य इस देह में स्थित सब मनुष्य (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें ।

इन्द्रं गृणीष उ स्तुषे महां उग्र ईशानकृत् ।

एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (महान्) बड़ा, (उग्रः) बलवान्, दुष्टों को भयजनक, (ईशान-कृत्) सर्वस्वामी होकर, जगत् पर शासन करने वाला, (गृणीषे स्तुषे उ) वर्णन और स्तुति किया जाता है, तू (नः आ इहि) हमें प्राप्त हो और (सुतं पिब) उत्पन्न जगत् का पालन कर ।



सुताच्यन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे ।

इदं नो बर्हिःशसदे ॥ ६ ॥ ४६ ॥

भा०—(वयं सुत-वन्तः) हम सुत अर्थात् उत्पन्न ज्ञान वाले और (प्रयस्वन्तः) उत्तम अन्नादि से सम्पन्न होकर (त्वा हवामहे) तुझसे थाचना करते हैं कि (नः) हमारे (इदं बर्हिः आसदे) इस हृदयासन पर विराज ।

यच्छिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम् ।

तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जिस कारण से (शश्वताम् साधारणः त्वम् असि) तू बहुतों में भी साधारण, समान रूप से सबके प्रति निष्पक्ष-पात होकर सबको धारण पोषण करने हारा है, इसलिये (तं त्वा) उस तुझको (वयं हवामहे) हम आदरपूर्वक बुलाते, प्रार्थना करते हैं ।

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । जुषाण ईन्द्र तत्पिव ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (नरः) नायक लोग (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र बलों द्वारा (ते) तेरे लिये (सोम्यं मधु) ओषधि रसदि-युक्त अन्न को (अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं । तू (जुषाणः) सेवन करता हुआ (तत् पिव) उसका उपभोग कर ।

विश्वो अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि ।

अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥

भा०—तू (अर्यः) सबका स्वामी है, (विश्वान् विपश्चितः) समस्त विद्वानों को (अति ख्यः) सबसे अधिक विवेक से देखता है । तू (तूयम् आ गहि) शीघ्र हमें प्राप्त हो । (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमें बड़ा यश, ज्ञान दे ।

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।

मा देवा मघवां रिषत् ॥ १० ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (हिरण्य धीनाम्) हित रमणीय कान्तियों से (राजा) प्रकाशमान प्रभु, (मे) मुझे (पुषतीनां) आनन्द वर्षणकारी वाणियों का (दाता) देने वाला, गुह्य (मघवा) उत्तम ज्ञान का धनी (मा रिषत्) पीड़ित न करे । (२) राजा सुवर्ण युक्त रथ, विमानादि का स्वामी, उत्तम गौवों का दाता, प्रजा का नाश न करे ।

सहस्रे पृषतीनामधिश्चन्द्रं बृहत्पृथु शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥ ११ ॥

भा०—(पुषतीनाम् सहस्रे अधि) सहस्रों सुखवर्षक वाणियों या नादियों के भी ऊपर, सहस्र नादियों से युक्त मूर्धा में (बृहत् पृथु) बड़े विस्तृत (चन्द्रं) आह्लादजनक (शुक्रम् हिरण्यं) हितकारी सुखप्रद कान्ति-युक्त वीर्य को (आददे) धारण करूं, मैं ऊर्ध्वरेता होऊँ ।

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वंक्रत ॥ १२ ॥ ४७

भा०—(नपातः) व्रत से न गिरने वाले (सहस्रेण दुर्गहस्य) हजारों से दुर्गाह्य, (सुराधसः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (मे) मेरा (श्रवः) ज्ञान (देवेषु) ज्ञानेच्छुक शिष्यों में (अंक्रत) प्रदान करो । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

[ ६६ ]

कलिः प्रागाथ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३, ५, ११, १३ विराड् बृहती । ७ पादनिचृद् बृहती । २, ८, १२ निचृत् पंक्तिः । ४, ६ विराट् पंक्तिः । १४ पादनिचृत् पंक्तिः । १० पंक्तिः । ९, १५

अनुष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तरोभिर्वो विद्वंसुमिन्द्रं सबाधं क्रतये ।

बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (स-बाधः) पीड़ित होकर (क्रतये) रक्षार्थं (तरोभिः) तारक ज्ञानों से (वः) आप लोगों को (विद्वद्-



वसुम्) ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले, (इन्द्रं) उस प्रभु को (कारिणं भवं न) सर्वकर्ता, पोषक पिता के तुल्य जान कर (बृहत् गायन्तः) वेदवाणी का गान करते हुए (सुत-सोमे अध्वरे) सोम सवनयुक्त-यज्ञ, वा ज्ञान-सम्पादन युक्त, हिसारहित, विशुद्ध उपासना में प्रार्थना करो। मैं भी उसी की (हुवे) प्रार्थना करता हूँ।

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदं सुशिप्रमन्धसः ।

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(यं सु-शिप्रम्) जिस उत्तम बलशाली को (दुध्राः न वरन्ते) दुर्धर अर्थात् बलशाली भी वारण नहीं कर सकते, (न स्थिराः मुरः) अच्छ शत्रुमारक भी जिसको नहीं हटा सकते, (यः) जो (अन्धसः मदं) अन्नवत् ज्ञान-जीवन के आनन्द में (शशमानाय) प्रशंसा करते हुए, (सुन्वते) उपासना करते हुए (जरित्रे) स्तोता जन के हितार्थ, (आदृत्य दाता) आदर करके दान देता है, उस (उक्थ्यम्) स्तुत्य प्रभु की मैं उपासना करूँ।

यः शुक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।

स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृत्तिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (शुक्रः) शक्तिशाली, (मृक्षः) अति शुद्ध (अश्व्यः) सर्वव्यापक है, (यः वा) जो (कीजः) अद्भुत, (हिरण्ययः) हित रमणीयस्वरूप, तेजोमय है (सः) वह (ऊर्वस्य) बहुत दड़े (गव्यस्य) वाणी-समूह रूप वेद के (आवृत्तिम्) आदरण को (अप रेजयति) दूर करता है, वही (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्, (वृत्रहा) सब दुष्टों, विघ्नों का नाश करने वाला है।

निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसुदिद्वपति दाशुपे ।

वज्री सुशिप्रो हर्दश्व इत् करदिन्दूः क्रत्वा यथा वशत ॥४॥

भा०—(चित्) जैसे कोई (निखातं पुरु-सम्भृतं वसु उद्वपति) बहुत सा गढ़ा खजाना खोद लेता है वैसे ही (यः) जो (वज्रो) शक्तिमान्, (सु-शिप्रः) उत्तम मुख नासिका वाले वा मुकुट वाले के समान सुरूप, सुज्ञानी, (हर्यश्चः) मनुष्यों को अश्वोवत् सन्मार्ग पर चलाने द्वारा (इन्द्रः) वह प्रभु (निखातं) गाढ़े (पुरु-सम्भृतं) इन्द्रियों वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित (वसु) ऐश्वर्य को (दाशुषे) दान-शील को (उद्वपति) भूमि से अन्न के समान उत्पन्न कर प्रदान करता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु है, वह (यथावशत्) जैसा चाहता है वैसे ही (कृत्वा) ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से (करत्) जगत् का निर्माण करता है ।

यद्वावन्थं पुरुषुत पुरा विचक्रूर नृणाम् ।

वयं तत्तं इन्द्र सं भिरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥५॥४८॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (पुरा चित्) पूर्ववत् अब भी (नृणां यद् वावन्थं) मनुष्यों के निमित्त जो चाहता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (वयं) हम (तत् ते) वह तेरे लिये (यज्ञम् उक्थं वचः) यज्ञ, उत्तम वचन (तुरं संभिरामसि) अति शीघ्र करें । इति इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः ॥

सचा सोमेषु पुरुहूत वज्रिवो मदाय द्युक्ष सोमपाः ।

त्वमिद्धि ब्रह्मकृते काम्यं वसु देष्टुः सुन्वते भुवः ॥ ६ ॥

भा०—(पुरु-हूत) बहुतों से स्तुति योग्य ! हे (वज्रिवः) शक्ति-शालिन् ! (द्युक्ष) कान्तिमन् ! (सोमपाः) जगत् वा राष्ट्र के पालक ! तू (सोमेषु) उत्पन्न जगत् के ऐश्वर्यों में (सचा) विद्यमान है ! (त्वम् इव हि) तू ही, (ब्रह्म-कृते) स्तोता (सुन्वते) उपासक को (काम्यं वसु देष्टुः भुवः) कामना करने योग्य धन का सर्वोत्तम दाता है ।



वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥ ७ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (इदा ह्यः) गत दिन के समान अब भी (एनं वज्रिणं) इस शक्तिशाली को (अपीपेम) प्रसन्न करें (तस्मै उ अद्य) उस ही के लिये आज (समना) समान चित्त होकर (भर) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और (नूनं) शीघ्र ही, (सुतं) उत्पन्न भावना वा कर्मफल को उस पर न्योछावर करो और (श्रुते) श्रुति से श्रवण योग्य उसी प्रभु में (भूषत) स्वयं निष्ठ होवो ।

वृकाश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गृह्णन् प्र चित्रया धिया ॥ ८ ॥

भा०—(उरामथिः वृकः चित्) ऊन वाली भेड़ को मारने हारे भेड़िये के तुल्य (वारणः) शत्रु-वारण-समर्थ, शूरवीर (अस्य वयुनेषु भूषति) इस राजा के कार्य में समर्थ होता है । (२) प्रभु पक्ष में—(अस्य) इस जीव को (उरामथिः वृकः चित्) हल के समान भूमि को खनने वाला, भेड़ के नाशक वा भेड़िये के समान आवरक तम के नाशक, चन्द्रवत् (वृकः) ज्योतिष्मान् (वारणः) सर्वदुःखों का धारक विद्वान् वा प्रभु ही उसे (वयुनेषु आ भूषति) जानों में अलंकृत करता, समर्थ बनाता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (सः) वह तू (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिवचन को स्वीकार करता हुआ, (चित्रया धिया) अद्भुत बुद्धि, कर्म से (आ गृहि) हमें प्राप्त हो ।

कदू न्वः स्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् ।

केनो नु कं श्रोमतेन शुश्रुवे जुजुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु का (कत् उ पौंस्यं नु अकृतम् अस्ति) कौन-सा बल का कर्म नहीं किया हुआ है, वह

(वृत्रहा) विघ्नों का वारक और दण्ड देने हारा, वह (वृत्रहा) आवरण-कारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला, (जनुषः परि) जन्मशील इस जगत् के ऊपर (केन उ श्रोमतेन) भला किस श्रवणीय, वेदगम्य गुण और कर्म से (न शुश्रुवे) श्रवण नहीं किया जाता ?

कद्रुं महिरध्वं अस्थ तविषीः कद्रुं वृत्रघ्नो अस्तृतम् ।

इन्द्रो विश्वान् वेकनाटां अहर्दृशं उत कृत्वा पर्णारमि ॥१०॥४६॥

भा०—अथवा (अस्थ) इसकी (महीः) बड़ी, (तविषीः) शक्तियाँ (कद्रु उ) कितनी, अपरिमित हैं । (अस्थ वृत्र-घ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विश्वोभक्त परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिंसित, स्थायी बल (कद्रु उ) कितना है ? यह नहीं कहा जा सकता । वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् वेक-नाटान्) सब महाजनों (उत) और (अहः-दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले व्यवहारकुशलों को भी (कृत्वा) ज्ञान से (अभि) परास्त करता है, वह सर्वोपरि है ॥ वेकनाटाः—वे इति अपभ्रंशो द्विशब्दार्थे । एकं कार्षापणं ऋणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मय्यं दातव्यौ नयेन दर्शयति । ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति वेकनाटाः इति सायणः । एक २ के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'वेकनाट' हैं । अथवा वेकनाटः—न ते नासिकायाः संज्ञायां टीटञ् नाटञ्-भटजः ॥ पा० ५ । २ । ३१ ॥ इति नाटच् । वेकनाटा, वेकनासिकाः भेक नासिकाः विकटनासिका वा । अथवा विचिर पृथग्भावे, वेकः पृथग्भावः । वेकनाटाः छिन्ननासः, विनासिका, विवेकशील नासिकाः, कुशला वा ॥ इति । इत्येकोनपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

वयं घां ते अपूर्वैर्नृ ब्रह्माणि वत्रहन् ।

पुरुतमांसः पुरुहूत वज्रिवो भृतिं न प्र भरामसि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अपूर्व्यं) सबसे पूर्व, एवं पूर्ण ! हे (वृत्रहन्) वृष्टों के



नाशक ! (पुरु-हूत) बहुतों से प्रशंसित ! (वज्रिवः) शक्तिशालिन् !  
(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं घ पुरुतमासः) हम उत्तम जन, (ते) तेरे लिये  
(श्रुतिं न) वेतन के समान करादि नित्य नियम से (प्र भरामसि) प्रदान  
करें ।

पूर्वींश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।

तिरश्चिदर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥१२॥

भा०—हे (तुवि-कूर्मन्) बहुत कर्मकारिन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे)  
तेरे अधीन (पूर्वीः चित् हि) पूर्ण, समृद्ध (आशसः) स्तुतिशील प्रजाएं  
और (क्तयः) रक्षक सेनाएं (हवन्ते) तेरी स्तुति करती हैं । तू (अर्यः)  
सबका स्वामी, (तिरः चित्) प्राप्त हुए (सवना गहि) ऐश्वर्य को प्राप्त  
कर । हे (वसो) सबको बसाने हारे ! हे (शविष्ठ) अति बलिन् ! तू (मे  
हवं श्रुधि) मेरे वचन सुन ।

वयं घां ते त्वे इन्द्रिन्दू विप्रा अपि ष्मसि ।

नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्दिता ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं घ ते) हम तो तेरे ही हैं, (त्वे  
इत्) तेरे ही अधीन हम (विप्राः) विद्वान् जन (अपि ष्मसि) सदा रहें,  
तुझमें निमग्न हों, अप्यय अर्थात् मोक्ष प्राप्त करें । हे (पुरु-हूत) बहुतों  
के स्तुतिपात्र ! (मघवन्) उत्तम स्वामिन् ! (त्वद् अन्यः कः चन) तेरे  
से दूसरा कोई और (मर्दिता नहि अस्ति) सुख देने वाला नहीं है ।

त्वं नो अस्या अमंतेरुत क्षुधोऽभिश्स्तेरव स्पृधि ।

त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षां शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥

भा०—हे (शविष्ठ) शक्तिशालिन् ! तू (नः) हमें (अस्याः अमतेः)  
अज्ञान, दारिद्र्य, (क्षुधः) भूख, तृष्णा, (उत) और (अभिश्स्तेः) निन्दा  
से (अव स्पृधि) मुक्त कर । हे (गातुवित्) मार्गवित् ! उपायज्ञ वाणी

के जानने, प्राप्त कराने हारे ! (त्वं) तू (नः) हमें (तव चित्रया कृती) तेरी आश्चर्यकारी रक्षा और (धिया) ज्ञान, कर्मशक्ति से (शिक्ष) ज्ञान दे ।

सोम इद्वः सुतो अस्तु कलयो मा विभीतन ।

अपेक्षे ध्वस्मायति स्वयं ध्रैषो अपायति ॥ १५ ॥ ५० ॥

भा०—हे (कलयः) उक्त ज्ञानवान् कर्मशील पुरुषो ! (वः) आप का (सोमः) ज्ञान, ऐश्वर्य (सुतः अस्तु) सदा उत्पन्न हो । आप (मा विभीतन) भय मत करो । (ध्रैषः) यह ज्ञान के उदय होने पर तेज से अन्धकारवत् (अप ध्वस्मायति इत्) स्वयं नष्ट हो जाता है, (स्वयं च ध्रैषः अपायति) यह आप ही दूर हो जाता है । इति पञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

[ ६७ ]

मत्स्यः सांमदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ऋषयः ॥  
 आदित्या देवताः । छन्दः—१—३, ५, ७, ९, १३—१५, २१ निचृद्  
 गायत्री । ४, १० विराड् गायत्री । ६, ८, ११, १२, १६—२० गायत्री ॥

त्यान्नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान्याचिषामहे ।

सुमृलीकाँ अमिष्टये ॥ १ ॥

भा०—हम (तान्) उन (क्षत्रियान्), बलशाली (सुमृलीकान्) उत्तम सुखप्रद, (आदित्यान्) किरणों वा मासों के समान तेजस्वी, कर आदि लेने वाले, क्षत्रियों को (अमिष्टये) सुखप्राप्ति के लिये (अवः आचिषामहे) विनय से रक्षा, ज्ञानादि की याचना करें ।

मित्रो नो अत्यंहति वरुणः पर्षदर्यमा ।

आदित्यासो यथा विदुः ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) सखी जन (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता न्यायकारी जन और (आदित्यासः) तेजस्वी अड़तालीस



वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक जन भी (यथा विदुः) जैसे अच्छा जानें वैसे (नः) हमें (अंहतिं अतिपर्पत्) पाप से पार करें।

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं वरूथमस्ति दाशुषे । आदित्यानामरुद्धकृते ३

भा०—(तेषां आदित्यानां) उन विद्वान् जनों का (अरुद्धकृते) अत्यन्त अधिक श्रम करने वाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) स्तुत्य (वरूथम्) दुःखवारक धन (असि) है।

महिं वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन् । अवांसि वृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (वरुण मित्र अर्यमन्) श्रेष्ठ ! स्नेहवन् ! न्यायकारिन् ! (वः महताम्) आप वरुणों का (महि अवः) ज्ञान, पालन, सामर्थ्य बढ़ा है। आप से हम (अवांसि वृणीमहे) ज्ञानों, रक्षाओं की याचना करते हैं।

जीवान्मो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात् ।

कद्धं स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥ ५१ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो ! (पुरा हथात्) मृत्यु से पहले आप लोग (नः जीवान्) हम जीवित जनों को (अभि धेतन) पालन पोषण करें, हे (हवन-श्रुतः) आह्वान सुनने वाली ! आप (कद्धं स्थ) कहीं भी होवो, इस व्रत का पालन करो। इति इत्येकपञ्च-शतमो वर्गः ॥

यद्वा श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः ।

तेनां नो अधि वोचत ॥ ६ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यद् वरूथम्) जो तुम लोगों का दुःखादि वारण-योग्य धन और (यत् छर्दिः) जो गृह है वह (श्रान्ताय) श्रम-शील तपस्वी और (सुन्वते) उपासक जन के लिये हो। (तेन) उसी तपस्वी और उपासकजन द्वारा (नः अधि वोचत) हमें उपदेश करो।

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः ।

आदित्या अङ्गुतैनसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अंहोः) हिंसक एवं पापकारी पुरुष का पाप या कष्ट भी (उच अस्ति) बढ़ा अधिक होता है और (अनागसः) निरपराधी को (रत्नं उच अस्ति) सुख भी बहुत है । हे (आदित्याः) अदिति, उत्तम माता पिता के उत्तम पुत्रो ! एवं विद्वान् तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग (अङ्गुत-एनसः) पापरहित, निरपराधी होवो ।

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नृस्परि ।

इन्द्र इच्छि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥

भा०—(सेतुः) बन्धन, वा बन्धनकारी अधिकारी (नः मा सिषेत्) हमें बन्धन में न बांधे । (अयं) यह (नः) हमें (महते) बड़े उद्देश्य के लिये (परि वृणक्तु) दुरे काम से बचावे । (इन्द्रः इत् हि) इन्द्र ही (वशी श्रुतः) सबको वश करने वाला वेद में सुना या बतलाया है ।

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः ।

देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा के इच्छुक विद्वान् मनुष्यो ! (रिपूणां) शत्रुओं और (वृजिनानां मृचा) पापों के विनाशक साधन से (नः मा अभि प्र मृक्षत) हमारा नाश मत होने दो ।

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृलीकामभिष्टये ॥ १०।१२॥

भा०—हे (महि) पूज्ये ! हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) पुथिवि ! मातः (उत) और मैं (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखदायिनी, (त्वाम्) तुझसे (अभिष्टये) अभीष्ट पूर्ति के लिये (उप ब्रुवे) याचना करता हूँ । इति द्वापञ्चाशत्तमो वर्गः ॥



पर्विं दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः ।

माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥ ११ ॥

भा०—हे (उग्रपुत्रे) शत्रु-भय दाता पुत्रों की मातः ! तू (जिघांसतः) हनन की इच्छा वाले पुरुष से हमारी (दीने) दीन दशा में और (गभीरे) अन्धकारादि में भी (पर्विं) रक्षा कर । (नः तोकस्य) हमारे सन्तान को (माकिः रिषत्) और कोई भी न मार सके ।

अनेहो न उरुव्रज उरुचि वि प्रसर्तवे ।

कृधि तोकाय जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे (उरु-व्रजे) दूर २ तक जाने वाली ! हे (उरुचि) बहुत वेग से जाने वाली ! तू (नः) हम (अनेहः) निरपराधों को (वि प्रसर्तवे) विविध दिशाओं में जाने के लिये हो और (तोकाय) पुत्रादि के (जीवसे) जीवन के लिये (कृधि) उपाय कर । दूर देशों तक जाने वाली वैश्य-सभा वा उनकी संस्था और गमनागमन साधनों की व्यवस्था कारिणी संस्था 'उरुव्रजा' और 'उरुची' नाम से कही गई प्रतीत होती हैं ।

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः ।

व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥ १३ ॥

भा०—(ये) जो (क्षितीनां) भूमियों में बसी ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओं के (मूर्धानः) शिरोमणि, प्रमुख पुरुष हैं वे (अदब्धासः) अहिंसक (स्वयशसः) धन और यश से संपन्न हों और (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (व्रता रक्षन्ते) व्रत, उत्तम कर्मों, नियमों और अजों की रक्षा करें ।

ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत ।

स्तेनं बद्धमिवादिते ॥ १४ ॥

भा०—(आदित्यासः) हे तेजस्वी पुरुषो ! हे (अदिते) अखण्ड आसनकारिणि ! प्रभुशक्ते ! तू (बद्धम्-इव स्तेनं) बंधे चोर के समान

बन्धन में बद्ध (नः) हमें (वृकाणां आत्मनः) भेड़ियों के तुल्य मुंह फाड़ कर खाने को आने वाले दुष्ट हिंसकों के मुखों से (मुमोचत) छुड़ाओ।

अपो पु णा इयं शस्त्रादित्या अप दुर्मतिः।

अस्मद्वेत्वजघ्नुषी ॥ १५ ॥ ५३ ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी, अखण्ड व्रत करने हारो ! (इयं शस्त्रः) यह हिंसाकारी (नः अपो एतु) हमसे दूर हो और (इयं दुर्मतिः) यह दुष्ट मति और दुष्ट शस्त्रादि (अजघ्नुषी) हमें पीड़ित न करती हुई (अस्मत् अप एतु) हमसे दूर हो। इति त्रिपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम्।

पुरा नूनं वुंभुज्महे ॥ १६ ॥

भा०—हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दानशील, अखण्ड तेजस्वी जनो ! (वः) आप लोगों की (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (वयं शश्वत् हि) हम सदा ही (पुरा नूनं) पहले के समान (वुंभुज्महे) नाना ऐश्वर्यों का भोग करें।

शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः।

देवाः कृणुथ जीवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्तम चित्त और उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुषो ! हे (देवाः) दानशील ज्ञानी पुरुषो ! (एनसः) पाप से दूर (प्रतियन्तं) विरुद्ध दिशा में जाने वाले, या पापों का मुकाबला करने वाले (शश्वन्तं) बहुत से जनसमाज को (जीवसे कृणुथ) दीर्घ जीवन के लिये तैयार करो।

तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति।

बन्धाद् बद्धमिवादिते ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी गुरु के शिष्यो ! वा भूमि-माता के पुत्रो ! और हे (अदिते) मातृवत् पूज्य ! (बद्धम् इव) बद्ध पुरुष के



समान कर्मबन्धन में बंधे पुरुष को (यत्) जो ज्ञान (मुमोचति) मुक्त कर देता है (तत्) वह (नव्यं), उपदेष्टव्य ज्ञान (सु सन्यसे) अच्छी प्रकार सेवनीय हो ।

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे ।

यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १६ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) ज्ञानी पुरुषो ! (अस्माकं तत् तरः न अस्ति) हमारे पास वह बल नहीं है जो (अति-स्कदे) बन्धनों और कष्टों से पार ले जाने में समर्थ हो । (यूयस्) तुम (अस्मभ्यं) हमें सुख दो ।

मा नो हेतिर्विष्वत्त आदित्याः कृत्रिमा शरः ।

पुरा तु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! (विष्वत्तः) विविध प्रजाओं के स्वामी राजा की (कृत्रिमा) शिल्पी आदि से बनाई गई, (शरः) प्राण या जीवन का नाश करने वाली (हेतिः) शस्त्र-पीड़ा, (नः) हमें (जरसः पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (मा वधीत्) न मारे ।

वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।

विष्वन्वि बृहता रपः ॥ २१ ॥ ५४ ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी जनो ! आप लोग (द्वेषः वि षु बृहत) शत्रुओं को विविध प्रकार से अच्छी प्रकार नष्ट करो । (अंहतिम् वि) पाप को समूल उखाड़ो । (संहितम् वि) बन्धन को दूर करो और (रपः विश्वक् वि) विश्वों को भी सब प्रकार से उखाड़ दो । इति चतुःपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

[ ६८ ]

प्रियमेव ऋषिः ॥ १—१३ इन्द्रः । १४—१६ ऋक्षाश्चमेघयोर्दानस्तुति-  
 देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ४, ७ विराडनुष्टुप् । १० निचृदनुष्टुप् ।  
 २३, १५ गायत्री । ५, ६, ८, १२, १३, १७, १६ निचृद् गायत्री ।  
 ११ विराड् गायत्री । ९, १४, १८ पादनिचृद् गायत्री । १६ आर्ची  
 स्वराड् गायत्री ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा रथं रथोतये सुज्ञाय वर्तयामसि ।

तुविकूर्मिमंतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (उतये) रक्षार्थ (तुवि-  
 कूर्मि ऋति-सहं रथं वर्तयामः) बहुत तीव्र गति से चलने वाले, बहुत  
 कार्यों में जाने वाले, गमन में समर्थ रथ को प्रयोग में लाते हैं वैसे ही  
 हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! हे (सत्-पते) सज्जनों के पालक ! सत्,  
 कारण पदार्थों के स्वामिन् ! (तुवि-कूर्मिम्) बहुत से सृष्ट्यादि कर्मों के  
 कर्त्ता, (ऋतिवहं) दुःखदायी हिंसकों को पराजित करने वाले, (त्वा)  
 तुझको हम (सुज्ञाय) सुख प्राप्ति के लिये (आ वर्तयामसि) पुनः २  
 तेरा चिन्तन करें ।

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।

आ पप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शुष्म) बहुत बलों से सम्पन्न, प्रचुर शक्तिमन् !  
 (तुविक्रतो) बहुत प्रज्ञासम्पन्न ! हे (शचीवः) शक्ति, वाणी के स्वामिन् !  
 तू (महित्वना) महान् सामर्थ्य से हे (मते) मनन करने हारे ज्ञानमय !  
 (विश्वया आ पप्राथ) तू ही समस्त विश्व को फैलाता है ।



यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।

हस्ता वज्रं हिरण्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (हस्ता) दोनों हाथ (महिना) महान् शक्तिमान् (महेः) बड़े (ज्मायन्तं) भूमि तक व्यापने वाले (हिरण्यम्) तेजोमय (वज्रं) वीर्यवत् शस्त्र को (परि ईयतुः) वश करते हैं ।

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।

एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! (अनानतस्य) न झुकने वाले (विश्वानरस्य) समस्त मनुष्यों के बने (शवसः) बलवान् सैन्य के (पतिम्) स्वामी को (चर्षणीनाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों के (एवैः) गमनागमनों द्वारा (हुवे) बुलाता हूँ ।

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीलहेषु यं नरः ।

नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस (सदावृधं) सदा बढ़ाने वाले को (स्वः-मीढेषु) संग्रामों में (नाना नरः) नाना नायक जन (ऊतये) रक्षा और श्रुति के लिये (हवन्ते) प्रमुख स्वीकार करते हैं । इति प्रथमो वर्गः ॥

परोमात्रमृचीषमभिन्द्रमुग्रं सुरार्धसम् । इशानं चिद्वसूनाम् ॥ ६ ॥

भा०—(परः-मात्रम्) सब परिमाणों से परे, सूक्ष्म और अनन्त (ऋचीषम्) ऋचा द्वारा समान रूप से स्तुत्य (भिन्द्रम् उग्रं सु राधसम्) ऐश्वर्ययुक्त, धनादि सम्पन्न (वसूनां चित् ईशानम्) प्रजा के राजा के समान समस्त जीवों और लोकों के स्वामी की मैं (हुवे) स्तुति करता हूँ ।

तं तमिद्रार्धसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।

यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशं कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (नृतुः) सबका नेता और (कृष्टीनाम्) कृषि योग्य

भूमियों के स्वामिवत् समस्त प्रजाओं का (ईशे) प्रभु है, (तं-तस् इत्) निश्चय उस ही (इन्द्रम्), ऐश्वर्यदाता प्रभु को लक्ष्य करके (पूर्वाम्) पूर्व की, श्रेष्ठ, (अनु-स्तुतिम्) अनुरूप स्तुति को (पीतये) पालन या रक्षा के लिये (चोदामि) करता हूँ ।

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः ।

नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शवसान) बलशालिन् ! (यस्य ते) जिस तेरे (सख्यम्) मित्रभाव को (मर्त्यः) मनुष्य (न आनंश) नहीं प्राप्त करता, नहीं जान पाता, उन तेरे (शवांसि) बलों को भी (नकिः नशत्) कोई पा नहीं सकता । तेरी मित्रता और बल दोनों अपार और अनन्त हैं ।

त्वोतांसस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम् ।

जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन् ! (त्वा उतासः) तेरे से सुरक्षित और (त्वा युजा) तेरे से सहायवान् होकर हम (अप्सु सूर्ये) अन्तरिक्ष और सूर्य के समान प्रजा और सूर्यवत् राजा के अधीन रहकर (पृत्सु) संग्रामों में (महद् धनम् जयेम) बड़ा धन विजय करें ।

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे गीभिर्गिर्वणस्तम ।

इन्द्र यथा विदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (गिर्वणस्तम इन्द्र) वाणी द्वारा अतिस्तुत्य प्रभो ! (यथा-चित् वाजेषु) जैसे संग्रामों में तू (पुरु-माय्यं) बहुत मतिमान् और बहुतों में मान्य पद की (आविथ) रक्षा करता है, (तं त्वा) उस तेरी (गीभिः यज्ञेभिः) वाणियों और यज्ञों से (इमहे) स्तुति करें । इति द्वितीयोऽवर्गः ॥



यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्विवः ।

यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरा (सख्यं स्वादु) मित्रभाव सुखप्रद और (प्रणीतिः स्वाद्वी) उत्तम नीति भी सुखद है वह तू (यज्ञः) उपासना-योग्य और (वितन्त-साय्यः) विशेषतः एकाम्र चित्त से ध्यान-योग्य है ।

उरु शस्तन्वे तनं उरु क्षयाय नस्कृधि ।

उरु शो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः तन्वे) हमारे शरीर के सुखार्थ, (तने) पुत्रादि के लिये और (क्षयाय) हमारे निवास और ऐश्वर्य वृद्धि के लिये, (उरु कृधि) बहुत कुछ कर और (नः जीवसे उरु यन्धि) हमें जीवन के लिये बहुत कुछ प्रदान कर ।

उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (नृभ्यः उरुं) मनुष्यों के हितार्थ बड़ा (पन्थाम्) मार्ग, (गवे) गवादि जन्तुओं के लिये (उरु पन्थाम्) बहुत बड़ा मार्ग और (रथाय उरुं पन्थाम्) रथ के लिये बड़ा मार्ग और (देव-वीतिं) विद्वानों का उत्तम ज्ञान, प्रकाश तथा दान-वान् पुरुष की नीति, रक्षा, बल, कान्ति छी (मनामहे) याचना करते हैं ।

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हस्यी ।

तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥

भा०—(द्वा-द्वा) दो-दो करके (नड् नरः) छः नायक (सोमस्य हस्यी) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष से मानो सुप्रसन्न, (स्वादु-रातयः) सुखप्रद दानों से युक्त होकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरे पास उपस्थित होते हैं । अर्थात् 'सोम' वा धीर्य की रक्षा से उत्पन्न हर्ष, सुख, आनन्द से दृष्ट पुष्ट

जोड़े जोड़े ६ नायक आंख, नाक, कान, उत्तम सुस्वादु, ज्ञान, बल प्रदान करते हुए मुझे प्राप्त हैं ।

ऋज्राचिन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सुनवि ।

आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(आश्वमेधस्य) अश्व, भोक्ता आत्मा वा अश्ववत् इन्द्रिय मन से संयुक्त (ऋक्षस्य) जंगम शरीर के (सुनवि) प्रेरक (इन्द्रोते) आत्मा से रक्षित इस शरीर रूप राष्ट्र में (ऋज्रौ) ऋजु मार्ग से जाने वाले, (रोहिता हरी) अन्न आदि से पुष्ट, दो अश्वोंवत् प्राण-अपान को मैं (आददे) वश करूं । इति तृतीयो वर्गः ॥

सुरथी आतिथिग्वे स्वभीशूराक्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥ १६ ॥

भा०—(आतिथिग्वे) अतिथि के सत्कारार्थ वाणी को विनय से प्रयोग करने वाले, (आक्षे) शत्रु पर आक्रमण में दक्ष, (आश्वमेधे) अश्व-सैन्य से शत्रुओं का संग्राम रूप यज्ञ करने वाले, वीर के अधीन (सुपेशसः) उत्तम रूपवान्, (सु-अभीशून्) उत्तम लगामों से युक्त (सुरथान्) उत्तम रथ वाले अश्वों के समान, धनादि से सम्पन्न, (सु-अभीशून्) सुअवयवों से युक्त, (सुरथान्) उत्तम रथारोही, वीर पुरुषों को मैं (आददे) राष्ट्र में नियुक्त करूं ।

वधूभ्यो आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पृतक्रतौ सनम् ॥ १७ ॥

भा०—(आतिथिग्वे) पूज्य के सत्कारक, विनीत वाणी वाले (इन्द्रोते) ऐश्वर्य-युक्त, (पृत-क्रतौ) पवित्र कर्म-ज्ञान वाले पुरुष के अधीन (वधू-मतः पद अश्वान्) 'वधू' अर्थात् शत्रु का वध करने वाली सैन्य शक्ति से युक्त छः अश्वसैन्य के स्वामी सेनापतियों को मैं (सचा) एक साथ ही (सनम्) प्राप्त करूं । (२) अध्यात्म में—पवित्राचारवान् पावन-प्रज्ञ, वाणी के स्वामी आचार्य के अधीन रहकर मैं वहनकारिणी प्राण



या चेतना शक्ति से युक्त चक्षु आदि पांच और छठा मन इन्द्रियों को मैं शिष्य वश करूं ।

एषु चेतद्वृषणवत्यन्तर्ज्ज्वरुषी । स्त्रभीशुः कक्षावती ॥ १८ ॥

भा०—(एषु ऋज्वेषु) इन ऋजु, धर्म मार्ग में चलने वाले विद्वानों के ऊपर (वृषणवती) बलवान् पुरुषों वा सभापति वाली, (अरुषी) तेज-स्विनी, (सु-अभीशुः) सुप्रबद्ध नियम-व्यवस्था से सम्पन्न (कक्षावती) वाणी, वा आज्ञा की स्वामिनी राजसभा (आचेतत्) सब कुछ विचार किया करें ।

न युष्मे वाजवन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः ।

अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजवन्धवः) राष्ट्र में ऐश्वर्य और अज्ञादि देतनों पर बंधे नियुक्त पुरुषों ! (युष्मे) तुम लोगों में से कोई भी (मर्त्यः निनित्सुश्चन) मनुष्य निन्दा करने वाला होकर (अवद्यन् न अधि दीधरत्) निन्दनीय कार्य, दुष्ट फल को न धारण करे । अर्थात् कोई भी परस्पर की निन्दा वा बुरा काम न करे । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[ ६६ ]

प्रियमेध ऋषिः ॥ देवताः—१—१०, १२—१८ इन्द्रः । ११ विष्णो देवाः । ११, १२ वरुणः ॥ छन्दः—१, ३, १८ विराडनुष्टुप् । ७, ९, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप् । ८ पादनिचृदनुष्टुप् । १४ अनुष्टुप् । २ निचृदुष्णिक् । ४, ५ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ११ पंक्तिः । १६ निचृत् पंक्तिः । १७ बृहती । १८ विराड् बृहती ॥ अष्टादशशर्चं सूक्तम् ॥

प्रप्र वश्निषुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।

धिया वो मेधसांतये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (मन्दद्-वीराय) सुतृप्त वीर

पुरुषों के स्वामी वा वीरों को हर्षित करने वाले, (इन्द्रवे) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (त्रि-स्तुभम्) मन, वाणी, कर्म तीनों से स्तुति करने योग्य, तीनों दोषों के नाशक (इष्टं) अन्न और सैन्य को (प्र-प्र) उत्तम प्रकार से प्रदान करो । वह (पुरन्ध्या धिया) राष्ट्र या पुर की धारक सद्-बुद्धि से (वः) आप लोगों की (मेघ-सातये) ऐश्वर्य की प्राप्त करने और यज्ञ वा युद्ध के निभाने के लिये (आ विवासति) सब प्रकार से सेवा करें ।

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।

पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ २ ॥

भा०—(ओदतीनां) स्तुति करती हुई (वः) आप प्रजाओं को (नदं) समृद्ध करने वाले और (योयुवतीनां) सर्वत्र मेल रखने वाली प्रजाओं के (नदं) आज्ञापक, (अघ्न्यानां) न मारने योग्य, रक्षा-योग्य (धेनू-नाम्) गौवत् अन्नदाता और (वः) आप प्रजाजनों के (पतिं) पालक को आप लोग चाहो और, हे राजन् ! तू भी इन (धेनूनां अघ्न्यानां ओद-तीनां योयुवतीनां) गौओं के तुल्य न मारने योग्य स्तुति-युक्त, तुझसे मेल रखने वाली प्रजाओं की (इषुध्यसि) चाहना कर, हृदय से चाह ।

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।

जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ३ ॥

भा०—वे (पृश्नयः) मेघमाला के समान ऐश्वर्य-वर्षक वा उससे स्पर्श अर्थात् सम्बन्ध रखने वाली (विशः) प्रजाएं (सूददोहसः) जल-प्रदाता मेघों के समान (अस्य) उसके (सोमं) अन्नवत् ऐश्वर्य को (श्री-णन्ति) प्राप्त कराती हैं और (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिषु) तीनों लोकों में (रोचने) प्रकाश करने वाले और (देवानां जन्मन्) विद्वानों के बीच जन्म लेने के लिये शुभ गुणों के आश्रय पर उसे स्था-पित या प्राप्त करते हैं ।



अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्चं यथा विदे ।

सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—(यथा विदे) यथावत् ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये, (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक, एवं सत् अविनाशी पदार्थों के स्वामी (सत्यस्य सूनुं) सत्य के प्रेरक, सत्य के उत्पादक, उपदेशक (गोपतिं) जितेन्द्रिय, वाणी के पालक, भूमि के पालक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (अभि प्र अर्चं) साक्षात् स्तुति कर ।

आ हरयः ससृज्जिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सन्नवामहे ॥ ५ ॥

भा०—(यत्र) जहां हम सब (अभि सं-नवामहे) ऐश्वर्यवान् की साक्षात् स्तुति करें, उस (बर्हिषि अधि) राष्ट्र, प्रजा वा उत्तमासन पर स्थित (हरयः) उत्तम विद्वान् गण (अरुषीः) उत्तम २ वाणियां (आ ससृज्जिरे) कहें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुहे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥ ६ ॥

भा०—(गावः आशिरं मधु) गौपं जैसे खाने योग्य मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं वैसे ही (इन्द्राय वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के (मधु) मधुर (आशिरं) व्यापक स्वरूप की (गावः) वेदवाणियां (दुदुहे) दोहन करती हैं, उसी का प्रतिपादन करती हैं, (यत्) जो (उपह्वरे) अति समीप एकान्त देश में (विदत्) जाना और प्राप्त किया जाता है ।

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वाहि ।

मध्वः पीत्वा संचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

भा०—मैं और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् प्रभु दोनों (ब्रध्नस्य) वन्धन में बांधने वाले आश्रयभूत स्वामी के (विष्टपं=वितपं) ताप-दुःखादि से रहित (गृहम् उद् गन्वाहि) गृह को उत्तम रीति से प्राप्त हों और (मध्वः पीत्वा) मधुर दुग्धादि का पान या मधुपर्कादि ग्रहण करके (त्रिः)

मनसा, वाचा, कर्मणा (सख्युः सप्त पदे) मित्र के सातवें पद पर (सचे-  
वहि) हम दोनों मिलकर रहें । इस प्रकार वधू वर से कहे । अथवा—  
(सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) मित्र सखा के  $3 \times 7 = 21$  वैष्ण्व पद  
पर दोनों मिलें । सखा होने के सात पद-चरण—१. हृष, २. ऊर्ज,  
३. शयस्पोष, ४. मायोभक्ष्य, ५. प्रजा, ६. क्रतु, ७. सद्यभाव ।  
(पारस्कर गृ०)

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत ।

अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्णवर्चत ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रिय-मेधासः) अन्न, वाणी आदि के प्रिय जनो ! हे  
(पुत्रकाः) ज्ञानों के रक्षक वीर पुरुषो ! आप लोग उस परमेश्वर को  
(अर्चत, प्र अर्चत, अर्चत) स्तुति करो, खूब स्तुति करो, स्तुति करते  
रहो । (उत अर्चन्तु) आप लोग अर्चना करो, उसको (धृष्णुं पुरं न)  
शत्रु पराजय में समर्थ दृढ़ दुर्ग के समान सबका पालक जानकर उसकी  
(अर्चत) पूजा करो ।

अर्चं स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।

पिङ्गा परि चनिष्कटदिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

भा०—(गर्गरः अर्च स्वराति) उपदेष्टा अधीनों को उपदेश करता  
है, (गोधा) वाणी का धारक जन भी ज्ञान को (परि सनिष्वणत्) सब

ॐ यह २१वां पद कौन-सा है ? इस सम्बन्ध में सायण ने पेटरेय  
ब्राह्मण (१।३०) का वचन उद्धृत किया है—त्रिःसप्तत्यनेन देवल्लोका-  
नामुत्तममेकविंशस्थानमुच्यते । आदित्यस्यैकविंशत्वात् । तथा च ब्राह्म-  
णम् । द्वादश मासाः पञ्चतंवस्य इमे लोकाः असावादित्य एकविंश इति ।  
इसके अनुसार भी १२ मासों, पाँचों क्रतुओं और तीनों लोकों में दोनों  
संग रहें यह अभिप्राय निकलता है ।



और उपदेश करे । (पिङ्गा) मनोहर शब्द बोलने में चतुर गायक मण्डली वा वादित्रमण्डली भी (इन्द्राय) उस परमेश्वर की (उद्-यत्तम्) उत्तम (ब्रह्म) वेद-स्तुति का (परि चनिष्कदत्) सर्वत्र वर्णन करे ।

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।

अपस्फुरं गृभायत् सोममिन्द्राय पातवे ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जैसे (अनपस्फुरः) न बिदकने वाली (सुदुघाः) सुख से दोहने योग्य (ऐन्यः) श्वेत वर्ण की गौएं (आपतन्ति) आ जाती हैं तब (इन्द्राय सोमं पातवे) स्वामी के निमित्त दुग्धपान के लिये (अप-स्फुरं) उद्वेगरहित शान्त गौ को ले लिया जाता है वैसे ही (ऐन्यः) शुद्ध चरित्र वाली प्रजाएं (यत्) जो (अनपस्फुरः) अ-भ्रष्टमार्ग वाली, उत्पथ में न जाने वाली और (सु-दुघाः) धनादि से पूर्ण और राजा को भी धनादि से पूर्ण करने वाली हों । उनमें से भी (इन्द्राय सोमं पातवे) राजा के ऐश्वर्य की रक्षार्थ (अप स्फुरं) अराजकतादि से रहित प्रजा को (गृभायत्) वश करो । इति षष्ठो वर्गः ॥

अपादिन्द्रो अपादिग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।

वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रः अपात्) शत्रुनाशक पुरुष प्रजा की रक्षा करे, (अग्निः अपात्) तेजस्वी पुरुष प्रजा की रक्षा करे । (विश्वे देवाः) सब विद्वान् जन (अमत्सत) सन्तुष्ट होकर रहें, (इह वरुणः इत् क्षयत्) यहां इस राष्ट्र में वरुण, सबसे वरणीय श्रेष्ठ पुरुष ही निवास करे । (तम्) उसकी (आपः) आस प्रजाएं भी (वत्सं संशिश्वरीः इव) बछड़े की उत्तम शिशुओं वाली गौओं के समान, प्रेम-युक्त (संशिश्वरीः) शिशुवत् शरण में प्राप्त होकर (वत्सं) सबको बसाने में समर्थ वा (वत्सं) अभिवादन योग्य पुरुष को पाकर (अभि अनूषत) उसकी साक्षात् स्तुति किया करें ।

सुदेवो असि वरुणा यस्य ते सप्त सिन्धवः ।  
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्यं सुषिरामिव ॥ १२ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय आचार्य ! (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदं अनु) तालु के प्रति (सप्त) सातों छन्द (सिन्धवः) बहते नदधारों के समान (सुषिराम् सूर्यं) छिद्रवती लोह की नली में जल धारा के समान (अनुक्षरन्ति) बहती हैं वह तू (सुदेवः असि) उत्तम ज्ञान-प्रकाशक है ।

यो व्यतीरँफाणयत् सुयुक्तां उप दाशुषे ।  
तक्वा नेता तद्विद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (दाशुषे) दाता के लाभार्थ (सुयुक्तां) उत्तम पदों पर नियुक्त (व्यतीन्) विशेष वेगवान्, बल युक्त साधनों वाले जनों को (अफाणयत्) संचालित करता है, (तद् इव) वही (तक्कः) शत्रुहन्ता, (नेता) नायक, (वपुः) शत्रु को उखाड़ने में समर्थ है (यः) जो (उपमा) सर्वोपमान योग्य (अमुच्यत) बन्धन मुक्त होता है और अन्य को भी मुक्त करता है ।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।  
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥

भा०—(इन्द्रः) तेजस्वी वीर और विद्वान् (विश्वाः द्विषः अति) समस्त द्वेषियों को अतिक्रमण कर, उनसे बढ़कर (शक्रः) शक्तिशाली होकर (अति इव उ) अति अधिक ही (ओहत) बढ़ जाता है । जैसे (पच्यमानं ओदनं) पकते हुए चावल को कान्तियुक्त अग्नि (भिनत्) भेद देता है, उसका दाना दाना अलग कर देता है और जैसे (कनीनः) कान्तियुक्त सूर्य (पच्यमानं ओदनं) प्रकट हुए मेघ को (भिनत्) तेज से छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही गुरु से तत्त्वदर्शी विद्वान् (कनीनः)



तेजस्वी कनिष्ठ शिष्य होकर (गिरा) वाणी द्वारा (पच्यमानं) प्रकट किये जाते हुए (ओदनं) प्रजापति के (परः) परम स्वरूप को (भिनत्) और अधिक खोले, उसको लक्ष्यवत् भेदे। पच्यमानं—पचि विस्तारवचने।

अ०—अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथं ।

स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥

भा०—(अर्भकः कुमारकः न) जैसे छोटे शरीर, अल्प आयु का युवराज (नवं रथं अधि तिष्ठन्) नये रथ पर बैठ कर (मात्रे पित्रे) माता पिता की प्रसन्नता के लिये (विभु-क्रतुम्) बड़े सामर्थ्यवान् (महिषं मृगं) बड़े अश्वों को (पक्षत्) वश कर लेता है। जैसे ही राजा भी (नवं रथं अधितिष्ठन्) नये रथवत् रमणीय, ऐश्वर्ययुक्त राज्य को अधिष्ठित होता हुआ (विभु-क्रतुम्) अधिक प्रज्ञावान् (महिषं) पूज्य (मृगं) चरित्र-वान् पुरुष को (मात्रे पित्रे) माता पिता के योग्य पद के निमित्त अपने ऊपर (पक्षत्) स्वीकार करे।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्यम् ।

अधं द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (सु-शिप्र) उत्तम नासिका वा हनु, मुकट और रूप वाले ! हे (दम्पते) जाया-पालक गृहपते ! तू (हिरण्यम्) हितकारी रमणीय (रथं) रथवत् गृहस्थ रथ पर (आतिष्ठ तु) विराज। पत्नी कहती है—(अध) और हम दोनों (द्युक्षं) अति दीप्तियुक्त (सहस्र-पादं) दृढ़ चरण या आधार वाले (अरुषं) रोग-रहित (स्वस्ति-गाम्) कुशल, सुख-शान्तिदायक वाणी से युक्त, (अनेहसम्) पाप चेष्टा से रहित, रथवत् गृह, या उत्तम व्यवहार को (सचेवहि) धारण करें।

तं धैमिथा नमस्विन उप स्वराजमासते ।

अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति द्रावने ॥ १७ ॥

भा०—जैसे राजा के (सु-धितम्) उत्तम रीति से धारित (अर्थ) ऐश्वर्य को (एतच्चे) प्राप्त करने के लिये (दावने) दान देने के लिये (भावर्तयन्ति) पुनः २ आपस में लेते-देते हैं और इस प्रकार (नमस्विनः) अन्नादिदान प्रजाजन (स्वराजम्) अर्थ-धनादि से प्रकाशित राजा की (उपासते) उपासना करते हैं। जैसे ही (अस्य सुधितं अर्थ एतच्चे दावने) इस प्रभु के सुष्ठु धारित अभिप्राय को जानने के लिये भी (यत्) जो उसका (भावर्तयन्ति) पुनः-पुनः अभ्यास करते हैं वे (घ) निश्चय से (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) विनीत होकर (स्वराजम् उप आसते) स्वयं प्रकाशित प्रभु की उपासना करते हैं।

अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम्।

पूर्वाम्नु प्रयतिं वृक्तवर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१८॥७॥७॥

भा०—जैसे (प्रिय-मेधासः हित-प्रयसः वृक्तवर्हिषः जनाः पूर्वाम् प्रयतिं अनु आशत) अन्न के प्रियजन अपने गृह में अन्नसंग्रह और क्षेत्र में अन्नवपन कर बाढ़ धान्य काट कर अपने पहले प्रयत्न के अनुसार उसका उपभोग करते हैं जैसे ही (एषाम्) इन प्रजा-जनों के जीवों में से (प्रिय-मेधासः) ज्ञान और सत्संग के प्रिय जन (प्रहस्य ओकसः अनु) अपने पुराने गृह, देह के अनुरूप, (हितप्रयसः) उत्तम २ प्रयास वा कर्मफल में बढ़ होकर (वृक्त-वर्हिषः) कुशाओं के तुल्य अपने कर्म-फलों को काट कर, (पूर्वाम् प्रयतिम् अनु) पहले किये प्रयत्न के अनुरूप (आशत) कर्मफल, सुख-दुखादि भोग करते हैं। इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

[ ७० ]

पुरुहन्मा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् वृहती । ५, ७ विराड् वृहती । ३ निचृद् वृहती । ८, १० आर्ची स्वराड् वृहती । १२ आर्ची वृहती । ९, ११ वृहती । २, ६ निचृद् पंक्तिः । ४ पंक्तिः । १३ उष्णिक् । १५ निचृदुष्णिक् । १४ भुरिगनुष्टुप् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥



यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरग्निगुः ।

विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

भा०—(यः चर्षणीनां राजा) जो सब मनुष्यों में से सूर्यवत् दीप्तिमान् (रथेभिः याता) रथों से प्रयाण करने हारा, (अग्निगुः) जिसके आगे बढ़ने को कोई न रोक सके, ऐसा नायक, (यः विश्वासां पृतनानां) जो समस्त सेनाओं का नाश करने वाला, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों को दण्ड देने वाला है मैं (गृणे) उसकी स्तुति करूँ ।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्त्रसे यस्य द्विता विधर्तरि ।

हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरु-हन्मन्) बहुत शत्रुओं के नाश में समर्थ ! तू (अवसे) रक्षा के लिये (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यपद को (शुम्भ) सुशोभित कर (यस्य) जिसके (वि-धर्तरि) विशेष रूप से धारक के अधीन (द्विता) दो स्वरूप हैं, एक भीम जो (हस्ताय) शत्रुओं के हनन करने के लिये (वज्रः) बलवीर्य को (प्रतिधायि) धारण करता है और दूसरा कान्त जो (महः दर्शतः) बड़ा दर्शनीय और (दिवे सूर्यः न) आकाश में सूर्यवत् और पृथिवी पर तेजस्वी है ।

नकिष्टं कर्मणा नष्टयश्चकार सदावृधम् ।

इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्यावोजसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उसको (कर्मणा) कर्म द्वारा (नकिः नशत्) कोई प्राप्त नहीं कर सकता (यः सदावृधम्) जो सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से (विश्व-गूर्तम्) सर्व स्तुत्य (कृभ्वसम्) महान्, (अधृष्टं) अपराजित और (धृष्यु-भोजसम्) पराजयकारी बल से सम्पन्न (चकार) करता है वही उस तक पहुँचता है ।

अपाह्नलमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुज्यः ।

सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ ४ ॥

भा०—(यस्मिन् जायमाने) जिसके प्रादुर्भाव होते हुए (उरुजयः) अति वेग से युक्त, (महीः) बहुत सी भूवासिनी प्रजाएं वा सेनायें, (धेनवः) वस्त्र के प्रति गौवों के समान खेदयुक्त होकर, वा वाणियां उस (अपाहं) अपराजित, (उग्रं) बलवान् (पृतनासु सासहिं) संग्रामों में विजयकारी की (सं अनोनयुः) मिलकर स्तुति करती हैं, (क्षावः क्षामः) तेजस्वी सेनाएं वा कामनावान् प्रजाएं भी उसकी (सं अनोनयुः) मिलकर स्तुति करती हैं ।

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।

न त्वा वज्रिन्सहस्रं सूर्या अनु न ज्ञातमष्ट रोदसी ॥५॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (ते शतं द्यावः) तेरी सैकड़ों तेजस्विनी सेनाएं हों, (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियाँ हों । हे (वज्रिन्) बलवीर्यशालिन् ! (सहस्रं सूर्याः) हजारों सूर्य भी (न त्वा अनु स्युः) तेरे बराबर नहीं, (ज्ञातं त्वा अनु रोदसी) उत्पन्न या प्रकट हुए तेरे समान दुष्टों की बलाने वाली सेना भी (न अष्ट) तुझे नहीं व्याप सकती, तेरा स्थान नहीं पा सकती । इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ पप्राथ महिना वृष्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।

अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चत्रामिरुतिभिः ॥६॥

भा०—हे (वृषन्) बलवान् ! प्रजा पर सुखों और शत्रु पर शस्त्र-अस्त्रों के वर्षक ! हे (शविष्ठ) सर्वाधिक शक्तिशालिन् ! तू (महिषा शवसा) महान् बल से (विश्वा) समस्त (वृषणा) बलयुक्त कार्यों और सैन्यों को (अ पप्राथ) विस्तारित कर और हे (वज्रिन्) बलशालिन् ! हे (मघवन्) धनशालिन् ! (चित्राभिः कृतिभिः) अद्भुत रक्षाकारिणी क्रियाओं, सेनाओं से (गोमति व्रजे) भूमियों से युक्त कार्य या समूह में (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर ।



न समिदैव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।

एतन्वा चिद्य एतशा युयोजन्ते हरी इन्द्रो युयोजन्ते ॥ ७ ॥

भा०—हे (दीर्घायो) आयुष्मन् ! दीर्घ जीवन वाले (अदेवः मर्त्यः) अदानशील व दाता से रहित मनुष्य (सीम्) सब प्रकार की (इषं न आपत्) धन और शक्ति को नहीं प्राप्त करता । (यः) जो (एतन्वा चित्) अथे त वर्ण के वा शुद्ध चरित्रयुक्त स्त्री पुरुषों को भी (एतशा युयोजन्ते) उत्तम दो अश्वों के समान सम्मार्ग में चलाता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष (हरी युयोजन्ते) स्त्री पुरुषों को वश करता है ।

तं वो महो महाय्यमिन्द्र दानाय सक्षणिम् ।

यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (गाधेषु) प्रतिष्ठा के कर्मों में (यः आरणेषु) सब आनन्द प्रद अवसरों में (हव्यः) स्तुति योग्य है और जो (वाजेषु हव्यः अस्ति) सम्प्रार्मों में स्तुति योग्य है (तम्) उस (महः महाय्यं) महान् पूज्य (दानाय सक्षणिम्) दान पाने के लिये प्राप्त करने योग्य, वा शत्रु के विनाशार्थ शक्तिशाली को (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' जानो ।

उदूषु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।

उदूषु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) माता पितावत् प्रजा को बसाने हारे ! हे (शूर) तुष्टों के नाशक ! तू (महे राधसे) बड़े भारी धन के लिये (नः उत् सु मृशस्य उ) हमें उत्तम रीति से प्राप्त कर, हमें उन्नत कर और (मह्यै मघत्तये) बहुत ऐश्वर्य देने के लिये (उत् उ सु) हमें उठा और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (महे श्रवसे उत्) बड़े यश के लिये हमें उठा ।

त्वं न इन्द्र ऋतयुस्त्वानिदो नि तृप्सि ।

मय्ये वसिष्व तुविनुम्योर्वोर्नि दासं शिश्नथो हयैः ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे (कृत-युः) ज्ञान, यज्ञादि को चाहने वाला है । तू (त्वा-निदः) अपने निन्दकों को (वितृष्पसि) विनष्ट करता है । हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू (ऊर्वोः) जंवाओं पर हमें, बालक को पिता के तुल्य अथवा (ऊर्वोः) विशाल षाहुओं के आश्रय पर (वसिष्ठा) बसा और (दासं) विनाशक दुष्ट को (हथैः) शस्त्रों से (नि शिश्नथः) शिथिल कर । इति नवमो वर्गः ॥

अन्यत्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम् ।

अव स्वः सखा दुध्वीत पर्वतः सुभ्राय दस्युं पर्वतः ॥११॥

भा०—(सखा) प्रजा का मित्र (पर्वतः) पालनकारक साधनों से युक्त होकर, (पर्वतः) मेववत् शस्त्रवर्षी और पर्वत के समान अवल होकर, (सु-भ्राय) अच्छी प्रकार दण्ड देने के लिये (दस्युं) दुष्ट पुरुष को (स्वः) सुख से (अव दुध्वीत) कंपा कर गिरा दे । इसी प्रकार वह (अन्य-व्रतम्) शत्रु के समान कर्म वाले (अमानुषम्) मनुष्य से भिन्न पशुवत् और निर्दय, (अयज्वानं) अदानशील, (अदेवयुम्) दाता, विद्वानों वा उत्तम गुणों को न चाहने वाले को भी (अव दुध्वीत) कंपा कर नीचे गिरा दे ।

त्वं न इन्द्रासां हस्ते शविष्ठ दावने ।

धानानां न सं गृभायास्मयुर्द्विः सं गृभायास्मयुः ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (त्वं) तू (नः) हमें (दावन्) देने के लिये (अस्मयुः) हमारा हितैषी होकर (भासां) इन (धानानां) धाना अर्थात् लाजामों के समान उज्ज्वल, पुष्टिकारक गौवों और अन्न-समृद्धियों को (सं गृभाय) संग्रह कर अपने (हस्ते संगृभाय) हाथ में, वश में रख और (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ तू उनको (द्विः संगृभाय) दो बार या द्वागुना भी कर संग्रह कर ।



सखायः क्रतुमिच्छत कथा राधाम शरस्य ।

उपस्तुतिं भोजः सूरियो अह्वयः ॥ १३ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगणो ! आप लोग (क्रतुम् इच्छत) कर्म की इच्छा करो, हम लोग (शरस्य) बाणवत् शत्रुनाशक वीर पुरुष या बल को (कथा) किसी प्रकार से भी (राधाम) वश करें। (यः) जो (भोजः) सबका रक्षक, भोक्ता, (सूरिः) विद्वान् (अह्वयः) अपराजित है उसकी (उप-स्तुतिम् इच्छत) स्तुति करना चाहो।

भूरिभिः समह ऋषिभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।

यदित्यमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन् ! हे (समह) पूज्य ! हे (शर) शत्रु नाशक तू (बर्हिष्मद्भिः) आसनों, यज्ञों वा धन धान्यादि से सम्पन्न, (भूरिभिः) इस लोक वा प्रजा से युक्त बहुत से (ऋषिभिः) विद्वान् पुरुषों से भी (स्तविष्यसे) स्तुति किया जाता है। (यद्) जो तू (इत्थम्) इस प्रकार (एकम् एकम्) एक २ करके (वत्सान्) वत्सों के समान, इस लोक में वसे स्तुतिकारी नभ्रजनों को (परा ददः) अभिष्ट सुखों से युक्त करे।

कर्णगृहा मधवा शौरदेव्यो वत्सं नस्त्रिभ्य आनयत् ।

अजां सूरिर्न धातवे ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(सूरिः) विद्वान् पुरुष (धातवे) दुग्धपान कराने के लिये जैसे (अजां कर्णगृह्य) बकरी के कान पकड़ कर (वत्सं प्रति आनयत्) बछड़े के पास लाता वा बच्चे को कान पकड़ कर दूध पिलाने के लिये बकरी के पास ले जाता है वैसे ही (शौर-देव्यः) शूर और विजयीगीषु (मधवा) ऐश्वर्यवान् राजा (सूरिः) विद्वान् के समान (नः) हमारे (वत्सं) राष्ट्र में वसे प्रजाजन को और (अजां) शत्रु को उखाड़ देने वाली सेना को भी (कर्णगृह्य) कान से पकड़ कर अर्थात् कर्ण से श्रवण करने

योग्य उपदेश, आज्ञा-वचन सुनकर (त्रिभ्यः आनयत्) तीनों प्रकार के कष्टों से परे रखे। इति दशमो वर्गः ॥

[ ७१ ]

सुदीतिपुरुमीळ्हा तयोर्वान्यतर ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् गायत्री । २, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री । ३, ५ गायत्री ॥ १०, १३ निचृद् बृहती । १४ विराड् बृहती । १२ पादनिचृद् बृहती । ११, १५ बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं नो अग्ने महोभि प्राहि विश्वस्था अरातेः ।

उत द्विषो मर्त्यस्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्निवत् अग्रणी ! (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वस्थाः अरातेः) सब शत्रु सेना (उत) और (द्विषः मर्त्यस्य) शत्रु मनुष्य से भी (महोभिः) बड़े धनों द्वारा (प्राहि) रक्षा कर ।

नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात ।

त्वमिदं क्षपावान् ॥ २ ॥

भा०—हे (प्रिय-जात) उत्पन्न बालकवत् प्रजाओं को तू, सुखी करने हारे राजन् ! (वः) तुझ पर (पौरुषेयः मन्युः) मनुष्यों का क्रोध भी (नहि ईशे) नहीं वश कर सकता । (त्वम् इत् क्षपावान् असि) तू ही शत्रुओं का नाश कर देने वाली भारी सेनादि का स्वामी (असि) है ।

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे ।

रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपाद्) बल को न गिरने देने हारे ! हे (भद्र-शोचे) कल्याणकारी कान्ति वा तेज से सम्पन्न ! (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों द्वारा (विश्व-वारं) सबसे वरण करने योग्य (रयिं) धन (देहि) प्रदान कर ।



न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! प्रभो ! तू (यं दाश्वांस) जिस दान-शील की (त्रायसे) रक्षा करता है (तं मर्त) उसको (अरातयः) समस्त शत्रु भी (रायः) धन से (नः युवन्त) पृथक् नहीं कर सकते ।

यं त्वं विप्र मेधासांतावग्ने हिनोषि धनाय ।

स तत्रोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (मेध-सातौ) संग्राम वा यज्ञ में (त्वं) तू (धनाय हिनोषि) धन प्राप्ति के लिये उत्साहित करता है । (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहकर (गोषु गन्ता) वाणियों, भूमियों पर भी वश करने वाला होता है । इत्येकादशो वगः ॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! (त्वं) तू (पुरु-वीरं) बहुत पुत्रों, वीरों सहित (रयिं) ऐश्वर्य को (दाशुषे मर्ताय) दानशील मनुष्य को देता है । वह तू (नः वस्यः अच्छ नय) हमें उत्तम धन दे ।

उरुध्या णो मां परां दा अघायते जातवेदः । दुराध्वेभ्यो मर्ताय ॥७॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (दुराध्वेभ्यो मर्ताय) दुष्ट चिन्तक मनुष्य और (अघायते) पापकारी, हिंसक के हाथों (मां परां दाः) मत्त दे, उसके हितार्थ हमें मत्त त्याग ।

अग्ने माकिष्ठे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते देवस्य रातिम्) तुम्हारे दाता के दिये दान को (अदेवः माकिः युयोत) अदानशील व्यक्ति हम से पृथक् न करे । (त्वम् वसूनां ईशिषे) तू ऐश्वर्यों और मनुष्यों का स्वामी है । अर्थात् हमारे पारस्परिक लेन-देन की न्यायपूर्वक व्यवस्था कर ।

स नो वस्व उपमास्यूजो नपान्माहि नस्य ।

सखे वसो जरितृभ्यः ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपात्) बल को नष्ट न होने देने वाले ! हे (वसो) प्रजा को वसाने हारे ! न्यायकारिन् ! हे (सखे) स्नेहकारिन् ! मित्र ! त्व (नः) हममें से (जरितृभ्यः) उत्तम स्तुतिशील विद्वान् जनों को (माहि नस्य वस्वः उपमासि) उत्तम धन, ज्ञान प्रदान कर ।

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।

अच्छा यज्ञासो नमसा पुरुवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(नः गिरः) हमारी वाणिजां (शीर-शोचिषं) व्यापक तेज वाले, (दर्शतम्) दर्शनीय को (अच्छ यन्तु) लक्ष्य करके प्रकट हों और (ऊतये) रक्षा के निमित्त हमारे (यज्ञासः) यज्ञ, सत्संग, आदर-सत्कार भी (नमसा) विनयपूर्वक (पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त और बहुतों से प्रशंसित स्वामी को प्राप्त हों । इति द्वादशो वर्गः ।

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।

द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ ११ ॥

भा०—(सहसः सूनुं) बल के उत्पादक (जात-वेदसं) ऐश्वर्यावान्, (अग्निं) नायक को मैं (वार्याणां दानाय) वरण योग्य श्रेष्ठ धनदान करने के लिये जानूँ । (यः) जो (मर्त्येषु) मनुष्यों में भी (अमृतः) अमर (भूत्) होता है और (विशि) प्रजाओं में (मन्द्रतमः) अति हर्ष-युक्त और (होता) ज्ञानादि का दाता होता है इस प्रकार (द्विता) उसके ये दो रूप होते हैं ।

अग्निं वो देवयज्ययाग्निं प्रयत्यध्वरे ।

अग्निं धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्निं क्षैत्राय साधसे ॥ १२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों को मैं (देव-यज्यया) पर-



मेश्वर की पूजा के रूप में (अग्नि) अग्नि का उपदेश देता हूँ । (प्रयत्नि  
अध्वरै) यज्ञ के प्रवृत्त होने पर भी (अग्नि) अग्नि का आश्रय लो ।  
(धीषु) सब कामों में (प्रथमम्) सर्व प्रथम (अग्नि) इस प्रभु का स्मरण  
करो । (अवन्ति अग्नि) वेगवान् अश्व रथादि के निमित्त भी अग्नि का  
प्रयोग जानो । (क्षेत्राय साधसे) क्षेत्र अर्थात् देह में रहने वाले आत्मा  
की प्राप्ति के लिये भी (अग्निम्) अग्नि को दृष्टान्त रूप से जानें ।

अग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।

अग्निं तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वार्याणाम् ईशे) जो वरण करने योग्य धनों का  
स्वामी है वह (अग्निः) तेजस्वी प्रभु (सख्ये) सखी मित्र को (ददातु)  
अज्ञ दे । हम (वसु) सबके भीतर बसे (सन्तं) सत्स्वरूप (तनूपाम्)  
सब देहों के पालक (अग्निम्) अग्नि, व्यापक प्रभु को (तोके तनये शश्व  
ईमहे) पुत्र पौत्रादि के कल्याणार्थ सदा याचना करें ।

अग्निमीळिष्ववसे गाथाभिः शीरशौचिषम् ।

अग्निं राये पुरुमीळह श्रुतं नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १४ ॥

भा०—हे (पुरुमीळ) बहुत धनों के दातः ! तू (गाथाभिः) गेय  
वेद-वाणियों द्वारा (शीर-शौचिषम् अग्निम्) व्यापक तेज वाले ज्ञानी  
प्रभु की ही (ईळिष्व) स्तुति कर । (राये) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये भी  
(श्रुतं) बहुश्रुत विद्वान् अग्नि की (ईळिष्व) स्तुति कर और (नरः) मनु-  
ष्यजण भी उसी (अग्नि) तेजस्वी की स्तुति करते हैं । वह (सुदीतये  
छर्दिः) उत्तम तेज वाले के लिये भी, दीपक के लिये गृह के समान  
आश्रय है ।

अग्निं द्वेषो योतवै नो गृणीमस्यग्निं शं योश्च दातवै ।

विश्वासु विद्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुर्गृणाम् ॥ १५ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (नः द्वेपः दातवे) अपने द्वेप भावों को दूर करने के लिये (अग्निं गृणीमसि) सर्वव्यापक सर्वज्ञ प्रभु की उपासना करें और (शंयोः च दातवे) शान्ति और दुःख नाश करने के लिये भी उसी (अग्निं) तेजोमय का ध्यान करें। वह (विश्वासु विश्वु) समस्त प्रजाओं में (हव्यः भवत्) स्तुत्य है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ७२ ]

हर्यत प्रागाथ ऋषिः ॥ अग्निर्हवींषि वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८—  
१०, १२, १६ गायत्री । २ पादनिचृद् गायत्री ॥ ४—६, ११, १३—१५  
१७ निचृद् गायत्री । ७, १८ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वा अस्य प्रशासनम् ॥१

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप (हविः कृणुध्वम्) ज्ञान आदि का सम्पादन वा अन्न का साधन करो (अध्वर्युः अगमत्) हिंसा-भाव रहित यज्ञ का संचालन आवे और वह (विद्वान्) विद्वान् ही (अस्य) इस स्वाध्यायादि यज्ञ का (प्र-शासनं वनते) उत्तम शासन-पद प्राप्त करे ।

नि तिग्ममभ्यं शुं सीदद्धोता मनावधि ।

जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥

भा०—(तिग्मं अंशुं अभि) तीक्ष्ण, व्यापक, ज्ञानवान् पुरुष के सम्मुख (होता) ज्ञान ग्रहण कराने वाला पुरुष (मनौ अधि) मननशील शिष्य के ऊपर (नि सीदत्) विराजे और वह (अस्य सख्यं जुषाणः) इसके प्रेम-भाव को प्राप्त करने वाला हो ।

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया ।

गृह्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥

भा०—(जने अन्तः) प्रत्येक जन, उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान (परः) चक्षु से परे (रुद्रं) रोगादि के नाशक, पीड़ादि के प्रतिबन्धक,



विद्युत् अग्नि या तेजोरूप आत्मतत्त्व को भी (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना चाहते हैं और (ससम्) प्रसुप्त रूप से व्यापकवत् विद्यमान (गिह्या गृणन्ति) जिह्वा अर्थात् ज्वालावत् विद्युत् की धारा से जैसे अग्नि अर्थात् विद्युत् को ग्रहण करते, वैसे ही जिह्वा अर्थात् वाणी द्वारा उस चेतन को ग्रहण करते, उसका ज्ञान करते और अन्यो को कराते हैं।

ज्ञाम्यतीतिपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्यावधीत् ॥४॥

भा०—अग्नि, विद्युत् (जामि) अति अधिक (अतीतपे) तप्त होता है और (धनुः) आकाश में ही (वयोधाः) बल को धारण करता हुआ, (धनम् अरुहत्) जल में रहता है, वह (दृषदं) मेघ को या शिला को भी (जिह्या) ज्वाला वा धारा से ही (अवधीत्) आघात करता है, तोड़ डालता है।

चरन्वत्सो रुशश्चिह निदातारं न विन्दते ।

वेति स्तोतव अम्यम् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—जैसे (वत्सः) बछड़ा (रुशन् चरन्) उल्लसता-कूदता हुआ (निदातारं न विन्दते) किसी रोकने वाले को न पावे वैसे ही अग्नि, विद्युत् जब (इह) इस अन्तरिक्ष में (रुशन्) चमकता हुआ, (चरन्) विचरता है, किसी (नि दातारं) बाधक या पकड़ लेने वाले पदार्थ को नहीं प्राप्त करता, तब तक वह (अम्यम्) जल में उत्पन्न वा जल के उत्पादक प्रकाश वा शब्दमयी ध्वनि को (स्तोतवे) अपने वर्णन करने के लिये, (वेति) प्रकट करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उतो न्वस्य यन्महदध्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य दृष्टो ॥६॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य) इस विद्युत् रूप अग्नि को (रथस्य अश्ववत्) रथ के घोड़े के समान (यत्) जो (महत् योजनं) बड़ा बल-पूर्वक जोड़ने का कार्य है उसको (बृहत् दामा) बड़ा भारी दमन करने वाला विद्वान् ही (दृष्टो) साक्षात् करता है।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७॥

भा०—(सप्त) सात मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक का दोहन करते हैं और (द्वा पञ्च) दो पांचों को (सिन्धोः स्वरे तीर्थे अधि) सिन्धु के स्वयं प्रकाशमान तीर्थ अर्थात् मार्ग में (उप सृजतः) प्रेरित करते हैं। अर्थात् अध्यात्म में—प्राण-अपान, दोनों पांच ज्ञानेन्द्रियों को 'सिन्धु' अर्थात् प्राण या रक्त की नाड़ी के (स्वरे तीर्थे अधि) स्वयं प्रकाशमान मार्ग में दृष्टि में स्थित होकर प्रेरित करते हैं। वे सातों मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक आत्मा या चेतनारूप गौ को दोहन करते हैं। उसका तत्त्व प्राप्त करते हैं।

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् ।

खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत् (त्रिवृता खेदया) तीन प्रकार के व्यापार वाली दीप्ति से (दशभिः) दशों दिशों से आघात कर (दिवः कोशं आच्यावयति) अन्तरिक्षस्थ कोश या मेघ से जल पातन कराता है वैसे ही (इन्द्रः) यह आत्मा (विवस्वतः कोशम्) विविध वसु, प्राणों वाले इस देहरूप अन्नमय कोश को (दिवः) अपनी दीप्ति की (त्रिवृता) त्रिगुणात्मक (खेदया) रज्जु-सदृश प्रेरणा से (अचुच्यवीत्) चलाता है। परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरिति नवीयसी । मध्वा होतारो अजते ॥९॥

भा०—यह (त्रि-धातुः) वात, पित्त, कफ तीनों धातुओं से धारित देह (परि-ध्वरं) अविनाशी आत्मा के बल पर, (नवीयसी) सदा नयी शक्ति से (जूर्णिः) वेगयुक्त होकर (परि एति) सर्वत्र गति करता है और (होतारः) अन्न ग्रहण करने वाले प्राणी उस शक्ति को (मध्वा) अन्न-जल-द्वारा (अजते) प्राप्त करते हैं।

सिञ्चन्ति नमसावृतमुच्चाचक्रं परिजमानम् ।

नीचीनवारमक्षितम् ॥ १० ॥ १५ ॥



भा०—जैसे (उच्चा-चक्रम्) जिसके ऊपर चक्र हो और (परिष्मानम्) चारों ओर भूमि हो और (नीचीनवारम्) नीचे पानी के द्वार हों ऐसे (अक्षितम्) अक्षय जल के भण्डार (अवतम्) कूप को (नमसा) भक्त के हेतु वा जल से (सिञ्चन्ति) सींचते हैं, वा उस कूप से 'अक्षित' भक्त के खेत की सिंचाई करते हैं। वैसे ही (२) यह देह आत्मा की रक्षा के लिये होने से 'अवत' है, उसका व्यवस्थापक यन्त्र चक्र शिर सर्वोपरि लगा है वह 'उच्चाचक्र' है, चारों ओर उसकी गति होने से 'परिष्मा' है। गुदा, मूत्रादि मार्ग नीचे के द्वार हैं, वह हृष्ट-पुष्ट 'अक्षित' है उसको लोग (नमसा) भक्त से सींचते, बढ़ाते हैं। 'नमः' इत्युदक नाम।

अभ्यारमिदद्रव्यो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥११॥

भा०—जैसे (पुष्करे) अन्तरिक्ष में (अद्रयः) मेघगण (निषिक्तं) निषेचित (मधु) जल को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अवतस्य) कूप के (विसर्जने) विशेष स्थान में जल को प्रदान करते हैं वैसे ही (पुष्करे) पुष्टि से युक्त राष्ट्र में (नि-सिक्तम्) खूब परिवृद्ध (मधु) मधुमय ऐश्वर्य को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अद्रयः) मेघवत् बलवान् पुरुष (अवतस्य) पालक राजा के (विसर्जने) विशेष निर्माण में प्रयत्न करें।

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।

उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १२ ॥

भा०—हे (गावः) वाणियो ! वा हे प्रजाभो ! आप लोग (अवतं उप अवतं) रक्षक के समीप उसकी शरण आवो। (यज्ञस्य) सत्संग और सत्कार-योग्य पुरुष को ये (मही) आकाश और भूमि वा शासक शासक वर्ग दोनों (रप्सुदा) उत्तम यज्ञ, बल देने वाले हों। इस पालक पुरुष के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण के अलंकारों व रमणीय उपदेशों से शोभित हों।

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।

रसा दधीत वृषभम् ॥ १३ ॥

भा०—(रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच (अभि-श्रियं)सर्वतः कान्तिमान्, लक्ष्मी के आश्रय योग्य पुरुष को (सुते) अभिषेक योग्य पद पर (सिञ्चत) अभिषिक्त करो । (रसा) पृथिवी वा बलवती नेना (वृषभं दधीत) बलवान् पुरुष को धारण करे ।

ते जानन् स्वमोक्ष्यं सं वत्सासो न मातृभिः ।

मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥

भा०—(वत्सासः मातृभिः न) बछड़े जिस प्रकार माताओं से (मिथः नसन्त)परस्पर मिल जाते हैं उसी प्रकार (ते) वे भी(वत्सासः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजागण (स्वम् ओक्ष्यं जानते) अपने देह या स्थान के वासी को जाना करें और वे (जामिभिः) अपने बन्धु जनों के साथ (मिथः नसन्त) परस्पर मिलकर रहें, प्रेम से मिला करें ।

उप स्रक्वेषु वप्सतः कृण्वते ध्रुवां दिवि ।

इन्द्रे अग्रा नमः स्वः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—(स्रक्षु वप्सतः) देहावयवों के घटक पदार्थों पर भोजन करने वाले पुरुष के जैसे वीर्यांश (दिवि ध्रुवां कृण्वते) मूर्धास्थल या मूलांग में स्थिति करते हैं और (इन्द्रे अग्रा नमः स्वः) प्राण और अग्नि के आधार पर अन्न और शक्ति निर्भर है वैसे ही पात्रों द्वारा घृतादिको खाते हुए अग्नि से दग्ध घृत, चरु के अंश (दिवि) आकाश में जाते और (इन्द्रे अग्रा नमः स्वः) सूर्य और अग्नि के आश्रय ही यह पृथिवी का अन्न और प्रकाश होता है । इति षोडशो वर्गः ॥

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः ।

सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥ १६ ॥



भा०—(अरिः) वेगवान् वायु जैसे (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) सूर्य के वेग से आने वाले सात किरणों द्वारा (पिप्युपीम्) पुष्टिकारक (हृषम्) अन्न और (ऊर्जं) रस को (सप्तपदीम्) सर्पणशील चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ को (अधुक्षत्) दोहता है। वैसे ही (अरिः) स्वामी, (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) तेजस्वी व्यवस्थापक की बनाई सात मर्यादाओं द्वारा, (सप्त पदीम्) सर्पणयुक्त पदों वाली, अर्थात् जनों से बसी भूमि से (पिप्युपीम् हृषं ऊर्जं) पुष्टिकारक अन्न और बल का (अधुक्षत्) दोहन करता है।

सोमस्य मित्रावरुणादिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् ॥ १७

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, दिन और रात्रि (उदितः सूर्ये) सूर्य के उदय होते २ में (सोमस्य आददे) सोम, बलकारक ओषधि रस का सेवन करूं, (तत् आतुरस्य भेषजम्) वही व्याधिपीडित के सब रोगों की नाशक चिकित्सा करता है।

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम् ।

परि द्यां जिह्यातनत् ॥ १८ ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य) इस (हर्यतस्य) कान्तिमान् अग्नि या सूर्य का (यत् पदं) जो पद या स्थान (निधान्यम्) भूमि पर विशेष धन वा धान्य के योग्य है, उसको अग्नि ही (द्यां परि) समस्त आकाश में अपनी (जिह्या) ज्वालामयी जीभ से (परि तनत्) फैलाता है। इति सप्तदशोऽवर्गः ॥

[[ ७३ ]

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः ॥ अश्विनी देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७, ९—११, १६—१८ गायत्री । ३, ८, १२—१५ निचुद्-गायत्री । ६ विराड् गायत्री । अष्टादशचं सूक्तम् ॥

उदिरिथामृतायते युञ्जार्थामश्विना रथम् ।

अन्ति षष्ठ्यं तु वामवः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) चिद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (कृतार्थते) सत्य, ज्ञान और अन्नादि के इच्छुक के लिये (उद् ईराथाम्) उत्तम उपदेश करो और (रथं युजाथाम्) रथ के समान ही उत्तम उपदेश करो । (वाम्-अवः) आपका रक्षा और ज्ञान (सत् भूत) सत्य हो और (अन्ति) हमारे समीप रहे ।

निमिषश्चिज्जीवीयसा रथेना यातमश्विना ।

अन्ति षड्भु वामवः ॥ २ ॥

भा०—(नि.मिषः चित् जवीयसा) पलक की झंपक से भी अधिक वेग वाले (रथेन) रथ से, हे (अश्विना) अश्व-चालन में भी चतुर जनो ! आप लोग (आ यातसु) आवो । (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) आप दोनों की सत् रक्षा हमें सदा प्राप्त हो ।

उप॑ स्तृ॒णीति॑मत्रये हिमेन॑ घ॒र्मम॑श्विना । अन्ति॑ षद॒भूतु॑ वामवः ॥३॥

भा०—(अत्रये) विविध तापों से निवृत्त होने के लिये, हे (अश्विना) अश्वोंवत् इन्द्रियों के संयमी जनो ! (धर्मस् हिमेन) दाह को शीतल जल से जैसे दूर किया जाता है वैसे ही सन्तप्त जन को शीतल वचन से (उप स्तृणीतस्) आच्छादित करो, उसका स्तकार करो । शेष पूर्ववत् ।

कुहं स्थः कुहं जग्मथुः कुहं श्येनेव पेतथुः ।

अन्ति यद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥

भा०—(कुह स्थः) आप कहीं रहो, (कुह जन्मथुः) कहीं भी जाते हो, (कुह द्येना इव पेतथुः) कभी भी दो द्येनों के समान वेग से, उत्तम आचार चरित्रवान् होकर गमन करो । शेष पूर्ववत् ।

यद्य कर्हि कर्हि चिच्छ्रूयातामिमं हवम् ।

अन्ति पद्भृतु वामवः ॥ ५ ॥ १८ ॥



भा०—(यत् अद्य) आज के समान (कहिं कहिं चित्) कभी कभी आप दोनों (इमं हवं शुश्रूयातम्) इस आह्वान या वचन को श्रवण कर लिया करो । शेष पूर्ववत् ।

अश्विनां यामहूतमा नदिष्ठं याम्याप्यम् ।

अन्ति पद्धतु वामवः ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों के वशी जनों ! आप दोनों (याम-हूतमा) संयम, परस्पर बन्धन को स्वीकार करने वाले हो । आप दोनों के (नेदिष्ठं) अति समीपतम (आप्यम्) बन्धुत्व की मैं (यामि) प्रार्थना करता हूँ । शेष पूर्ववत् ।

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति पद्धतु वामवः ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप लोग (अत्रये) इस राष्ट्र आश्रम या गृह में रहने वाले के लिये या तीनों दुःखों से निवृत्त होने के लिये (युवं अवन्तं गृहं कृणुतं) तुम दोनों रक्षा करने वाला घर बनाओ । शेष पूर्ववत् ।

वरेथे अग्निमातपो वदत वल्वत्रये । अन्ति पद्धतु वामवः ॥ ८ ॥

भा०—आप दोनों (वल्वु वदते) उत्तम वचन बोलने वाले (अत्रये) तीनों दुःखों से निवृत्त जन के हितार्थ (ऊतयः) सब प्रकार के संताप और अग्नि के समान कष्टदायी कारण को भी (वरेथे) दूर करो । (वाम सत् अवः सन्ति भूतु) आपका उत्तम ज्ञान और रक्षण सदा हमें प्राप्त हो ।

प्र ससवधिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति पद्धतु वामवः ॥ ९ ॥

भा०—(सस-वध्रिः) सातों प्राणों को शिथिल या दमन करने वाला विद्वान् (आ-शसा) उत्तम आशा से प्रेरित होकर (अग्नेः धाराम्) विद्वान् पुरुष की वाणी को (प्र अशायत) अच्छी प्रकार हृदय में धारण करे । शेष पूर्ववत् ।

इहा गतं वृषणवसू शृणुतं म' इमं हवम् ।

अन्ति षड्भूतु वामवः ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (वृषणवसू) बलयुक्त प्राणापान वाले जनो ! (इह आगतम्) यहां आवो । (मे इमं हवं शृणुतम्) मेरे इस आमन्त्रण को श्रवण करो । (वाम् अवः) पूर्ववत् । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते ।

अन्ति षड्भूतु वामवः ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (इदं वां पुराणवत् किम्) यह आप दोनों का पुरातन, सदातन का वेद-ज्ञान किस प्रकार का है ? जो (जरतोः इव) वृद्ध या उपदेष्टा जनों के वचन के समान उपदेश किया जाता है, (अवः सत्०) पूर्ववत् ।

समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना ।

अन्ति षड्भूतु वामवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् परस्पर बद्ध स्त्री पुरुषो ! (वां सजात्यं समानं) आप दोनों की उत्पत्ति एक समान और (बन्धुः समानः) आप दोनों का बन्धुत्व समान हो । शेष पूर्ववत् ।

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी ।

अन्ति षड्भूतु वामवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त साधनों और अश्वादि के ज्ञाता जनो । (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (रजांसि वि-याति) नाना खोर्कों को प्राप्त होता है, वही (रोदसि वि-याति) आकाश और पृथिवी पर भी विशेष रूप से जावे । शेष पूर्ववत् ।

आ नो गव्यैर्मिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् ।

अन्ति षड्भूतु वामवः ॥ १४ ॥



भा०—आप लोग (गव्येभिः अश्वेभिः सहस्रैः) हजारों गौओं और अश्वों से (नः आ उप गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। शेष पूर्ववत्।

मा नो गव्येभिरश्वेभ्यः सहस्रोभिरति ख्यतम्।

अन्ति षड्रतु वामवः ॥ १५ ॥

भा०—(सहस्रेभिः गव्येभिः अश्वेभिः नः मा अति ख्यतम्) हमें सहस्रों, गौवों और अश्वों से वञ्चित मत करो। शेष पूर्ववत्।

अरुणप्सुरुषा अभूदकज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षड्रतु वामवः ॥ १६ ॥

भा०—जैसे (उपा) प्रभात वेला की सूर्य-कान्ति (ऋत-वरी) तेज-स्विनी, (अरुण-प्सुः) अरुण प्रकाश वाली होती और (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है वैसे ही (ऋत-वरी) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली (उपाः) कमनीय कान्ति से युक्त (अरुणप्सुः) अरुण वर्ण की, सुन्दर रूपवती (अभूत्) हो वह (ज्योतिः अकः) सत्य ज्ञान का प्रकाश करे। शेष पूर्ववत्।

अश्विना सु विचाकशवृक्षं परशुमाँ इव।

अन्ति षड्रतु वामवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् ज्ञानी पुरुषो ! (परशुमान् इव वृक्षं) परशु वाला पुरुष जिस प्रकार वृक्ष को काटता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रवत् ज्ञान-ज्योति वाला पुरुष (सु वि-चाकशत्) प्रकाशमान् हो, अज्ञानतम को नाश करे। शेष पूर्ववत्।

पुरं न धृष्णावा रुज कृष्णया वाधितो विशा।

अन्ति षड्रतु वामवः ॥ १८ ॥ २० ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु के पराजयकारिन् ! जैसे (कृष्णया वाधितः) रात्रि से वाधित सूर्य अन्धकार को छिन्न भिन्न कर देता है वैसे ही तू भी (कृष्णया) कर्पण या पीड़न करने वाली शत्रु सेना से वाधित होकर (विशा) अपनी प्रजा, शत्रु दुर्ग में घुस जाने वाली तीक्ष्ण सेना की

सहायता से (पुरं न आ सज) दुर्ग के समान ही शत्रु को छिन्न भिन्न कर । हे (अश्विनौ) सभासेनापतियो ! आप दोनों को (अवः) शत्रु हिंसन का उत्तम बल सदा आपके पास रहे । अव धातुः रक्षणं, गति, कान्तिः, प्रीतिः, वृत्तिः, अवगमः, प्रवेशः, श्रवणं, स्वाम्यर्थं, याचनं, क्रिया, इच्छा, दीप्तिः, अवासिः, आलिंगनं, हिंसा, आदानं, भागो, वृद्धि-श्चेत्येतेष्वर्थेषु वर्तते । प्रकरणानुसारं स सोऽर्थोऽवबोध्यः । इति विंशो वर्गः ॥

[ ७४ ]

गोपवन आत्रेय ऋषिः ॥ देवताः १—१२ अग्निः । १३—१५ श्रुतवर्ण आर्क्ष्यस्य दानस्तुतिः । छन्दः—१—१० निचृदनुष्टुप् । ४, १३—१५ विराडनुष्टुप् । ७ पादनिचृदनुष्टुप् । २, ११ गायत्री । ५, ६, ८, ९, १२ निचृद् गायत्री । ३ विराड् गायत्री । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

विंशोविंशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।

अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूपस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वाजयन्तः) ज्ञान, बल की कामना से युक्त (पुरु-प्रियम्) बहुतां को प्रिय, (विशः-विशः अतिथिम्) समस्त प्रजाओं के अतिथि रूप (अग्निं) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष की (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा (शूपस्य) सुख प्राप्ति के लिये सेवा करें और मैं (वः) आपको (दुर्यं वचः स्तुषे) उत्तम वचन का उपदेश करता हूँ ।

यं जनांसो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।

प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

भा०—(हविष्मन्तः जनासः) उत्तम अन्न वाले मनुष्य जैसे (सर्पिः-आ सुतिम्) घृत से सेवन योग्य अग्नि को (प्रशस्तिभिः) उत्तम प्रशंसा-जीय मन्त्रों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते, उसके गुणों का वर्णन करते हैं वैसे ही (यं) जिसको (मित्रं न) मित्रवत् (सर्पिः-आसुतिम्) घृतयुक्त



अन्न द्वारा सत्कार के योग्य जानकर (हविष्मन्तः) अन्न आदि हाथ में लिये जन (प्रशस्तिभिः) उत्तम वचनों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं, उसकी तुम भी स्तुति करो ।

पन्यांसं ज्ञातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्धैर्यद्विवि ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो अग्नि (देवताति) यज्ञ में (हव्यानि दिवि-ऐरयत्) हव्य पदार्थों की आकाश की ओर प्रेरित करता है, उस (जात-वेदस) ऐश्वर्य युक्त वा सर्वज्ञ, (पन्यांसं) स्तुतियुक्त अग्नि का गुण वर्णन करूँ, उसे व्यवहार में लाऊँ !

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।

यस्य श्रुतर्वा वृहन्नाक्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (अनीके) सैन्य बल में (वृहन्) बड़ा भारी (आक्षः) शत्रु को भर्जन या पीड़न करने में समर्थ (श्रुतर्वा) प्रसिद्ध अश्वारोही जन (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है, उस (ज्येष्ठम्) सबमें बड़े (आनवं) मनुष्यों के हितैषी (अग्निम्) तेजस्वी (वृत्रहन्तमं) सबसे अधिक शत्रुहन्ता पुरुष को हम (आ अगन्म) प्राप्त करें ।

अमृतं ज्ञातवेदसं तिरस्तांसि दर्शतम् ।

धृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(धृताहवनम्) तेज से देदीप्यमान अग्नि तुल्य, वा जलों द्वारा आदर करने योग्य (ईड्यम्) स्तुति योग्य (तमांसि तिरः दर्शतं) अन्धकारों को दूर करके सत्य ज्ञान को दर्शाने वाले, (अमृतं) अमृत स्वरूप (जात-वेदसम्) ज्ञानमय प्रभु की हम उपासना करें । इत्येक-विंशो वर्गः ॥

सबाधो यं जना इमेऽग्निं हव्येभिरीक्यते जुह्वानासो यतस्तुचः ॥ ६ ॥

भा०—जैसे (सबाधः) ऋत्विक् लोग (अग्निम्) अग्नि की (यत-स्तुचः) जुहु आदि साध कर (जुह्वानासः हव्येभिः ईड्यते) आहुति देते

हुए चर आदि से उपचार करते हैं वैसे ही (इमे) ये (सबाधाः) पीड़ा-  
युक्त (जनाः) मनुष्य (यत्-सुचः) प्राणों का निग्रह करके (बुद्धानासः)  
आत्म समर्पण करते हुए (यस् अग्निम्) जिस पाप-नाशक ज्योति की  
(हव्येभिः) स्तुत्य वचनों से (इंदते) स्तुति करते हैं, उसी की उपासना  
करनी चाहिये ।

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।

मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मार्तिथे ॥ ७ ॥

भा०—हे (मन्द्र) स्तुत्य, आनन्दघन ! हे (सु-जात) सुख-स्वरूप !  
हे (सु-क्रतो) शुभ कर्म, प्रजा वाले ! हे (अमूर) अमूढ़ ! अहिंसक ! हे  
(दस्म) दर्शनीय ! दुष्टदलन ! हे (अदिथे) व्यापक, अतिथिवत् पूज्य ! हे  
(अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तेरी (इयं) यह (नव्यसी) अतिस्तुत्य (मतिः)  
ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत् अधायि) हमारे में स्थिर हो ।

सा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया ।

तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! (ते) तेरी (सा) वह  
(शन्तमा) शान्तिदायक (चनिष्ठा) उत्तम अन्नवत् भोग्य, सुखदात्री बुद्धि  
(प्रिया) प्रीतिकर हो । (तया) उससे तू (सु-स्तुतः) उत्तम स्तुतियुक्त  
होकर (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो और हमें भी बढ़ा ।

सा द्युन्नैद्युन्निनी वृहदुपोष श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥ ९ ॥

भा०—(सा) वह (द्युन्नैः द्युन्निनी) प्रकाशों से प्रकाश युक्त वाणी  
(वृत्र तूर्ये) आवरणकारी अज्ञानान्धकार को नाश के निमित्त (वृहत्  
श्रवः) बड़ा ज्ञान (श्रवसि) कान में (उप दधीत) धारण करावे ।

अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।

यस्य श्रवसि तूर्वथ पन्यपन्यच कृष्टयः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (कृष्टयः) मनुष्यो ! आप लोग (पन्यम् पन्यम्) अति-



स्तुत्य २ कार्य और (श्रवांसि) ज्ञानों, अन्नों को (तृवथ) प्राप्त करो, इसको (गाम्) गौ के समान मातृतुल्य (अश्वम् इत्) अश्व के समान बलवान्, (रथप्रास्) महारथी के समान प्रभावशाली, (त्वेषं) सूर्य के समान तेजस्वी (इन्द्रं न) ऐश्वर्यवान् विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (सत्पतिं) सज्जनों के पालक प्रभु की उपासना करो । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ।

स पावक श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (पावक) पवित्र करने हारे ! (यं त्वा) जिस तुझको (गोपवनः) वाणी द्वारा पवित्र करने वाला और (गोप-वनः) वाणी के पालक विद्वानों का सेवन करने वाला, पुरुष (गिरा) वाणी द्वारा (चनिष्ठत्) तेरा सत्कार करता है । हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! हे (अंगिरः) तेजस्विन् ! (सः) वह तू (हवम् श्रुधि) हमारे आह्वान को श्रवण कर ।

यं त्वा जनास ईळते सुबाधो वाजसातये ।

स बोधि वृत्रतूर्यै ॥ १२ ॥

भा०—(यं त्वा) जिस तुझको (स-बाधः) बाधा-सहित दुःखी जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ईळते) स्तुति-करते हैं । (सः) वह तू (वृत्र-तूर्यै) विघ्नादि के नाश करने में (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर ।

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतवर्णि मदच्युति ।

शर्धासीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥

भा०—(आर्क्षे) शत्रु को प्रताप में भून देने वाले (श्रुतवर्णि) प्रसिद्ध अश्व सैन्य के स्वामी (मदच्युति) शत्रु के मद को दूर करने में समर्थ, वीर पुरुषों के अधीन (स्तुकाविनां) बालों की ग्रन्थि, फुन्दों वाले (चतुर्णाम्) चारों वणों, वा चार घोड़ों, वा सेना के चारों अंगों के वीरों के (मृक्षा) अति दीस, (शीर्षा) शिर या प्रमुख नायक जन (शर्धासि इव)

मानो उनके मुख्य बल हैं। अर्थात् वीरों के शिरों के बाल और मूँछ, दाढ़ी आदि वीरत्व द्योतक चिह्न हैं, मानो वे ही उनके बल हैं, वे वालों से सिंहों के समान भयानक प्रतीत होते हैं। केशान् शीर्षान् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विर्परिन्द्रियाणि । यजु० १९। ५२ ॥ इनको (अहं) मैं (हुवानः) अन्न देने वा स्वीकार करने वाला होऊँ।

मां चत्वारः आशवः शर्विष्ठस्य द्रविन्नवः ।

सुरथासो अभि प्रथो वक्षन्वथो न तुग्र्यम् ॥ १४ ॥

भा०—(शर्विष्ठस्य) अति बलशाली, सेनापति के (चत्वारः) चार (द्रविन्नवः) वेगवान् (आशवः) शीघ्रगामी, (सुरथासः) उत्तम मंहारथी लोग (तुग्र्यम् वयः न) शत्रुहिंसक बलवान् पुरुष को वेगवान् अश्वों के समान (प्रथः अभि वक्षन्) श्रेष्ठ यानवत् धारण करते हैं।

सत्यमित्वा महेनदि परुषायव देदिशम् ।

नेमापो अश्वदातरः शर्विष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (महेनदि) महानदी के समान महान् शब्द करने वाली ! हे (परुषण) पोरु-पोरु अर्थात् छोटी २ टुकड़ियों से बनी, वा पर्व पर्व पर उष्ण अर्थात् शत्रु को दग्ध करने वाली, तेजस्विनी सेने ! (त्वा) तुझको मैं (सत्यम् इत्) सत्य ही (अव देदिशम्) कहता हूँ। हे (आपः) आपस जनो, प्रजाओ ! सुनो (शर्विष्ठात्) अति बलशाली से दूसरा कोई (मर्त्यः) मनुष्य (अश्वदातरः न ईम् अस्ति) अश्व सैन्य को अन्न वस्त्र आदि देने वाला नहीं है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ ७५ ]

विरूप ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, ९, ११ निचूद गायत्री । २, ३, १५ विराड् गायत्री । ८ आर्ची स्वरार्ध गायत्री । षोडशर्चं सूक्तम् ॥



युक्त्वा हि देवदूतमाँ अश्वौ अग्ने रथीरिव ।

नि होता पूर्यः सन्दः ॥ १ ॥

भा०—(रथीः इव अश्वान्) रथी जैसे रथ में अश्वों की जोड़ता है, वैसे हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (देव-दूतमान् युक्ष्व) शुभ गुणों की धारण करने वालों में श्रेष्ठ पुरुषों को, इन्द्रियों का साधकवत्, राष्ट्र में उचित पद पर नियुक्त कर और तू (होता) सब को श्रुति-वेतन आदि देने वाला (पूर्यः) सब में पूर्ण, सब से मुख्य होकर विराज ।

उत नो देव देवा अच्छा वोचो विदुष्टरः ।

अद्विष्टा वार्या कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानदातः ! दानशील ! तेजस्विन् ! तू (विदुष्टरः) सबसे उत्तम विद्वान् होकर (देवान् नः) विद्या की कामना करने वाले हम लोगों को (अच्छ वोचः) साक्षात् उपदेश कर । (उत) और (विष्टा वार्या अत् कृधि) समस्त वरण योग्य ज्ञानों को सत्य रूप में प्रकट कर । त्वं ह यद्यविष्ट्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावाँ यज्ञियो भुवः ॥३॥

भा०—हे (यविष्ट्य) युवतम ! सब में अधिक जवान्, बलवान् पूज्य ! हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक, उत्पादक ! हे (आहुत) सब से स्वीकृत, सबों के अंशों से समृद्ध ! (त्वं ह) तू ही (ऋत-वा) सत्य न्याय का पालक और (यज्ञियः भुवः) सर्व-पूजार्ह, दान योग्य पात्र हो ।

अथमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।

मूर्धा कवी रयिणाम् ॥ ४ ॥

भा०—(अथम् अग्निः) यह ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (सहस्रिणः शतिनः वाजस्य) सहस्रों और सैकड़ों ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का (पतिः) पालक और (कविः) क्रान्तदर्शी (रयिणाम् मूर्धा) ऐश्वर्यवानों का भी शिरःस्थानीय, प्रमुख हो । सहस्रों, सैकड़ों सख्या वाला ज्ञान, वेदादि शास्त्र, जिनकी ग्रन्थ गणना शत काण्डका, सहस्र मन्त्र व श्लोकादि और

तैत्थ्य में भी शतपति, सहस्रपति के अधीन इतने २ भट और देवियों में  
ग्रामों की वा स्वर्णमुदाओं की संख्या ली जाती है ।

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सद्भूतिभिः ।

नेदीयो यज्ञमाङ्गिरः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अंगिरः) विद्वान् ! तेजस्विन् (क्रमवः यथा नेमिस्व)  
शिल्पी लोग जैसे चक्र के अरों के चारों ओर नेम या लोहपरिधि को  
नमाते हैं वैसे ही तू (सद्भूतिभिः) समान रूप में आह्वान योग्य वा  
समान वेतनादि देने हारे शासकों से (तं यज्ञम्) उस परस्पर संगत राष्ट्र  
को, (नेदीयः नमस्व) अर्थात् समीप झुका, वश कर । हात चतुर्विंशो वर्गः॥

तस्मै नूनमभिः वे वाचा विरूप नित्यया ।

वृष्ण चोदस्व सुष्ठुतिम् ॥ ६ ॥

भा०—हे (विरूप) विशेष रूपवान् ! तू (नूनम्) अवश्य ही  
(तस्मै) उस (अभि-यवे) तेजस्वी, (वृष्णे) बलवान् पुरुष के लिये  
(नित्यया वाचा) निश्चिन वाणी द्वारा (सु-स्तुतिम् चोदस्व) उत्तम स्तुति  
प्रस्तुत कर । परमेश्वर की स्तुति के लिये वेद वाणी का प्रयोग कर ।

कमुं विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पर्णि गोषु स्तरामहे ॥७॥

भा०—(अस्य) इस (अपाक-चक्षसः) अनल्प दाष्ट वाले, परिपक्व  
शुद्धि वाले (अग्नेः) तेजस्वी ज्ञानी नायक पुरुष की (सेनया) सेना से हम  
(कं स्वित् ठ पर्णि) प्राण की शर्त्त धर कर बाजी लगाने वाले किस  
शत्रु को (गोषु) भूमयों के विजय के लिये (स्तरामहे) विनाश करें ।

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोक्षाः ।

कृशं न हांसरक्ष्याः ॥ ८ ॥

भा०—(उक्षाः) सूर्य की किरणों के समान उन्नत पद की ओर  
जाने वाले लोग (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच (प्र-स्नातीः) अच्छी  
ज्ञान करती हुई, शुद्ध आचार से रहने वाली (नः विशः) हम प्रजाओं



का (प्र-क्षातीः इव) शुद्ध पवित्र नारियों के समान (मा हासुः) परित्याग न करें। (अध्याः कृशं न) जैसे गौध अपने निबल बच्चे को नहीं त्यागती, प्रस्थित जब तक पुष्ट नहीं हो जाता उसे दूध पिलाकर पुष्ट करती हैं वैसे ही तेजस्वी जन निबल प्रजाओं को भी न त्यागें।

मा नः समस्य दूढयः परिद्वेषसो अंहतिः।

ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ६ ॥

भा०—(ऊर्मिः नावं न) जलतरंग जैसे नौका को आघात करती है वैसे ही (समस्य) समस्त (दूढयः) दुष्ट बुद्धि वाले (परिद्वेषसः) द्वेषी पुरुष की (अंहतिः) पाप-बुद्धि (नः) हमें (मा वधीत्) पीड़ित न करे।

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।

अमैरमित्रमर्दय ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! (अग्ने) अग्निवत् शत्रु-संतापक ! तू (ते ओजसे) तेरे पराक्रम के लिये (कृष्टयः) प्रजा क मनुष्य (नमः गृणन्ति) विनय-वचन कहते हैं। तू (अमैः) सहायकों, बलों, सैन्यों और भटों से (अमित्रम् अर्दय) शत्रु को पीड़ित कर। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुक्रदुरुणस्क्रधि ॥ ११

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (नः) हमें (गविष्टये) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (कुवित् रयिम्) बहुत साधन (सं वेषिषः) प्राप्त कर। तू (उरुक्रत्) बहुत धन को उत्पन्न करने वाला है। तू (नः उरु क्रधि) हमारे धन और प्राप्तव्य फल को बहुत कर, उसे बढ़ा।

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्गमभृद्यथा।

संवर्गं सं रयिं जय ॥ १२ ॥

भा०—(यथा भारभृत्) बोझा ढोने वाला जैसे थक कर बोझ को फेंक देता है वैसे ही हे नायक ! (महाधने) महासंग्राम में (नः मा परा वक्) हमें भार जान कर तू मत त्याग। बल्कि तू (संवर्गं) उत्तम

सहयोगी गण और (रयिं) ऐश्वर्य का गुणों और पराक्रमों से (जय) विजय कर ।

अन्यमस्माद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना ।

वर्धा नो अमवच्छवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक सेनापते ! (इयम्) यह (दुच्छुना) दुःखदायिनी सेना (अस्मत् अन्यम्) हमारे से दूसरे शत्रु को (भिया सिषक्तु) भयभीत करे । (नः अमवत्) तू हमारे बलशुक्त (शवः) सैन्य-बल को (वर्ध) बढ़ा ।

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥ १४

भा०—(यस्य) जिस (नमास्वनः) शत्रु को नमाने वाले वीर्य से सम्पन्न (अदुर्मखस्य) दोषहीन यज्ञ, वा अदुःखदायी, निष्कृष्टि कार्यकर्ता के (शमीम् जुषत्) कर्म को प्रेम से स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत्) उसकी ही (अग्निः) वह तेजस्वी नायक (वृधा अवति) वृद्धियुक्त सम्पदा से रक्षा करता है ।

परस्या अधि संवतोऽवरा अभ्या तर । यत्राहमस्मि तां अव ॥ १५

भा०—(परस्याः संवतः अधि) शत्रु के सेना के उत्तम संगठनयुक्त बल के ऊपर (अवरान् अभि आतर) उनसे न्यून या उरे के हम लोगों को सम्मुख, आगे बढ़ा, उनको विजयी कर और (यत्र) जिनके बीच में, जिनके ऊपर (अहम् अस्मि) मैं हूँ (तान् अव) उनकी रक्षा कर ।

विद्वा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः ।

अघा ते सुहृमीमहे ॥ १६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रतापशालिन् ! (अवसः पितुः यथा) जैसे रक्षक पिता के सुख वा धन को पुत्र चाहता है उसी प्रकार (पुरा) पूर्ववत् रक्षक पालक-रूप (ते) तेरे (सुहृम् हि) सुख को हम भी (विद्वा) जानें (अघ ते ईमहे) और तुझ से हम याचना करते हैं । इति षड्विंशोऽङ्गः ॥



[ ७६ ]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८—  
१२ गायत्री । ३, ४, ७ निचृद् गायत्री ॥ द्वादशर्चनं सूक्तम् ॥

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा ।

मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥

भा०—मैं (इमं) इस (मायिनं) बुद्धि-कौशलों से युक्त, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (ओजसा ईशानम्) पराक्रम से सबके स्वामी, (मरुत्वन्तं न) प्राणवान् आत्मा के समान, वायुवद् बली पुरुषों के स्वामी पुरुष को (वृञ्जसे) शत्रु नाश के लिये (हुवे नु) आह्वान करता हूँ ।

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ।

वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

भा०—जैसे (मरुत्सखा) वायु को सहाय लेकर (इन्द्रः) सूर्य (वज्रेण शत-पर्वणा) सैकड़ों किरणों वाले तेज से (वृत्रस्य शिरः अभिनत्) मेघ के ऊपरी भाग को छिन्न-भिन्न करता है वैसे ही (अयम् इन्द्रः) यह वीर सेनापति (मरुत्-सखा) वीरों का मित्र होकर, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों दलों से बने सैन्य बल से (वृत्रस्य शिरः) बढ़ते शत्रु के शिर या मुख्य भाग को (अभिनत्) छिन्न-भिन्न करे ।

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥ ३ ॥

भा०—(मरुत्सखा इन्द्रः) वायु को सहाय लेकर इन्द्र, विद्युत् वा सूर्य, जैसे (वावृधानः) अधिक प्रबल होकर (समुद्रियाः अपः सृजन्) अन्तरिक्षस्थ जलों को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रं) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में प्रेरित करता है वैसे ही (मरुत्सखा) वीरों और प्रजास्थ मनुष्यों का मित्र, राजा (समुद्रिया अपः) समुद्रजलों के मुख्य सेवाओं को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को नष्ट करता है ।

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥ ४ ॥



भा०—(येन वा इन्द्रेण) जो शत्रुहन्ता (मरुत्वता) मनुष्यों का सहाय लेकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (इदं स्वः नितम्) आकाश को सूर्य के समान, इस भूलोक का विजय करता है (अयं ह) वही निश्चय से स्तुत्य है ।

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्तिनम् ।

इन्द्रं गीर्भिह्वामहे ॥ ५ ॥

भा०—(मरुत्वन्तम्) वायुओं के बलों से सम्पन्न, प्रबल मनुष्यों के स्वामी, (ऋजीपिणम्) ऋजु, धर्ममार्ग पर औरों के सञ्चालक तथा शत्रु को भूतने में समर्थ सैन्यबल को सञ्चालित करने वाले (ओजस्वन्तं) पराक्रमशील (विरप्तिनम्) महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् की हम (गीर्भिः) जाणियों से (ह्वामहे) प्रार्थना करें ।

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं ह्वामहे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥ २७ ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस महान् ऐश्वर्य या ज्ञात के पालन करने के लिये हम (प्रत्नेन) अनादिसिद्ध (मन्मना) मनन करने योग्य स्तोत्र, वेद ज्ञान से हम (मरुत्वन्तं) प्रबल मनुष्यों के स्वामी, समस्त जीवों के पालक प्रभु की (ह्वामहे) प्रार्थना करते हैं ।

मरुत्वो इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो ।

अस्मिन् यज्ञे पुरुषुत ॥ ७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञावाले हे (पुरु-स्तुत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! हे (मीढ्वः) सुखवर्षक ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (मरुत्वान्) वीर पुरुषों का स्वामी होकर (सोमं पिब) इस ऐश्वर्य वा प्रज्ञा-युक्त राष्ट्र का पालन उपभोग कर ।

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वन्ते सुताः सोमांसो अद्रिचः ।

हृदा ह्वयन्त उक्थिनः ॥ ८ ॥



भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्विवः) बलवन् ! (सुभ्य इव मरुत्वते) बलवान् पुरुषों के तुझ स्वामी के लिये ही (उक्थिनः) उत्तम ज्ञान के धारक (सुताः) ऐश्वर्यादि से पुरस्कृत, उत्तम पदों पर अभिषिक्त (सोमासः) ज्ञानवान्, बलवान् पुरुष (हृदा) हृदय से (हूयन्ते) बुलाये जाते और सत्कार किये जाते हैं ।

पिवेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु ।

वज्रं शिशान् ओजसा ॥ ९ ॥

भा०—तू (मरुत्सखा) मनुष्यों, वीर पुरुषों का मित्र होकर (दिविष्टिषु) सब दिनों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ओजसा) पराक्रम से (वज्रं शिशानः) बल, वीर्य, शस्त्रबल को तीक्ष्ण करता हुआ (दिविष्टिषु) अपनी कामनाओं की प्राप्ति के निमित्त (सुतं सोमं) उत्पन्न जगत् या ऐश्वर्य का (पिव इव) पुत्रवत् पालन और धनवत् उपभोग कर ।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः ।

सोममिन्द्रक्ष्म सुतम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (ओजसा सह) बल के साथ (उत्तिष्ठन्) ऊपर उठता हुआ (क्ष्म-सुतम्) सेनाओं द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र-ऐश्वर्य को (पीत्वी) पालन करके (शिप्रे अवेपयः) जल पान से तृप्त मनुष्य के समान सुख नासिका वा ठोड़ी को कंपा, प्रसन्न हो ।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकूपेताम् ।

इन्द्र यदस्युहाभवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन् ! (यत्) जब तू (दस्युहा अभवः) दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा होता है तब (क्रक्षमाणं त्वा अनु) शत्रु का छेदन करते हुए तेरे साथ २ (उभे रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्ग (अनु कूपेताम्) बलवान् हो जाते हैं ।

वाचंमद्यापदीमहं नवस्त्राक्तिसृत्तस्पृशम् ।

इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—(अद्यापदी) आठ पद वाली और (नव स्त्राक्तिम्) स्तुत्य नवीन रचना वाली, (ऋत-स्पृशम्) सत्य का स्पर्श अर्थात् दर्शन कराने वाली (तन्वम्) विस्तृत, व्यापक वाणी को (अहं) मैं (इन्द्रात्) सत्य-दर्शी पुरुष से (परि ममे) यथार्थ रूप से जानूँ । कानून या शासन आठ अमात्यों से उत्पन्न होता है अतः उनकी वाणी आठ पद वाली है और वह नवस्त्राक्ति अर्थात् मुख्य शासक के मुख से प्रचारित होती है । वेद-विद्या के आठ विद्यास्थान आठ पद हैं । अष्टाविंशो वर्गः ॥

[ ७७ ]

❖ कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, ८ गायत्री ॥ २, ५, ६, ९ निचृद् गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ निचृत् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छादिति मातरम् ।

क उग्राः के हं शृण्वरे ॥ १ ॥

भा०—(जज्ञानः) प्रकट होता हुआ (शत-क्रतुः) अनेक प्रज्ञावाला पुरुष (मातरं वि पृच्छत्) माता से बालक के तुल्य विज्ञानवान्, सत्य-ज्ञानी पुरुष वा मातृ-तुल्य प्रजा से ही (इति) इस प्रकार से (वि पृच्छात्) विशेष रूप से प्रश्न करे कि (के उग्राः) राष्ट्र में कौन बलवान् पुरुष हैं जिनसे लोग भय खाते हैं और (के हं शृण्वरे) कौन बलवान् लोग सुने जाते हैं । अर्थात् देश में ऐसे कौन २ आसदायी हैं ? राजा आसकारी लोगों का पता लगा कर उनका नाश करे ।

आर्दी शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुर्वम् ।

ते पुत्र सन्तु निष्ठुरः ॥ २ ॥

❖ पुरुसुतिति प्रामादिकः ।



भा०—(आत्) अनन्तर (शयसी) बलवती प्रजा (ईम् और्णवामम्) उस और्णवाम, तेजस्वी दण्डधर, राजा और (अमहीशुवम्) राष्ट्र की बागडोर संभालने वाले उस शासक पुरुष-के प्रति (अवधीत्) कहे कि हे (पुत्र) बहुत प्रजा-के प्राणकर्ता राजन् ! (ते) वे अमुक २ नाम वाले बहुत से हैं जो (निः-सुरः सन्तु) विनाश-योग्य हैं वा, उनको (निः-सुरः) तीन अर्थों को कोचवान् के समान बन्धन रज्जु और हन्टरों से दण्ड दे, बन्ध कर । और्णवामः—ऊर्णा वहति इति ऊर्णवामः । अत्वं छान्दसम् । स्वार्थिको ऽण् । अथवा ऊर्णाया वस्त्रं, आहननार्थस्तोदो वा और्ण, तद्वहति वा । विशेषपरिच्छदभूषितो दण्डधरो वा । अहीशु=अभीशु । हत्वं छान्दसम् । प्रग्रहवान् उच्छृंखलानामिवाश्वानां नियन्ता ।

समित्तान्वृत्रहालिङ्गत्वे अरौ इव खेदया ।

प्रवृद्धो दस्युर्हामवत् ॥ ३ ॥

भा०—तब वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक धीर राजा प्रजा की अभ्यर्थना करने पर (तान्) उन दुष्टों को (खे) पक की नाभि में (अरात् इव) अरों के समान, (खेदया) रज्जु आदिवत् बन्धनकारिणी मर्यादा या ताड़ना से (खे) शून्य कारागारादि में (अखिदत्) धर कर पीड़ित, इण्डित करे, उनकी उन्नता को दूर करे । 'खेदया'—खिद दैन्ये, रक्षा-दिर्दियादिश्च । खिद परिवारतने । पुदादिः । खिनन्ति खिद्यति दैन्यमापादयति आपद्यते वा स्वयं अनया सा खेदा । रज्जुः, प्रग्रहः, कशा, परिघातनसाधनं वा । खेदा कशा । खेदया रक्षिभना, (ऋ० ८ । ७२ । ८) रज्ज्वा, (८ । ७७ । ३) इति सायणः ।

एकया प्रतिधापिबत्साकं सरौंसि त्रिंशतम् ।

इन्द्रः सोमस्य काण्डिका ॥ ४ ॥

भा०—जैसे (इन्द्रः) सूर्य (एकया) एक ही (प्रतिधा) प्रतिधान अर्थात् अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति से (सोमस्य) चन्द्र



क्षी (काणुका) कमनीय (त्रिंशत् सरांसि) तीसों दिन रातों की किरणों को (साकम्) एक साथ ही (अपिबत्) पान कर लेता है, अपने भीतर ले लेता है, वैसे ही (काणुका इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष भी (एकया प्रतिधा) एक ही प्रतिधान, अर्थात् विग्रहपूर्वक आक्रमण से (सोमस्य) प्रतिपक्ष के ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (त्रिंशत् सरांसि) धनों को (साकं अपिबत्) एक साथ पान कर जाता है, 'काणुका'— काणुका कान्तकानीत वा । कान्तकानि इति वा, कणेघातः इति वा, कणेहतः कान्तिहतः । [इच्छाकृतकानि इति वा । इन्द्रः सोमस्य कान्त इति वा प्रतिघात इति यावत् । तत्रैतद् याज्ञिका वेदयन्ते त्रिंशदुक्थ-पात्राणि माध्यं द्ने सवने एकदैवतानि तान्येतस्मिन् काले एकेन प्रति-धानेन पिबन्ति) तान्यत्र संरांस्युच्यन्ते । त्रिंशदपरपक्षस्याहोरात्राणि चतुर्ध्वपक्षस्य चेति नैरुक्ताः । तथा एताश्चान्द्रमस्या आगामिन्य आपो भवन्ति रश्मयस्ताः अपर पक्षे पिबन्ति यमक्षितिमक्षितयः पिबन्ति । तं ध्वपक्ष आप्याययन्ति तथापि निगमा भवन्ति यथा देवा अंशुमा-प्याययन्ति इति । निरु० अ० ५ । ११ ॥

काणुका का अर्थ है कान्तियुक्त, दूरगत, वा कृतक, कृत्रिम, अथवा काणुका सूर्य का विशेषण है वह सोम (चन्द्र) का 'कान्त' प्रिय, या कान्तिप्रद है । अथवा कणेघात, कक्षी काटने अर्थ में अर्थात् कान्ति, वा इच्छा प्रतिघात अर्थ में 'काणुका' शब्द है । इस सम्बन्ध में याज्ञिक बतलाते हैं कि माध्यन्दिन सवन में तीस उक्थ पात्र एक ही देवता के होते हैं उनको इस अवसर पर एक ही बार में पीते हैं । वे पात्र 'सरस्' कहते हैं । नैरुक्तों का मत है कि कृष्णपक्ष के तीस और शुक्ल पक्ष के तीस दिन रात्रि होते हैं । चन्द्रमा की आने वाली रश्मियों का नाम 'आपः' है । क्योंकि वे दूसरे से प्राप्त होती हैं । उनको कृष्ण पक्ष में सूर्य की किरणें स्वयं अपने में पुनः ग्रहण कर लेती हैं मानों पी जाती



हैं। इसी प्रकार पूर्व शुक्लपक्ष में फिर पूर्ण कर देती हैं जिस प्रकार वेद-  
वाक्य है (यथा देवाः० इत्यादि)।

अभि गन्धर्वमृत्यादबुधेषु रजःस्वा ।

इन्द्रो ब्रह्मभ्य इवृधे ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(इन्द्रः) विद्युत् जैसे (अबुधेषु) रोक थाम न करने वाले,  
बन्धनरहित (रजःसु) अन्तरिक्ष के प्रदेशों में स्थित (गन्धर्वम् अभि  
मृत्युत्) जल को धारण करने वाले मेघ को आघात करता है तो वह  
(ब्रह्मभ्यः) अश्वों की (वृधे इत्) वृद्धि के लिये होता है वैसे ही (इन्द्रः)  
ऐश्वर्यवान् राजा (अबुधेषु रजःसु) अप्रबद्ध, अनाश्रित, लोकों के, प्रजा-  
जनो में विद्यमान (गन्धर्वम्) भूमि को अपने वश कर लेने वाले प्रबल  
शत्रु को (अभि मृत्युत्) नष्ट करे तो वह (ब्रह्मभ्यः वृधे इत्) धनों, अश्वों  
और विद्वान् पुरुषों की ही वृद्धि के लिये होता है। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

निराविध्यद् गिरिभ्य आधारयत्पक्वमौदनम् ।

इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जैसे (गिरिभ्यः) मेघों से (निर्  
अविध्यत्) जल गिराने को उन्हें ताड़ित करता है और (ओदनं) धान्य  
को (पक्वम्) परिपक्व रूप में (आ धारयत्) पुष्ट करता है और (सु-  
आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) चमकते प्रकाश को भी फैकता है वैसे ही  
(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गिरिभ्यः) मेघवत् अन्धों का माल निगल  
जाने वाले दुष्ट पुरुषों को सुधारने, उनसे सत्य निकलवाने या हड़पा  
हुआ माल निकलवाने के लिये (निर् अविध्यत्) उनको ताड़ना दे और  
उनसे (पक्वम्) पक्व (ओदनम्) वचन, शपथ, (oath) (आधारयत्)  
धारा या पक्की जुवान के रूप में करा लेवे कि फिर वे ऐसा न करेंगे  
और वह (सु आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) भयकारी, उनको भेदने  
फोड़ने वाला, अपना सैन्य बल भी (आ धारयत्) सर्वत्र स्थापित करे

ले । 'बुन्दं'—बुन्दो वा मिन्दो वा भयदो वा भासमानो द्रवतीति वा  
निरु० ६ । ३४ ॥

शतबन्ध इषुस्तव सहस्रपर्णा एक इत् । यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (यम् युजं चकृषे) जिसको अपना  
सहायक बनाता है वह (तव इषुः) तेरा बाण वा शस्त्रबल (शतबन्धः)  
सैकड़ों आश्रयों और बन्धन-मर्यादाओं वाला और (सहस्रपर्णः) सहस्रों  
बलशाली, रथों वा पालक जनों से सम्पन्न और (एकः इत्) एक  
अद्वितीय, सबसे अधिक उत्तम हो ।

तेन स्तोतृभ्य आ भर नृभ्यो नारिभ्यो अत्तवे ।

सद्यो जात ऋभुष्टिर ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऋभु-स्थिर) सत्य न्याय से प्रकाशित विद्वानों द्वारा  
स्थिर राजन् ! तू (सद्यः जातः) शीघ्र राजा रूप से प्रसिद्ध होकर (तेन)  
उस पूर्वोक्त शासनबल से (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तुतिकर्ता  
विद्वान् नरों और नारियों के लिये (अत्तवे) भोजनार्थ (आ भर) भण्ड दे ।

एता च्यौत्नानि ते कृता वर्षिष्ठानि पराणसा ।

हृदा वीड्वंधारयः ॥ ९ ॥

भा०—(एता) ये (च्यौत्नानि) बलशाली और (वर्षिष्ठानि) सुख,  
जलादि बर्षाने वाले, बलवान् सैन्य (ते कृता) तेरे ही बनाये हैं । तू  
उनको (वीडु परीणसा) महान् स्थिरतापूर्वक (हृदा अधारयः) सद्बुद्धय  
से धारण कर ।

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ।

शतं महिषान्क्षीरिणाकमौडनं वराहमिन्द्रं एमुषम् ॥ १० ॥

भा०—जैसे सूर्य के ताप या प्रकाश से प्रेरित वायु महान् आकाश  
में विचरता समस्त मेघादि को ले आता है वैसे ही हे ऐश्वर्यवान् ! (त्वा  
इषितः) तेरे से प्रेरित होकर (उरु-क्रमः) बड़ा पराक्रमी, (विष्णुः)



व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत्) उन २ समस्त पदार्थों को (आ अभरत्) प्राप्त कराता है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शक्त महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षारपाकम् भा दनम्) दूध में पके भात के समान सात्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (पुमुपं) सब तरफ से ज्ञान संग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे।

तुविक्षं ते स्मृतं स्मयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्यः।

उमा तं बाहू रणया सुसंस्कृत ऋदूपे त्रिददूवृधौ ॥ ११ ॥ ३० ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरा (धनुः) शस्त्रबल, (स्मयं) उत्तम सुखकारक, (स्मृतं) उत्तम कर्म करने वाला, (तुवि-क्षं) दूर तक घाणों को फेंकने वाला, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला हो। (ते बुन्दः) तेरा तेज और शत्रु का भयप्रद बाण, (साधुः) उत्तम, लक्ष्य पर लगाने हारा, (हिरण्यः) सुवर्णमय और हित, रम्य हो। (ते बाहू) तेरी बाहुएं, शत्रु-बाधक सेनाएं दोनों (रणया) रमणीय, सुन्दर एवं रणकुशल (सु-संस्कृते) उत्तम संस्कार से युक्त, उत्तम अभ्यस्त, (ऋदूपे) वेग से शत्रु को गिराने वाली और (ऋदुवृधौ चित्) पीडक जनों को वेधने, उनको काटने काटने वाली हों। हात त्रिशो वर्गः ॥

[ ७८ ]

कुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ निचद्व गायत्री ॥ ३, ६—९ विराड गायत्री। ४, ५ गायत्री। १० बृहती ॥ दशर्चि सूक्तम् ॥

पुरोडाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर।

शता च शूर गानांम् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (नः) हमें (अन्धसः) अन्ध और प्राण धारक पदार्थ का बना (सहस्रम्) हजारों की संख्या में, अपरिमित वा बलकारक, (पुरोडाशं) आदरपूर्वक देने योग्य खाद्य पदार्थ

(आ भर) प्राप्त करा और स्वयं भी उसको धारण कर । ऐसे ही, हे (शूर) शूरवीर ! (गोनां शता न) भूमियों, गौवों और वाणियों के सैकड़ों, हमें देकर, तू भी उनका पोषण कर ।

आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम् ।

सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

भा०—तु (नः) हमें (गाम् अश्वं) गौ, अश्व और (अभ्यञ्जनम्) शत्रु पर जाने के साधन सवारी, रथ आदि और विशेष जाने के साधन विमान आदि वा (व्यञ्जनं) विशेष चमकने वाले प्रकाश के उपाय और नाना स्थाय पदार्थ (नः) हमें (आ भर) प्राप्त करा और (सचा) साथ ही (मना) मननीय (हिरण्यया) हित और मनोहर वचन श्रवण करा ।

व्यञ्जनं अभ्यञ्जनं—अञ्जू व्यक्तिभक्षणकान्तिर्गात्रेषु । रथादिः ।

उत्त नः कर्णशोभना पुरुणि धृष्णावा भर ।

त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥

भा०—(उत्त) और हे (धृष्णो) शत्रुपराजयकारिन् ! तू (नः) हमें (पुरुणि) बहुत से (कर्ण-शोभना) कानों को सजाने के साधन, उत्तम वचन और अलंकरण (आ भर) प्राप्त करा और हमारे दिये तू धारण कर । हे (वसो) विद्वन् ! (त्वं हि शृण्विषे) तू ही हमारे वचन सुन और अपने सुना ।

नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत्त ।

नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यधन् ! राजन् ! विद्वन् ! (ते अन्यः) तुझसे दूसरा (न कीं वृधीकः) कोई और न बढ़ाने हारा, (न ते सुषा) न तुझसे दूसरा कोई उत्तम विभागकारी, (उत्त) और (न सुदा) न उत्तम दाता है (उत्त) और हे (शूर) वीर ! हे दुर्गुणादि-नाशक ! (त्वत् अन्यः) वाघतः न) तुझसे दूसरा कोई और विद्वान् वाग्मी भी नहीं है ।



नकीमिन्द्रो निकर्त्तवे न शुक्रः परिशक्तवे ।

विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(इन्द्रः) यह ऐश्वर्यवान् प्रभु, (नकीम् निकर्त्तवे) कभी अनादर और हिंसा करने योग्य नहीं । (शुक्रः) यह शक्तिमान् (न परिशक्तवे) बल द्वारा पराजय करने के भी योग्य नहीं । वह (विश्वं शृणोति) सब कुछ सुनता, (विश्वं पश्यति) सब कुछ देखता है । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स मनुं मर्त्यानामद्व्यो नि चिकीषते ।

पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥

भा०—(सः अद्व्यः) वह अविनाशी, किसी से न मारा जाने वाला, अदण्डनीय (मर्त्यानां) मनुष्यों के (मनुं) क्रोध को (नि चिकीषते) तुच्छ करके जानता है और (निदः) निन्दकों को (पुरा) पहले ही (नि चिकीषते) नीचा दिखा देता है ।

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधृतः ।

वृत्रघ्नः सोमं पाव्मः ॥ ७ ॥

भा०—उस (तुरस्य) शीघ्रकारी (विधृतः) प्रजाओं को विविध प्रकार से पालन पोषण करने वाले, जगत् के कर्त्ता, (वृत्रघ्नः) विघ्नों, दुष्टों और मेघों के नाशक और (सोम-पाव्मः) जगत्, पुत्र शिष्यादि के पालक का (उदरम्) पेट, हृदय (क्रत्वः इत्) कर्म से ही (पूर्णम्) पूर्ण रहता है ।

त्वे वसूनि सङ्गता विश्वा च सोम सौमगा ।

सुदात्वपरिह्वृता ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) प्रभो ! (त्वे) तुझमें, तेरे अधीन ही (विश्वा वसूनि विश्वा च सौमगा) समस्त ऐश्वर्य और कल्याणकारी धन, (संगता) एकत्र हैं । तू उनको (अपरिह्वृता) अकुटिल, सुप्राण्य (सुदातु) सुखदायक बना कर दे ।

त्वामिद्यं वयुर्मम कामो गव्युर्हिरण्ययुः । त्वामंश्च वयुरेषते ॥ ६ ॥

भा०—हे प्रभो ! (मम कामः) मेरा अभिलाष (यवयुः) अन्नादि का इच्छुक (गव्युः) भूमि, इन्द्रिय, रश्मि, गवादि पशु का इच्छुक और (हिरण्ययुः) हित, मनोहर वचन और सुवर्णादि का इच्छुक होकर (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही चाहता है और (अश्वयुः) अश्वों को चाहता हुआ (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही प्राप्त करता है ।

तवेद्रिन्द्राहमाशसा हस्ते दात्रं चना ददे ।

दिनस्य वा मघवन्त्सस्मृतस्य वा पूरिं यवस्य काशिना ॥ १० ॥ ३२

भा०—हे (इन्द्र) अश्वों के दातः ! (तव इत् आशसा) तेरी ही आज्ञा, आशा और कामना से मैं (हस्ते) हाथ में (दात्रं चन आददे) धान आदि खेती काटने का साधन, वा दान करने योग्य धन ग्रहण करता हूँ । हे (मघवन्) धन के स्वामिन् ! तू (दिनस्य) काटे हुए (वा) अथवा (संश्रुतस्य) एकत्र किये (यवस्य) जौ अन्न की (काशिना) सुट्टी से (पूरिं) पूर्ण कर । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[ ७९ ]

कृत्तुर्भागव ऋषिः ॥ सीमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद् गायत्री ।  
३ विराड् गायत्री । ४, ५, ७, ८ गायत्री ॥ ६ निचृदनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अयं कृत्तुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः ।

ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (कृत्तुः) जगत् का कर्त्ता, (अगृभीतः) चक्षुरादि साधनों से अग्राह्य, अविज्ञेय, (विश्वजित्) समस्त जगत् को अधीन रखने वाला, (उद्भिद्) स्थावरों को पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न करने वाला, (सोमः इत्) सबका उत्पादक होने से 'सोम' है । वही (विप्रः) सब जानों, कर्मों का दाता, मेधावी (काव्येन) वेद-ज्ञान से (ऋषिः) सत्य जानों का दृष्टा है ।

३९ प.



अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्तिं विश्वं यत्तुस्म ।

प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो वह पूर्वोक्त सोम, ऐश्वर्यवान् (नग्नं अभि कर्णोति) नग्न, वस्त्ररहित को वस्त्रादि से आच्छादित करता है । (यत्) जो (तुरं विश्वम्) सब रोगी जन को ओषधि रसवत् (भिषक्ति) रोग से रहित करता है वह (अन्धः ईम् प्रख्यत्) सबके प्राण-जीवन का पोषण कारक होकर इस विश्व को अच्छी प्रकार देखता और उपदेश करता है ! (श्रोणः निः भूत्) सर्वश्रोता होकर समर्थ रहता है । (२) (अन्धः प्र ख्यत्, श्रोणः निभूत्) अन्ध अर्थात् अचक्षु रह कर भी देखता और पंगु होकर भी सर्वत्र जाता है । यह योजना ईश्वर पक्ष में है 'अपाणि-पादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥ उपनिषत् ।

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः ।

उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सन्मार्ग में संचालक ! ऐश्वर्यवान् ! (त्वं) तू (तनू कृद्भ्यः) राष्ट्र को क्षीण करने वाले और (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) अन्य, शत्रुओं से किये, उनसे प्रेरित द्वेषों से भी (वरूथं) बचाने वाले महान् बल का (उरु यन्तासि) विशाल गृहवत् नियन्ता है ।

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन् ।

यावीरघस्य चिद् द्वेषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) प्रजा जनों को सन्मार्ग में चलाने हारे ! हे शत्रुओं को भूतने, संतप्त करने वाले सैन्य के सञ्चालक ! (त्वं) तू (तव) तेरे अपने (चित्ती) ज्ञान, बुद्धि और (दक्षैः) बलों से, (दिवः पृथिव्याः आ) आकाश और पृथिवी से आने वाले (अघस्य चिद् द्वेषः यावीः) शत्रु के सब द्वेष भावों को दूर कर ।

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिदुषो रातिम् ।

ववृज्यस्तप्यतः कामम् ॥ ५ ॥ ३३ ॥

भा०—(चेद्) यदि (अर्थिनः) धन के इच्छुक लोग (अर्थयन्ति) धन को प्राप्त करते हैं तो उनको चाहिये कि वे (दुषः रातिं गच्छान्) दानशील पुरुष की दानशीलता को भी प्राप्त हों, वे स्वयं दान भी करें। उनको चाहिये कि वे (तप्यतः कामम् ववृज्युः) किसी पियासे अर्थार्थी की अभिलाषा को पूर्ण करें। उसकी प्यास को बुझायेँ। इति त्रयविंशो वर्गः ॥

विदद्यत्पूर्व्यं नष्टमुदीमृतायुमीरयत् । प्रेमायुस्तारदितीर्णम् ॥ ६ ॥

भा०—(यत्) जो (पूर्व्यम् नष्टम्) पहले के तप या नष्ट हुए को (विदद्यत्) पाता या जान लेता है, वह (ईम्) उस ज्ञान को (ऋतायुम्) सत्य ज्ञान के अभिलाषी पुरुष के प्रति (ईरयत्) उपदेश करे। वह मानो, (ईम्) उसको (अतीर्णम्) अप्रदत्त (आयुः) नया जीवन (प्रतारीत्) प्रदान करता है।

सुशेवो नो मृडयाकुरदसक्रतुरवातः । भवानः सोमं शं हृदे ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (सु-शेवः) उत्तम सुख-दाता, (मृडयाकुः) दयाशील, (अदस-क्रतुः) ज्ञान और कर्म पर भी गर्व न करने वाला और (अवातः) प्रचण्ड वायु के समान धक्के न लगाने वाला होकर (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय के लिये शान्तिदायक हो।

मा नः सोमं सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन् ।

मा नो हार्दिं त्विषा वधीः ॥ ८ ॥

भा०—हे (राजन्) तेजस्विन् शासन करने वाले राजन् ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शासक ! तू (नः मा सं वीविजः) हमें मत उद्धिग्न कर, न परस्पर एक दूसरे से भय करा। (मा वि बीभिषथाः) विविध प्रकार से भी भयभीत मत कर और (त्विषा) कान्तियुक्त तीक्ष्ण शस्त्र



वा तीक्ष्णता से ही (नः हृदि मा वधीः) हमारे हृदयों पर आघात मत कर ।

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्त्रिधः सेध ॥१॥३४॥

भा०—(यत्) जब तू (त्वे) अपने और (देवानां) मनुष्यों के (सध-स्थे) एकत्र मिलकर बैठने के लिये विचार स्थल में (दुर्मताः) दुष्टों के दुर्व्यवहारों की (अव ईक्षे) न्यायपूर्वक विवेचना करे तब, हे (राजन्) राजन् ! तू (द्विषः) द्वेष और द्वेषी जनों को और (स्त्रिधः अप सेध) हिंसा और हिंसकों को भी दूर कर । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ ८० ]

एकचूनीधस ऋषिः ॥ १—९ इन्द्रः । १० देवा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ३, ५, ८ निचृद् गायत्री । ४, ६, ७, ९, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

नह्य न्यं बलाकरं मर्दितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृलय ॥१॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरमित ज्ञानवन् ! (अन्यं) तुझसे दूसरे को मैं (मर्दितारं नहि आकरम्) सुखदाता करके नहीं जानता (बड़ा) यह मैं सत्यपूर्वक कहता हूँ । (त्वं) तू (नः इन्द्र मृलय) हमें, हे ऐश्वर्य-वन् ! सुखी कर ।

यो नः शश्वत्पुराविथामृध्रो वाजसातये ।

स त्वं न इन्द्र मृलय ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (शश्वत्) सदा (पुरा) पूर्व भी, (अमृधः) स्वयं अन्यो की हिंसा न करने वाला और स्वयं अहिंसित होकर (वाजसातये) ऐश्वर्य विभाग के लिये (नः आविथ) हमें प्राप्त होता है, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृलय) हमें सुखी कर ।

किमङ्ग रध्रचोदनः सुन्वानस्यावितेदसि ।

कुवित्स्विन्द्र गाः शकः ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (रध्रचोदनः) अपने आराधक को सन्मार्ग पर चलाने हारा ही (किम्) क्यों बल्कि (सुन्वानस्य) उपासक का (अविता इत् असि) रक्षक ही है तू (नः कुवित् शकः) हमारा बहुत कुछ कल्याण करने में समर्थ है ।

इन्द्र प्र गां रथमव पश्चाच्चिन्सन्तमद्रिवः । पुरस्तादेनं मे कृधि ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् तू (नः) हमारे (रथम् प्र अव) रमणकारक सुखप्रद रथवत् देह की अच्छी प्रकार रक्षा कर । (पश्चात् चित् सन्तम् मे एनं) पिछड़े हुए भी इस मेरे रथ को (पुरस्तात् कृधि) आगे कर । सफलता के मार्ग पर यदि मैं पिछड़ा तो तू मुझे आगे बढ़ा ।

हन्तो नु किमाससे प्रथमं नो रथं कृधि ।

उपमं वाजयु श्रवः ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(हन्तो नु) भला अब (किम् आससे) क्यों घिलम्ब करता है ? (नः रथं) हमारे रथ को (प्रथमं कृधि) सबसे मुख्य कर और तेरा (वाजयु श्रवः) जानयुक्त उपदेश (नः उप-मं) हमारे समीप रहे । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

अवा नो वाजयुं रथं सुकरं ते किमित्परि ।

अस्मान्तु जिग्युषस्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमारे (वाजयुं) बल, वेग, वीर्य से युक्त (रथं) रथवत् देह की (अव) रक्षा कर । (इत् परि ते सुकरं किम्) इससे अधिक तेरे लिये क्या और सुगम कार्य है ? तू (अस्मान्) हमें (जिग्युषः सु कृधि) विजयी भली प्रकार कर ।

इन्द्र दद्यास्व पूरसि भद्रा तं पति निष्कृतम् ।

इयं धीर्भृत्त्वियावती ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (दद्यास्व) दद हो और तू (भद्रा पः असि) सुखदायी, पुर, प्रकोट या दुर्ग के समान पालक, रक्षक है ।



(ते) तेरा (इयं) यह (ऋत्वियावती) काल पर फल देने वाला (धीः) कर्म भी (निष्कृतं एति) सफलता को प्राप्त होता है ।

मा सीमवृद्ध आ भांगुर्वी काष्ठा हितं धनम् ।

अपावृत्ता अरुन्धः ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् राजन् ! (सीम्) सब ओर से भी (अवद्ये) निन्दा योग्य बुरे कार्य में तू हमें (मा भाग) मत डाल । (ऊर्वी काष्ठा) सीमा बहुत दूर है, यहां (धनं हितम्) धन अर्थात् प्राप्तव्य पदार्थ रक्खा है । (अरुन्धः) दुःखदायी शत्रु (अपावृत्ताः) दूर हों ।

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुग्रमसि ।

आदित्पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

भा०—(यदा) जब तू (तुरीयं) चतुर्थ, सर्वश्रेष्ठ, (यज्ञियं) सर्वोपास्य (नाम) स्वरूप को (करः) प्रकट करता है तब हम (तत् उग्रमसि) उसकी कामना करते हैं । (आत् इत्) अनन्तर ही तू (नः मतिः) हमारा पालक होकर हमें (ओहसे) अपने में ले लेता है ।

अविवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्युर्देवा उत याश्च देवीः ।

तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १०।३६।८

भा०—हे (अमृताः देवाः) अमृतस्वरूप दीर्घायु विद्वान् (उत) और (याः च देवीः) जो आप लोग विदुषी नारियां हो । आप सबको (एक-द्युः) एकमात्र, प्रकाशक प्रभु ही (अमन्दीत्) आनन्दित करता है और वही (वः अवीवृधत्) आपकी वृद्धि करता है । (तस्मा उ प्रशस्तं राधः कृणुत) उसकी ही सर्वोत्तम आराधना करो और (प्रातः) प्रभात में (मक्षु) शीघ्र ही, सबसे प्रथम (धियावसुः) ज्ञान और कर्म का धनी वही प्रभु (जगम्यात्) तुम्हें प्राप्त हो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

[ ८१ ]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६, ७ निचृद् गायत्री । ४, ९ विराड् गायत्री । नवचं सूक्तम् ॥

आ तू नं इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं सं गृभाय ।

महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (महा-हस्ती) बड़े हाथ वाला है । तू (दक्षिणेन) दायें हाथ से (नः) हमें (क्षुमन्तं) कीर्तिजनक, अज्ञादि से सम्पन्न (चित्रग्रामं) नाना प्रकार का ग्रहण योग्य धन (सं गृभाय) संग्रह कर ।

विद्या हि त्वां तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम् ।

तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

भा०—हम (त्वा) तुझे (अवोभिः) रक्षा, प्रीति आदि उत्तम गुणों करके (तुवि-कूर्मिं) बहुत कर्म करने में समर्थ, (तुवि-देष्णं) बहुत धन देने वाला, (तुवि-मात्रम्) बहुत धन राशि का स्वामी (विद्याहि) जानते हैं ।

नहि त्वां शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।

भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (गां न भीमं) बड़े बैल के समान भयंकर (न हि देवाः न मर्तासः) न दानशील विद्वान् और न साधारण मनुष्य ही (दित्सन्तम् वारयन्ते) दान देने की इच्छा वाले (त्वा) तुझको रोक सकते हैं । तू जब देना चाहे तो तुझे रोकने वाला कोई नहीं ।

एतो न्विन्द्रं स्तवामिशानं वस्वः स्वराजम् ।

न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥

भा०—(एत उ तु) आओ भाइयो ! (वस्वः ईशानं) धन के स्वामी, (स्व-राजं) स्वयं शोभित (इन्द्रं) प्रभु की (स्तवाम) स्तुति करें । कोई (राधसा) धन के कारण (नः मर्धिषत्) हमें पीड़ित न करे ।

प्र स्तोषदुषं गालिषच्छ्वत्सामं गीयमानम् ।

अभि राधसा जुगुर्त् ॥ ५ ॥ ३७ ॥

भा०—वह प्रभु ही हमें (प्र स्तोषत्) उत्तम स्तुति कराता है



(उपगासिपत्) उपासना या गान कराता है और (गीयमानं साम-  
श्रवत्) गाये गये साम को सुनता है। वही (राधसा) धनैश्वर्य द्वारा हमें  
(अभिजुगुवत्) उद्यम कराता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश ।

इन्द्र मा नो वसोर्निर्माक् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (दक्षिणेन आ भर) दायें  
हाथ से ऐश्वर्य दान कर और (सव्येन अभि प्र मृश) बायें से भी उत्साहित  
कर। तू (नः) हमें (वसोः मा निर्माक्) धन से वञ्चित मत कर।

उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम् ।

अदाशृष्टस्य वेदः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (उप क्रमस्व) उद्यम कर ! हे (धृष्णो)  
शत्रु-पराजयकारिन् ! तू (धृषता) पराजय कारक बल से, (जनानां)  
मनुष्यों के बीच (अदाशृष्ट-तरस्य वेदः) अति कंजूस के धन को (आ  
भर) ले ले।

इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः ।

अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः उ नु ते वाजः) जो तेरा धनै-  
श्वर्य (सनित्वः अस्ति) दान योग्य है (तं) उसे तू (अस्माभिः विप्रेभिः)  
हम विद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर (सु सनुहि) उत्तम कार्य में लगा।

सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः ।

वशैश्च मक्षु जरन्ते ॥ ९ ॥ ३८ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ते वाजाः) तेरे ऐश्वर्य, (विश्वश्चन्द्राः) सब  
संसार को आह्लादित करने वाले हैं। वे (अस्मभ्यं सद्योजुवः) हमें शीघ्र  
प्राप्त हों। सब लोग (वशैः च मक्षु जरन्ते) नाना कामनाओं से प्रेरित  
होकर तेरी स्तुति करते हैं। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

## अथ षष्ठोऽध्यायः

[ ८२ ]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९ तिचृद् गायत्री ।

२, ५, ६, ८ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ नवचं सूक्तम् ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन । मध्वः प्रति प्रमर्मणि ॥१॥

भा०—हे (वृत्रहन) दुष्टों के नाशक ! तू (प्र-मर्मणि) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त इस राष्ट्र में (मध्वः प्रति) सुखकारी अन्नों की प्राप्ति के लिये (परावतः अर्वावतः च) दूर और समीप के देशों से वा उन देशों को (आ द्रव प्र द्रव) आया, जाया कर । व्यापार से आयात-निर्यात किया कर ।

तीव्राः सोमास आ गंहि सुतासो मादयिष्णवः ।

पिवाद्ध्यग्यथोच्चिषे ॥ २ ॥

भा०—(तीव्राः) वेग में तीव्र, कर्मकुशल (सोमासः) उत्तम शासक (मादयिष्णवः) प्रजा को प्रसन्न करने वाले लोग (सुतासः) अमिषिक हों । तू (आगंहि) आ और (यथा ओच्चिषे) जैसे भी समवाय बना सके वैसे (दधृक्) शत्रु का पराजय करके (पिब) अपने राष्ट्र का पालन कर, उसका भोग कर ।

इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (इषा) अन्न से (मन्दस्व) तृप्ति कर । क्योंकि (वराय मन्यवे अति) श्रेष्ठ ज्ञान के लिये यह अन्न ही(अरं) अति गुणकारी है । यह अन्न (ते हृदे शम्) तेरे हृदय को शान्ति दे ।

आ त्वंशत्रवा गंहि न्युः कथानि च ह्यसे ।

उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अशत्रो) अजातशत्रो ! शत्रुरहित ! तू (आगंहि) आ ।



(दिवः उप-मे) सूर्य की उपमा योग्य (रोचने) तेजस्वी, पद पर तू (उक्त्यानि हूयसे) स्तुति-वचनों द्वारा आह्वान और स्तवन किया जाता है।

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम् ।

प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अद्रिभिः सुतः गोभिः श्रीतः सोमः मदाय) जैसे पापाण-खण्डों आदि से निकाला, गोरसों से मिला हुआ सोमादि ओषधि-रस शरीर में सुखादिजनक होता है, वैसे ही (अद्रिभिः सुतः) आकाश में मेघों द्वारा उत्पादित वा चक्री, ऊखलादि से अन्न रूप से, और भूमि में (अद्रिभिः) पर्वतों द्वारा उत्पादित रत्नादि रूप से, और (गोभिः श्रीतः) भूमियों या सूर्यकिरणों के विशेष गुणों से परिष्कृत या मिश्रित अन्न तथा (गोभिः श्रीतः) वाणियों से प्रशंसित ज्ञान वा किरणों से युक्त मणि आदि भी (अयम्) वह (सोमः) अन्नादि वा रत्नादि ऐश्वर्य (मदाय) अधिक आनन्द या हर्ष के लिये ही (तुभ्यं प्र हूयते) तुझे सादर दिया जाता है। इति प्रथमो वर्गः ॥

इन्द्रं श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः ।

वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मे हवम्) मेरी प्रार्थना को (श्रुधि) भली प्रकार सुन। तू (अस्मे) हमारे (गोमतः सुतस्य) दुग्धादि से मिश्रित अन्न तथा भूमि-सहित उत्पन्न ऐश्वर्य का (पीतिम्) उपभोग आदि तथा (तृप्तिम्) तृप्ति को (वि अश्नुहि) विविध रूप से प्राप्त कर। य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिवेदस्य त्वमीशिषे ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते चमसेषु) तेरे पानों में या पानवत् प्रजाजनों में (सोमः) अन्न और ऐश्वर्य (आसुतः) उत्पन्न होता है और जो (ते चमूषु) तेरी सेनाओं के आश्रय पर (आ सुतः) प्राप्त होता है, (अस्य त्वम्) इसका तू (ईशिषे) स्वामी है। इसलिये तू (अस्य पिव इत्) उसका अवश्य पालन या उपभोग कर।

यो अ॒प्सु च॒न्द्रमा इ॒व सोमश्च॒मूषु द॑द॒शे ।

पि॒वेद॑स्य त्वमी॒शिषे ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो शासन बल (अप्सु चन्द्रमाः इव) अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के समान आह्लादक और (चमूषु) सेनाओं के ऊपर उनके (सोमः) शासक के समान (दद॒शे) दिखाई देता है, तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य उपभोग कर, (त्वम् अस्य ईशिषे) तू ही उसका स्वामी है ।

यं ते॑ ऋ॒येनः प॒दाम॑र॒त्तिरो र॒जांस्य॑स्पृ॒तम् ।

पि॒वेद॑स्य त्वमी॒शिषे ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे राजन् ! (यम्) जिस सोम अर्थात् ऐश्वर्य को (ऋयेनः) बाज के समान आक्रमण करने वाला सेनापति (रजांसि तिरः) शत्रु जनों को पराजित करके (अस्पृतम्) शत्रुओं से अछूते या अनुपयुक्त रूप में ही (पदा) पदाति सैन्य द्वारा (ते आ भरत्) तेरे लिये ले आता है (अस्य त्वम् ईशिषे) उसका तू ही स्वामी है । तू ही उसका (पिब इत्) उपभोग कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[ ८३ ]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ विश्वे देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९ गायत्री । ३ तिचृद् गायत्री । ४ पादनिचृद् गायत्री । ७ आर्ची स्वराड गायत्री । ८ विराड् गायत्री ।

दे॒वाना॑मिद॒वो म॒हत्त॑दा वृ॒णीम॑हे व॒यम् । व॒ष्णां॑ अ॒स्मभ्य॑मू॒तये॑ ॥ १ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (वृष्णाम्) जलों के वर्षक (देवानाम्) किरणों के समान (वृष्णाम्) बलवान्, सुखदायक और (देवानाम्) विजयेच्छुक वीरों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों के (इत्) ही (महत् अवः) बड़े भारी ज्ञान, रक्षा, बल, प्रेम आदि की (अस्मभ्यम् ऊतये) हमारी अपनी रक्षा के लिये (वृणीमहे) चाहते हैं, उसे ही सबसे अच्छा मानते हैं ।



ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा ।

वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) वरुण योग्य, वृत्त राजा वा सभापति, (मित्रः) प्रजा का स्नेही, (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायशील वे सब (प्रचेतसः) उत्तम चित्त वाले, ज्ञानसम्पन्न और (वृधासः च) बढ़ाने और दुष्टों का मूलोच्छेद करने वाले (युजः सन्तु) सहायक हों ।

अतिं नो विष्णिता पुरु नौमिरुपो न पर्षथ । यूयमृतस्य रथ्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऋतस्य रथ्यः) महारथियोंवत् सत्य ज्ञान और न्याय के प्राप्त कराने वाले जनो ! आप लोग (नः) हमें (नौमिः अपः न) नौकाओं से जलों के समान (विष्णिता) विविध रूपों से प्राप्त शत्रुओं के बलों वा कर्म-बन्धनों से (अति पर्षथ) पार करो ।

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अर्यमन्) दुष्टों के नियन्तः न्यायकारिन् ! हे (वरुण) सबसे वरणीय ! (नः वामं अस्तु) हमारा उत्तम धन हो और (वामं शंस्यं अस्तु) हमारा धन प्रशंसनीय हो और हम (वामं हि आवृणीमहे) उत्तम, सेवन करने योग्य धन वा सुख की ही याचना करते हैं ।

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।

नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्कृष्ट चित्त वाली ! हे (रिशादसः) हिंसक जनों को उखाड़ फेंकने वाले वीरो ! आप लोग (वामस्य) सेवने योग्य धन के ही (ईशानासः) स्वामी हो । हे (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा माता तुल्य भूमि के पुत्रवत् जनो ! (यत्) जो धन (अघस्य) पाप का है (न ईम् ईशानासः) आप लोग उसके स्वामी न हों । इति तृतीयो वर्गः ॥

व्यमिदः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वजा ।

देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील (देवाः) नाना उत्तम काम-  
नाओं वाले, व्यवहारकुशल पुरुषो ! (वयम् इत्) हम ही (क्षियन्तः)  
निवास करते हुए और (अध्वन् यान्तः) मार्ग में जाते हुए भी (नः)  
आप लोगों की (वृधाय) वृद्धि के लिये (हूमहे) बुलाते हैं ।

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले !  
हे (अश्विना) उत्तम अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामियो ! हे (मरुतः) वायुवत्  
बलवान्, विद्वान्, वा व्यापारी जनो ! (सजात्यानां एषां) समान जाति  
वाले इनमें से (नः) हमें भी (अधि इत्) जानो और अधीन लेवो ।

प्र भ्रातृत्वं सुदानवोऽथ द्विता समान्या । मातुर्गर्भे भरामहे ॥८॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानदाता पुरुषो ! हम लोग (मातुः  
गर्भे) माता के गर्भ में रहकर जैसे (भ्रातृत्वं) भाईपन और (समान्या  
द्विता) समान रूप से आदर योग्य 'द्विता' अर्थात् युगल भाव को प्राप्त  
करते हैं वैसे ही (मातुः) ज्ञानोपदेष्टा ब्रह्म-ज्ञान के दाता, विद्या जन्म  
द्वारा उत्पादक आचार्य और सर्वोत्पादक सर्वपोषक माता भूमि के  
(गर्भे) शासन, विद्या-ग्रहणकाल में रहते हुए परस्पर के (भ्रातृत्वं)  
भ्रातृत्व और (समान्या द्विता) समानों के योग्य दो-पन या युगल  
भाव को (प्र भरामहे) उत्तम रीति से धारण करें ।

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।

अथा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (यूयं) आप लोग  
(इन्द्र-ज्येष्ठाः) अन्नदाता, शत्रुनाशक और ज्ञानदर्शी को अपना ज्येष्ठ  
भावने वाले और (अभि-द्यवः) स्वयं तेजस्वी, (स्थहि) अवश्य होवो ।



(अध चित् उत्) और मैं भी (वः ब्रुवे) आप लोगों को उपदेश करूँ ।  
इति चतुर्थो वर्गः ॥

[ ८४ ]

उशना काव्य ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः—१, पादनिचृद् गायत्री ।  
२ विराड् गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री । ४, ५, ७—९ गायत्री ॥  
नवचं सूक्तम् ॥

प्रेष्टं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् । अग्निं रथं न वेद्यम् ॥१॥

भा०—मैं (वः) आप लोगों के प्रति, आप में से (प्रेष्टं) सबसे अधिक प्रिय, (अतिथिम्) अतिथिबत् पूज्य (मित्रम् इव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रीतिकारक, (रथं न) रथ के समान (वेद्यम्) धन जन, देशान्तर प्राप्त करने के उत्तम साधन, रथ्य, ज्ञानप्रद (अग्निः) अग्रणी, विद्वान् की (स्तुषे) स्तुति करता हूँ ।

कविमिव प्रचेतसं यं देवासो अध्वं द्विता । नि मर्त्येष्वदधुः ॥२॥

भा०—(यम्) जिस (कविम् इव प्रचेतसम्) विद्वान् पुरुष के समान उत्तम ज्ञानवान् को (देवासः) विद्वान् जन (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (द्विता नि आदधुः) दो प्रकार से स्थापित करें । पूज्य रूप से और सञ्चालक रूप से । हे मनुष्यो ! (अध) उसे स्वीकार करो ।

त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः पाहि शृणुधी गिरः ।

रक्षां लोकमुत त्मना ॥ ३ ॥

भा०—हे (यविष्ठ) युवतम, उत्तम, युवा पुरुष ! बलवान् ! (त्वं) तू (दाशुषः) जीवन, धन, ज्ञानादि देने वाले (नृः) मनुष्यों को (पाहि) पालन कर और उनकी (गिरः) वाणियों को (शृणुधिः) सुना (लोकम्) युक्त आदि सन्तति की (त्मना) अपने सामर्थ्य से (रक्षा) रक्षा कर ।

कया ते अग्ने अङ्गिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।

चराय देव मन्यवे ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (अंगिरा) अंग-देह में रसवत् बलशालिन् ! हे (ऊर्जः नपात्) वीर्य से उत्पन्न पुत्रवत् बल से उत्पन्न, वा बल, वीर्य का पतन या नाश न होने देने वाले ! हम लोग (वराय) वरण-योग्य (मन्यवे) तेजस्वी, मननशील (ते) तुझ पुरुष का (उपस्तु-तिम्) गुणवर्णन (कया) कैसी वाणी से करें ।

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।

कदु चोच्च इदं नमः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (सहसः यहो) शत्रु विजयी बल से उत्पन्न ! हम लोग (कस्य) किस (यज्ञस्व) पूज्य, सत्संगयोग्य के (मनसा) ज्ञान वा मन से युक्त होकर (दाशेम) दान करे, अपने को सौंपे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

अथा त्वं हि नृस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः ।

वाजर्द्रविणसो गिरः ॥ ६ ॥

भा०—(अथ) और (त्वं ही) तू ही (नः) हम (विश्वाः सुक्षितीः) समस्त प्रजाओं को उत्तम (करः) बना और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजर्द्रविणसः सुक्षितीः करः) अन्न, ऐश्वर्य सम्पन्न भूमियां कर और हमारे लिये (गिरः वाज-द्रविणसः) ज्ञानसम्पन्न वाणियों का उपदेश कर ।

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते ।

गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ७ ॥

भा०—हे (दम्पते) गृहपते ! हे दमन, शासन, दण्ड व्यवस्थादि के : पालक ! (यस्य ते) जिस तेरी (गिरः) वाणियां (गो-साता) हमें ज्ञान वाणियों और भूमियों के विभाग या दान के लिये हैं वह तू (कस्य परीणसः) किस महान् पुरुष के निमित्त (धियः जिन्वसि) नाना कर्म करता है, किसके प्रति बहुत स्तुतियों, बुद्धियों को प्रेरित करता है ।

तं मर्जयन्त मुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु ।

स्वेषु क्षयषु वाजिनम् ॥ ८ ॥



भा०—(तं) उस (सु-क्रतुं) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (आजिषु) संग्रामों में (पुरः-यावानं) आगे प्रयाण करने हारे और (स्वेषु क्षयेषु) अपने ऐश्वर्यों वा गृहों में भी (वाजिनम्) बल, ज्ञान और वेग से अना-लसी होकर कार्य करने वाले को (मर्जयन्त) सादर अलंकृत करो ।

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नक्रियं घ्नन्ति हन्ति यः ।

अग्ने सुवीरं पृथते ॥ ६ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (क्षेमेभिः) कल्याणकारी, (साधुभिः) उत्तम कार्य-साधक पुरुषों और उपायों सहित (क्षेति) रहता और ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, (यं नक्रिः घ्नन्ति) जिसको कोई भी मार नहीं सकते हैं । वह हे (अग्ने) अग्निवत् ज्ञानिन्, तेजस्विन्, प्रतापशालिन् ! तू (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् होकर (पृथते) वृद्धि को प्राप्त करता है । इति षष्ठो वर्गः॥

[ ८५ ]

कृष्ण ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराड् गायत्री । २, ५, ७ निचृद् गायत्री । ३, ४, ६, ८, गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ मे हवँ नासत्याश्विना गच्छतं युवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचरणों से रहित, सदा सत्यभाषी हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वशी स्त्री पुरुषो ! (युवम्) तुम दोनों, (मे हवम्) मेरे यज्ञ को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर अन्न रस पान करने के लिये (आ गच्छतम्) आइये ।

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मे इमं स्तोमं हवम्) मेरा यह स्तुति योग्य आह्वान वा उपदेश को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के पान के लिये (शृणुतम्) श्रवण करो ।

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों वालों ! हे (वाजिनीवसू) बल-युक्त सेना के धनी सैन्य और सेनापते ! (मध्वः सोमस्य पीतये) बलयुक्त शत्रु को कंपाने में समर्थ 'सोम' ऐश्वर्य और बल के पालन करने के लिये (अयं) यह (कृष्णः) शत्रु को कर्पण या पीड़ित करने वाला राजा (वां हवते) तुम दोनों को अपने पास बुलाता है ।

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नर-नारियो ! आप (मध्वः सोमस्य पीतये) सुख-दायक सोम, बल वीर्य के पालन करने के लिये (स्तुवतः जरितुः) उप-देश करने वाले विद्वान्, (कृष्णस्य) संशयो के उच्छेदन में समर्थ विद्वान् के (हवं) आह्वान या वचन का (शृणुतं) श्रवण करो ।

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) आनन्दप्रद ज्ञान रस के पान के लिये (स्तुवते विप्राय) उपदेष्टा विद्वान् को हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! (अदाभ्यं छर्दिः यन्त) अहिंसक, सुखदायक गृह प्रदान करो । इति सप्तमो वर्गः ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) ज्ञान-रस का पान करने और आनन्दकारी वीर्य की रक्षा के लिये, हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! आप दोनों वर्ग (इत्था स्तुवतः) सत्य के उपदेष्टा विद्वान् (दाशुषः गृहम्) ज्ञानदाता गुरु के गृह को (गच्छतम्) जाओ ।



युजाथां रासभं रथे वीडुवङ्गे वृषणवसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृषणवसू) बलवान् ब्रह्मचारी जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) सुखकारक 'सोम' विद्या माता के गर्भ में उत्पन्न होने वाले शिष्य-रूप पुत्र के पालन और उसकी ज्ञान-रस-पान कराने के लिये (वीडु-अंगे रथे) दहांग रथ में (रासभं) उत्तम ध्वनि से अलंकृत अश्व के समान (वीडु-अंगे) दह अंगों को करने में समर्थ (रथे) उत्तम उपदेश-योग्य आश्रम, ब्रह्मचर्य काल में (रासभं) उत्तम उपदेश से अलंकृत आचार्य को (युजाथाम्) नियुक्त करो ।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर वेदज्ञान के पान और वीर्य-पालन के लिये (त्रि-वन्धुरेण) तीन बन्धनों वाले, (त्रिवृता) तीन बार बटे, तीन प्रकार से अभ्यस्त (रथेन) स्थिर होकर रहने योग्य, ब्रह्मचर्य-आश्रम के धर्म-पालन से (आयातम्) आगे बढ़ो ।

नू मे गिरौ नासत्याश्विना प्रावतं युवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥ ८ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के ग्रहण के लिये हे (नासत्या) सदा सत्य के धारण करने वाले ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो (नू) शीघ्र ही (मे गिरः युवं प्रावतम्) मेरी उपदिष्ट वेदवाणियों का आप उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[ ८६ ]

कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३  
विराड् जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥

उभा हि दक्षा मिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।  
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् १

भा०—हे (दक्षा) रोगादि के नाशक (उभा) आप दोनों (मिषजा) प्रेमपूर्वक मिलने-जुलने वाले, वा रोगों को दूर करने वाले (भयः-भुवा) सुखदाता और (उभा) दोनों (दक्षस्य वचसः) बलशुक्त कर्म-समर्थ वचन के बोलने वाले (बभूवथुः) होवो । (ता वां) आप दोनों को (विश्वकः) समस्त मनुष्य (तनू-कृथे) देह-रक्षा के निमित्त (हवते) बुलाते हैं । आप दोनों (सख्या) मित्रता से (नः) हमें (मा वि यौष्टं) पृथक् न करो, प्रेम से रखो और (नः मा मुमोचत्) हमें त्याग न करो ।

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्य इष्टये । ता  
वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥२॥

भा०—(नूनं) निश्चय ही (वि-मनाः) विपरीत ज्ञान वाला अज्ञानी मनुष्य (वां) तुम दोनों की (कथा उपस्तुवत्) कैसे स्तुति कर सकता है ? (युवम्) तुम दोनों (इष्टये) इच्छा पूर्ति के लिये (धियं वस्यः ददथुः) बुद्धि और धन देते हो । (ता वां) उन आप दोनों को (तनू-कृथे विश्वकः हवते) अपने देह के सुखार्थ सभी बुलाते हैं । तुम दोनों (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें मित्र भाव से पृथक् मत करो और (वि मुमोचतम्) विविध दुःखों से छुड़ाओ ।

युवं हि ष्मा पुरुभुज्जेममैधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्य इष्टये । ता वां  
विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥३॥

भा०—हे (पुरु-भुजा) बहुतों को पालन करने में समर्थ पुरुषो ! आप दोनों (विष्णाप्वे) व्यापक शक्तिमान् प्रभु को प्राप्त करने वाले (इष्टये) यज्ञ के निमित्त (वस्यः) उत्तम धन और (एधतुं ददथुः स्म) बुद्धि के साधन देते रहो । (ता वां इत्यादि पूर्ववत्)



उत त्वं वीरं धनसामृज्जीषिणं दूरे चित्सन्तमवसे हवामहे ।  
यस्य स्वादिष्टा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सख्या मुमो-  
चतम् ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (त्वं वीरं) उस वीर, बलवान् (धनसा) धन के दानी और धन प्राप्त करने में कुशल, (ऋज्जीषिणं) धर्म मार्ग में सञ्चालक और शत्रुनाशक सैन्य के चालक ऐसे (दूरे चित् सन्तं) दूर देश में रहते हुए पुरुष को भी हम (अवसे) रक्षा और ज्ञान लाभ के लिये (हवामहे) बुलावें । (यस्य) जिसकी (स्वादिष्टा सुमतिः) अति सुखदायिनी प्रज्ञा (यथा पितुः) पिता के समान हित करे, हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (नः मा वि यौष्टं) पूर्ववत् ।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे ।  
ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमो-  
चतम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(देवः सविता) सूर्य के समान तेजस्वी, प्रभु (ऋतेन) सत्य ज्ञान वेद से (शम् आयते) सबको शान्ति देता है और वह (ऋतस्य शृङ्गम्) अन्धकारनाशक प्रकाश के समान असत्य, अविद्या के नाशक सत्य के प्रकाश को (उर्विया पप्रथे) बहुत अधिक फैलाता है । (ऋतं) सत्य ही (महि चित् पृतन्यतः) बड़े २ शत्रुओं को भी (सासाह) पराजित करता है । शेष पूर्ववत् । इति नवमो वर्गः ॥

[ ८७ ]

कृष्णो द्युम्नी द्युम्नीको वा वासिष्ठ आंगिरसः प्रियमेधो वा ऋषिः ॥  
अश्विनी देवते ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद् बृहती । २, ४, ६  
निचृत् पङ्क्तिः । षड्जं सूक्तम् ॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।  
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरियो ॥ १ ॥

भा०—(सैंके क्रिविः न) सेचन के लिये प्रचुर जल वाला कूप जैसे (द्युम्नी) उत्तम अन्नोत्पादक होता है वैसे ही (वां) आप दोनों का (स्तोमः द्युम्नी) स्तुति-वचन, उपदेश ज्ञान देने वाला है। हे (अश्विना) विद्या-वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आइये। (सः) वह (दिवि प्रियः) ज्ञान-प्राप्ति के निमित्त पूर्ण है। हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! दोनों (मध्वः सुतस्य) मधुर ज्ञान का (हरिणे गौरौ इव) जलाशय में दो गौर नाम मृगों के समान (पातं) पान करो।

पिबतं धर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा।

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्ववत् राष्ट्र में नियुक्त जनों के स्वामी जनो ! आप दोनों (नरा) नायक जन (बर्हिः) आसनवत् इस राष्ट्र प्रजाजन पर (आ सीदतम्) अध्यक्षवत् विराजो और (मधुमन्तं) बलयुक्त (धर्मं) तेज और रस का मधुयुक्त ओषधिवत् (पिबतम्) उपभोग करो। (मनुषः दुरोणे) मनुष्य के आश्रय रूप गृह के समान उत्तम रक्षास्थान-वत् (मनुषः दुरोणे) साधारण मनुष्य के लिये दुष्प्राप्य राजपद पर (मन्दसाना) हर्ष लाभ करते हुए (ता) वे आप दोनों (वेदसा) धन के द्वारा (वयः) राष्ट्र के बल और समृद्धि की (निपातम्) रक्षा करो।

आ वां विश्वाभिरुतिभिः प्रियमेधा अहूषत।

ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम नायको ! जितेन्द्रिय स्त्री-पुरुषो ! (प्रियमेधाः) यज्ञ, युद्ध आदि के प्रियजन (विश्वाभिः उतिभिः) सब प्रकार की प्रीतियों तथा रक्षा-साधनों सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को बुलाते हैं। (ता) वे आप दोनों (वृक्तबर्हिषः) कुशाओं के समान संशयों, शत्रुओं का मानसिक दुर्विचार, क्रोधादि रिपुओं को उच्छेद करने वाले के (वर्तिः) गृह पर (उप-यातम्) उपस्थित होवो और (दिविष्टिषु) प्रति प्रातः के



अवसरों में वा उत्तम कामनाओं की पूर्ति के लिये (यज्ञं) यज्ञ, सत्-संगादि को (उप जुष्टं) सेवन करो ।

पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं सुमत् ।

ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराश्विवेरिणम् ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (सुमत् बर्हिः सीदतम्) उत्तम आसन और प्रजा पर अध्यक्षवत् विराजो और (मधु-मन्तं सोमं पिबतम्) मधुर आनन्द-युक्त ऐश्वर्य का अन्नवत् उपभोग करो । (ता) वे आप दोनों (वावृधाना) वृद्धि प्राप्त करते हुए (दिवः सु-स्तुतिं) ज्ञान के उत्तम उपदेश को (हरिणं गौरो इव) जलाशय को मृगयुगल के समान (उप गन्तम्) प्राप्त होवो ।

आ नूनं यातमश्विनाश्वैभिः प्रुषितप्सुभिः ।

दत्ता हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) शीघ्रगामी अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, नायक जनो ! आप दोनों (प्रुषित-प्सुभिः) जित्ध, पूर्ण वा जलादि से सिक्त अभिषेचित रूप वाले (अश्वैभिः) विद्यावान् पुरुषों-सहित (नूनं आयातम्) अवश्य आवो । आप दोनों (दत्ता) बाह्य, अन्तः-शत्रुओं के नाशक, (हिरण्य-वर्तनी) सुवर्ण के रथ वाले, वा हितरमणीय मार्ग के अवलम्बक, (शुभः-पती) उत्तम कल्याण के पालक, (ऋत-वृधा) ज्ञान के वर्धक आप दोनों (सोमम् पातम्) ऐश्वर्य का उपभोग करो ।

वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।

ता वल्लू दत्ता पुरुदंससा धियाश्विना श्रुष्ट्या गंतम् ॥६॥१०॥

भा०—हे (अश्विना) हे अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (वां हि विपन्यवः) हम स्तुतिकर्ता और विविध व्यवहार-कुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य और ज्ञान-प्राप्ति के लिये (वां हि हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं । (ता) वे आप दोनों (वल्लू) कुशल



आचरण वाले, (दंष्ट्रा) दुष्ट कर्मों के नाशक (पुष्ट-दंससा) बहुत से उत्तम कर्मों के कर्ता होकर (धिया) कर्म और ज्ञान-बल से (श्रुष्टी आ गतम्) शीघ्र ही उद्देश्य को प्राप्त होवो । इति दशमो वर्गः ॥

[ ८८ ]

नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद्ध बृहती ।

२, ४ पङ्क्तिः । ६ विराट् पङ्क्तिः । षडृचं सूक्तम् ॥

तं वो दस्मस्मृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।

अभि वृत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं ग्रीभिर्नवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (अन्धसः) अग्रवत् उपभोग्य (वसोः) राष्ट्र में वसे प्रजा जन और (वसोः) धन राशि से (मन्दानम्) हर्षित (तं) उस (दस्मम्) शत्रुनाशक और (ऋति-सहं) शत्रुओं के पराजयकारी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति की हम लोग (स्वसरेषु) सुख से बीतने वाले दिनों में, गोष्ठों में (अभिवृत्सं न धेनवः) वच्छे के प्रति गौओं के समान (ग्रीभिः नवामहे) वाणियों से स्तुति करें ।

द्युक्षं सुदानुं तविषीमिरावतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (द्युक्षं) दीप्ति-युक्त (सु-दानुं) उत्तम दानशील, (तविषीमिः आवृतं) नाना सेनाओं से घिरे (गिरिं न) मेघ के समान (पुरु-भोजसं) बहुतों के पालक, स्वामी से (क्षुमन्तं) अन्नादि से युक्त (शतिनं सहस्रिणं) सौ हजार-आदि से युक्त, (गोमन्तं वाजं) भूमि, पशु दोनों आदि से समृद्ध ऐश्वर्य की याचना करें और प्राप्त भी करें ।

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।

यद्वित्संसि स्तुवते मार्वते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

भा०—(बृहन्तः) बड़े २ (वीळवः) बलशाली, (अद्रयः) पर्वतों के शुल्लभ बाधक जन भी (त्वा न वरन्ते) तुझे निवारण नहीं करते । (यत्)



जो तू (भावते स्तुवते) मुझ सदृश स्तुतिकर्ताओं को (वसु दित्ससि) धन देना चाहता है (ते तत् न किः आमिनाति) तेरे उस संकल्प का कोई भी नाश नहीं कर सकता ।

योद्धासि कृत्वा शवसां दंसना विश्वा ज्ञातांभि मृज्मना ।

आ त्वायमर्क ऊतये ववर्तति यं गोतमा अजीजनन् ॥ ४ ॥

भा०—(यम्) जिस (त्वा) तुझको (अर्कः) स्तोता वा तेरे गुण बतलाने वाला वेदमन्त्र (ऊतये आववर्तति) रक्षा के लिये अपने अभि-मुख करता है, (यं गोतमाः अजीजनन्) जिसको वेदवाणियों, वा विद्वान् प्रकट करते हैं वह तू (कृत्वा) ज्ञान, (शवसा) बल (उत दंसना) और कर्म और (मृज्मना) आज्ञापक प्रभाव से (विश्वा जातानि अभि) सब पदार्थों के प्रति (योद्धा असि) शत्रुओं से लड़ने हारा, उन पर प्रहार करने, पछाड़ने में समर्थ है ।

प्र हि रिरिक्ष ओजसा दिवो अन्तेभ्यस्परि ।

न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमनु स्वधां ववक्षिथ ॥५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (ओजसा) बल पराक्रम से (दिवः अन्तेभ्यः परि) आकाश और पृथिवी के परले छोरों तक भी (प्र रिरिक्षे हि) सबसे अधिक बलशाली है । तू (पार्थिवम् रजः अनु स्वधां ववक्षिथ) पृथिवी लोक पर जलवत् जीवन तत्त्व को प्राप्त कराता है, तू महान् है और (न त्वा विव्याच) तुझे कोई व्याप नहीं सकता ।

नकिः परिष्टिर्मघवन्मघस्य ते यद्वाशुषे दशस्यसि ।

अस्माकं बोध्युचथस्य चोदिता मंहिष्ठो वाजसातये ॥६॥११॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! (यत्) जो तू (दशस्यसि) देता है उस (तं) तेरे (मघस्य) धन का (परिष्टिः) बाधक (नकिः) कोई नहीं । तू (वाज-सातये) अन्न, ऐश्वर्य, बल, ज्ञान-दान करने में (मंहिष्ठः) अलि दानी और (चोदिता) सन्मार्ग में प्रेरक है । तू (अस्माकं उचथस्य बोधि) हमारे वचन, स्तुति को जान । इत्येकादशो वर्गः ॥

[ ८६ ]

नृमेघपुरुमेघावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ बृहती । ३ निचृद्  
बृहती । २ पादनिचृत् पंक्तिः । ४ विराट् पंक्तिः । ५ विराडनुष्टुप् ।  
६ निचृदनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

येन ज्योतिरजनयन्नतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ १ ॥

भा०—हे (मरुतः) परिमित भाषण वाले, विद्वान् पुरुषो ! (येन) जिससे (ऋत-वृधः) सत्य के बढ़ाने वाले, (देवाय) प्रकाशस्वरूप, प्रभु को जानने के लिये (देवं जागृवि ज्योतिः अजनयन्) प्रकाशक, सदा जागृत ज्ञानज्योति को प्रकट कर लेते हैं उस (वृत्र-हन्तमम्) विघ्न-बाधा-रूप, अन्तःकरण के आवरण को नाशक (बृहत्) बड़े उत्तम बृहत् नाम स्तोम का (इन्द्राय) उस प्रभु की स्तुति के लिये (गायत) गान करो ।

अपाधमदमिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युमन्यामवत् ।

देवास्तं इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानी मरुद्गण ॥ २ ॥

भा०—(अशस्तिहा इन्द्रः) अपकीर्तियों का नाशक वह ऐश्वर्यवान्, (अभिघास्तीः अप अधमत्) हिंसकों के आक्रमणों को परे कर देता है, (अथ) और वह (द्युम्नी अभवत्) ऐश्वर्यवान् हो जाता है । हे (बृहद्-भानो) महान् तेजस्विन् ! (मरुद्-गण) बलवान् गणों के स्वामिन् ! (देवाः) विजयेच्छुक् जन (ते सख्याय येमिरे) तेरे सख्यभाव के लिए अपने को नियम में बांधते हैं ।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत ।

वृतं हनति वत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुहन्ता जनो ! आप लोग (बृहते इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ब्रह्मा अर्चत) महान् सामर्थ्य की स्तुति करो ।



वह (वृत्रहा) दुष्टों का हन्ता (शत-क्रतुः) अपरमित ज्ञानी, (शत-पर्वणा-चक्रेण) सैकड़ों पर्वों से युक्त वज्र, बल, सैन्य वा ज्ञान से (वृत्रं) दुष्ट शत्रु और अज्ञान का (हनति) नाश करता है । 'वज्र'—अज्ञान का वर्जन करने से ज्ञान वज्र है ।

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत् ।

अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनौ वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (धृषन्-मनः) शत्रुओं और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने में समर्थ मन वा ज्ञान वाले जन ! (ते) तेरा (बृहत् श्रवः असत्) बड़ा भारी यश और ज्ञान हो । तू उस ज्ञान वा यश को (धृषता) बाह्य और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने वाले बल से (अभि प्र भर) धारण कर । (मातरः) माताओं के समान, सर्वप्रिय (आपः) आपसजन (वि अर्षन्तु) मेघ से जल धाराओं के समान विविध प्रकार से प्राप्त हों और तू (वृत्रं हनः) दुष्ट का नाश कर और (स्वः जय) सबका विजय कर ।

यज्ञार्यथा अपूर्व्य मघवन्वत्रहत्याय ।

तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवान् ! हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व विद्यमान (यत्) जो तू (वृत्र-हत्याय) बढ़ते शत्रुवत् अज्ञान के नाश के लिये (अभि प्र जायथाः) समर्थ होता है, (तत्) वह तू (पृथिवीम् अप्रथयः) पृथिवी को विस्तृत करता, (उत) और (द्याम् अस्तभ्नाः) आकाश वा सूर्य को स्थिर करता है ।

तत्ते यज्ञो अजायत तदृकं उत हस्कृतिः ।

तद्विश्वमभिभूरासि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥

भा०—तब ही हे प्रभो ! (ते यज्ञः अजायत) तेरा महान् यज्ञ होता है (तत् ते अर्कः) वही तेरा स्तुति योग्य ज्ञान है । (उत हस्कृतिः) वही तेरा ब्राह्म दिनवत् हर्ष का विलास है । (तत्) वह तू (विश्वम्

अभि भूः असि) समस्त विश्व का उत्पादक है (यत् जातं यत् जन्त्वम्)  
जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होगा, उस सबका उत्पादक तू ही है।

आमासु पक्वमैरय आ सूर्य रोहयो दिवि ।

धर्म न सामन्तपता सुवक्तिमिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥७॥१२॥

भा०—हे प्रभो ! तू (आमासु) सृष्ट भूमियों में (पक्व) परिपाक योग्य, शक्ति को (ऐरयः) देता है और (दिवि) आकाश में (सूर्य आरोह्यः) सूर्य को स्थापित करता है। (गिर्वणसे) वाणी से सेवन योग्य उस प्रभु के (जुष्टं) प्रिय (बृहत्) बड़े भारी (धर्म) तेज को (सामन्) सामस्तुति (सु-वक्तिभिः) और उत्तम स्तुतियों द्वारा (धर्म न) सूर्य-प्रकाशवत् (तपत) तपो, सेवन कर तपश्चर्या से उसके तेज को धारण करो। हति द्वादशो वर्गः ॥

[ ९० ]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती । ३ विराड् बृहती । ५ पादनिचृद् बृहती । २, ४ पादनिचृत् पंक्तिः । ६ निचृत् पंक्तिः ॥

षडृचं सूक्तम् ॥

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु ।

उप ब्रह्माणि सर्वानानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥

भा०—(हव्यः इन्द्रः) सबसे संकटों के समय पुकारने, बुलाने योग्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमारे (विश्वासु समत्सु) समस्त संग्रामों में (आ भूषतु) सदा सज्ज रहे। वह (वृत्र-हा) बड़ते शत्रु का नाशक, (परम-ज्याः) बड़ी प्रबल डोरी वाला, शत्रुओं का बड़ा नाशक और (ऋचीषमः) यथार्थ गुण-स्तुति के अनुरूप होकर (सर्वानानि) समस्त ऐश्वर्यों (ब्रह्माणि) धनों वा अन्तों को (उप भूषतु) प्राप्त हो।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत् ।

तुविद्युमनस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शर्वसो मह ॥ २



भा०—(त्वं) तू (राधसां प्रथमः दाता) ऐश्वर्यों का सर्वोत्कृष्ट दाता है, तू (सत्यः) सत्यस्वरूप, (ईशान-कृत्) सबका स्वामी, जगत् का कर्त्ता है। (तुवि-द्युम्नस्य) बहुत से धनों, ऐश्वर्यों से सम्पन्न (महः शवसः पुत्रस्य) बड़े भारी बल के कारण बहुतों की रक्षा करने में समर्थ तेरे ही (युज्या) सहयोगों, मित्रताओं और सहायताओं की (वृणीमहे) याचना करते हैं।

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता ।

इमा जुषस्व हर्यश्च योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे लिये (अनतिद्भुता) यथाथ गुणानुरूप (ब्रह्मा) स्तुतिवचन, अन्नादि सत्कार (क्रियन्ते) किये जावें। हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (हर्यश्च) अश्वोवत् मनुष्यों के स्वामिन् ! हम (या ते) तेरे लिये या जिन भी (योजना) उचित गुण भोगों की (अमन्महि) चिन्तना करते हैं तू (इमा जुषस्व) इनको स्वीकार कर।

त्वं हि सत्यो मघवन्नानतो वृत्रा भूरि न्यूञ्जसे ।

स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्च रयिमा कृधि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (अनानतः) किसी से भी नहीं झुकता, (त्वं हि सत्यः) तू सत्य-रूप है। तू (भूरि-वृत्रा) बहुत से चित्रों, दुष्ट पुरुषों को (नि-ऋञ्जसे) वश करने में समर्थ है। हे (शविष्ठ) अति बलशालिन् ! हे (वज्र-हस्त) हाथ में बल, वीर्य और खड्ग धारण करने हारे ! (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील को (रयिम् अर्वाञ्च कृधि) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते ।

त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक्ष इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के हन्तः ! (त्वं यशाः असि) तू यशस्वी

है। हे (शवसः पते) बलों के पालक ! (त्वं ऋजीषी असि) तू सबको सत्य मार्ग में चलाने हारा है। (त्वं) तू (अप्रतीनि) वे मुकाबले के (वृत्राणि) मेघस्थ जलोंवत् अति बाधक शत्रुओं को भी (एकः इव) अकेला ही (हंसि) दण्डित करता है, तू (चर्षणीयता) समस्त मनुष्यों के धारक बल से (अनुत्ता) अपरानित शत्रुओं को भी परानित करता है।

तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।

महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो अश्रवन् ॥६॥१३॥

भा०—हे (असुर) बलशालिन् ! (प्र-चेतसं) उत्कृष्ट चित्त वाले (त्वा) तुझसे (भागम् इव राधः ईमहे) पिता से प्राप्तव्य भाग के समान हम धन-याचना करते हैं। (ते) तेरी (कृत्तिः) श्रमपूर्वक काट कर संग्रह-योग्य खेती (ते शरणा) तेरी शरणदायिनी सम्पदा (मही इव) बड़ी भारी भूमिवत् है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते सुम्ना नः प्राश्रवन्) तेरे दिये सुख हमें प्राप्त हों। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ९१ ]

अपालात्रेयी ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् पंक्तिः । २ पंक्तिः । ३ निचूदनुष्टुप् । ४ अनुष्टुप् । ५, ६ विराडनुष्टुप् । ७ पाद-

निचूदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चिं सूक्तम् ॥

कन्याः वारवायती सोममपि सुताविदत् ।

अस्तं भरन्त्यब्रवीदिन्द्राय सुनवै त्वा शक्राय सुनवै त्वा ॥१॥

भा०—जैसे (सु ता) बहती (अवयती) नीचे की ओर जाती (वाः) जलधारा (सोमम् अपि विदत्) ओषधि वर्ग को प्राप्त होती है, वैसे ही (वाः) वरण करने वाली वरवर्णिनी, (अवयती कन्या) समझती बूझती हुई कन्या (सोमम्) पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष को (सु ता) उसके प्रति प्रेमाकृष्ट होकर (अपि विदत्) पति रूप से प्राप्त करे; विवाह करे। चह (अस्तं भरन्ती) गृह-आश्रम की धारण करती हुई (अब्रवीत्) कहे



कि मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी स्वामी होने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा आदर करती हूँ, ऐसे ही (शक्राय) शक्तिशाली स्वामी को प्राप्त करने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा पूजन करती हूँ ।

असौ य पृषि वीरको गृहं गृहं विचाकशत् ।

इमं जम्भसुतं पिव धानावन्तं करम्भिणामपूवन्तमुक्थिनम् ॥२॥

भा०—(असौ) वह दूर देश का (यः) जो (वीरकः) वीर्य-युक्त पुरुष (पृषि) प्राप्त होता है वह तू (गृहं-गृहं) प्रत्येक गृह को (विचाक-शत्) चमकाता है । हे विद्वन् ! तू (इमं) इस (जम्भ-सुतं) जाया, स्त्री और उसके भरणकर्त्ता पति दोनों से उत्पन्न (धानावन्तं) आधान संस्कार से युक्त (करम्भिणम्) क्रियाकुशल और (अपूवन्तं) गृह से दूर और गुरु आदि के पास जाने वाले (उक्थिनं) उत्तम बालक का (पिव) पालन कर ।

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि ।

शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्द्रो परि स्रव ॥ ३ ॥

भा०—हे पुरुष (त्वा आ चिकित्सामः) हम तुझे जानना चाहते हैं । (त्वा चन न अधि इमसि) हम तुझे अभी नहीं पहचान रहे हैं । हे (इन्द्रो) गुरु के पास से नवागत सोम्य ! तेजस्विन् युवक ! तू (शनैः इव शनकैः इव) शनैः-शनैः (इन्द्राय) स्वामी पद पाने के लिये आगे बढ़ । बालक को आचार्य मातावत् अपने गर्भ में रखता और स्वीकार करता है वैसे ही माता भी 'इन्दु या सोम' अर्थात् द्रुत वीर्य को गर्भ में धारती है । वह 'इन्द्र' अर्थात् पति के ही निमित्त उसे धारती है । वह गर्भाशय में शनैः शनैः परिस्त्रवण करता कमल तक पहुँचता है । यह आशय भी मन्त्र में उपमित रूप में निहित है ।

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविज्ञो वस्यसस्करत् ।

कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण मङ्गमासि ॥ ४ ॥

भा०—जो पुरुष विवाह करना चाहता है वह (कुवित् शक्य)



स्वयं बहुत समर्थ हो। वह (कुवित् करत्) बहुत से कार्य करने में समर्थ हो और वह (नः) हमें भी (कुवित्) बहुत प्रकार से (वस्यसः करत्) धनादि ऐश्वर्य से सम्पन्न करे। (कुवित्) बहुतसी (पतिद्विषः) वन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करती हुई हम स्त्रियां (यतीः) घरों से पृथक् होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, अन्न देने में समर्थ पुरुष से ही (संगमामहै) सम्बद्ध होती हैं। इसलिये स्त्रियों के साथ विवाह करने वाले को चाहिये कि वह अपनी पत्नी को अधिक समर्थ करे, स्वयं श्रम-शील हो, स्त्रियों को उत्तम वस्त्र-आभूषणादि से भी सन्तुष्ट करे, जिससे वह अपने निर्धनता से खिन्न होकर द्रव्यवानों के प्रलोभन में न जावे।

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय।

शिरस्तुतस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् पुरुष ! (इमानि) ये (त्रीणि) तीनों पदार्थ (वि-तपा) संताप से रहित हों, (तानि) उन तीनों को तू (वि रोहय) विशेष रूप से वृद्धियुक्त, सफल होने दे, (१) (ततस्य शिरः) पिता के शिर को ऊंचा कर। अर्थात् विवाह करने वाला प्रथम अपने व कन्या के माता पिता के शिर पर के भार को कम करे। (२) (उर्वराम् वि रोहय) जैसे 'इन्द्र', मेघ उर्वरा भूमि पर बरस कर उसे अन्नादि से सम्पन्न करता है वैसे ही विवाहित युवक उर्वरा कन्या के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे। (३) (आत् इदं मे उप-उदरे) और यह जो मुझ कन्या के पेट के समीप स्थित बीज गर्भ हो, हे (इन्द्र) वपन-योग्य भूमि रूप स्त्री के गर्भ में दूरा अर्थात् अन्नवत् बीज आधान करने हारे पुरुष ! तू उसको भी (वि रोहय) विशेष पुष्ट कर, सन्तान को अधबीच में नष्ट न होने दे।

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम।

अथो ततस्य यच्छिर सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥



भा०—(असौ च) और वह (या) जो (नः) हममें से (उर्वरा) उत्तम अन्न-उत्पादक भूमिवत् सन्तान-उत्पादक नारी हो, उसको (रोमशा कृधि) पूर्ण यौवनचिह्नों से युक्त होने दे। (मम) और मेरे (इमां तन्वं) इस शरीर को (रोमशा) रोमाञ्चित वा पुष्टांग युक्त (कृधि) कर। (अथो) और (ततस्य) पिता का (यत् शिरः) जो शिर इस समय चिन्ताग्रस्त है उसको (रोमशं कृधि) पुलकित, चिन्तारहित कर।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो ।

अपालामिन्द्र त्रिषूत्त्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥ १४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म-सामर्थ्य वाले ! तू (रथस्य खे) रथ के आकाश में, फिर (अनसः खे) शकट के अवकाश में और (युगस्य खे) युग नामक यान के मध्य में इस प्रकार क्रम से (अपालां) अप्राप्तपति, कुमारी कन्या को (त्रिः पूत्वी) तीन प्रकार से लाकर (सूर्यत्वचम् अकृणोः) सूर्य के समान उज्ज्वल रंग-विरंगे वस्त्रों से आच्छादित कर।

### सूक्त-समीक्षा

इस सूक्त में कई समस्याएं हैं—( मन्त्र १ म० ) 'अपाला' वह कन्या है जिसको पालक पति नहीं मिला इस प्रकार प्रत्येक कुमारी कन्या 'अपाला' है। ब्रह्मचारी युवा 'सोम' है। इसका स्पष्टीकरण अथर्ववेद में का० १-सू० ११ में देखो। 'सुता' वह कन्या है जो रज-स्वला होकर स्नान कर लेती है। गुरुगृह में स्नातिका हो। इसी प्रकार 'सोम' शब्द वीर्यवान् पुरुष वा विद्या और व्रत द्वारा स्नातक दोनों अर्थों को कहता है। 'विदत्'—कन्या जब पति को प्राप्त करती है वह 'पति का वेदन' करती है। 'विदत्' पद विवाह द्वारा पति के वेदन को बतलाता है। (अस्तं) 'अस्त' गृह-आश्रम का वाचक है। उसको धारण करती कन्या पुरुष का सेवन करे, आदर करे। क्यों ? उसको अपना

स्वामी और दाकिमान् रक्षक बनाने के लिये । अर्थात् 'इन्द्र' और 'शक्र' ये दोनों 'पति' के पद की योग्यता को बतलाते हैं । ( मं० २ ) वही पुरुष 'वीरक' है । वही गृह २ को उज्ज्वल करता हुआ प्राप्त होता है । अर्थात् वही पुत्र होकर कुलदीपक होता है । आगे कन्या पति के कर्त्तव्य बतलाती है कि वह दोनों से उत्पन्न पुत्र का पालन करे । 'जम्म-सुतं'-जाया च पतिश्च जम्पती । जायतेऽस्यां, जनयति इति वा जाया, विभक्ति इति भः उभौ जम्भौ । ताभ्यामुत्पन्नो जम्मसुतः तं । (धानवन्तं) धानम् आधानं, गर्भाधानसंस्कारवन्तं । स्वयं विधिवद् आहितम् । 'करम्मिणं'-करम्मः, करम्मः । करोते रम्मच् । क्रियावान् कर्मकुशलः । (अपूपवन्तं) अप दूरे आचार्यगृहे उपवन्तं उपवीतवन्तं । मध्यमपदलोपः । 'उक्थिनं'-उक्थो वेदो गुरुपदेशो वा तद्वन्तम् ।

(मं० ३) पहले दोनों अपरिचित हैं, वे दोनों परिचय प्राप्त करें । कन्या का पुरुष और पुरुष का कन्या परिचय प्राप्त करे फिर वे पति-पत्नी होने योग्य हैं । 'इन्दुः'—नव स्नातक कन्या के पति प्रेमाद्र् दशा में 'इन्दु' है, ऐश्वर्यवान् होने से भी 'इन्दु' है । परिचित होकर बाद में वह उसका पति अर्थात् 'इन्द्र' होने के लिये आवे ।

(मन्त्र ४) विवाहेच्छुक वर क्रियाकुशल हो, जो वधू को भी पर्याप्त बखालंकार दे सके । जिसकी शक्ति, कमाई और धन-सम्पदा से आकृष्ट होकर कन्या अपने पालक माता-पिता का मोह छोड़ 'इन्द्र' अर्थात् पति से संगत हो, उसी से हृदय मिलाकर रहे ।

(पति-द्विषः)—यहां पति शब्द लौकिक पति का वाचक नहीं, अत्युत्त सामान्य पालक ( Gardian ) का वाचक है । वह सब बन्धु बान्धवों के प्रेम या मोह को त्याग कर भी पति के साथ हो लेती है । ऐसी दशा में यदि माता पितादि बाधक होते हैं तो वह उनके प्रति प्रेम त्याग देती है और वर के साथ ही प्रेम बाँधती है । वही 'अप्रीति'



यहां 'द्विष' पद का वास्तविक अर्थ है। 'द्विप् अप्रीतौ' द्विष, का अर्थ अप्रीति है। लोक में वैर अर्थ में द्वेष पद रुढ़ हो गया है।

(मन्त्र ५) विष्टपा=वि-तपा। तप या संतापरहित। तपरहित अपरिपक्व 'ततस्य शिरः' यहां 'तत' वा तात शब्द प्रिय अर्थ में भी हैं। इसी से 'पिता' 'पुत्र' दोनों के लिये भी प्रयुक्त होता है। अथवा तनोति सन्ततिम् इति ततः। जो सन्तान उत्पन्न करे वह 'तत' है। इससे यहां प्रिय पति का वाचक होकर वर-योग्य पुत्र्य के लिये कहा है। शिर शब्द मुख के लिये उपलक्षण है, उसका मूँछरहित मुख न हो; विवाहेच्छुक के प्रति कन्या की तरफ से यह प्रथम शर्त्त है कि वह सम्बन्ध करने से पूर्व अपने मुख पर बाल आने दे, वेद में 'खलति' आदि शब्द नहीं हैं, अतः पिता का गंजा शिर अर्थ करना असंगत है। दूसरी शर्त्त है 'उर्वरा' कन्या जिसमें अभी गर्भ-ग्रहण की शक्ति नहीं है, उसे उस योग्य अर्थात् 'उर्वरा' होने दे। (उर्वरा=उरु-वरा विशाल-वराङ्गदेशा। नितम्बनीत्यर्थः) अर्थात् स्त्री का नितम्ब भाग अच्छा पुष्ट हो। तीसरी शर्त्त है षधू के उदर के समीप के भाग में भी यौवन चिह्न-रूप रोम (Pubes) उत्पन्न हो जावें। अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री की यौवन दशा को 'Puberty' कहा जाता है। उन रोमों से ही यौवन की दशा को बतलाने का प्रकार वेद से लिया है। अथवा—विवाह में बंधने वाली समक्षदार कन्या वर से तीन याचना करे, तीनों बातें 'विष्टप' दुःखरहित हों। (१) (ततस्य शिरः) पिता का शिर संताप रहित हो, कन्या के विवाह के कारण पिता का शिर ऋणादि से ग्रस्त न हो, (२) 'उर्वरा' यदि पिता की भूमि उर्वरा नहीं अर्थात् उसके गोत्र में कोई पुत्र नहीं तो अन्नातृमती कन्या के पेट से उत्पन्न नाती ही उसके वंश का चलाने वाला हो। (मनु का पुत्र-पुत्रिकाविधान) (३) 'मे उपोदरे' मेरे उदर के पास गर्भाशय में रहे पुत्र का विशेष पालन करना पति का

कर्त्तव्य हो अर्थात् जो कन्या का हाथ पकड़े उसे उसके गर्भस्थ सन्तान को पालना होगा ।

(मन्त्र ६) ५ वें मन्त्र में कही बातों को ही पुनः कहा है, वे अत्यन्त आवश्यक होने से उन पर बल दिया गया है ।

(मन्त्र ७) 'रथस्य खे', 'अनसः खे' : युगस्य खे'—यहाँ रथ, अनस, और युग तीन प्रकार के स्थानों के नाम हैं । वेगवान् यान रथ है, शकट या बैलगाड़ी अनस है और इनके साहचर्य में युग भी अवश्य कोई रथ है । पाणिनी ने भी 'युग्यं च पत्रे' रथ या वाहनार्थ में युग्य पद निपातन से साधा है । कदाचित् जिसमें स्त्री पुरुष की जोड़ी ही बैठ सके वह रथ 'युग' हो । 'ख' का अर्थ छिद्र यहाँ नहीं । यहाँ 'ख' का अर्थ अक्काश भाग है । प्रथम पितृगृह से विदा होते समय कन्या रथ में चढ़े, फिर लम्बा रास्ता बैलगाड़ी में और पति-गृह के समीप आकर स्वागत पूर्वक तीसरे यान 'युग' में चढ़े । इस स्वागत के अवसर पर वधू को रंगा हुआ उज्ज्वल वस्त्र पहन कर ही बैठना होता था, इस प्रकार यान द्वारा वधू का आगमन इन्द्र द्वारा कुमारी कन्या का त्रिःपवन करना है ।

अथवा—पुरुष स्त्री की तीन प्रकार की परीक्षा ले, तीनों में शुचि पवित्र अर्थात् निर्दोष हो तो ग्रहण करे । 'रथस्य खे' रमण योग्य इन्द्रिय के छिद्र, वे पवित्र हों उनमें रोग न हो गुहागों के रोग सिलिस, सुजाक, प्रमेह, प्रदर सोमरोगाद न हो. (२) 'अनसः खे' अन् प्राणधारणे धातुः । प्राण-ग्रहण के छिद्र नाक, मुँह, फेफड़ा, उनमें पीनस रोग, मुखपाक, वैरस्य और अष्ट राग की फुन्सियाँ और फेफड़ों में राज्यक्षमा आदि न हो, (३) 'युगस्य खे' शरीर में जो युग अर्थात् जोड़ा-जोड़ा इन्द्रिय हैं उनके छिद्रों में दोष, जैसे नाक दो हैं, उनमें गन्धादि न होना या दुर्गन्ध होना या छोटी बड़ी टेढ़ी नाक न होना आंखें दो हैं उनकी विकृति न हो, काणी या छोटी, बड़ी न हो, मुख के जबाड़े, हाथ पैर



आदि विकृत लंगड़े लूले न हों । इस प्रकार तीनों में कन्या को पवित्र, शुचि जानकर वह पुरुष उसको सूर्य के समान उज्ज्वल वस्त्र देता है मानो उज्ज्वल त्वचा अर्थात् आच्छादन वाला करता है । 'अपाला' अत्रिसुता कहाती है । उसका तात्पर्य है कि स्मृतियों में आत्रेयी पद रजस्वलाय में रूढ़ है । वस्तुतः 'अत्रि' ही आत्रेयी है । स्वार्थ में तद्धित है । जो प्रथम रजस्वला होकर जिसके वर-प्राप्त्यर्थ तीन वर्ष व्यतीत न हुए हों वह 'अत्रि' है 'नवयौवना' रजोधर्म युक्त ।

[ ९२ ]

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २, ४, ८—१२, २२, २५—२७, ३० निचृद् गायत्री । ३, ७, ३१, ३३ पादनिचृद् गायत्री । ५ आर्ची स्वराड् गायत्री । ६, १३—१५, २८ विराड् गायत्री । १६—२१, २३, २४, २६, ३२ गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदूर्ध्वं सूक्तम् ॥

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।

विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥ १ ॥

भा०—आप लोग (वः) आपके (अन्धसः पान्तम्) खाद्य पदार्थों के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो और (विश्व-साहं) सबको जीतने वाले, (शत-क्रतुं) सैकड़ों कर्मों वाले, (चर्षणीनां) मनुष्यों के बीच (मंहिष्ठं) सबसे अधिक दानी पुरुष की (अभि प्रगायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो ।

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं सनश्रुतम् ।

इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (पुरु-हूतं) बहुतों के पुकारने योग्य, (पुरु-स्तुतं) बहुतों से प्रशंसित (गाथान्यं) गुण गान योग्य, वा 'गाथा' वेदवाणी में प्रसिद्ध, (सन-श्रुतम्) सनातन काल से श्रवण योग्य, वा

सनातन ज्ञान वेद के बहुश्रुत प्रसिद्ध पुरुष को (इन्द्रः इति ब्रवीतन) 'इन्द्र' इस प्रकार कहो, उसका नाम 'इन्द्र' रखो ।

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः । महा अभिज्ञवा यमत् ॥३॥

भा०—(इन्द्रः इत्) वह ऐश्वर्यवान् ही (नः महानां) बड़े पूज्य गुणों का और (वाजानां) ऐश्वर्यों का (दाता) देने वाला और (महान् नृतुः) बड़ा भारी नेता, संचालक है वह (अभिज्ञु) उत्तम ज्ञानसम्पन्न होकर (नः आ यमत्) हमें सद् व्यवस्था में रखे ।

अपातु शिष्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः ।

इन्द्रोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥

भा०—(शिष्री) सुकुट धारी, नासिकादि में सुन्दर, (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् पुरुष (सु-दक्षस्य) उत्तम ज्ञान और बल से युक्त (प्रहोषिणः) उत्तम रीति से बलादि देने वाले, (यवाशिरः) यवादि अन्नों से मिलाकर पकाये, (इन्द्रोः) दीप्ति-तेजोदायक (अन्धसः) स्वादु अन्न को (अपात्) पान करे, उसकी रक्षा करे । ऐसे ही वह (सु-दक्षस्य) उत्तम बलशाली (प्र-होषिणः) उत्तम दानी (इन्द्रोः) आर्द्र-हृदय, (यवाशिरः) शत्रुनाशक जनों के प्रमुख (अन्धसः) अन्नादि के भोक्ता, जन को (अपाद्-उ) पालन करे ।

तम्बुभि प्राचतेन्द्रं सोमस्य पीतये ।

तदिद्वयस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य अन्नादि के पान और पालन या रक्षा के निमित्त (तम् इन्द्रम् अभि प्राचत) उसी ऐश्वर्यवान् की स्तुति करो, (तत् इत् हि अस्य वर्धनम्) वह ही उसको बढ़ाने वाला है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा विश्वाभि भुवना भुवत् ॥६॥

भा०—(मदानां देवस्य) हर्ष, तृप्ति और सुख देने वाले (अस्य)



इस उत्तम अन्न, प्रजाजन व जगत् का (पीत्वा) पान, उपभोग और पालन करके (देवः) वह तेजस्वी पुरुष स्वामी (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा भुवना अभि भुवत्) समस्त लोकों को वश करता है ।

त्यम् वः सन्नासाहं विश्वांसु गीर्ण्वार्यतम् । आ च्यावयस्युतये ॥७॥

भा०—हे विद्वन् ! (त्यम् उ) उस ही (सन्नासाहं) समवाय और सत्य बल से सबको पराजित करने वाले (विश्वासु गीर्ण्व) समस्त वाणियों वा विद्याओं में (आयतम्) प्रसिद्ध, कुशल, व्यापक पुरुष को (वा ऊतये) अपनी रक्षा, ज्ञान-प्राप्ति आदि के निमित्त (आच्यावयसि) प्राप्त कर ।

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।

नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(युध्मं) युद्धकुशल, (सन्तम्) सत्स्वरूप, (अनर्वाणं) अद्वितीय, (सोमपाम्) जगत्-पालक, (अनपच्युतम्) अपने स्वरूप या स्थान से च्युत न होने वाले (अवार्य-क्रतुम्) अन्यो से न हटाये जाने योग्य वा अकाट्य युक्ति वाले (नरम्) सर्वनायक पुरुष को हे विद्वन् ! तू प्राप्त करा ।

शिक्षां ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वां ऋचीषम ।

अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (ऋचीषम) यथार्थ गुण स्तुति वाले ! तू (नः) हमें (पुरु रायः शिक्ष) बहुत धन प्रदान कर । तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (पार्ये धने) पालन योग्य, वा शत्रुओं के धन के निमित्त, वा संग्राम में (अव) रक्षा कर, वहाँ तक पहुँचा ।

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया ।

इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अतः) इसी कारण (नः) हमें तु (शत-वाजया शहस्र-वाजया) सैकड़ों, सहस्रों बल, ज्ञान, अन्न वेगादि से युक्त (इषा) इच्छा शक्ति, प्रेरणा और अन्न सेनादि के साथ (उप आयाहि) प्राप्त हो । इति षोडशो वर्गः ॥

अयाम धीवतो धियोऽर्वन्निः शक्र गोदरे ।

जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! शक्ति देने हारे ! हम (धीवतः) कर्म और ज्ञानवान् पुरुष के (धियः) कर्मों और ज्ञानों को (अयाम) प्राप्त करें । हे (गो-दरे) गौ भूमि के विदारण-कार्य में कुशल ! कृषि करने वाले ! हे (गो-दरे) वाणी के मर्मों को खोल २ कर बतलाने हारे, हे (वज्रिवः) बलशालिन् ! हम (अर्वन्निः) अश्वों, वीर सैनिकों द्वारा (पृत्सु जयेम) संग्रामों में विजय करें ।

वयम् त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि ॥ १२

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म वाले ! (वयम् उ) हम (त्वा) तुझे (उक्थेषु) उत्तम वचनों से (यवसेषु गावः न) भुस आदि के निमित्त गौ के समान (त्वा रणयामः) तुझे प्रसन्न करते हैं ।

विश्वा हि मर्त्यत्वानुक्रामा शतक्रतो ।

अगन्म वज्रिच्छाशसः ॥ १३ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवन् ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! शस्त्रबल के स्वामिन् ! हम (विश्वा हि) समस्त (मर्त्यत्वाना) मनुष्योचित (अनुक्रामा) कामनाओं और (आशसः) आशाओं को (अगन्म) प्राप्त करें ।

त्वे सु पुत्र शत्रुसोऽवन्त्रन् कामकातयः ।

न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ १४ ॥



भा०—(शवसः पुत्र) बल के द्वारा बहुतों के रक्षक ! (कामका-  
तयः) अपने नाना अभिलाषाओं को कहने वाले लोग (त्वे सु अवुन्नन्)  
तेरे अधीन सुख से रहते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वाम् न अति  
रिच्यते) तुझसे कोई बढ़कर नहीं है ।

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्वा ।

धियाविद्धि पुरन्ध्या ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन् ! (सः) वह तू (सनिष्ठया) उत्तम  
विभाजक, दानशील, (घोरया) शत्रु को भय देने वाली, (द्रवित्वा)  
वेग से जाने वाली (पुरन्ध्या) बहुतों की पालक (धिया) बुद्धि और  
क्रिया वा नीति से (नः अवि हि) हमारा पालन कर । इति ससदृशो  
वर्गः ॥

यस्ते नूनं शतक्रतुविन्द्रं युञ्जितमो मदः ।

तेन नूनं मदे मदेः ॥ १६ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित बलशालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् !  
(नूनं) निश्चय ही (ते) तेरा (यः) जो (युञ्जितमः) अति यशो-जनक  
(मदः) हर्ष है (तेन) उससे (मदे) सबको हर्षित करने में तू (मदेः)  
स्वयं हर्षित हो ।

यस्ते चित्रश्रवस्तमो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।

य ओजोदातमो मदः ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (नः) जो (ते) तेरा (चित्र-श्रवस्तमः)  
आश्चर्यकारक श्रवण करने योग्य अद्भुत और (यः वृत्रहन्तमः) शत्रुओं  
को खूब दण्डित करने वाला और (यः ओजो-दातमः) पराक्रम को देने  
वाला (मदः) आनन्द वा हर्ष है तू उससे हमें भी सुखी कर ।

विद्या हि यस्ते अद्रिक्स्त्वादत्तः सत्य सोमपाः ।

विभ्वासु दस्म कृष्टिषु ॥ १८ ॥

भा०—हे (अद्विचः) मेघवत् उदार जनों और पाषाणवत् शत्रु-  
नाशक जनों के स्वामिन् ! हे (सत्य) न्यायनिष्ठ ! हे (दस्म) शत्रु-  
नाशन ! हे (सोमपाः) प्रजावत् ऐश्वर्य के पालक ! (यः त्वादत्तः) जो  
तेरे द्वारा दिया हुआ (विश्वासु कृष्टिषु) समस्त मनुष्यों में ऐश्वर्य है,  
हम (ते विश्वहि) उसे तेरा ही जानें ।

इन्द्राय मध्वने सुतं परिं घोमन्तु नो गिरः ।

अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १६ ॥

भा०—(मध्वने) हर्ण से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये-  
(नः गिरः सुतं परि स्तोमन्तु) हमारी वाणी उसके ऐश्वर्य की स्तुति करें ।  
(कारवः) विद्वान् वाग्मी लोग (अर्कम् अर्चन्तु) पूज्य की अर्चना करें ।

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।

इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—(यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय (विश्वाः श्रियः रणन्ति)-  
सब सम्पदायें वा प्रजाएं शोभा और सुख पाती हैं और जिसके अधीन  
(सप्त संसदः) साथ बैठने वाले सात सचिव (रणन्ति) उत्तम ज्ञानो-  
पदेश करते हैं उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को (सुते हवामहे) अमिषेक युक्त  
राज्य पर आह्वान करते हैं । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

त्रिकंद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमन्तत तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ २१ ॥

भा०—(त्रिकंद्रुकेषु) तीनों लोकों में (चेतनं यज्ञम्) सबको चेतना  
देने वाले पूज्य पुरुष को (देवासः अन्तत) विद्वान् गण, आत्मा को  
इन्द्रियों के समान प्राप्त करते हैं, (तम् इत् नः गिरः वर्धन्तु) उसको  
ही हमारी वाणियां बढ़ाती हैं, उसी का गुण गान करती हैं ।

आ त्वा विशन्तिवन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।

न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥

भा०—(समुद्रम् इव सिन्धवः) नदियां जिस प्रकार समुद्र में



प्रवेश करती हैं उसी प्रकार (इन्द्रः त्वा आविशन्तु) समस्त ऐश्वर्य और विद्वान् जीवगण प्रभो ! तुझमें प्रवेश करें। हे (इन्द्र न त्वाम् अति रिच्यते) ऐश्वर्यवन् ! तुझसे कोई बढ़ कर नहीं है।

विष्यकथ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।

य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तेरे (जठरेषु) उदरों में, तेरे अधीन है, हे (जागृवे) जागरणशील ! हे (वृषन्) बलशालिन् ! तू उस (सोमस्य भक्षं) महान् ऐश्वर्य के सेवनीय अंश को (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (विष्यकथ) व्याप्त है।

अरं त इन्द्र कुक्ष्ये सोमो भवतु वृत्रहन् ।

अरं धामभ्य इन्द्रवः ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) पाप-नाशक ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! (सोमः) ऐश्वर्य (ते कुक्ष्ये अरं भवतु) तेरे कोश के लिये बहुत हो। (इन्द्रवः धामभ्यः अरं भवन्तु) ऐश्वर्य और वेगवान् सैन्य तेरी तेजो-वृद्धि के लिये बहुत हों।

अरमभ्याय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे ।

अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥

भा०—(श्रुत-कक्षः) श्रुत, वेद को, अवगाहन करने वाला, वा कक्षा अर्थात् वेदवाणी का श्रवण करने वाला विद्वान् जनं, (अश्वाय गवे धाम्ने) उसके अश्व, गौ और तेज की (अरं अरं गायति) खूब खूब स्तुति करता है अर्थात् उस प्रभु का बल, वाणी और तेज बहुत है।

अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमैष्विन्द्र भूषसि ।

अरं ते शक्र द्रावने ॥ २६ ॥ १६ ॥

भा०—(नः सुतेषु सोमेषु) हमारे उत्पन्न ऐश्वर्यों के आधार पर तू ही (अरं भूषसि हि ष्म) बहुत समर्थ हो। हे (शक्र) शक्तिशालिन् !

(ते दावने अरम्) तुझ दाता के लिये भी ऐश्वर्य बहुत अधिक प्राप्त हों ।  
इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः ।

अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥

भा०—(पराकात्ता चित्) दूर से भी दूर है (अद्रिवः) शक्तिमन् !  
(नः गिरः त्वां नक्षन्त) हमारी वाणियां तुझ तक पहुँचती हैं । (वयम्  
ते अरं गमाम) हम तुझसे बहुत कुछ प्राप्त करें ।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः ।

एवा ते राध्यं मनः ॥ २८ ॥

भा०—तू (वीर-युः एव हि असि) वीरों को चाहने वाला है । हे  
(शूर) शूरवीर ! (उत त्वं स्थिरः एव हि असि) और तू स्थिर ही है ।  
(ते मनः एव राध्यं) तुझे मन को भी वश करना चाहिये ।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वैर्मिधायि धातृभिः ।

अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥

भा०—हे (तुवि-मघ) बहुत धन के स्वामिन् ! (रातिः एव) तेरा  
दान ही (विश्वेभिः धातृभिः धायि) सब पोषक जन धारण करते हैं ।  
हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अधचित् मे सचा) और तू ही मेरा सहायक है ।

मो षु ब्रह्मेवं तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।

मत्स्वां सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥

भा०—हे (वाजानां पते) जानों, ऐश्वर्यों, बलों और सेनाओं के  
पालक ! हे जानों के पालक ! (ब्रह्मा इव) चतुर्वेदवित् ब्राह्मण विद्वान्  
यज्ञ के ब्रह्मा के समान तू (तन्द्रयुः मो सु भुवः) आलस्य से युक्त मत  
हो । तू (गोमतः सुतस्य) गो दुग्ध से युक्त अन्नादि से (मत्स्व) तृप्त हो ।

मा न इन्द्राभ्या दिशः सूरौ अकुप्वा यमन् ।

त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥



भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (नः) हमें (आदिशः) आदेशा शासक और (सूरः) विचरणशील तेजस्वी लोग (अक्षुषु) रात्रि-काल में (मा आयमन्) मत बाँधे । (त्वा युजा) तुझ सहायक से हम (तत् वनेम) उन दुष्ट जनों का नाश करें ।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।

त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥

भा०—(त्वया इत् युजा) तुझ सहायक से ही (वयं) हम (स्पृधः) स्पर्धा करने वालों का (प्रति ब्रुवीमहि) उत्तर दे सकें । हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! (त्वम् अस्माकम्) तू हमारा है और हम (तव स्मसि) तेरे हैं ।

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् ।

सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कारवः) स्तुतिकर्त्ता (सखायः) मित्र (त्वायवः) तुझे चाहते हुए और (त्वाम् इत् हि अनु नो नुवतः) तुझे ही प्रतिदिन स्तुति करते हुए (चरान्) विचरण करें । इति विंशे वर्गः ॥

### [ ९३ ]

सुकक्ष ऋषिः ॥ १—३३ इन्द्र । ३४ इन्द्र ऋभवश्च देवताः ॥ छन्दः—  
१, २४, ३३ विराड् गायत्री । २-४, १०, ११, १३, १५, १६, १८,  
२१, २३, २७-३१ निचृद् गायत्री । ५-९, १२, १४, १७, २०, २२,  
२५, २६, ३२, ३४ गायत्री । १९ पादनिचृद् गायत्री ॥

उद्धेदमि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम् । अस्तारमेपि सूर्य ॥ १ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन ! तू (श्रुत-मघं) उत्तम धन में प्रसिद्ध, (वृषभं) बलवान् (नर्यापसं) मनुष्यों के हितकारी कार्य करने वाले, (अस्तारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले मनुष्य को तू (घ इत् उत् एषि) प्राप्त होकर अवश्य उदय को प्राप्त हो ।

नव यो नवति रौ विभेदं बाह्वोजसा । अहिं च वृत्रहावधीत् ॥ २

भा०—(यः) जो (बाह्वोजसा) बाहु के पराक्रम से (नव-नवति) १९ (पुरः) प्रकोटों को (विभेद) तोड़ने में समर्थ है, वह (वृत्र-हा) शत्रुनाशक राजा (अहिं च अवधीत्) सूर्य को मेघ के समान सम्मुख आये शत्रु को नष्ट करे ।

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावृद् गोमयवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शिवः) कल्याणकारक, (सखा) मित्रवत् प्रिय (अश्वावत् गोमत्, यवमत्) अश्व, गौ और यव से सम्पन्न ऐश्वर्य (उरुधारा इव) बहुतों की पोषक भूमि, वा बहुत धारा वाली गौ के समान (दोहते) हमें सुख ज्ञानादि दे ।

यदद्य कच्च वृत्रहक्षुर्गा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ ४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! (अद्य यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी को भी लक्ष्य कर तू आज वा कभी उठ खड़े होने में समर्थ है वह जब चाहे, तू किसी भी पदार्थ को उत्तम रीति से प्राप्त कर सकता है । (तत् सर्वं ते वशे) वह सब कुछ तेरे ही वश में है ।

यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे ।

उतो तत्सत्यमित्तव ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सत् पते) सज्जनों के पालक स्वामिन् ! हे (प्रवृद्ध) महान् ! (यद् वा न मरे इति मन्यसे) जो तू समझता है कि मैं कभी नहीं मर सकता सो (तत्) वह संमझना (तव सत्यम् इत्) तेरा सत्य ही है । तू अविनाशी, अमृत, अजर, नित्य आत्मा है । इत्येकविंशो वर्गः॥

ये सोमांसः परावति ये अर्वावति सुन्विरे ।

सर्वास्तां इन्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (परावति) दूर देश में और ये (अर्वावति) समीप



देश में भी (सोमासः) अन्न, ओषधि वर्ग, रत्नादि ऐश्वर्य (सुन्विरे) उत्पन्न हों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यावन् ! तू (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सबको प्राप्त कर ।

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।

स वर्षा वषभो भुवत् ॥ ७ ॥

भा०—(तम् इन्द्रम्) उस शत्रुहन्ता, सूर्यावत् तेजस्वी को हम (वृत्राय हन्तवे) बड़े भारी, बढ़ते शत्रु वा वपन नाश करने के लिये (वाजयामसि) अधिक बलवान् करते हैं । (सः वृषाः) वह बलवान् पुरुष ही (वृषभः भुवत्) सब सुखों, ऐश्वर्यों का दाता सर्वश्रेष्ठ है ।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः ।

द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह शत्रुहन्ता पुरुष (ओजिष्ठः) सर्वाधिक पराक्रमी होकर ही (दामने कृतः) सबको भृति वृत्ति देने और प्रजा को दमन करने के कार्य पर नियुक्त होता है । (सः मदे हितः) वही सबको हर्षित करने के लिये स्थापित है, वह (द्युम्नी) यशस्वी, (श्लोकी) कीर्तिमान्, (सः सोम्यः) वह सोम अर्थात् अन्न, ऐश्वर्यादि से सत्कार-योग्य है ।

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः ।

ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥

भा०—(वज्रः न) शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण (गिरा समभृतः) वाणी द्वारा अच्छी प्रकार धारित, (स-बलः) बलशाली, (अनपच्युतः) शत्रुओं से अपराजित, (अस्तृतः) अबाधित, (ऋक्षः) महान् (ववक्ष) समस्त ऐश्वर्य को धारण करता है ।

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः ।

त्वं च मघवत् वशः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय !  
तु (गुणानः) स्तुति किया जाता हुआ हे विद्वन् ! (नः) हमारे लिये  
(दुर्गे) दुर्गम स्थान में भी (सुगं कृधि) सुगम मार्ग कर । हे (मघवन्)  
ऐश्वर्यवन् ! (त्वं च नः वशाः) और तू सदा हमें प्रेम से चाह । इति  
द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्य ते नू चिदादिशं न मिनन्ति खराज्यम् ।

न देवो नाग्निगुर्जनः ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (आदिशं) आदेश को और (स्व-  
राज्यम्) तेरे अपने राज्य को (नृचत्) भी (न मिनन्ति) कोई भंग  
नहीं करते, (न देवः) न सूर्यवत् तेजस्वी और (न अग्निगुः जनः) न वे  
रोक जाने वाला, पराक्रमी ही तेरे आदेश को भंग करता है ।

अथा ते अप्रतिष्कृतं देवी शुभं सपर्यतः । उभे सुशिप्र रोदसी ॥ १२ ॥

भा०—(अथ) और हे (सुशिप्र) उत्तम बलशालिन् ! (उभे  
रोदसी) दोनों सूर्य-पृथ्वीवत्, रघु, पर सेनाएं, (देवीः) विजयेच्छुक  
होकर भी (ते) तेरे (अप्रतिष्कृतं) अनुपम, (शुभं) बल की (सपर्यतः)  
सेवा, आदर करती हैं ।

त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च । पराणीषु रश्मत् पथः ॥ १३ ॥

भा०—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु च) और रक्त वर्ण की (परा-  
णीषु) गौओं में (त्वम् एतत् रश्मत् पथः आधारयः) तू ही इस चमकते  
दूध को धारण कराता है ।

वि यदह्नेरधं त्विषो विश्वे देवासो अक्रमुः ।

विदन्मृगस्य तां अमः ॥ १४ ॥

भा०—(अथ) और (यद्) जब (विश्वे देवासः) सब विद्वान्,  
तेजस्वी लोग (अहेः त्विषः) मेघ की विद्युत् कान्तियों वा (अहेः त्विषः)  
सूर्य की कान्तियों के सदृश (अहेः त्विषः) आगे बढ़ते वीर के तेजों को



(अक्रमुः) प्राप्त करते हैं अब (तान्) उनको (मृगस्थ) सिंह के समान वीर, शुद्ध तैजस्वी प्रभु का (अमः) बल (विदत्) प्राप्त होता है ।

आहु मे निवरो भवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम् ।

अजातशत्रुस्तृतः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(आत् उ) अनन्तर ही वह (मे निवरः) सुप्त प्रजागण के समस्त कष्टों का निवारक (भुवत्) होता है । वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक वीर, मेघों के छेदक भेदक विद्युत् वा सूर्य के समान (पौंस्यम् अदिष्ट) पराक्रम को करता है । (अजात-शत्रुः अस्तृतः) तब उसका कोई शत्रु नहीं रहता और फिर वह विनष्ट नहीं होता । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।

आ शुषे राधसे महे ॥ १६ ॥

भा०—(वः) आप लोगों में से आपके (वृत्रहन्तमम्) सब विघ्नों के नाशक (चर्षणीनां) मनुष्यों में (श्रुतं) प्रसिद्ध (शर्धं) बलवान् पुरुष को (शुषे) शत्रुओं के शोषण और (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्त करने के लिये (प्र आ) अच्छी प्रकार प्राप्त करो ।

अया धिया च गव्यया पुरुषाम्पुरुषुत ।

यत्सोमेसोम आभवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (पुरु-नामन्) बहुत से नामों वाले ! बहुतों को नमाने हारे ! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति-योग्य ! (यत्) जो तू (सोमे-सोमे) प्रत्येक 'सोम', ऐश्वर्य प्रत्येक जीव और प्रत्येक बल पर (आभवः) सामर्थ्यवान् है, उस तुझे हम (अथा) इस (गव्यया धिया च) वाणी से युक्त क्रिया द्वारा तेरी सेवा करते हैं ।

बोधिन्मना इदंस्तु नो वृत्रहा भूर्यास्तुतिः ।

शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥

भा०—(वृत्र-हा) शत्रुओं और विघ्नों का नाशक (शक्रः) शक्तिशाली

युव (नः) हमारे बीच (बोधित-मनाः) ज्ञान से युक्त चित्त वाला और (भूरि-आसुतिः) बहुत अच्छों का स्वामी (इत् अस्तु) हो। वह (नः आशिषम्) हमारी कामना को (ऋणोतु) श्रवण करे।

कया त्वन्न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् ।

कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १६ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन् ! तू (नः कया ऊत्या) हमें किस रक्षण-नीति से (प्र मन्दसे) पाल कर अधिक हर्षित होता है ? और (कया) किस नीति से (स्तोतृभ्यः आ भर) विद्वानों को सुख देता है ?

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत् ।

वज्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(नियुत्वान्) हजारों अश्व सैन्यों का स्वामी, (वृषभः) बल-वान् (वृज्र-हा) शत्रुहन्ता, (वृषा) प्रबन्धकर्ता, (कस्य सुते) किसके ऐश्वर्य पर (सचा) और किसके सहयोग में (सोम-पीतये) ऐश्वर्य प्राप्ति और रक्षा कार्य में (रणत्) रण करे और आनन्द लाभ करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अभी षु गस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम् ।

प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥

भा०—(त्वं नः) तू हमें (मन्दसानः) अति हर्षित होकर (सहस्रिणं रयिम्) सहस्रों का धन (अभि सु) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक (प्रयन्ता) प्रदान करने हारा हो और तू (दाशुषे) दानशील के हित को भी (अभि सु बोधि) अच्छी प्रकार जान।

पत्नीधन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये ।

अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥

भा०—(अपां जग्मिः) जैसे ससुद्र में समस्त जलधाराएं आकर मिलती हैं, वह जलधाराओं के आस होने का एकमात्र आधार है और



जैसे वह समुद्र ही (नि-चुम्पुणः) जलों को अपने भीतर लेकर ही पूर्ण होता है, वैसे ही राजा भी (अपां जग्मिः) सब आस प्रजाओं का शरण जाने योग्य और (निचुम्पणः) समुद्रवत् उनसे ही करादि लेकर तृप्त या पूर्ण होने वाला है । हे राजन् ! (पत्नीवन्तः) पालनकारिणी शक्ति या नीति से वा पत्नीयुक्त वाले गृहस्थ जन और (सुताः) अभिषिक्त वा पुत्र-वत् प्रजा रूप (इमे) ये (उशन्तः) धनादि कामनावान् जन, (वीतये) रक्षा प्राप्त करने के लिये (यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं ।

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे ।

अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥

भा०—(ओजसा) बल और शौर्य से (अव-भृथम्) पूर्ण (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अध्वरे) हिंसारहित प्रजापालन-कार्य में (इष्टाः) एकत्र संगत होकर (होत्राः) अधिकार देने वाले (वृधासः) उसके बलादि के बढ़ाने वाले जन ही (अच्छ) सबके समक्ष (असृक्षत) इसे अपना प्रभु बनाते हैं ।

इह त्या सध्रमाद्या हरी हिरण्यकेश्या ।

बोळहामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

भा०—(इस) राष्ट्र में (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान प्रदीप्त तेज को केशवत् धारण करने वाले (हरी) अश्वों के तुल्य अग्रगामी स्त्री पुरुष वा दो नेता जन (हितम् प्रयः) हितकारक मार्ग की ओर (अभि बोढाम्) ले जावें ।

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।

स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (विभावसो) विशेष दीप्तियुक्त ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (इमे सुताः सोमाः) ये उत्पन्न प्रजाजन और ऐश्वर्यवान् शासकगण (तुभ्यम्)

तेरे ही हितार्थ हैं, (वर्हिः) यह बृहत् राष्ट्र वा उत्तम आसन भी (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (स्तीर्णम्) विस्तृत है। तू (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इन्द्रम् आ वह) ऐश्वर्य प्राप्त करा। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे ।

स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥

भा०—(दाशुषे ते) दानशील तेरा ही (दक्षं) तेज और ज्ञानसामर्थ्य (आ) सब ओर है। वह ऐश्वर्यवान् (रोचना रत्ना विदधत्) रचिकर, तेजोयुक्त नाना उत्तम रत्न, ऐश्वर्य (स्तोतृभ्यः) विद्वानों को विशेष रूप से देता है। आप लोग, हे विद्वानो ! उसी (इन्द्रम् अर्चत) ऐश्वर्यवान् पुरुष की स्तुति करो।

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो ।

स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बल और ज्ञान से सम्पन्न स्वामिन् ! मैं (ते) तेरे लिये (विश्वा उक्था) समस्त स्तुति वचन और (इन्द्रियम्) राजादि से सेवनीय ऐश्वर्य (आदधामि) रखता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (स्तोतृभ्यः मृळय) गुण प्रशंसकों को सुखी कर। भद्रम्भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत्) जो तू (नः मृळयांसि) हमें सुखी करता है, वह तू हे (शत-क्रतो) अमित बलशालिन् ! (नः भद्रं-भद्रम्) हमें अतिसुखकारक, (इषम् ऊजम्) अन्न, रस, आदि (आ भर) दे।

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो ।

यदिन्द्र मृळयांसि नः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (यत् नः मृळयांसि) जो तू हमें सुखी करता है। हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवान् ! (सः) वह तू (विश्वानि सुवितानि) समस्त सुखजनक पुण्य पदार्थ वा साधन (आ भर) प्राप्त करा।



त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे ।

यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(यत्) जो तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् (नः मृळयासि) हमें सुखी करता है, हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार दण्ड देने हारे ! (सुतावन्तः) ऐश्वर्यवान् हम लोग (त्वाम् इत् हवामहे) तुझे ही रक्षार्थ प्रार्थना करते हैं । इति षड्विंशो वर्गः ॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मदानां पते) हर्ष और तृप्तिजनक ऐश्वर्यों, अन्नों के पालक स्वामिन् ! तू (हरिभिः) विद्वान् मनुष्यों द्वारा (नः) हमारे बीच (सुतं उप याहि) अभिषेक या ऐश्वर्य पद की प्राप्ति हो और (नः हरिभिः सुतम् उप याहि) हमारे जनों के सहाय्य से उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कर ।

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रहन्तमः) दुष्ट पुरुषों को अति अधिक दण्ड देने हारा और (शत-क्रतुः) अमित बल-शाली, इस प्रकार (द्विता) दो प्रकार का जाना जाता है, वह (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्य सहित (नः सुतम्) हमारे ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (उप) प्राप्त हो ।

त्वं हि वृत्रहन्तेषां पाता सोमानामसि ।

उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३३ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! (त्वं हि) तू निश्चय करके (एषां) इन (सोमानां पाता असि) ऐश्वर्यों और प्रजाजनों का पालक है । तू (नः सुतं हरिभिः उप याहि) हमारे इस ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को विद्वान् जनों और वीर पुरुषों सहित प्राप्त हो ।

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।

वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥ २७ ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नः) हमें (इषे) अन्न, सेना आदि प्राप्त करने के लिये (ऋभुक्षणं) ज्ञान से चमकने और 'ऋभु' शिल्पी जनों को बसाने वाला महान् (ऋभुं) ज्ञान, सत्यादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (नः ददातु) हमें दे । (वाजी) वह बलवान् पुरुष (नः) हमें (वाजिनम्) अश्वादि सैन्य (ददातु) दे । इति सप्तविंशो वगः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[ ६४ ]

विन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८ विराड् गायत्री । ३, ५, ७, ९ गायत्री । ४, ६, १०—१२ निचूद गायत्री ॥

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् । युक्ता वह्नी रथानाम् ॥१॥

भा०—जब (रथानाम्) वेग से जाने वाले रथादि सैन्यों वा महारथी जनों के (वह्नी युक्ता) घोड़े वा बैल, युद्धरथ वा अन्नकरादि-संग्रहार्थ युद्धार्थ जुट जाते हैं, तब (मघोनां मरुताम्) ऐश्वर्यवान् मनुष्यों की (माता) माता के समान पूज्य (श्रवस्युः) अन्न, बल और कीर्तिप्रद होकर पृथिवी (गौः धयति) गौ के समान सबको अन्न देती है ।

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते ।

सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्याः) जिसकी (उपस्थे) गोद में, (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (व्रता धारयन्ते) नाना कर्म, व्रत और अन्न धारण करते, प्राप्त करते हैं, उसी आश्रय पर (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र दोनों ही (दृशे) प्रकाश द्वारा दर्शन कराने के लिये रहते हैं ।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।

मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥



भा०—(विश्वे कारवः) सब कर्मकुशल, शिल्पी, (मरुतः) बलवान् मनुष्य एवं व्यापारी जन, (सोम-पीतये) स्वयं अन्नवत् ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, (सदा) सदैव (तत् नः सु अर्थः) वह हमारा उत्तम पूज्य स्वामी है, इस प्रकार (आ गृणन्ति) कहते, उसकी स्तुति करते हैं ।

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।

उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह ऐश्वर्य उत्पन्न है, (अस्य मरुतः पिबन्ति) इसका बलवान् पुरुष उपभोग करते हैं और (उत अस्य स्वराजः) इसका स्वयं तेजस्वी लोग उपभोग करते हैं और (अश्विना) जितेन्द्रिय लोग इसका उपभोग करते हैं ।

पिबन्ति मित्रो अर्थमा तनां पूतस्य वरुणः ।

त्रिष्वस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥

भा०—(तनां पूतस्य) विस्तृत ऐश्वर्य वा यज्ञ से पवित्र, (वि-सध स्थस्य) तीनों स्थानों पर विराजमान (जावतः) जाया के पुत्र प्रजा या भूमि से युक्त राष्ट्र का (मित्रः) छोटी जन, (अर्थमा) शत्रुओं का नियन्ता और (वरुणः) संकटनिवारक जन (पिबन्ति) उपभोग और पालन करते हैं ।

उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।

प्रातर्होतैव मत्सति ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य गोमतः सुतस्य) इस भूमि-युक्त ऐश्वर्य के साथ (जोषम्) प्रेम करके (इन्द्रः) तेजस्वी पुरुष (प्रातः) प्रातःकाल में (होता इव) आहुति दाता विद्वान् के तुल्य (मत्सति) बड़ा सुख अनुभव करता है ।

कदत्विषन्त सूर्यस्तिर आप इव स्निधः ।

अर्षन्ति पूतक्षसः ॥ ७ ॥

भा०—(सूरयः आप इव तिरः) सूर्य की किरणें जैसे मेघस्थ जलों को छिन्न भिन्न कर चमकते हैं वैसे ही (पूत-दक्षसः) पवित्र ज्ञान-कर्म वाले, (क्षिधः) दुष्ट शत्रु-सैन्यों को (तिरः) दूर करके, (सूरयः) तेजस्वी जन (क्व अत्विषन्त) कितना चमकते हैं और (क्व अर्पन्ति) कितना आगे बढ़ते हैं, यह दर्शनीय है।

कद्वाँ अद्य महानां देवानामवो वृणे।

त्मना च दस्मर्वर्चसाम् ॥ ८ ॥

भा०—(त्मना च) अपने आत्मसामर्थ्य से (दस्म-वर्चसाम्) दर्शनीय और शत्रुनाशक तेज वाले, (महानां देवानां) पूज्य विद्वानों और (वः) आप विजिगीषु जनों के (अवः) रक्षा वा प्रीति की मैं (क्व वृणे) किस प्रकार प्राप्त करूँ, यह बतलाइये।

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथञ्जोक्ष्णा दिवः।

मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो बलवान् मनुष्य (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और प्राप्ति के लिये (दिवः) आकाश या भूमि के (विश्वा) समस्त (पार्थिवानि रोक्ष्णा) पृथिवी पर के रुचिकर पदार्थों को (पप्रथन्) विस्तारित करते हैं—

त्याञ्च पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य की रक्षार्थ मैं (पूतदक्षसः) पवित्र कर्म वाले, आचारवान्, (मरुतः) बलवान् (त्यान्) उन पुरुषों को (दिवः) उनकी इच्छा अनुसार (हुवे) स्वीकार करता हूँ।

त्याञ्च ये वि रोदसी तस्तमुर्मरुतो हुवे।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो वीर पुरुष (रोदसी तस्तमुः) आकाश,



पृथिवी के समान स्वपक्ष, परपक्ष, स्त्री-पुरुष, शास्य-शासक दोनों वर्गों को (वितस्तभुः) विशेष रूप से थामते, बश करते हैं उनको मैं (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के पालनार्थ बुलाता, स्वीकार करता हूँ ।

त्वं नु मारुत गणं गिरिष्ठां वर्षणं हुवे ।

अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥ २६ ॥

भा०—और (अस्य सोमस्य पीतये) इस राज्य-ऐश्वर्य के पालन के लिये मैं (त्वं नु) उस (गिरिष्ठां) वाणी में स्थित वा कुशल (वृषणं) जानादि की वर्षा करने वाले वा बलवान् (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह को (हुवे) बुलाता हूँ । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[ १५ ]

तिरश्चा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६, ७ विराडनुष्टुप् ।  
५, ६ अनुष्टुप् । ८ निचृदनुष्टुप् ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।

अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जैसे अपने बच्चे को लक्ष्य कर (सम् अनूषत) अच्छी प्रकार उसकी स्तुति करती हैं, वैसे ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा स्तवन करने हारे ! (गिरः) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन (त्वा अभि सम् अनूषत) तुझे लक्ष्य कर तेरी स्तुति करते हैं । (रथीः इव) रथवान् क्षिप्रगामी पुरुष के समान (सुतेषु) भजादि के प्राप्त्यर्थ (त्वा) तेरी ओर ही (गिरः) सब विद्वान् एवं सब वाणियां (आ अस्थुः) आ रही हैं ।

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।

पित्रा त्व स्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति-योग्य ! (शुक्राः सुतासः) कान्तियुक्त, पदाभिषिक्त जन (त्वा आ

अचुच्यवुः) तुझे सब ओर से प्राप्त हों । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे योग्य (विश्वासु हितम्) समस्त प्रजाओं में नियत भाग है । तू (अस्य अन्धसः) उस खाने योग्य पदार्थ का (पिब तू) उपभोग कर ।

पिब सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।

त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं हि) तू ही (शश्वतीनां विशाम्) बहुत सी प्रजाओं का (पतिः असि) पालक, स्वामी है । तू (मदाय) आनन्द के लिये (श्येनाभृतं सुतं) बाज के समान शत्रु पर आक्रमणकर्ता, आचारवान् पुरुषों से प्राप्त वा प्रदत्त (सोमं) ज्ञान वा ऐश्वर्य को (पिब) प्राप्त कर ।

श्रुधी हवं तिरश्चया इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।

सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः त्वा) जो तेरी (सपर्यति) सेवा करता है उस (तिरश्चयाः) समीप प्राप्त शरणागत की (हवं श्रुधि) पुकार को तू सुन और तू (महान् असि) महान् है । तू (सु-वीर्यस्य) उत्तम बलशुक्त (गोमतः) गवादि सम्पन्न (रायः) धन को हमें (पर्धि) पूर्ण कर, दे ।

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।

चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरी (नवीयसीं) अति स्तुतियोग्य, (मन्द्राम्) हर्षजनक (गिरम् अजीजनत्) वाणी को प्रकट करता है और जो तेरे लिये (चिकित्वित्-मनसं) विद्वानों के मनन-योग्य, (प्रत्नां) पुरानी और (ऋतस्य पिप्युषीम्) ज्ञान को बढ़ाने वाली (धियं) वेदमयी वाणी, विद्या वा यज्ञ कर्म को करता है, तू उसे भूमि आदि से युक्त धन प्रदान कर । इति त्रिंशो वगः ॥



तमुं ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।

पुरुगयस्य पौस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के स्वामी को (गिरः ववृधुः) सब वाणियां बढ़ाती हैं, हम भी (तम् उ स्तवाम) उसकी स्तुति करें । (अस्य पुरुणि) उसके बहुत से (पौस्या) ऐश्वर्यों को (सिषासन्तः) प्राप्त करना चाहते हुए (वनामहे) हम उसका भजन करते हैं ।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन सामना ।

शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥ ७ ॥

भा०—(एतो नु) हे विद्वान् जनो ! आओ । हम लोग (शुद्धेन) शुद्ध, (साम्ना) साम गायन द्वारा (शुद्धं) शुद्ध (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें । (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वांसं) शुद्ध वचनों से बढ़ने वाले उसको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्ध हृदय होकर ही (ममत्तु) प्राप्त करें ।

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिऋतिभिः ।

शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (शुद्ध) शुद्ध स्वरूप (आ गहि) प्राप्त हो और तू (शुद्धाभिः ऋतिभिः) शुद्ध ज्ञान-वाणियों, रक्षाओं और प्रीतियों से (शुद्ध) शुद्धरूप से ही प्राप्त हो । तू (शुद्धः) शुद्ध रूप ही (रयिम्) बल, वीर्य और ऐश्वर्य को धारण कर और तू (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (सोम्यः) ऐश्वर्यवान् होकर (ममद्धि) आनन्द युक्त हो ।

इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दाशुषे ।

शुद्धो वृत्राणि जिघ्रसे शुद्धो वाजं सिषाससि ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! तू (शुद्धः हि) सदा शुद्ध रूप (नः रयिं सिषाससि) हमें ऐश्वर्य देना चाहता है । (दाशुषे रत्नानि)

दानशील प्रजा-जन को सुखजनक पदार्थ देता है और (शुद्धः वृत्राणि जिघ्रसे) शुद्ध, निष्पक्षपात होकर ही दुष्टों को दण्डित करता और (शुद्धः वाजं सिसाससि) शुद्ध चित्त होकर ही ज्ञान और ऐश्वर्य अन्यों को देता है । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[ ६६ ]

तिरश्चोदयुं तानो वा मरुत ऋषिः ॥ देवताः १-१४, १६-२१ इन्द्रः । १४ मरुतः । १५ इन्द्रावृहस्पती ॥ छन्दः—१, २, ५, १३, १४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६, ७, १०, ११, १६ विराट् त्रिष्टुप् । ८, ९, १२, त्रिष्टुप् । १, ५, १८, १९ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । ४, १७ पंक्तिः । २० निचृत् पंक्तिः । २१ विराट् पंक्तिः । एकविंशत्युचं सूक्तम् ॥

अस्मा उषास आतिरन्त याममिन्द्राय नक्तमूर्याः सुवाचः ।

अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुर्नृभ्यस्ताराय सिन्धवः सुपाराः ॥ १

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) तेजस्वी पुरुष के लिये (उषासः) कामनायुक्त प्रजाएं (यामम् आतिरन्त) नियम व्यवस्था वा मर्यादा का पालन करती हैं और वे ही (ऊर्याः) उत्साहित और उत्कण्ठित होकर (नक्तम्) रात्रिकाल में (सुवाचः) उत्तम वाणियां बोलती हैं । (अस्मै) इसी के प्रेम में (मातरः) माताओं के समान (सप्त आपः) सर्पणशील, क्षरण-प्राप्त प्रजाएं (तस्थुः) आज्ञा पालनार्थ खड़ी रहती हैं और इसी के शासन में (सिन्धवः) बड़े २ महानद (नृभ्यः तराय) मनुष्यों के पार उतारने के लिये (सुपाराः) सुखपूर्वक पार जाने योग्य होते हैं ।

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम् ।  
न तद्वेयो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवन्दो वषमश्चकार ॥ २ ॥

भा०—(विथुरेण चित् अस्त्रा) व्यथादायी और इतस्ततः सञ्चालन में समर्थ शक्ति द्वारा (अतिविद्धा) खूब पीड़ित होकर (सप्त त्रिः)



इकीसों तत्त्व (गिरीणाम्) मत्स्य एक दूसरे को निगल जाने वाले, वा पर्वत मेघादिवत् भारी और (सानु) शिखर-स्वरूप (संहिता) एकत्र संबद्ध हो जाते हैं । (तत्) उनको (न देवः) न कोई अग्य तेजस्वी तत्त्व (न मर्त्यः) न जीव ही (तुतुर्यात्) इस प्रकार कर सकता है, (यानि) जिनको (प्रवृद्धः) बड़ा, शक्तिशाली और (वृषभः) बलवान् प्रभु (चकार) कर लेता है ।

इन्द्रस्य वज्रं आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाहोर्भूयिष्ठमोजः ।  
शीर्षश्चिन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नैषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥

भा०—जैसे राजा या सेनापति का (आयसः वज्रः) लोह का खड्ग होता है और (निमिश्लः) खूब कठोर होता है वैसे ही (इन्द्रस्य) उस प्रभु का (वज्रः) बल (आयसः) सर्वत्र ब्रह्माण्डों में सूर्यादि को भ्रमण कराने में समर्थ (निमिश्लः) और खूब सम्बद्ध होता है और (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (बाह्वोः) बाहुओं में, उसके शासन में भी (भूयिष्ठम् ओजः) बड़ा पराक्रम है । (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शीर्षन्) शिर में (क्रतवः) अनेक ज्ञान (निरेके) सबसे बढ़कर विद्यमान हैं और (आसन्) मुख में विद्यमान वाणियों को भी सुनने के लिये (उपाके) अति समीप बहुत से जन (ईषन्त) प्राप्त होते हैं ।

मन्ये त्वा यज्ञियं यज्ञियानां मन्ये त्वा च्यवनमच्युतानाम् ।  
मन्ये त्वा सत्त्वनामिन्द्र केतुं मन्ये त्वा वृषभं चर्षणीनाम् ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं मन्ये) दानियों में दानी, पूज्यों में पूज्य, सत्संग योग्यों में सर्वश्रेष्ठ करके जानता हूँ और (अच्युतानां च्यवनम्) स्वयं गतिरहित जड़ पदार्थों को चलाने वाला जानता हूँ । (सत्त्वनां केतुं मन्ये) बलशालियों में ध्वजा के समान वा सत्वयुक्त चित्त वाले जीवों में ज्ञानप्रद और (चर्षणीनां वृषभं त्वा मन्ये) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मैं तुझे जानता हूँ ।



आ यद्वज्रं बाहोरिन्द्र धत्से मदच्युतमहये हन्तवा उ । प्र पर्वता  
 अनवन्त प्र गावः प्र ब्रह्माणो अभिनक्षन्त इन्द्रम् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन् ! तू (बाहोः)  
 बाहुओं में (अहये) अभिमुख धाये शत्रु को (हन्तवा) नाश करने के  
 लिये (मदच्युतं वज्रं) शत्रुओं के मद को दूर करने वाले प्रजा के (मद-  
 च्युतं) हर्ष प्रापक बल वीर्य को (धत्से) धारण करता है तब (पर्वताः)  
 मेघवत् पालन शक्ति से युक्त शासक जन और (गावः) भूमिवासी  
 समस्त प्रजापुं (प्र अनवन्त) खूब हर्ष ध्वनि करते हैं और (अभिनक्षन्तः  
 ब्रह्माणः) प्राप्त होते हुए विद्वान् जन (इन्द्रम् प्र अनवन्त) ऐश्वर्यवान्  
 शत्रुहन्ता की स्तुति करते हैं । इति द्वात्रिंशो वगः ॥

तस्मै धृवाम् य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।

इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्मिषो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥

भा०—(तस्मै उ त्वाम्) उसी की स्तुति करें (यः इमा) जो इन  
 (अस्मात्) उससे (अवराणि) पीछे (विश्वा जातानि) उत्पन्न, समस्त  
 पदार्थों को (जजान) उत्पन्न करता है । हम लोग (इन्द्रेण) उस प्रभु के  
 साथ (मित्रं दिधिषेम) मित्र भाव रखें । (नमोभिः गीर्मिः) नमस्कार  
 वचनों से हम उस (वृषभं) सुखों के दाता को (उपो विशेम) प्राप्त  
 होवें ।

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्य सखायः ।

मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वयेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (वृत्रस्य श्वसथा इषमाणाः विश्वे देवाः सखायः  
 अजहुर्य) बद्धे शत्रु के श्वासमात्र से भी भय खाते हुए सब मित्र मनुष्य  
 भी राज्य को छोड़ देते हैं वैसे ही हे प्रभो ! (विश्वे देवाः) समस्त  
 जीवगण, (सखायः) तेरे मित्र समान आख्या वाले आत्मा होकर भी  
 (वृत्रस्य) आवरणकारी देह के (श्वसथा इषमाणाः) श्वास-प्रश्वास द्वारा



गति करते हुए (त्वा अजहुः) तुझे भूल जाते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् !  
(ते मरुद्भिः सख्यम् अस्तु) जीवगण से तेरा सदा सख्य, मित्रभाव रहे।  
(अथ) और तू (इमा विश्वाः पृतनाः जयासि) इन सब प्रजाओं को  
अपने वश कर।

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्मा इव राशयो यज्ञियांसः।

उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥ ८ ॥

भा०—(त्रिः षष्टिः मरुतः) ६३ प्रकार के मनुष्य और देह में प्राण  
(वावृधानाः) बढ़ते हुए (उस्माः इव) सूर्य की किरणों के समान  
(राशयः) संघ होकर (यज्ञियांसः) आदर योग्य हैं। वे हम (त्वा उप  
इमाः) तुझे प्राप्त होते हैं। (नः भाग-धेयं कृधि) हमारा भाग नियत  
कर। हम (ते शुष्मं) तेरे बल को (एना हविषा) इस प्रकार के कर  
और उपाय से (विधेम) बनावें। त्रिःषष्टि गणों का परि-संख्यान  
यजुर्वेद अ० २२ में देखो।

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष।

अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन् ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (तिग्मम् आयुधम्) शत्रु पर प्रहार  
करने के तीक्ष्ण साधन, (मरुताम् अनीकम्) वीर पुरुषों की सेना रूप  
(ते वज्रं) तेरे महान् बल को (कः प्रति दधर्ष) कौन पराजित कर  
सकता है। (असुराः) बड़े बलशाली लोग भी (अनायुधासः) आयुधों  
से रहित और (अदेवाः) अतेजस्वी हों, (तान्) उनको हे (ऋजीषिन्)  
शत्रुभर्जक सेनाओं के स्वामिन् ! तू (अप वप) दूर ही खण्डित कर डाल।

मह उग्राय तवसे सुवृत्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः।

गिर्वीहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत् ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—(महे उग्राय) बड़े बलवान् (तवसे) शक्तिशाली, (शिव-  
तमाय) अति सुखदायक (पश्वः च शिवतमाय) पशु तक के कल्याण-

कारी (गिर्वाहसे) वाणियों और स्तुतियों की स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये, (अङ्ग) हे विद्वन् ! तू (सुवृत्तिं प्रेरय) उत्तम स्तुति कर, उसी के लिये (पूर्वाः गिरः धेहि) पूर्व की, नित्य वाणियों को धारण कर । वही (तन्वे) हमारे शरीर और राष्ट्र के लिये (कुवित् वेदत्) बहुत सुलैश्वर्य देता है । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीर य नदीनाम् ।

नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत् ॥ ११ ॥

भा०—(उक्थ-वाहसे विभ्वे) उत्तम स्तुति-वचनों को स्वीकार करने वाले विभु, महान् परमेश्वर के लिये (मनीषां) चित्त, बुद्धि को प्रेरित कर । हे प्रभो ! तू (द्रुणा न नदीनाम्) नदियों के पार नौका के समान हमें (पारम् ईरय) पार ले चल । हे विद्वन् ! (जुष्टतरस्य श्रुतस्य) अति सेवनीय श्रवण योग्य ज्ञान को (तन्वि) पुत्र में धनवत् (निस्पृश) दे । वह प्रभु (अङ्ग) हे मनुष्य ! (कुवित् वेदत्) बहुत कुछ देता है ।

तद्विविड्ढि यत्त इंद्रो जुजोषत्सुहि सुष्टुतिं नमसा विवास ।

उप भूष जरितर्मा रुचण्यः आवया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (यत् जुजोषत्) जिसे प्रेम करे तू (तत् विविड्ढि) उसी पदार्थ को प्राप्त करा, उसकी (सु-स्तुतिं सुहि) उत्तम स्तुति कर । (नमसा) विनय से (विवास) उसकी सेवा कर । हे (जरितः) विद्वन् ! तू (उप भूष) उसके समीप रह और (मा रुचण्यः) रो मत । तू अपनी (वाचं) वाणी को (आवय) उसे सुना और (अङ्ग-कुविद् वेदत्) हे मनुष्य ! वह बहुत २ ऐश्वर्य देने वाला है ।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः ।

आवत्तमिन्द्रः शच्या धर्मन्तमप स्नेहितीर्नमणा अधत्त ॥ १३ ॥

भा०—(द्रप्सः) वेग से प्रयाण करने में समर्थ, (कृष्णः) प्रजा को



कर्षण करने वाला, (दशभिः सहजैः) दस सहस्र सैन्यों सहित (अंशु-  
मतीसू) अन्न वाली भूमि पर (अतिष्ठत्) स्थिर हो, तो भी (शच्या  
धमन्तम्) शक्ति से प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट शत्रु को (इन्द्रः)  
ऐश्वर्य युक्त उत्तम राजा (शच्या आवत्) शक्ति से आक्रमण करे और  
वध करे और (नृमणाः) मनुष्यों के हित में चित्त देकर वह (ज्ञेहितीः)  
हिंसक सेनाओं को (अप अधत्त) दूर करे ।

द्रुप्तमपश्यं विपुणो चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।

नमो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४॥

भा०—सेनापति सैन्यगण से कहे—मैं (अंशुमत्याः नद्यः) कर देने  
वाली, सम्पन्न प्रजा के (उप-ह्वरे) समीप (विपुणे चरन्तं) विस्तृत देश  
में विचरते (द्रुप्तम्) द्रुतगामी शत्रु को (अपश्यम्) देखता हूँ और  
(अवतस्थिवांसम्) आसन पर बैठे हुए (कृष्णम्) प्रजा के पीड़क जन  
को (नमः) आकाश में मेघवत् व्यापता जानता हूँ । हे (वृषण) बल-  
वान् पुरुषो ! मैं (इष्यामि) चाहता हूँ कि (वः) आप लोग (आजौ  
युध्यत) संग्राम में शत्रु से युद्ध करो, मारो ।

अथ द्रुप्तो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः ।

विशो अदेवीरभ्या चरन्तीवृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥१५॥३४

भा०—(द्रुप्तः) वेग से जाने वाला शत्रु (अंशुमत्याः उपस्थे)  
समृद्ध प्रजा के समीप, (तित्विषाणः) तेजस्वी होकर (तन्वं अधार-  
यत्) विस्तृत शक्ति को धारता है और (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता  
राजा (युजा वृहस्पतिना) बड़ी सेना के पालक सेनापति के सहाय से,  
(अदेवीः) अकरप्रद, (अभि आचरन्तीः) विपरीत आक्रमणकारिणी  
(विशः) प्रजाओं को (ससाहे) पराजित करे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

त्वं ह त्वत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।

गूजहे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणाः धाः १६



भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्यत् त्वं) वह तू (जायमानः) प्रकट होकर (अशत्रुभ्यः ससभ्यः) शत्रुरहित स्वयं विचरने वालों का (शत्रुः अभवः) नाश करने में समर्थ हो । (गूढे चावापृथिवी) संवृत, सुरक्षित, आकाश पृथिवीवत् शासन-शास्य दोनों को (अनु अविन्दः) अपने अनु-कूल, वश कर और (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः) बड़े ऐश्वर्य से युक्त देशों की प्राप्ति के लिये (रणं धाः) रण कर ।

त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन्धृषितो जघन्थ ।

त्वं शुष्णास्यावातिरो वधत्रैस्त्वं गा इन्द्र शक्येदविन्दः ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् ! (त्वं ह) तू ही (वज्रेण) अपने शस्त्रबल से (धृषितः) शत्रु-पराजय में समर्थ होकर (अप्रतिमानम् यत् ओजः) उस अमित शत्रु के बल को (जघन्थ) विनष्ट कर । (त्वं) तू (वधत्रैः) वध करने के साधनों से (शुष्णस्य अवातिरः) प्रजा के शोषक दुष्ट का नाश कर और (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (शक्या इत्) शक्ति और आज्ञा के बल से ही (गाः अविन्दः) सब भूमियों को अपने अधीन कर ।

त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनां घ्नो वृत्राणां तविषो बभूय ।

त्वं सिन्धूरसृजस्तस्तमानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥ १८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे (चर्षणीनां वृषभ) प्रजाओं के बीच सर्व-श्रेष्ठ ! (त्वं ह) तू (तविषः) बलवान् होकर (वृत्राणां) दुष्टों और विघ्नों का (घनः अभवः) दण्ड देने, नाश करने वाला हो । (त्वं) तू (तस्तमानान्) शत्रु नाश करने वाले (सिन्धून्) वेग से जाने वाले वीरों और तट आदि के नाशक महानदों को भी (असृजः) सञ्चालित कर और (त्वम्) तू (दासपत्नीः) प्रजा नाशक शत्रु के आधिपत्य में विद्यमान (अपः) भूमियों, सेनाओं और प्रजाओं को (अजयः) जीत ।



स सुक्रतू रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान् ।

य एक इक्षर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदुन्यमाहुः ॥ १६ ॥

भा०—(सः सुक्रतुः) वह उत्तम ज्ञान और कर्म-सामर्थ्यवान् है । (यः) जो (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यादि अभिवेक कर्मों में (रणिता) रमने हारा, रणकुशल है । (यः) जो (अहा इव रेवान्) दिन वा सूर्य के समान तेज, बल और धन से युक्त और (अनुत्त-मन्युः) अपराजित बल वाला, (यः एक इत्) जो अकेला ही (नरि अपांसि कर्ता) नायक पद पर रहकर नाना कर्मों को करने हारा है (सः) वह (वृत्रहा) शत्रु और विघ्नों का नाशक हो, उसको ही (अन्यं प्रति इत् आहुः) शत्रु के प्रति प्रबल करके जानते और कहते हैं ।

स वृत्रहेन्द्रश्चर्षणीधृत्तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम ।

स प्राविता मघवा नोऽधिवक्ता स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ॥ २० ॥

भा०—(सः वृत्रहा) वह दुष्टनाशक पुरुष ही (चर्षणीधृत्) मनुष्यों को धारण करता है (तं हव्यम्) उस स्तुत्य पुरुष को हम (सु-स्तुत्या) उत्तम गुण स्तवन द्वारा (हुवेम) प्राप्त करें । (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः प्राविता) हमारा उत्तम रक्षक हो और (सः) वह (नः अधिवक्ता) हमारा अध्यक्ष, शासक और (सः वाजस्य श्रवस्यस्य दाता) कीर्ति, अन्नादिप्रद, ऐश्वर्य बल और ज्ञान का दाता है ।

स वृत्रहेन्द्रः ऋभुक्षाः सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूव । कृण्वन्नपांसि

नर्या पुरुणि सोमो न पीतो हव्यः सखिभ्यः ॥ २१ ॥ ३५ ॥

भा०—(सः) वह (वृत्र-हा) दुष्टों और विघ्नों का नाशक, (ऋभु-क्षाः) बल और गुणों से महान्, तेजस्वी, शैलपी आदि जनों का आश्रय दाता, (जज्ञानः) होकर (सद्यः हव्यः बभूव) शीघ्र ही स्तुत्य हो जाता है । वह (पुरुणि नर्यो अपांसि कृण्वन्) नायक योग्य, प्रजाजन के हितार्थ बहुत कर्मों को करता हुआ (पीतः सोमः न) पाने वा पालन

योग्य सोम रस, ऐश्वर्य वा पुत्रादि के समान ही (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों के लिये स्तुत्य होता है । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[ ९७ ]

रेभः काश्यप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराट् बृहती । २, ६, ९, १२ निचृद् बृहती । ४, ५, ८ बृहती । ३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । १० भुरिगजगती । १३ अतिजगती । १५ ककुम्मती जगती । १४ विराट् त्रिष्टुप् । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।

स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्वर्वान्) सूर्यतुल्य तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (असुरेभ्यः) प्राण वाले जीवों के हितार्थ (याः भुजः आभर) जिन योग्य पदार्थों को देता है, (अस्य) इस धन से तू (स्तोतारम् इव) स्तुतिकर्ता विद्वान् को ही, हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (वर्धय) बढ़ा और उनको भी बढ़ा (ये च तव) जो तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) आसन बिछाते, तेरे अधीन शत्रु को कृशतृणवत् काटते हैं ।

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।

यजमाने सन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धौहि मा पणौ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (यस् अश्वम्) जिस अश्व को, (गां) मृग व पशु को और (अव्ययं भागम्) अक्षय सैन्य को (दधिषे) धारण करता है, (तं) उसके (सन्वति) यज्ञ करने वाले और (दक्षिणावति) दान दाक्षणा देने वाले (तस्मिन् यजमाने धौहि) उस यजमान के निमित्त धर । (मा पणौ) धन के व्यवहारी के निमित्त मत दे ।

य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदैवयुः ।

स्वैः ष पवैर्मुमुरुत्पोष्यं रयिं संनुतधौहि तं ततः ॥ ३ ॥



मा०—हे (इन्द्र) दुष्टों को दण्ड देने हारे ! (यः अव्रतः) जो व्रत-हीन होकर (सस्ति) आलस्य में सोता है और जो (अनुस्वापं) निद्रा आलस्य के साथ २ (अदेवयुः) अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता वा विद्वानों, शुभ गुणों को नहीं चाहता, (सः) वह (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (पोष्यं रयिं मुमुरत्) पोषण-योग्य ऐश्वर्य का नाश करता है । (ततः) उससे हे ऐश्वर्यप्रद ! तू (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (सनुतः घेहि) कार्य और फल से वञ्चित कर ।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।

अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥४॥

मा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु-नाशक ! (यत्) जो तू (परावति) दूर और (अर्वावति) समीप देश में भी (असि) है, तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (अतः) इस अपने स्थान से ही, (सुत-वान्) ऐश्वर्ययुक्त होकर तेरा प्रतिनिधि (द्युमत् केशिभिः) भूमिगामी अश्वों और तेजस्वी पुरुषों द्वारा (त्वा आ विवासति) तेरी ही सेवा करता है ।

यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टिपि ।

यत्पार्थिवे सद्ने वृत्रहन्तम् यदन्तरिक्ष आ गहि ॥५॥ ३६॥

मा०—(यद् वा) तू चाहे (दिवः रोचने) भूमि के किसी अति रुचिकर देश में भी (असि) हो, चाहे तू (समुद्रस्य अधि विष्टिपि) वा समुद्र के किसी निस्ताप प्रदेश में भी हो, चाहे तू (यत् पार्थिवे सद्ने) वा पृथिवी के किसी गृह में वा (यत् अन्तरिक्षे) वा अन्तरिक्ष में भी हो तो भी हे (वृत्रहन्तम्) विघ्नों के नाशक स्वामिन् ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते ।

मादयस्व राधसा सूनूतावतेन्द्र राया परीणसा ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (शवसः पते) बल-पालक ! हे (सोमपाः) ऐश्वर्य पालक ! तू (सोमेषु सुतेषु) ऐश्वर्यों के उत्पन्न होने पर (नः) हमें (सूनुतावता) उत्तम वचन से युक्त (राधसः) दान योग्य धन से और (परीणसा) बहुत से (राया) ऐश्वर्य से (मादयस्व) तृप्त कर ।  
मा न इन्द्र परा वृणाग्भवा नः सधमाद्यः ।

त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वणक् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! प्रभो ! तू (नः) हमें (मा परा वृणक्) मत त्याग । तू (नः सधमाद्यः भवः) हमारे साथ आनन्द युक्त हो । (त्वं नः ऊती) तू ही हमारी रक्षा है । (त्वम् इत् नः आप्यं) तू ही हमारा बन्धु है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः मा परा वृणक्) हमें मत छोड़ ।

अस्मे इन्द्र सचा सुते नि षदा पीतये मधु ।

कृधी जरित्रे मधवन्नवो महदस्मे इन्द्र सचा सुते ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (मधु पीतये) अन्नादि के उपभोग के लिये (अस्मे सुते) हमारे द्वारा अभिविक्त पद पर, तू (नि सद) विराज । हे (मधवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (जरित्रे) उपदेश के हितार्थ (अस्मे सुते सचा) हमारे ऐश्वर्य पर स्थिर रहकर (महत् भवः कृधि) बड़ी भारी रक्षा कर ।

न त्वा देवास आशत न मर्त्यासो अद्रिवः ।

विश्वा जातानि शवसाभिभूरसि न त्वा देवास आशत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! (त्वा देवासः न आशत) तुझे विद्वान् गण वा इन्द्रिय गण भी नहीं पा सकते और (न मर्त्यासः) न साधारण मनुष्य ही तुझे पा सकते हैं । तू (शवसा) बल से (विश्वा जातानि) समस्त उत्पन्न पदार्थों को (अभिभूः असि) वश किये हैं । इसलिये भी (त्वा देवासः न आशत) तुझे दिव्य पदार्थ सूर्यादि, एवं विद्वान् जन भी नहीं पा सकते ।



विश्वः पृतना अभिभूतरं नरं सज्जुस्ततश्चुरिन्द्रं जज्जनुश्च राजसे ।  
क्रत्वा वरिष्ठं वरं आमुर्मुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् १०।३७

भा०—(विश्वः पृतनाः) समस्त मनुष्य, (अभि-भूतरं नरं) शत्रु को खूब पराजित करने वाले नायक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (सज्जुः) प्रेमपूर्वक मिलकर (राजसे जज्जनुः) राज्य करने के लिये प्रधान पद पर स्थापित करते हैं और वे (क्रत्वा वरिष्ठं) ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ (आ-मुर्मु) शत्रुओं के नाशक, (उग्रम्) भयंकर, (ओजिष्ठं) अति पराक्रमी, (तरस्विनं) बलवान्, (तवसं) शक्तिशाली, पुरुष को (इन्द्रम् जज्जनुः) ऐश्वर्यवान् राजा रूप से नियुक्त करें । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।

स्वर्पतिं यदा वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—(रेभासः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता जन (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालनार्थ (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (स्वः-पतिम्) सुखों के स्वामी की (ईम्) सब प्रकार से (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति करें और (यत् इ वृधे सम् अस्वरन्) जब वे इसको अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना करें तब वह (कृतिभिः) अपने रक्षा-साधनों और (ओजसा) बल से (धृत-व्रतः) व्रतों, नियमों को धारण करने वाला हो और उनको (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार शासन करे ।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेघं विप्रा अभिस्वरा ।

सुदीतयो वो अद्बुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १२ ॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् पुरुष (नेमिम्) शत्रुओं को नमाने वाले बलवान् (मेघं) सुखों के दाता, राजा का (चक्षसा) दर्शन कर (अभि-स्वरा) उत्तम स्वर से (नमन्ति) आदर करते हैं । हे विद्वान् लोगो ! आप भी (सु-दीतयः) उत्तम दीप्ति युक्त (अद्बुहः) परस्पर द्वेष से रहित और (कर्णे तरस्विनः) करने योग्य कर्त्तव्य कर्म में शीघ्रता करने वाले



होकर (ऋक्भिः) उत्तम ऋचाओं से उस स्वामी की (सं) मिलकर स्तुति करो ।

तमिन्द्रं जोहवीमि मधवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कृतं शवांसि ।  
 मंहिष्ठो गीर्मिरा च यज्ञियो ववर्तदाये नो विश्वा सुपथा कृणोतु  
 वज्री ॥ १३ ॥

भा०—मैं (तम्) इस (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् (मधवानम्) उत्तम धनों के स्वामी (उग्रम्) बलवान्, (सत्रा शवांसि दधानम्) सच्चे बलों का धारक (अप्रतिष्कृतं) जिसके बल को कोई रोकने वाला नहीं उसको (जोहवीमि) बुलाता हूँ । वही (मंहिष्ठः) सबसे बड़ा दानी (यज्ञियः च) और पूज्य है । वह (गीर्मिः आववर्त्त) उत्तम वाणियों से शासन करता है । वह (वज्री) शक्तिमान् स्वामी, (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (विश्वा) सब प्रकार के (सुपथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) करे ।

त्वं पुरं इन्द्रं चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्वै ।  
 त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! हे (शविष्ठ) सर्वाधिक शक्तिमान् ! हे (शक्र) शक्ति देने हारे ! तू (भोजसा) बल पराक्रम से (पुरः नाशयध्वै चिकिद) शत्रुओं नगरियों, गादियों को विनाश करना मली प्रकार जान । हे (वज्रिन्) वीर्यवान् ! (विश्वानि भुवना द्यावा पृथिवी च) समस्त भुवन, सूर्य और पृथिवी सब (त्वद् भीषा रेजेते) तेरे भय से चल रहे हैं ।

तन्म ऋतमिन्द्रं शूरं चित्रं पात्वपो न वज्रिन्दुरितातिं पर्वि भूरिं  
 कदा न इन्द्रं राय आ दशस्येर्विश्वस्येस्य स्पृहयायस्य राजन्  
 ॥ १५ ॥ ३८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (तत् ऋतम्) वह सत्य ज्ञान (मे पातु) मेरी रक्षा करे । हे (चित्र) पूज्य ! हे अद्भुत ! हे (वज्रिन्) बल-



वन् ! (अपः न) जलों के समान तू (भूरि दुरिता अति पपि) बहुत से दुःखों से पार कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (विश्वप्स्यस्य) सब प्रकार के (स्पृहयायस्य) चाहने योग्य (रायः) धन को, हे (राजन्) तेजस्विन् ! तू (नः कदा आ दशस्ये) हमें कब देगा । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽध्यायः ।

### अथ सप्तमोऽध्यायः

[ ६८ ]

मृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ उष्णिक् । २, ६ ककुम्मती उष्णिक् । ३, ७, ८, १०—१२ विराडुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ९ निचृदुष्णिक् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्राय सामं गायतु विप्राय बृहते बृहत् ।

धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ १ ॥

भा०—(बृहते) महान् (विप्राय) मेधावी, (धर्म-कृते) समस्त धर्मों, प्रबन्धों को करने वाले, (विपश्चिते) विद्वान्, (पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले, वा वाणी और सद्-व्यवहारों के पालक (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त (बृहत् साम) बृहत् साम का (गायतु) गान करो ।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।

विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अभिभूः असि) सर्वत्र विद्यमान है (त्वम् सूर्यम् अरोचयः) तू सूर्य को प्रकाशित करता है । तू (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का बनाने वाला और (विश्व-देवः) सब देवों का देव, सबका दाता, प्रकाशक और (महान् असि) बड़ा है ।

विभ्राजज्योतिषा स्वः। रगच्छो रोचनं दिवः।

देवास्तं इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

भा०—तू (ज्योतिषा) तेज से (स्वः विभ्राजन) विश्व को प्रकाशित करता हुआ (दिवः) सूर्य और आकाशस्थ प्रकाशमान पिण्डों को भी (रोचनं) तेज (आगच्छः) प्राप्त कराता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (देवाः) प्रकाशित लोक और विद्वान्, हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (ते सख्याय) तेरे मित्र भाव के लिये (येमिरे) अपने को नियम में बांधते हैं।

एन्द्रं नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः।

गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः प्रियः) हमारा प्रिय, (सत्राजित्) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (अगोह्यः) अगोप्य, सर्वत्र प्रकाशित, (गिरिः) मेघ वा पर्वत के समान (विश्वतः पृथुः) सबसे बड़ा (दिवः पतिः) सूर्यादि तेजस्वी जगत् का और हमारी कामनाओं का भी स्वामी, पालक है। तू (नः आ गधि) हमें प्राप्त हो।

अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी।

इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सत्य) सत्यरूप ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (उभे रोदसी) आकाश-पृथिवी दोनों पर (अभि बभूथ) वश करता है। तू (सुन्वतः वृधः) उपासक का वृद्धिकर्ता (दिवः पतिः) कामनाओं का स्वामी है।

त्वं हि शश्वतीनामिन्द्रं दत्ता पुरामसि।

हन्ता दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(त्वं) तू अवश्य (शश्वतीनां पुराम्) बहुत सी, अनादि काल से बनी (पुराम्) नगरियों का (वर्त्ता असि) तोड़ने हारा है। तू (दस्योः हन्ता) दुष्टों को दण्ड देने वाला और (मनोः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला और उसका (दिवः पतिः) कामनाओं का पालक, वा (दिवः पतिः) भूमि और आकाशादि का भी पालक है। इति प्रथमो वर्गः ॥



अद्या हिन्द्रं गिर्वणः उप त्वा कामान्महः संसृज्महे ।

उदेव यन्त उदमिः ॥ ७ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (अथ हि) और हम (त्वा उप) तेरे ही पास रहकर (महः कामान्) बड़ी अभिलाषाओं को (संसृज्महे) पूर्ण करें (उदा इव यन्तः उदमिः) जैसे नदी से जाते हुए यात्री जल से ही अपनी आवश्यकता पूर्ण करते हैं, वैसे ही तुझसे उन्नत होकर हम तुझसे ही सब अभिलाषाएं पूर्ण करें ।

वार्यं त्वां यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।

वावृध्वासं चिदद्रिवो दिवेदिवे ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (वाः न) जल जिस प्रकार (यव्याभिः) नदियों द्वारा समुद्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्य और स्तुतिवचन (दिवे दिवे) प्रति दिन (वावृध्वासं) बढ़ते हुए (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं ।

युञ्जन्ति हरीं इषिरस्य गार्थयोरौ रथं उरुयुगे ।

इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥

भा०—(इषिरस्य) बड़ी इच्छा वाले राजा के (उरुयुगे) बड़े जुए वाले, (उरौ रथे) बड़े रथ में जैसे विद्वान् जन (इन्द्र-वाहा) ऐश्वर्य-प्राप्ति कारक (वचोयुजा) वाणी मात्र से जुड़ने वाले (हरी युञ्जन्ति) दो अश्वों को नियुक्त करते हैं, वैसे ही (गार्थया) गान-योग्य स्तुति और गाथा अर्थात् वेद-वाणी द्वारा (इषिरस्य) सबके सञ्चालक, उसके (उरौ) विशाल (उरु-युगे रथे) महान् योजनावान् रमणीय रूप में विद्वान् जन, (वचः-युजा) वाणी से उसमें योग देने वाले (इन्द्र-वाहा) इन्द्र आत्मा को धारण करने वाले (हरी) स्त्री-पुरुषों वा आत्मा और मन को (युञ्जन्ति) योग द्वारा समाहित करते हैं ।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृमां शतक्रतो विचर्षणे ।

आ बीरं पृतनापहम् ॥ १० ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन् ! हे (विचर्षणे) समस्त विश्व को देखने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं नः ओजः नृगं आभर) तू हमें बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्रदान कर और (पुतना-सहं वीरं आभर) संग्राम विजयी वीर को प्राप्त करा ।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

अथा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥

भा०—हे (वसो) सबके पिता, सबको बसाने हारे, सर्वव्यापक ! हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान, कमौ वाले ! (त्वं हि नः पिता) तू निश्चय से हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता है । (अथ) इसी कारण हम (ते सुम्नम् ईमहे) तेरे से सुख की याचना करते हैं ।

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥ २ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! हे (शतक्रतो) अमित कर्म-सामर्थ्य-सम्पन्न ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रेमपूर्वक बुलाये गये ! (वाज-यन्तं त्वा) ऐश्वर्य और ज्ञान-प्रदान की कामना वाले तुझसे मैं प्रार्थना करता हूँ, (सः) वह तू (नः सुवीर्यम् रास्व) हमें उत्तम बल दे । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[ ९९ ]

नृमेघ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् बृहती ॥ २ बृहती । ३, ७ निचृद् बृहती । ५ पादनिचृद् बृहती । ४, ६, ८ पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्जिन्भूर्णीयः ।

स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसंरमा गंहि ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन् ! (भूर्णीयः) प्रजाओं के पालक



(नरः) नाथक जन (इदा ह्यः) अब तब, अब और आगे भी, (त्वाम् अपीष्यन्) तुझे बढ़ावें। (सः) वह (स्तोमवाहसाम्) स्तुति-धारक की प्रार्थना को (इह श्रुधि) इस अवसर में श्रवण कर और (स्वसराम् उप आ गहि) गृहवत् राष्ट्र को तू प्राप्त हो।

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः ।

तव श्रवांस्युपमान्युकृत्या सुतेष्विन्दुर्गिर्वणः ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन् ! (त्वे) तेरे अधीन (वेधसः आ भूषन्ति) विद्वान् जन सब ओर से आकर रहते हैं, (तव ईमहे) इसी से हम तेरी याचना करते हैं। हे (सुशिप्र) हे सौम्य ! तू (मत्स्व) आनन्द लाभ कर और सबको सुखी कर। हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तवन-योग्य ! (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों, ऐश्वर्यों में (तव) तेरे (उक्त्या उपमानि) प्रशंसनीय, उपमा योग्य, (श्रवांसि) यश, ज्ञान और कर्म हैं।

श्रायन्तइव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।

वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजास्थ जनो ! (श्रायन्तः) आश्रय लेते हुए आप लोग आश्रित जनों के तुल्य ही (सूर्यम्) सूर्यवत् तेजस्वी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (विश्वे वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (भक्षत) सेवन करो। (जाते) उत्पन्न और (जनमाने) उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य में भी हम लोग (ओजसा) बल के द्वारा (भागं) अपना अंश (प्रति दीधिम) ग्रहण करें।

अनर्शरतिं वसुदामुपं स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।

सो अस्य कामं विधृतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (अनर्श-रातिम्) सात्विक, पवित्र दान देने वाले, (वसु-दाम्) ऐश्वर्य-दाता प्रभु की (उप स्तुहि) उपासना किया

कर । क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः) ऐश्वर्यवान् के सब दान (भद्राः) कल्याणकारक हैं । (सः) वह (विधतः अस्य) परिचर्या करने वाले इस भक्त के (कामं न रोषति) अभिलाषा को नष्ट नहीं करता, प्रत्युत (दानाय मनः चोदयन्) दान देने के लिये मन वा ज्ञान की प्रेरणा किया करता है ।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।

अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुयतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (त्वम्) तू (प्रतूर्तिषु) संग्रामों में (विश्वाः वृधः) स्पर्धालु पर-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करने में समर्थ है । तू (अशस्ति-हा) निन्दकों का नाशक, (जनिता) सबका पितावत् जनक (विश्वतूः असि) सब शत्रुओं का नाशक वा विश्व का चालक है । (त्वं) तू (तरुयतः) हिंसक, पीढ़कों को (तूर्यं) विनष्ट कर ।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।

विश्वास्ते स्पृधः अथयन्त मन्यवे वृत्रं यद्रिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥

भा०—(मातरा शिशुं न) माता पिता जैसे शिशु के समीप प्रेम-पूर्वक प्राप्त होते हैं, वैसे ही (ते) तेरे (तुरयन्तं शुष्मम् अनु) संचालक बल के पीछे २ आकृष्ट होकर (क्षोणी) आकाश-भूमि गत सब पदार्थ उसके पीछे चलते हैं । (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धाकारी भी (अथयन्त) शिथिल हो जाते हैं (यद् इन्द्र) जब तू, हे शत्रुनाशक ! (वृत्रं) दुष्ट, बाधक को (तूर्वसि) नाश करने को तैयार होता है ।

इत ऊती चो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।

आशुं जेतारं हेतारं रथीतममवूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (अजरम्) अविनाशी (प्र-हेतारं) सबके प्रेरक, शत्रुनाशक और (अप्र-हितम्) स्वयं किसी से प्रेरित न



होने वाले, (आशुम्) वेगवान्, (जेतारं) सर्वविजयी, (हेतारं) दुष्टों के नाशक, (रथि-तमम्) विश्वमात्र में महारथी के तुल्य, (अतूतम्) अबाधित, (तुभ्य-वृधम्) दुष्टों के नाश करने की शक्ति को बढ़ाने वाले, परमेश्वर को आप लोग (ऊठी) प्रेमपूर्वक (इतः) आगे करो ।

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूर्तिं शतक्रतुम् ।

समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसुजुवम् ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—(इष्कर्तारम्) सबके सञ्चालक, (अनिष्कृतं) अन्यों से अप्रेरित, (सहस्कृतम्) बलों के उत्पादक, (शतम्-ऊर्ति) अमित रक्षा-साधनों से युक्त (शत-क्रतुम्) अमित प्रज्ञा वाले, (समानं) सबके प्रति समान, (वसवानं) सबको आच्छादित करने वाले (वसुजुवम्) ऐश्वर्यों, लोकों के प्रेरक, (इन्द्रम्) प्रभु को हम (अवसे) रक्षार्थ (हवामहे) प्रार्थना करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[ १०० ]

नेमो भार्गवः । ४, ५ इन्द्र ऋषिः ॥ देवताः—१-६, १२ इन्द्रः । १०, ११ वाक् ॥ छन्दः—१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, १२ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृज्जगती । ७, ८ अनुष्टुप् । ९ निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अयं तं एमि तन्वां पुरस्ताद्विश्वं देवा अभि मां यन्ति पश्चात् ।

यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् ! (ते पुरस्तात्) तेरे आगे (अयं) यह मैं (तन्वा एमि) अपने देहसहित आता हूँ और इसी प्रकार (मा पश्चात्) मेरे पीछे (विश्वे देवाः) समस्त कामनावान् जीवगण, (त्वा पुरस्तात् अभियन्ति) तेरे समक्ष आते हैं । तू (यदा) जब (मह्यं भागम् दीधरः) मेरे लिये सेवन-योग्य अंश कर्मफल वा ग्राह्य विषय को रखता है, बनाता है, (आत् इत्) अनन्तर ही (मया) मुझ द्वारा (वीर्याणि कृणवः) नाना बलयुक्त कार्य करता है । जैसे स्वामी अधीनस्थ मृत्स्थ



जन के लिये उसका वेतनादि अंश प्रथम नियत कर देता है और उससे बड़े २ काम भी करा लेता है वैसे ही परमेश्वर की व्यवस्था में भी सृष्टियों के उत्तम फल प्राप्त होने नियत हैं। उनको लक्ष्य कर जीव द्वारा कर्म होते हैं।

दधामि ते मधुनो भक्षमग्रे हितस्ते भागः सुतो अस्तु सोमः ।  
असंश्च त्वं दक्षिणतः सखा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवान् ! (ते) तेरे दिये (मधुनः भक्षम्) मधुर अन्न के भोग्य फल को मैं (अग्रे दधामि) आगे लक्ष्य रूप से रखता हूँ और (ते भागः) तेरा भाग (सुतः सोमः ते हितः अस्तु) उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे अर्पण हो और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणतः सखा असः) दायें ओर, सबसे बड़ा, प्रबल सखा, हो (अथ) तो तू और मैं दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जङ्घनाव) नष्ट करें।

‘च’ अत्र चण् इति णितः प्रयोगश्च दर्थे वर्तते ।

प्र सु स्तोमं भरत वाजयन्त इन्द्राय सत्यं यदि सत्यमस्ति ।  
नेन्द्रो अस्तीति नेम उ त्व आह क इ ददर्श कमभि स्त्वाम ॥३॥

भा०— हे मनुष्यो ! (वाजयन्तः) ज्ञान और बल की कामना वाले आप अब (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् की उपासनार्थ (स्तोमं प्र सु भरत) स्तुतियों का अच्छी प्रकार प्रयोग करो । (यदि सत्यं) यदि संदेह है कि वह सत्य है तो जानो वह (सत्यम् अस्ति) अवश्य सत्य है । क्योंकि (उ त्वः नेमः) कोई २ मनुष्य (न इन्द्रः अस्ति इति आह) ऐश्वर्यवान् विघ्ननाशक प्रभु नहीं है ऐसा कहता है (कः इ ददर्श) उसको कौन देखता है ? फिर हम (कम् अभि स्त्वाम) किसकी स्तुति करें ?

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वां ज्ञातान्यभ्यस्मि मूहा ।  
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादहिरो भुवना ददर्सीमि ॥ ४ ॥

भा०—संनिध हृदय वाले स्तोताजन के प्रति साक्षात् प्रभु का



सन्देह निवृत्त्यर्थं वचन—हे (जरितः) स्तुतिकरः ! (अयम् अस्मि) मैं यह हूँ। (पश्य मा इह) मुझे तू यहां इस जगत् में देख। मैं (महान्) महान् सामर्थ्य से (विश्वा जातानि अभि अस्मि) समस्त पदार्थों को ब्रह्म किये हूँ। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्र-दिशः) उत्तम कोटि के दिखाने का उपदेश करने वाले शास्ता गुरुजन (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढ़ाते, मेरी ही महिमा का विस्तार करते हैं। मैं ही (आदर्शः) सबको छिन्न-भिन्न करने वाला हूँ। (भुवना) समस्त लोकों को भी (दर्दरीमि) प्रलय रूप से परमाणु २, छिन्न भिन्न करता हूँ।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यै एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे ।  
मनश्चिन्मे नृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्चिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥

भा०—(हर्यतस्य) इस सुन्दर (ऋतस्य) गतिमान् सत् कारण-रूप, प्रकृतिरूप तत्त्व के (पृष्ठे) पीठ पर (आसीनं) विराजे हुए (एकम्) अद्वितीय (मा) मुझे (वेनाः) चाहने वाले विद्वान् जन (मा अरुहन्) मुझ तक पहुँचते हैं, तब (मनः) मननशील अन्तःकरण ही (मे हृदे आ प्रति अवोचत्) मेरे हृदय को प्राप्त करने के लिये मुझ हृदयस्थ सुहृद् के लिये वचन-प्रतिवचन करता है और वे (सखायः) मेरे मित्र होकर (अन्तः शिशुम्) भीतर अन्तःकरण में व्यापक मुझको लक्ष्य करके (अचिक्रदन्) स्तुति किया करते हैं।

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या त्रयर्थं मघवन्निन्द्र सुन्वते ।  
पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥ ६ ॥ ४

भा०—हे (मघवन्) धनयुक्त ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (सवनेषु) स्तुति के अवसरों में, या (सवनेषु) निर्माण किये लोकों में, (या) जो (प्र-वाच्या) उत्तम रूप से वर्णन-योग्य (ता) उन (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकर्त्त) करता है और उनको तू (सुन्वते) अपने उपासक के लिये (अप अवृणोः) स्पष्ट खोल देता है और (यत्) जो (पारावताम्)

परम रक्षास्थान, मोक्षमय लोक का (वसु) परमैश्वर्य (पुत्र-सम्पत्तम्) बहुत एकत्र है उसको भी (ऋषि-बन्धवे शरभाय) जगत्द्रष्टा के बन्धु-स्वरूप एवं उसको प्राप्त होने वाले भक्त के सुखार्थ (अप भवुणोः) खोल देता है ।

प्र नूनं धावता पृथङ्नेह यो वो अवावरीत् ।

नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७ ॥

भा०—हे उपासक जीवो ! (नूनं) तुम निश्चयपूर्वक (प्र पृथक् धावत) उत्तम मार्ग पर स्वतन्त्र होकर चलो और अपने आपको स्वच्छ करो । (यः) जो परमेश्वर (इत्) इस जगत् में (वः) आप लोगों को (न अवावरीत्) नहीं रोकता वह ही (सीम्) सब प्रकार से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (वृत्रस्य) विघ्नकारी अज्ञान के (मर्मणि) मर्म पर (वज्रम्) ज्ञान रूप वज्र की (नि अपीपतत्) गिराता है, उसका नाश करता है ।

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम् ।

दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

भा०—(मनोजवा) मन के वेग वाला (अयमानः) आगे बढ़ता हुआ आत्मा (आयसीम्) लोहे की बनी (पुरम्) प्रकोट के समान प्राणों से बनी इस पञ्चकोशमय देहपुरी को (अतरत्) पार करता है । ज्ञान बल से ज्ञानी देहबन्धन से छूट जाता है । वह (सुपर्णः) ज्ञानी आत्मा (दिवं गत्वाय) तेजःस्वरूप को प्राप्त होकर (वज्रिणे सोमम्) सर्वशक्तिमान् प्रभु के प्रेरक बल, आनन्द को (आभरत्) प्राप्त करता है । 'वज्रिणे' षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ।

समुद्रे अन्तः शयत उदना वज्रो अभीवृतः ।

भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

भा०—जैसे (वज्रः) विद्युत् रूप बल, (उदना अभीवृतः) जल से आवृत, जल में छिपा (समुद्रे अन्तः शये) समुद्र के भीतर व्याप रहा



है (अस्मै बलिम्) उस बलशाली विद्युत् के बल को (संयतः) अच्छी प्रकार नियमित (प्रस्रवणाः) बहती जल-धाराएं (पुरः भरन्ति) पूर्व ही धारण किये रहती हैं। वैसे ही (वज्रः) अज्ञान-निवारक ज्ञान का प्रकाश और बल (उदना) उत्तम रीति से (अभि-वृत्तः) सर्वत्र विद्यमान (अन्तः समुद्रे) समुद्रवत् व्यापक, आनन्दमय प्रभु में (शयते) व्यापक है। (पुरः प्रस्रवणाः) आगे जाने वाले, विनीत जन (सं-यतः) संयम से रहते हुए, (अस्मै) उस प्रभु के (बलिम्) बलशुक्त ज्ञान को (भरन्ति) धारण करते हैं।

यद्वाग् वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्रीं देवानां निपसाद मन्द्रा ।  
 चतस्र ऊर्जे दुदुहे पर्यासि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (वाक्) वाणी (राष्ट्रीं) तेजस्विनी प्रभुशक्ति के समान (मन्द्रा) अति सुखप्रद, (अविचेतनानि) अविज्ञेय, गूढ़ तत्त्वों को (वदन्ती) प्रकाश करती हुई (देवानां मध्ये नि-ससाद) विद्वानों के बीच विराजती है। वह (चतस्रः) चारों दिशाओं, चारों आश्रमों, चारों वर्णों की प्रजाओं के प्रति (पर्यासि) मेघस्थ विद्युत् जैसे जलों को प्रदान करता है वैसे ही नाना ज्ञानों को (दुदुहे) प्रदान करती है और (ऊर्जे दुदुहे) जैसे भूमि अन्न को उत्पन्न करती है वैसे वह भी बल को पूर्ण करती है। (अस्याः) इस वेदमयी वाणी का (परमं) परम रूप (क्व स्विद जगाम) कहां विद्यमान है, यह नहीं ज्ञात होता।

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।  
 सा नो मन्त्रेषमूर्जे दुहाना धेनुवागसानुप सुधृतैतु ॥ ११ ॥

भा०—(देवम्) अर्थों की प्रकाशिका (वाचम्) वाणी को (देवाः) विद्वान् जन (अजनयन्त) प्रकट करते हैं और (तां) उसको (विश्व-रूपाः) सब प्रकार के (पशवः) द्रष्टा जीवगण, (वदन्ति) व्यक्त और अव्यक्त रूप से बोलते हैं। (सा) वह (मन्द्रा) सुखदायिनी (धेनुः) गौ



के समान (इपम् ऊजं दुहाना) अन्तरिक्ष में मेघस्थ विद्युत् के तुल्य भज्ज, जलवत्, प्रेरणा देती हुई (वाक्) वाणी (सु-स्तुता) उत्तम रीति से स्तुत होकर (अस्मान् आ एतु) हमें प्राप्त हो।

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कमे।

हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः ॥१२॥५

भा०—हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन् ! (सखे) मित्र ! तू (वितरं विक्रमस्व) खूब विक्रम कर। हे (द्यौः) पृथिवी ! हे सूर्यस्थ राजसमे ! (वज्राय विष्कमे) शस्त्र-बल, सैन्यादि के विशेष रूप से छावनी बनाकर बैठने के लिये (लोकं देहि) स्थान दे। हम दोनों मिलकर (वृत्रं हनाव) बढ़ते शत्रु का मेघ को वायु-विद्युत् नाश करें और (सिन्धून् रिणचाव) मेघस्थ जलों के तुल्य शत्रु को वा अपने ही तीव्र-गामी सैन्य पंक्तियों की स्वतन्त्र रूप से जाने दें। वे (इन्द्रस्य प्रसवे) सेनापति के शासन में (विसृष्टाः) विशेषरूप से गति करते हुए (यन्तु) जावें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[ १०१ ]

जमदग्निभर्गिव ऋषिः ॥ देवताः—१-५ मित्रावरुणौ । ५, ६ आदित्याः । ७, ८ अश्विनौ । ९, १० वायुः । ११, १२ सूर्यः । १३ उषाः सूर्यप्रभा वा । १४ पवमानः । १५, १६ गौः ॥ छन्दः—१ निचद बृहती । ६, ७, ९, ११ विराड् बृहती । १२ भुरिग्वृहती । १० स्वराड् बृहती । ५ आर्ची स्वराड् बृहती । १३ आर्ची बृहती । २, ४, ८ पंक्तिः । ३ गायत्री । १४ पादनितृप् त्रिष्टुप् । १५ त्रिष्टुप् । १६ विराट् त्रिष्टुप् ।

षोडशर्चं सूक्तम् ॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।

यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (नूनं) क्षीघ्र ही (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण,



प्राण और अपान दोनों को (अभिष्टये) अभिमत फल प्राप्त करने और (हव्य-दातये) उत्तम अन्न ग्रहण के लिये (आचक्रे) अपने अनुकूल कर लेता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देव-तातये) इन्द्रियों को वश करने के लिये (ऋधक् इत्था) सचमुच इस प्रकार से (शशमे) शम की साधना करता है ।

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।

ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

भा०—मित्र और वरुण (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) अति बलशाली, वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त (उरु-चक्षसा) विशाल दर्शन वाले (नरा) दो नायकों के तुल्य (राजाना) तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) बहुश्रुत हैं । (ता) वे दोनों (बाहुता न) दो बाहुओं के समान (दंसना) नाना कर्म (रथर्यतः) करते हैं । वैसे ही वायु और मेघ दोनों मित्र और वरुण हैं । वे (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) प्रचुर वर्षा लाने वाले बल और जल से युक्त, (उरु-चक्षसा) बहुत रूपों में दीखने वाले, (नरा) सुख प्राप्त कराने वाले (राजाना) विद्युद् आदि से प्रदीप्त (दीर्घश्रुत्तमा) दूर से ही गजन रूप में सुनाई देने वाले हैं, वे मानो (बाहुता न) प्रजापति की दो बाहुओं के समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य की किरणों के साथ (दंसना रथर्यतः) बहुत से कर्म करते हैं । उन दोनों से वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और ऋतु परिवर्तन आदि होते हैं ।

प्र यो वां मित्रावरुणाजिरो दूतो अद्रवत् ।

अयःशीर्षा मदैरघुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) मित्र अर्थात् दिनवत् प्रजा के रक्षक और वरुण अर्थात् रात्रिवत् सुख देने वाले राजा शासकादि जनो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (आजरः) तीव्रगामी, (दूतः) दूत (प्र अद्रवत्) देश-देशान्तर जाता हो वह (अयः-शीर्षा) लोहे के शिर वाला, दृढ

विचार और (मदे रघुः) हर्षादि से प्रफुल्लगति हो । शिर लोहे का हो  
अर्थात् उसके विचार दृढ़ और रहस्यों के छिपाने में कठोर हो ।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।

तस्मात्तो अद्य समृतेरुत्थयतं बाहुभ्यां न उरुत्थयतम् ॥ ४ ॥

भा०—(यः) जो (संपृच्छे न रमते) अच्छी प्रकार पूछने पर  
प्रसन्नता से उत्तर नहीं देता, (न पुनः हवीतये रमते) न छुलाने पर ही  
प्रसन्न होता है और (न संवादाय रमते) न संवाद के लिये ही हर्ष से  
अनुमति देता है, (तस्मात् समृतेः) उस शत्रु के साथ संग्राम से (नः  
अद्य उरुत्थयतम्) हमें आज बचाओ और (बाहुभ्यां नः उरुत्थयतम्) उसके  
बाहुओं से हमें बचाओ ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सच्यमृतावसो ।

वरुथ्यं वरुणे छन्धं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—हे (ऋत-वसो) सत्य के धनी ! तू (मित्राय) सही जन,  
(अर्यम्णे) शत्रुनियन्ता और (वरुणे) श्रेष्ठ जन के लिये (सच्यम्) सेवा-  
योग्य, मेल मिलाप के और (वरुथ्यम्) दुःखवारक तथा (छन्धं) चित्त  
के अनुकूल (वचः) वचन का (प्र) प्रयोग कर और, हे मनुष्यो ! आप  
लोग (राजसु) तेजस्वी जनों में (स्तोत्रं) स्तुति वचन का (गायत) गान  
करो ।

ते हिंन्विरे अरुणं जेन्यं वस्वेकं पुत्रं तिसृणाम् ।

ते धामान्यमृता मर्त्यानामदब्धा अभि चक्षते ॥ ६ ॥

भा०—(ते) वे (अरुणं) तेजस्वी, (जेन्यं) विजयशील (वसु)  
सबको सुखपूर्वक बसाने वाले, (तिसृणां) तीनों लोकों के अद्वितीय सूर्य  
के समान उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं के बीच  
(एकं) अद्वितीय (पुत्रं) बहुतां के रक्षक को (हिंन्विरे) बढ़ावें । (ते) वे



(अमृताः) अविनाशी (अदब्धाः) किसी से भी न मारे जाकर (मर्त्यानां धामानि) मनुष्यों के स्थानों का (अभि चक्षते) निरीक्षण करते हैं ।

आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।

उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (मे) मेरे (उद्यता) उपस्थित (द्युमत्-तमानि) ज्ञान-प्रकाश से युक्त (कर्त्वा) करने योग्य (वचांसि) वचनों को (आयातम्) प्राप्त करो और (उभा सजीषसा) दोनों प्रेम से युक्त होकर (हव्यानि वीतये प्रति यातम्) उत्तम अन्न खाने के लिये लौट जाया करो ।

रार्ति यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।

प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न आदि से युक्त कृषि सैन्यादि कार्यों से सम्पन्न जनो ! युवाभ्याम्) तुम दोनों के हम (अरक्षसं) दुष्ट पुरुषों से रहित (रार्तिम्) अविघ्नित दान राशि की (वाम् हवामहे) आप दोनों से याचना करते हैं । आप दोनों (नरा) उत्तम नर नारी, (जमदग्निना गृणाना) प्रज्वलित अग्नि वाले आचार्य द्वारा उपदेश युक्त होकर (प्राचीं होत्रां) प्राक्तनी, प्रकृष्ट ज्ञान और आदर से युक्त वेद वाणी को (प्रतिरन्तौ) बढ़ाते हुए (इते) आओ ।

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।

अन्तः पवित्रं उपरि श्रीणानो यं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमारे (दिवि-स्पृशं) मनःकामनागत, वा ज्ञान सम्बन्धी, (यज्ञं) परस्पर के सत्संग को (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (आ याहि) प्राप्त हो । (अयं) यह मैं (पवित्रे उपरि श्रीणानः) पवित्र व्रत पर आश्रय लेता हुआ (शुक्रः) शुद्ध आचारवान् होकर (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण में स्थान प्राप्त करूँ । वा तेरे अन्तःकरण को बांधता हूँ ।



वेत्यध्वर्युः पथिमी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।

अर्धा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवांशिरम् ॥१०॥७

भा०—हे (नियुत्वः) नियुक्त शिष्यों के स्वामिन् गुरो ! (अध्वर्युः)

अपनी रक्षा को चाहता हुआ शिष्य (रजिष्ठैः) अति तेजस्वी (पथिभिः) सन्मार्गों से (हव्यानि) ग्रहण-योग्य ज्ञानों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (प्रति वेति) तुझे प्राप्त होता है । तू (नः) हम में से (उभयस्य) दोनों का (पिब) पालन कर । (शुचिं) शुद्ध, व्रतचारी और (गवांशिरं सोमम्) गौ, वाणी के ऊपर विद्याभ्यासी दोनों प्रकार के शिष्यों की पालना कर । इति सप्तमो वर्गः ॥

चरमह्यं असि सूर्य बलादित्य मह्यं असि ।

महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्वा देव मह्यं असि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सूर्य) जगदुत्पादक, सूर्यवत् प्रकाशक ! तू (वट् महान् असि) सचमुच महान् है । हे (आदित्य) सबको अपने वश में लेने वाले ! तू (वट् महान् असि) सचमुच महान् है । (ते महः सतः) तुझ महान् सत्स्वरूप का (महिमा पनस्यते) बड़ा भारी सामर्थ्य वर्णन किया जाता है । हे (देव) सुखों के दातः ! तू (अद्वा महान् असि) सचमुच महान् है ।

वट् सूर्य श्रवसा मह्यं असि सत्रा देव मह्यं असि ।

महा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाम्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! परमेश्वर ! तू (वट्) सत्य ही (श्रवसा महान् असि) अपने ज्ञान और यश से महान् है । हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! तू (सत्रा) सत्य के बल से (महान् असि) महान् है । तू (महा) अपने महान् सामर्थ्य से (असुर्यः) प्राणों में रमण करने वाले जीवों का हितकारी, (पुरोहितः) समक्ष साक्षिवत् विराजमान है । तू (विभु) सर्वव्यापक, (अदाम्यम्) अधिनाशी (ज्योतिः) प्रकाश है ।



इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।

चित्रेव प्रत्यदर्शयत्य् । न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

भा०—(इयं) यह (या) जो (नीची) नीचे की ओर मुख किये, विनयशील कन्या के समान झुकी, (अर्किणी) स्तुतिशुक्त, वा अर्क, मन्त्रादि को जानने वाली अर्किणी, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) सूर्य-कान्ति के समान उज्ज्वल (कृता) उत्तम अलंकारों से सुसज्जित, (चित्रा इव) अद्भुत रूप वाली के समान (दशसु बाहुषु) दशों दिशाओं में बाहुओं के बल पर (आयती) विस्तृत राज-शक्ति है वह (प्रति अदर्शि) सबको दीखे ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य । न्या अर्कमभितो विविशे ।

बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पर्वमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

भा०—(तिस्रः प्रजाः) तीन प्रकार की प्रजाएं (अति-आयम्) अतिक्रमण करके विराजमान प्रभु की ही (ईयुः) प्राप्त होती हैं । अथवा—तीन प्रजाएं (अत्यायम् ईयुः) अतिक्रमण कर गति करती हैं जैसे—पक्षी गण, भूमि को छोड़कर आकाश से विचरते हैं वे तीन प्रकार के हैं, जैसे—वक्, गृध्र और चेरपाद और (अन्याः) दूसरी प्रजाएं (अर्कम् अभितः) सूर्यवत् अन्न का आश्रय लेकर (विविशे) स्थित हैं । (भुवनेषु अन्तः) लोकों में (बृहत् पर्वमानः) बड़ा भारी परम पावन, प्रभु (तस्थौ) विराजता है, वह ही (हरितः आ विवेश) सब दिशाओं में वायुवत् व्यापक है ।

माता रुद्राणां दुहितां वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामादिति वधिष्ट ॥ १५ ॥

भा०—(रुद्राणां माता) दुष्टों को रूढ़ाने वाले, वीर पुरुषों की दूध पिलाकर पुष्ट करने वाली, रोगों के नाशक घृत आदि पदार्थों की उत्पादक माता यह गौ है; और वीरों की उत्पादक और रोग नाशक

ओषधियों की उत्पादक जननी गौ भूमि है । वह (वसूनां दुहिता) राष्ट्र में वा । जगत् में वसे समस्त जीवों को सुख देने वाली, (अदित्यानां स्वसा) दान-आदान करने वाले व्यापारी वैश्य जनों की (सु-भसा) सर्व सुखदात्री, भगिनी के समान है और (अमृतस्य नाभिः) अमृत, दीर्घ जीवन को देने वाली, मानो आश्रय है । मैं (चिकित्सुषे) इन तप्यों को जानने वाले को (नु प्रवोचं) निश्चय, बलपूर्वक कहता हूँ कि ऐसी (अनागां गाम्) अपराध-रहित गौ को और (अदितिम्) भूमिवत् माता-पितावत् गौ का (मा वधिष्ट) हनन मत करो ।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीमिरुपतिष्ठमानाम् ।  
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥८॥

भा०—(वचः-विदम्) परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली, (वाचम् उदीरयन्तीम्) वाणी को उद्धृत करने वाली, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त कर्मों-सहित (उपतिष्ठमानाम्) उपस्थित होती हुई (देवेभ्यः मा परि एयुषीम्) विद्वान् जनों से मुझको प्राप्त होने वाली (देवीं गाम्) ज्ञान का प्रकाश देने वाली, 'गौ', वाणी को (दभ्रचेताः) अल्पज्ञानी (मर्त्यः) मनुष्य (परि आ अवृक्त) परित्याग करता है और उदार-चित्त पुरुष उस वेदवाणी का आश्रय लेता, ज्ञानरस का दोहन करता है । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[ १०२ ]

प्रयोगो भार्गवोऽग्निवां पावको बाहंस्पत्यः । अथवाग्नी गृहपतियविष्ठी सहसः सुतौ । तयोर्वान्यतर ऋषिः ॥ अग्निदेवता ॥ छन्दः— १, ३— ५, ८, ९, १४, १५, २०—२२ निचृद् गायत्री । २, ६, १२, १३, १६ गायत्री । ७, ११, १७, १९ विराड् गायत्री । १०, १८ पादानिचृद् गायत्री ।

त्वमग्ने बृहद्वयो दधांसि देव दाशुषे । क्विर्गृहपतिर्युवा ॥ १ ॥



भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (देव) दानशील (दाशुपे) देने वाले को (त्वम्) तू (वृहत् वयः) बड़ी आयु, प्रचुर अन्न और ज्ञान (दधासि) देता है । तू (कविः) क्रान्तदर्शी, (गृहपतिः) गृहस्वामी, (युवा) बलवान् है ।

स न ईक्षानया सह देवा अग्ने दुवस्युवा । चिकिद्विभानवा वह ॥२॥

भा०—हे (विभानो) विशेष कान्तियुक्त ! तू (चिकित्) ज्ञानवान् है । (नः) हमें (अनया इडा) इस स्तुति, (दुवस्युवा) सेवा-शुश्रूषा के (सह) साथ २ (देवान् आ वह) शुभ गुण और विद्वान् जनों को हमें प्राप्त करा ।

त्वया ह स्विद्युजा वयं चोदिष्टेन यविष्ठय ।

अभि ष्मो वाजसातये ॥ ३ ॥

भा०—हे (यविष्ठय) अति बलशालिन् ! (त्वया युजा स्वित्) तुझ सहयोगी के साथ ही (वयम्) हम (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि प्राप्त करने के लिये (अभि स्मः) सबको वश करें ।

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥४॥

भा०—(समुद्र-वाससम्) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाले (और्व-भृगुवत्) भूमि के भीतर सब पदार्थों को भर्जन वा परिपाक करने वाले, तेज से युक्त और (शुचिम्) पवित्र (अप्नवानवत्) जल के जाल से युक्त (अग्निम्) अग्नि के तुल्य बलवान् मैं भी (समुद्र-वाससम्) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभुरूप (अग्निं), ज्ञानमय तेजस्वी को (और्व-भृगुवत्) भूमि के समस्त पदार्थों को संतप्त और परिपाक करने के सामर्थ्य से युक्त सूर्यवत् (शुचिम्) पवित्र और (अप्नवानवत्) सुख प्राप्ति के समस्त साधनों वाले सामर्थ्य से युक्त प्रभु को (आ हुवे) बुलाता हूँ, प्रार्थना करता हूँ । 'अप्नवानवत्'—अप्न इति रूप नाम, अपत्यनाम, पदनाम च । आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो जुट् च वा । अमः ।

अपः । आपः । उणादि० ॥ आप्यते सुखं येन तत् भग्नः, अपत्यं सुकर्म  
वा ।

हुवे वातस्वनं कविं पर्जन्यक्रन्धं सहः ।

अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—(समुद्र-वाससम् अग्निम्) समुद्र के गर्भ में विद्यमान आग  
(वातस्वनः पर्जन्य-क्रन्धं) जैसे प्रचण्ड वात वा शब्दकारी मेघ के समान  
गर्जन करने वाला होता है वैसे ही (समुद्र-वाससम्) महान् आकाश  
में व्यापक, (वात-स्वनं) वायु आदि द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने  
वाले (कविं) क्रान्तदर्शी, (पर्जन्य-क्रन्धं) सब मेघों को भी गर्जन कराने  
वाले विद्युत् के समान, सब रसों और बलों का आश्रय कहाने योग्य  
(सहः) सब कुछ सहने वाले, (कविं) क्रान्तदर्शी अन्तर्यामी प्रभु को  
(हुवे) स्मरण करता हूँ । इति नवमो वर्गः ॥

आ स्रवं सवितुर्यथा भगस्येव भुजिं हुवे । अग्निं समुद्रवाससम् ॥ ६

भा०—(सवितुः स्रवं यथा) सूर्यप्रकाश के तुल्य सत्यप्रकाश करने  
वाले (भगस्य इव भुजिं) ऐश्वर्य के भोक्ता या पालक राजा के समान  
तेजस्वी, (समुद्र-वाससं अग्निं) बड़वानल के समान विशाल आकाश में  
व्यापक वा जगत् को समुद्रवत् आच्छादित करने वाले (अग्निम्) तेजो-  
भय परमेश्वर की (हुवे) स्तुति करता हूँ ।

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरुतमम् ।

अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥ ७ ॥

भा०—(वः वृधन्तम्) आप सब मनुष्यों को बढ़ाने वाले, (अध्व-  
राणां) अविनाशी पदार्थों के बीच (पुरु-तमम्) महान् पालक, (अग्निं)  
प्रकाशरूप को मैं (हुवे) पुकारता हूँ (नप्त्रे) सबको प्रेम से बांधने वाले,  
(सहस्वते) बलवान् प्रभु की प्राप्ति के लिये मैं (अच्छ हुवे) साक्षात्  
उसकी स्तुति करता हूँ ।



अयं यथा न आभुवत्स्वष्टां रूपेव तक्ष्या ।

अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव आभुवत्) बढ़ई जैसे छील-छाल कर पदार्थों को बनाता है जैसे ही (अयं) यह प्रभु भी (त्वष्टा) जगत् का बनाने वाला, (नः आभुवत्) हमें भी बनाता है । (अस्य यशस्वतः क्रत्वा) इसी कीर्ति वाले प्रभु के ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से हम यशस्वी हों ।

अयं विश्वां अमि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।

आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि जैसे (देवेषु) सब भूतों में (श्रियः अमि पत्यते) कान्तियों को धारण करता है जैसे ही यह (अग्निः) नायक, प्रभु (विश्वाः श्रियः) समस्त आश्रय लेने वालों का (अमि पत्यते) साक्षात् पालक होता है और (देवेषु) सब दिव्य पदार्थों वा दाताओं में भी सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् है । वह (वाजैः) जानों और ऐश्वर्यों-सहित (उप गमत्) हमें प्राप्त हो ।

विश्वेषामिह स्तुहि होतृणां यशस्तमम् ।

अग्निं यज्ञेषु पूर्यम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(विश्वेषाम् होतृणाम्) सब दाताओं से (यशस्तमं) अधिक यशस्वी, (पूर्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, पूर्ण, प्रभु की (इह यज्ञेषु) यहां यज्ञों, सत्संगों में (स्तुहि) स्तुति कर । इति दशमो वर्गः ॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा । दीदायं दीर्घश्रुत्तमः ॥ ११

भा०—(यः) जो (दीर्घश्रुत्-तमः) दीर्घ काल तक गुरु-मुखों से खूब श्रवण करने योग्य, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, प्रशंसनीय; (दमेषु) सब घरों में दीपक के समान, (आ दीदायं) सर्वत्र प्रकाशमान है, सब भुवनों में प्रकाश करता है, उस (शीरं) सर्वव्यापक (पावक-शोचिषं) अग्नि के समान पवित्रकारक ज्योति वाले प्रभु की यज्ञादि में स्तुति कर ।

तमर्वन्तं न सानसि गृणीहि विप्र शुष्मिणम् ।

मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥

भा० हे (विप्र) बुद्धिमान् मनुष्य ! तू (तम्) उस (अर्चन्तम्) अश्व के समान (सानसिम्) जीवन मार्ग के परम सुखदायक, (शुष्मिणम्) उत्तम बलों से युक्त, (मित्रं) मित्र के समान (यातयत्-जनम्) समस्त मनुष्यों को प्रेम से प्रयत्न, उद्योग कराने वाले प्रभु की (गृणीहि) स्तुति कर ।

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।

वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥

भा०—(हविष्कृतः) हवि, चर आदि देने वाले यज्ञशील पुरुष की (गिरः) बाणियां (त्वा देदिशतीः) तेरा वर्णन करती हुई (जामयः) बन्धु मगिनियों के समान (वायोः अनीके) वायु के समीप अभिवत्, प्राणों के बल पर (त्वा अस्थिरन्) तुझको हृदय में स्थिर करती हैं । अगवत्-स्तुतियां परमेश्वर के भाव को हृदय में रद करती हैं ।

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्यावसन्दिनम् ।

आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥

भा०—जैसे आप तत्त्व के लिये (त्रिधातु बर्हिः) तीनों प्रकार के लोक आश्रय हैं, वैसे ही (त्रिधातु) तीनों प्रकार के (अवृतं) क्रिया-रहित (बर्हिः) लोक (असन्दिनम्) असम्बद्ध होकर भी (यस्य) जिसके आश्रय पर सम्बद्ध हैं और जिसमें (आपः चित्) प्रकृति आदि पदार्थ और जोव (पदं न दध) स्थिति प्राप्त करते हैं उसे तू हृदय में स्थान दे ।

पदं देवस्य मीलहुषोऽनाष्टृष्टाभिरूतिभिः ।

मद्रा सूर्ये इवोपहृक् ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(म हुषः देवस्य) सूर्य के वर्षक, लोकों के प्रकाशक प्रभु का (पदं) स्वरूप (अनाष्टृष्टाभिः कृतिभिः) किसी से न पराजित होने



वाली रक्षाकारिणी सेनाओं से राजा के पद के समान, अधर्षणीय शक्तियों से युक्त है। वह स्वयं भी (सूर्यः इव) सूर्य के समान (भद्रा) कल्याणकारक (उपहृक्) समीप स्थित चक्षु के समान ज्ञान का प्रकाशक है। इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्ने घृतस्य धीतिमिस्तेपानो देव शोचिषा ।

आ देवान्वाक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

भा०—जैसे सूर्य (घृतस्य धीतिभिः) तेज की धारक शक्तियों से (देवान्) किरणों को धारण करता और (तेपानः) तपता है और जैसे घृत की आहुतियों से अग्नि (देवान्) सुगन्ध आदि गुणों को धारण करता है वैसे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (देव) ज्ञान के दातः ! (तेपानः) तप करता हुआ तू (शोचिषा) तेज से (घृतस्य धीतिभिः) ज्ञान वाणियों द्वारा (देवान्) ज्ञानेच्छुक शिष्यों को (आ वक्षि) ज्ञान करा और (यक्षि च) ज्ञान दे ।

तं त्वाजनन्त मातरः कवि देवासो अङ्गिरः ।

हव्यवाहममर्त्यम् ॥ १७ ॥

भा०—(तं त्वा) उस तुझको (मातरः देवासः) विद्वान् जनः माता के तुल्य (कवि अजनन्त) कवि क्रान्तदर्शी रूप से प्रकट करते हैं। (हव्यवाहं) ग्राह्य ज्ञान-वचनों को धारण करने वाले (अमर्त्यम्) अमरण-शील तुझको वे (मातरः अजनन्त) माता के समान उत्पन्न करते हैं ।

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम् ।

हव्यवाहं निषेदिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (कवे) दीर्घदर्शन, उपदेष्टा ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (प्रचेतसं) उत्तम ज्ञान वाले, (दूतं) उत्तम ज्ञान देने वाले (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (हव्यवाहं) उत्तम वचन श्रवण करने वाले (त्वा) तुझको आदरपूर्वक (निषेदिरे) आसन पर बैठाते हैं ।

नहि मे अस्त्यध्न्या न स्वधितिर्वनन्वति ।

अथैतादृग्भरामि ते ॥ १६ ॥

भा०—(मे अस्त्यध्न्या नहि अस्ति) मेरे पास न मारने योग्य अघ्न्या गौ भी नहीं और (न) नहीं (स्वधितिः) कुल्हाड़ी काष्ठ (वनन्वति) काटती है, तो भी (एतादृग्) ऐसा (ते) तेरे निमित्त (भरामि) लाया हूँ । तू इसे ही स्वीकार कर । अर्थात् न मेरे पास दुग्ध देने वाली गौ है, न काष्ठों को काटने की कुल्हाड़ी है, मैं यज्ञ के स्थूल साधन उपस्थित नहीं कर सकता तो भी भगवन् ! भावनामय यज्ञ के साधन उपस्थित हैं ।

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारुणि दध्मसि ।

ता जुषस्व यविष्ठय ॥ २० ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (यत्) जो हम (कानि कानिचिद्) कई २ प्रकार के (दारुणि) नाना काष्ठ (आदध्मसि) आधान करते हैं हे (यविष्ठय) सर्वशक्तिमन् ! तू (ता) उन २ को (जुषस्व) स्वीकार कर । जैसे अग्नि फरसे से काटी हुई, छोटी २ समिधाओं को सुगमता से जला देता है वैसे ही विद्वान् आचार्य भी गर्भाशय आदि संस्कारों से संस्कृत आत्माओं को सहज ही ज्ञानवान् कर देता है ।

यदर्युपजिह्विका यद्वज्रो अतिसर्पति ।

सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥ २१ ॥

भा०—(यद् उपजिह्विका अस्ति) जिसे दीमक खा जाती है और (यद् वज्रः अस्ति सर्पति) जिसे बलमीक लग जाता है वह काष्ठ भी अग्नि में पड़कर (घृतम् अस्तु) चमकने लगता है वैसे ही हे विद्वन् ! (यत्) जिस बालक को (उपजिह्विका) जीभ की चञ्चल प्रकृति (अस्ति) लग जाती है और (यद् वज्रः) वमनशील होकर जो पदं ग्रन्थ भूल जाय, ऐसा विद्यार्थी (अतिसर्पति) आवारा घूमता है (तत् सर्वं) वह सब भी



(ते) तेरे समीप (वृतम् अस्तु) वृत के समान ज्ञान दीप्ति का साधन हो जाता है ।

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।

अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ २२ ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निम् इन्धानः मर्त्यः) अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ मनुष्य (मनसा धियं सचेत) मन वा ज्ञान से (धियं) बुद्धि वा कर्म को युक्त करे । इसी प्रकार मनुष्य (विवस्वभिः) विद्वानों द्वारा (अग्निम् इधे) ज्ञानवान् प्रभु को हृदय में प्रज्वलित करे । इति द्वादशो वर्गः ॥

[ १०३ ]

सोमरिः काण्व ऋषिः ॥ १—१३ अग्निः । १४ अग्निर्मस्तश्च देवताः ॥

छन्दः—१, ३, १३ विराड् बृहती । २ निचृद् बृहती । ४ बृहती । ६ आर्ची स्वराड् बृहती । ७, ९ स्वराड् बृहती । ९ पंक्तिः । ११ निचृत् पंक्तिः । १० आर्ची भुरिग् गायत्री । ८ निचृदुष्णिक् । १२ विराडुष्णिक् ।

अदर्शि गातुचित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः ।

उपोषु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ १ ॥

भा०—(गातुचित्त-तमः) ज्ञान आदि को जानने, अन्यो को जनाने द्वारा, वेद वाणी को प्रकाशित करने वाला प्रभु, गुरु (अदर्शि) सबके दर्शन योग्य है । (यस्मिन्) जिसके अधीन रहकर सब (व्रतानि आदधुः) व्रतों को धारण करते हैं । (आर्यस्य वर्धनम्) श्रेष्ठ जनों को बढ़ाने वाले (जातम्) सबको प्रकट, विदित, (अग्निम्) तेजस्वी, ज्ञाता, ज्ञापक प्रभु, सर्व-गुरु को (नः गिरः उपो सु नक्षन्त) हमारी वाणियां अच्छी प्रकार प्राप्त हों ।

प्र देवोदासो अग्निर्देवाँ अचक्रा न मज्मना ।

अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥

भा०—(देवः दासः=दिवः दासः) प्रकाश देने वाले सूर्य की (अग्निः)

अग्नि (देवान्) अपने किरणों वा प्रकाशों को (मातरं पृथिवीं अनु) सबकी जननी, माता पृथिवी की (अच्छ) ओर (मज्जना न प्र वावृते) मानो बड़े बल से भेजता है और (पृथिवीं मातरम् अनु) माता भूमि के रचनादि के अनुसार (वि वावृते) उसमें विविध कार्य करता है। वह पत्रों को हरा, पुष्पों को नाना रंगों का, जड़ों को हृद् इत्यादि जंगम स्थावरादि संसार को अद्भुत प्रकार से परिणत करता है। वह स्वयं (नाकस्य सानां व) आकाश के उच्च भाग पर (तस्थौ) स्थिर रहता है। जैसे ही वह सर्वज्ञ प्रभु भी (नाकस्य सानवि) आनन्दमय दशा में स्थिर है, तो भी मातृवत् जननी-प्रकृति को बहुत भारी बल से नहां चलाता, प्रत्युत अनायास ही उसमें (प्र वावृते) प्रथम स्पन्द उत्पन्न करता है और (अनु वि वावृते) अनन्तर उसी को विविध रूपों में जगत् रूप से बदल देता है।

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः ।

सहस्रसां मेधसां ताविव त्मनाग्निं धीभिः संपर्यत ॥ ३ ॥

भा०—(चर्कृत्यानि कृण्वतः यस्मात्) अपने कर्त्तव्य, सर्ग, स्थिति, प्रलय आदि नाना कर्मों का सम्पादन करते हुए जिससे (कृष्टयः) मनुष्य मानो अपने देह में कर्म बीज की कृषि करते और कर्मफल का संचय और उपभोग करते हुए (रेजन्ते) कांपते और सञ्चालित होते हैं मानो उस (मेधसांतौ इव) पवित्र अन्नवत् अवश्य प्राप्य फल प्राप्ति के काल में, हे जनो ! (सहस्र सां) एक बीज का सहस्रों गुणा फल देने वाले (अग्नि) उस ज्ञानी प्रभु की (धीभिः संपर्यत) स्तुतियों से शुश्रूषा करो।

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।

स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहवपोषिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसने वाले ! (यं) जिसको तू (राये निनीषसि) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये सम्मार्ग से ले जाता है और (यः मर्तो ते दाशत्) जो मरणशील जीव अपने को तुझे सौंप देता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! (सः) वह (त्मना) अपने आप, (उक्थ-शंसिनम्) वेद वचनों के वक्ता (सहस्र-पोषिणं) सहस्रों के पोषक (वीरं) वीर-पुत्र, विविध विद्योपदेष्टा, तुमको (धत्ते) हृदय से धारण करता है।



स इच्छहे चिदमि तृणसि वाज्रमवता स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

त्वे देवत्रा सदा पुरुवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वही पुरुष जो अपने आपको तुझ पर वार देता है, (इद्वे चित्) इद्व शत्रु पर भी (अवता) अपने बल से (अभि वाजं) संग्राम में (तृणसि) शत्रु का नाश करता है, (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यज्ञ, ज्ञान धारण करता है । हे (पुरु-वसो) बहुत धन के स्वामिन् ! (त्वं देवत्रा) तुझ दानी के आश्रय से हम भी (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त उत्तम धन प्राप्त करें ।

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।

मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्रये ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वा वसु दयते) समस्त जीवगणों की रक्षा करता है वह (होता) दानी, (जनानां आनन्दः) जनों को आनन्द देने वाला है । (अस्मै अग्रये) उस ज्ञानमय के लिये (मधोः पात्रा न प्रथ-मानि) मधुर पदार्थ से पूर्ण सर्व प्रथम देने योग्य पात्रों के समान (स्तोमाः प्रयन्ति) उत्तम स्तुति-मन्त्र आदर पूर्वक हृदय से बाहर आते हैं ।

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मज्यन्ते देवयवः ।

उमे तोके तनये दस्म विशपते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(रथ्यम् अश्वम्) रथ योग्य अश्व के समान देह के भोक्ता आत्मा को (सुदानवः) उत्तम दानशील, (देवयवः) प्रभु के उपासक, लोग (मर्मज्यन्ते) सदा स्वच्छ वरते रहते हैं । हे (विशपते) समस्त प्रजाओं के पालक (हे दस्म) दर्शनीय ! (उमे तोके तनये) दोनों, पुत्र पौत्रादिक के पालनार्थ (मघोनां राधः पर्षि) धनवानों का धन प्रदान कर ।

प्र मंहिषाय गायत ऋतावने बृहते शुक्रशोचिषे ।

उपस्तुतासो अग्रये ॥ ८ ॥

भा०—हे (उप-स्तुतासः) उपासक स्तुतिरुत्ता जनो ! आप लोग (मंहिषाय) अति दानशील, (बृहते) महान् (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेजः



स्वरूप (अग्रये) ज्ञानवान् सर्वपूज्य सर्वव्यापक (कृताब्दे) सत्य ज्ञान-  
मय प्रभु की (प्र गायत) उत्तम स्तुति करो ।

आ वंसते मधवा वीरवद्यशः समिद्धो ह्यन्याहुतः ।

कुविज्ञो अस्य सुसृतिर्नवीयस्यच्छा वाजैभिरागमन्त ॥ ६ ॥

भा०—(मधवा) पूजित ऐश्वर्य युक्त, (द्युम्नी) तेजस्वी, प्रभु (आहुतः) आदरपूर्वक प्रार्थित और (समिद्धः) हृदय में सुप्रकाशित होकर (वीरवत् यशः आ वंसते) पुत्रों से युक्त अन्न, यश आदि सब देता है। (अस्य कुवित् सुमतिः) इसकी बहुत उत्तम मति (नवीयसी) उत्तम उपदेशदात्री, (वाजैभिः) जानों सहित (नः अच्छ आगमत्) हमें भली प्रकार प्रास हो।

प्रेमं प्रियाणां स्तुत्यां सान्नातिथिम् ।

अग्नि रथानां यत्नम् ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (आसाव) आदरपूर्वक स्तुति करने हारे, अग्नि आदि के उत्पन्न करने में समर्थ ज्ञानवन् ! तू (प्रियाणां प्रेष्ठम्) प्रियों में सर्व प्रिय, (अतिथिम्) सबसे ऊपर विद्यमान, सर्वपूज्य, (रथानाम् यमम्) रथों के नियामक विद्युत् के समान सब देहों में वा सूर्यादि लोकों के नियन्ता (अग्निं) तेजस्वी सञ्चालक आत्मा की (स्तुहि) स्तुति, उपदेश कर ।

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो व्रतन्ति ।

दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञियः) पूजायोग्य स्वामी, (उदिता) उन्नत और (निदिता) निन्दित अच्छे और बुरे सबका (वेदिता) ज्ञान कराने वाला होकर, (वसु भाववर्तति) ऐश्वर्य प्रदान करता है। (धिया) ज्ञानपूर्वक, क्रमानुसार (वाजं सिषासतः) ऐश्वर्य, वेगादि को सबमें विभक्त करने वाले (यस्य) जिसके (उर्मयः) शासन (प्रवणे उर्मयः नः) नीचे की ओर जाने हुए बृहत् जल तरंगों के (दुस्तराः) अपार हैं।

मा नो हृणीतामतिथिर्वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।

यः सुहोता स्वध्वरः ॥ १२ ॥



भा०—(यः) जो (सु-होता) सुख देने वाला, दानी, (सु अध्वरः) उत्तम मार्गप्रद, हिंसा से रहित, दयालु है, वह (अतिथिः) सर्वोपरि पूज्य (वसुः) सबमें बसा, (अग्निः) ज्ञानी, सर्वप्रकाशक, सन्मार्ग में प्रवर्तक है (एषः) वह (पुरु-प्रशस्तः) बहुत स्तुति योग्य है ।

मो ते रिषन्त्ये अच्छोक्तिभिर्वसोऽग्ने केभिश्चिदेवैः ।

कीरिश्चिद्धि त्वामीष्टे दूत्याय रातहव्यः स्वध्वरः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वसो) सबमें बसे ! (अग्ने) ज्ञान-प्रकाशक ! (ये) जो (अच्छोक्तिभिः) उत्तम वचनों और (केभिः चित् एवैः) किसी प्रकार के भी साधनों से (त्वाम्) तेरी उपासना करते हैं (ते मो रिषन्) वे पीड़ित नहीं होते । (कीरिः चित् हि) उत्तम स्तुति करने हारा ही (दूत्याय) स्तुति कर्म के लिये (रातहव्यः सु-अध्वरः) अन्नादि चर देता, यज्ञ करता हुआ (त्वाम् ईडे) तेरी उपासना करता है ।

आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये ।

सोमर्या उप सुष्टुति मादयस्व स्वर्णरे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १७ ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! तू (मरुत्सखा) विद्वान् जनों का मित्र होकर (रुद्रेभिः) समस्त प्रजाओं के दुःखों को दूर करने वाले, वायु जलादि पदार्थों द्वारा (सोमपीतये) आनन्द रस, ऐश्वर्यादि कर्म फलों का उपभोग, पानादि कराने वा उत्पन्न जगत् का पालन करने के लिये (आ याहि) हमें प्राप्त हो और (सोमर्याः) अर्चना करने वाले जन की (स्वः-नरे) सबके नायक तुझमें प्रयुक्त (सु-स्तुति) उत्तम स्तुति को श्रवण कर । (उप मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हो, सबको प्रसन्न कर ।

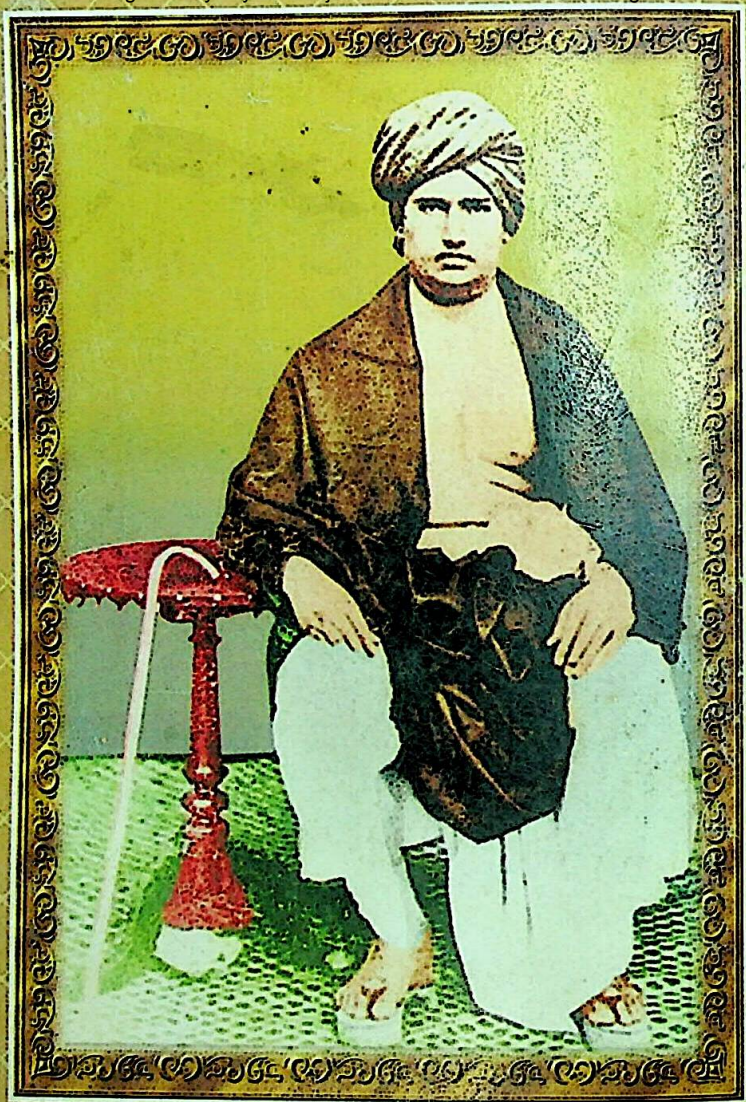
इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले दशमोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रागाथमष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति श्री-विद्यालङ्कार-मीसांसातीर्थ-विरचोपशोभित-श्रीपण्डित जयदेव-शर्मणा विरचिते ऋग्वेदाऽऽलोकभाष्येऽष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥







# महर्षि दयानन्द सरस्वती

1824 - 1883